श्री विद्या साधना

(श्री विद्यार्णव एवं परशुराम कल्पसूत्रानुसार)

प्रथम भाग
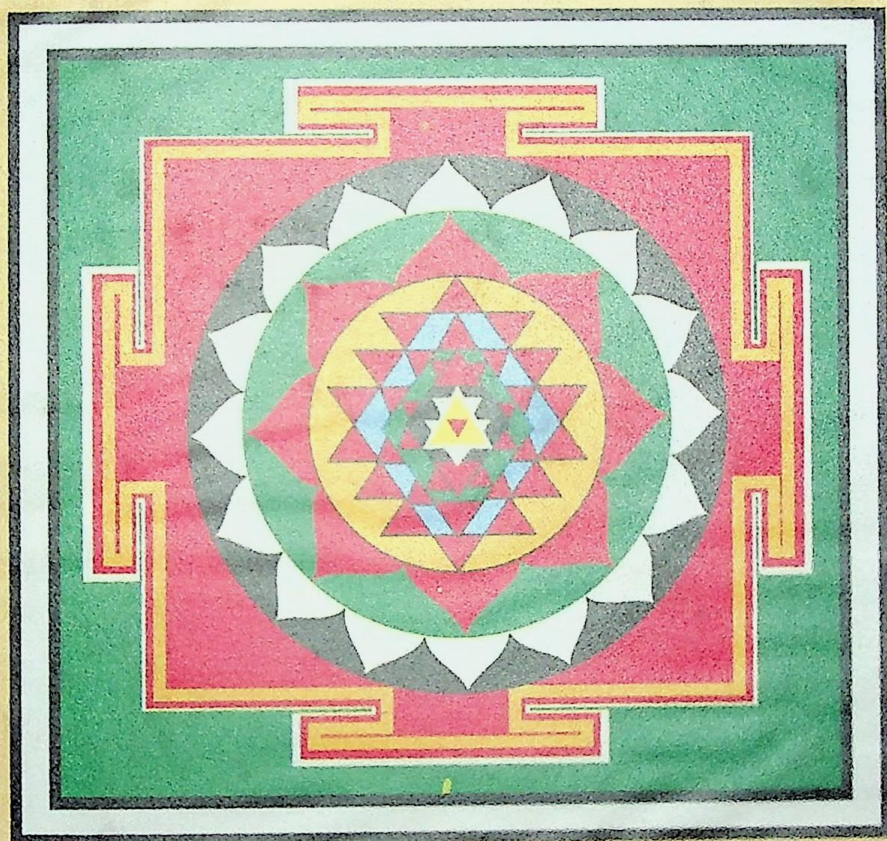
सम्पादक

आचार्य हरिओम शुक्ल शास्त्री

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान

लखनऊ

धर्मसम्राट परमहंस परिब्राजकाचार्य गुरुपाद
११०८ श्री स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती ''करपात्र'' स्वामी जी

श्री माता बगलामुखी बगला यन्त्रम्

श्री विद्या राजराजेश्वरी ललिताम्बा ट्रस्ट के संस्थापक
कान्यकुब्ज पीठाधीश्वर
१००८ श्री स्वामी शीतलानन्दनाथ शास्त्री जी महाराज

अकुल कुल मध्यन्तीम्, कुण्डलीम्
ब्रह्म रन्ध्रव सहस्त्रार
वैन्दव
रंग-श्वेत
सर्वानन्दमयी चक्र
त्रिकोण (रुद्रग्रन्थि)
रंग-बंधूक पुष्प
सर्व सिद्धि दायक चक्र
अष्टार
रंग-पद्मराग पुष्प
सर्व रोगहर चक्र
विशुद्ध
अन्तर्दशार
रंग-जबाकुसुम
सर्व रक्षा कर चक्र
अनाहत
बहिर्दशार
रंग-सिंदूर
सर्वार्थसाधक चक्र
मणिपूरे
चतुर्दशार
(विष्णुग्रन्थि)
रंग-दाडिमी पुष्प
सर्व सौभाग्य दायक चक्र
अष्टदल
रंग-जबाकुसुम
सर्व संक्षोभण चक्र
स्वाधिष्ठान
षोडशदल
रंग-श्वेत
सर्वाशा परिपूरक चक्र
मूलाधार
ब्रह्म ग्रन्थि
भूपुर
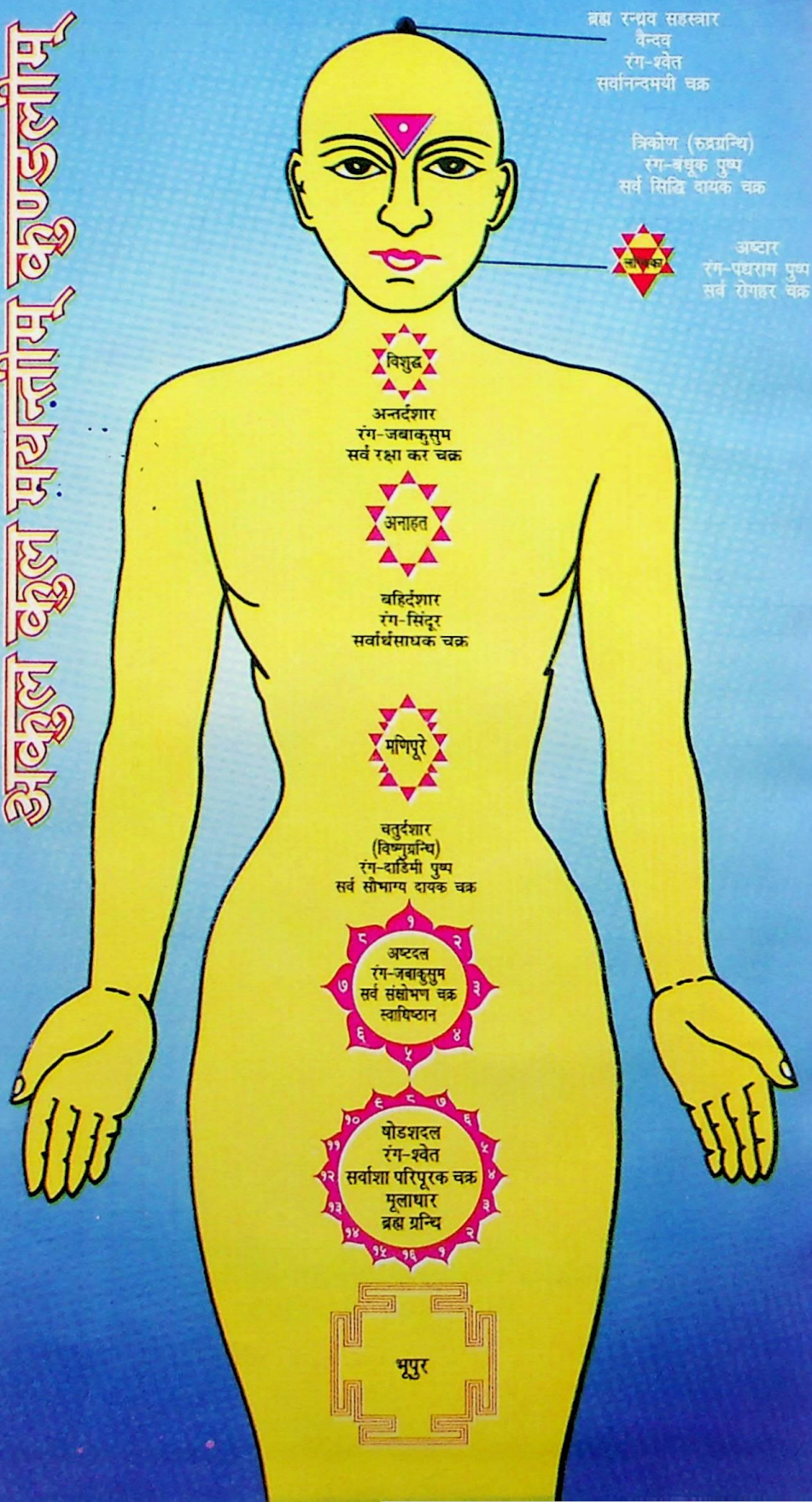
श्री विद्या साधना-I

(श्री विद्यार्णव एवं परशुराम कल्पसूत्रनुसार)

कान्यकुब्ज पीठाचार्य

108 शीतलानन्द नाथ (शास्त्री जी)

सम्पादक

आचार्य हरिओम शुक्ल शास्त्री

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान

लखनऊ

प्रकाशक :

सत्येन्द्र सिंह

निदेशक

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान

प्राप्तिस्थानम् :

उत्तरप्रदेश-संस्कृत-संस्थानम्

संस्कृत भवन, नया हैदराबाद, लखनऊ—226007

दूरभाष : 2780251 फैक्स : 2781352

बेबसाइट : w w w.upsanskritsanthanam.

ई—मेल : nidesans@upsanskritsanthanam.org

द्वितीय संस्करण : 2012

प्रतियाँ : 1100

मूल्य : रु. 300.00 (तीन सौ रुपये)

मुद्रक :

शिवम् आर्ट्स

211, 5वीं गली निशातगंज, लखनऊ।

फोन : 9415518654,

email : shivamarts@sancharnet.in

प्रस्तावना
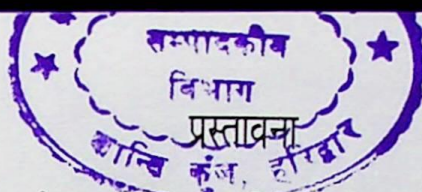
श्री कुल की उपासना पद्धति यद्यपि अनेक रूपों मे प्रकाशित होकर प्राप्त है, तथापि साधकों के लिए सूक्ष्य कम की अनुपलब्धता तथा वेदादि शास्त्र सम्मत् पद्धति परमावश्यक रही है, इसी कम मे उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थानम् लखनऊ द्वारा वर्ष 2012 मे प्रकाशित **"श्री विद्या साधना–प्रथम भाग"** जो अध्यात्मिक साधना की अत्यन्त महत्वपूर्ण पद्धति है, इससे साधक को भोग एवं मोक्ष दोनो समान रूप से उपलब्ध होते हैं। यथा–"यत्रास्ति भोगो न तत्र मोक्षः, यत्रास्ति मोक्षः न तत्र भोगः, सुरसुन्दरी पूजन तत्पराणाम् भोगश्चमोश्चश्च करस्थ एव" अर्थात् जिनकी उपासना से भोग प्राप्त होता है, उनकी उपासना से मोक्ष प्राप्त नही होता है, तथा जिनकी उपासना से मोक्ष प्राप्त होता है, उनकी उपासना से भोग प्राप्त नही होता है, किन्तु सुरसुंदरी भगवती राजराजेश्वरी पराम्बा जगदम्बा त्रिपुरसुंदरी की उपासना से भोग और मोक्ष दोनों करस्थ हो जाते हैं।

उक्त पद्यति साधकों को अल्पसमय मे उपलब्ध करा देने की आकांक्षा मे पुस्तक मुद्रण के सावधानी रखने पर भी कतिपय लिपिकीय त्रुटियॉ प्रूफ रीडिंग मे रह गयी हैं, जिन्हें दूर करने का अथक् प्रयास करते हुए **विद्या साधना–प्रथम भाग** की पृष्ठ–पंक्तिवार शुद्धियों/अशुद्धियों को उल्लिखित कर संलग्न किया जा रहा है, आशान्वित हूँ कि विज्ञ वृन्द/साधक जन इसे उदारतापूर्वक अपनायेंगे, और मुद्रण की त्रुटियों को सुधार करने मे किये गये लघु प्रयत्न से यदि वे लाभान्वित हो सके, तो मै अपना परिश्रम सफल समझूँगा, तथा ग्रन्थ मे प्राप्य न्यूनताओं/मुद्रण त्रुटियों को अगले संस्करण मे सुधारने का पूर्ण प्रयत्न किया जायेगा।

सम्पादक

आचार्य हरिओम शुक्ल शास्त्री

विद्या साधना प्रथम भाग

(शुद्ध-अशुद्ध शब्दों का विवरण)

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	शुद्ध	अशुद्ध
1	1	मात्र	मात्र
	4	उद्घोष	उद्घाष
	5	प्रस्थानत्रयी	प्रस्थानतायी
	8	वर्णित	वर्णित
	10	भागवत	भावगत
	11	प्रकार	पगकार
	13	प्रकट	प्रज्ञप्त
	17	यह	एकत्र
2	2	शास्त्र	शास्त्रें
	16	से	ये
	18	चिदग्नि	चिदाग्नि
	19	हति	हुत
	20	षोढ़ा	षोडा
	20	महाषोढ़ा न्यास	महाषीन्यास
	23	लयाङ्ग	लयाङ
	23	अन्तर्याग	अन्तर्योग
	26	श्रवण	रवण
	27	शास्त्रानुसार	शास्त्रनुसार
3	4	समस्त	समस्स्त
	4	को	की
	5	प्राप्त	प्रति
	9	तंत्रों	तत्रें
	21	शांकर	शंकर
	27	द्विजातय	छिजातय
4	6	उमा	उपा
	9	आन्हिक	आहिक
5	15	अर्चन	अर्जन

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	शुद्ध	अशुद्ध
6	6	न्नायथा	न्नन्यता
	10	प्राणां	प्रणां
	10	गेहं	ग्रहं
	12	चरितम्	चारितम्
8	4	सिञ्जित	मञ्ज
	4	वाममर्ध	वामधर्म
8	10	प्रातर्भजामि	प्रातजामि
	11	रक्ताङ्गुलीय लसदंङ्गुलि	रक्ताङ्गुलि
	13	पुण्ड्रेक्षु	पुड्रेक्षु
11	1	कों	को
	14	कुरूविन्द	कुविन्द
13	2	ब्रह्मविद्या	ब्रह्माविद्या
	9	वीरन्द्वष्ट	वीरघष्ट
15	9	साधक स्वयं अमृत पान कर (एक बार)	साधक स्वयं अमृत पान कर (दो बार)
16	8	सहस्रार	सहस्त्रर
	20	सहस्रार	सहस्त्रर
17	3	त्रिकोण	त्रिकोणा
	13	सर्व	सर्वा
	15	षोडशी	षोडडी
	19	बौद्ध	वौध
18	3	विशेषार्घ्य	विशेषाध
19	4	सोहं	साहें
	10	मुद्गर	मुद्रर
	12	प्रणमेत	प्रणनेत्
21	8	भूत	भृत
	9	र	0
	20	त्रिधा	त्रिघा
	24	पुष्पाञ्जलि	पुषपाञ्जलि

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	शुद्ध	अशुद्ध
22	1	अस्त्राय	अस्त्राग्र
	11	जिह्वाघ्राणा	जिह्वाघ्रणा
	13	नःस्वस्ति	नस्सवस्ति
23	10	मण्डपाय	मण्टपाय
	15	तपोद्धाराय	पतोद्वाराय
24	21	प्रज्जवल	प्रज्जव
25	19	श्रंगारकं	श्रंनोटकं
	23	विनिधाय	विनधाय
26	5	दृष्टव्य	द्रष्टवलोकन
	6	विघ्नानुत्सारय	विह्नानुत्सारय
	12	वीजेभ्यो	बीजेम्यशे
	14	मातृकया	मातृकेया
27	7	स्वाङ्गेषु	स्वाङ्गषु
	13	दक्षकर्णे	दक्ष्णे
	20	अधरोष्ठे	अधरंरोष्ठे
28	4	दक्षकूर्परे	दक्षकूर्षरे
29	1	ङं ढं	कं खं
	7	तत्पृष्ठे	सत्पृष्ठे
	19	अस्त्राय	अस्त्रास
30	2	श्री चक्रासनाय	श्र्भचक्रासनाय
	6	वशिनी	वाशिनी
	14	चक्रन्यास	चकन्यास
31	4	सर्वार्थ	सर्वार्था
	7	सर्वज्ञादिदश	सर्वज्ञादिश
32	5	दश शक्ति	श शक्ति
	10	सिद्धा	सिद्धद्धा
32	16	चक्रस्थ	चक्रस्य
33	2	पंचदश्ये	पंचदशी
	2	उन्मना	द्वन्मना

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	शुद्ध	अशुद्ध
33	3	षोडश्यै	षोडशी
	9	नाथ	नथ
	19	केच्छा	केच्छ
	20	कामराज	कारमराज
	22	रन्ध्रे	रान्ध्रे
34	17	ता	तो
	19	दण्डिन्या	वण्डिन्या
35	2	मुख	फख
	17	ब्रह्मरन्ध्रे	ब्रह्मरान्ध्रे
37	1	कुक्षौ	कुही
	14	सामान्यार्घ्य	सामान्याघ्य
38	16	सामान्यार्घ्य	सामान्यार्व्य
40	9	विभाव्य	विभात्य
	17	पूर्णामृत	पूणामृता
	19	मुद्रे	मुदे
42	15	ज्वालिन्यै	ज्वलिन्यै
	16	ले हव्य	पलंहत्य
	17	विस्फुलिंङ्गिनी	विस्फलिंङ्गिनी
43	10	रूचि	रूचि रूचि
	15	सोमवृष्णि	सोमष्टष्णि
	18	कलायै	कलापै
44	1	धृति	रशिनी
	5	तत्रार्घ्या	तन्नार्घ्या
	9	तद्वहि	तद्धहि
45	20	पतिर्ब्रह्मा	पतिब्रह्मा
46	3	धूमा	धृमा
	14	ज्योक्तनायै	श्रियै
47	22	उदार्यै	उद्रार्यै
49	5	वशिन्यै	वाशिन्यै
50	9	अर्ध्यामृतेन	मृतते

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	शुद्ध	अशुद्ध
50	9	दा ब्रह्न	दा ब्रह्मा
	10	दयुतं	दबुल
51	12	मापन्नं	मापान्नं
	15	प्रकाशात्मिकां	प्रकाशत्मिकां
52	24	सर्वागम	सवागम
53	6	एह्येहि	ऐह्याहि
54	2	सामर्न्यघ्य	सामार्न्यध्य
54	3	अक्षतान्वा	अक्षतान्य
	6	तैलाभ्यंगम	तैलोभ्य
	17	कर्पूर	कपूर
	21	मुख्य	मुख्सर्व
56	2	पदकं	पादा
	16	0	एककरे
	19	पुष्प0 वाणान	पुष्पकाणान
57	6	पादकानि	पादकान
	12	चक चक्रेशी	चककेशी
58	1	निर्माय	निर्माण
	3	आपोशानं	आपोशनं
	12	मधुपर्क	मधुपकं
60	6	नानाविध	नानात्रिध
	13	प्रदक्षिणा	प्रदक्षिण
61	15	सुप्रसन्नो	सुपसन्नो
62	12	प्रदक्षिणा	प्रदक्षिण
63	13	विंदौ	वन्दौ
64	2	जं ब्लूं भें ब्लूं मों ब्लू हें ब्लूं ह्नें क्लिन्ने	ऐं ब्लूं हें क्लिन्ने
	5	नित्य क्लिन्ने	नित्यक्लिन्ना
	22	भ्रमर यूं	भ्रंर्यू
65	1	नो नित्यां	नीतिन्या
	11	चर्या	चार्य
66	9	मानवाख्य	मानवाय

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	शुद्ध	अशुद्ध
66	13	प्रकाशानन्द	प्रकाशनान्द
67	2	मानवौध	मानवेध
68	1	पृथिव्या	पृश्रिव्या
70	3	पुरतः	पूरन
	14	देवता	देवना
78	9	ब्लूं सः	ब्लं सः
	11	धुनर्भ्यां	धनुभ्यौ
79	10	सृष्टि	सष्ट
	11	तुरीय	तुरीप
	12	परब्रह्म	परब्रक्त
	22	सर्ववीज	सव्रबीज
81	2	सिद्धयः	सिद्धया
	12	समर्प्य	चमर्प्य
82	3	वाणेभ्यो	बाणेयो
84	20	हसकहल	हसकइल
85	18	त्रिखण्डा	त्रिखण्ड
	21	सिंहासना	सिंहामना
89	1	रत्नेश्वरी	रन्नेश्वरी
90	19	सदा	पदा
91	18	कालिक	काळिक
93	9	दश	दिश
95	22	सुतृप्तां	सुतप्तां
96	18	तमेव	समेव
97	20	समस्त	समसत्
99	6	भवद्वक्त्र	भवबक्षा
	6	गुह्या	मुह्या
	7	स्वरूपं सकृत	स्वरं किकृ
100	1	भावयेतस्त्वमेव संधाने	संधनं
100	8	इतिकन्तव्यता	इतितव्यता
	12	सामान्यर्घ्योदकेन	मासान्याघर्योदकेन

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	शुद्ध	अशुद्ध
100	18	करस्फोटो	करारफोटौ
	19	भूतैर्ग्रसितं	भूतैग्रोसितं
101	16	परमानन्द	वरमानन्द
	18	कामात क्वकेनेति	कस्मान
102	21	विश्वप्रसवित्रि	विश्वपसिवित्रि
103	21	त्रिरिष्ट्वा	त्रिरिष्ठा
	23	पात्रान्तर	पालान्तर
105	2	वाक्पाणि	वाक्याणि
	7	थ्वरजा	विन्जा
106	19	कुलान्यणिमादि	कुलान्मणिमादि
108	1	रश्मिमाला	रशिममाला
	3	वरेण्यं	वरेयं
109	11	विमर्शिनी	विमशिनी
111	9	दैवता	देवता
112	19	देहगा	देहया
113	3	कामेश्वरं	कामेश्वर
115	5	दक्षेन्ये	इचेन्ये
120	6	त्रिष्टुप	त्रिष्टुफ
	21	ह्रौं	श्रहौं
121	11	वपुष	वपूप
	15	स्फटिक	स्फटिर
122	4	रात्रौ	रात्रै
	8	क्लीं	हीं
122	9	लं	0
	11	सर्व तदिन्द्र	व तदिन्द्र
	21	मन्त्र	मनम
123	1	कवीना	कविना
	9	ॐ भूः	ॐ भः
	9	अमृतरूद्राय	अमृक्तदाय

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	शुद्ध	अशुद्ध
124	2	मृतप्त	मृतत्त
	22	जातः	जतः
	24	ॐ ऐ....सौः 29। तत्स...यात् 23।। गं...ऐं ।।36।।10।।	
	25	ॐ ऐ...सौः 29। यदद्य....वशे 23।। गं...ऐं ।।36।।11।।	
125	1	सन्तमथाभागं	सन्तशथाभागं
	3	स्वः	स्क
	9	तृतीय पर्याय	चतुर्थ पर्याय
	10	अथ चतुर्थ पर्यायः ॐ ऐंश्रीं..संशयः।	0
	18	वैदिकमन्त्रः	वेकिामन्त्रः
	21	साधयेत	साधीयेत
126	5	कामानवाप्नुयात	काना.....
	8	यास्तु	यास्त
128	7	असत्यात	असत्यसात
129	1	मण्डपस्य	मण्टपस्य
	1	आम्नाय	हम्नाया
	5	यमाय	ययाम
	12	प्रवेशरीत्या	प्रवेण्येन
	13	अरूणायै	अरूणावै
	21	वह्नेः	वश्वेः
	21	वागीश्वरी	त्रागीश्वरी
130	3	निधाय	निध ।य
	3	तस्मातत्क्व्यात्	तस्मातकव्या
	7	निर्गम्यत	निर्गमय्यत
	9	सुवर्णवर्णम्	सुवर्णत्रर्ण
	18	सामान्यर्घ्यौदकेन	मसामान्याघ्र्यादकेन
	20	द्वन्द्वज्यन्चि	द्वन्द्वन्यश्चि
	21	अनुमृज्य	अनुमूज्य
	23	अर्घ्योदकेन	अर्घ्योव्योदकेन
	26	निधाय	निधाख्य

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	शुद्ध	अशुद्ध
130	26	तस्मिन	तम्मि
	3	आज्यस्थाल्यां	आज्यस्थायां
	6	प्रत्ययस्य	प्रतयस्य
131	7	सप्तवार	सप्वार
	15	दक्षिण	दीक्षिण
	17	द्विरभि	द्विारभि
	21	दर्व्या	दव्या
	22	दर्व्या	दव्या
132	3	अरूणाप्ता	मणप्ता
133	12	आवाहय्	आवाह्यां
134	4	ज्रौं स्वाहा	त्रैः स्वाहा
137	14	कामासिद्धयै	काामासिद्धयै
138	2	शिस्ना	शिश्रा
	11	प्रजापति	मजापति
	27	पिता पितामहा	ततास्ततामहा
139	27	अग्नि	अग्रि
140	6	अग्नि / अग्नौ	अग्रि
	6	त्रिरूद्यम्य	विरूद्यम्य
	6	तंत्रिरङ्गुल्या	त्रितरङ्गुल्या
	7	अग्नौ	अन्यौ
	9	संस्राव	सँस्राव
	15	होता	द्वोता
	27	पूर्णमसि	पूर्णमासि
141	15	त्रिधा	त्रिया
142	10	रत्नचषकं	लचषकं
	17	उद्यद्भानु सहस्राभायै	सहस्राभयै
	20	मणिश्रेणी	मणिश्रेण्धी
143	8	नवविद्रुमविम्बश्री न्यक्वारि दशनच्छदायै	न्यक्करि
	10	कर्पूरवीटिका	कर्पूरत्रीवीटिका

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	शुद्ध	अशुद्ध
143	11	निजसंलाप	निजसलाप
	19	लक्ष्यरोमलताधारतास	लताधारतोष
	21	अरुणारुण	अरूणारूण
144	5	पदाम्बुजायै	पादाम्बुजायै
	18	धिष्ठिताश्व	धिष्ठिनाश्व
	23	थ्वक्रम	विक्रन
145	7	सैनिकायै	सनिकायै
	20	कौलिन्यै नमः	0
		कुलयोगिन्यै नमः	0
	23	मूलाधारैकनिलयायै	0
146	15	निर्गुणायै	निर्गुणया
	15	मननाशिन्यै	नदनाशिन्यै
150	8	राज्ञ्यै	राज्ञयै
155	19	महाकैलाश	महाकालास
159	10	गुरूप्रियायै	गुरूपियायै
160	3	त्रिवर्ण	चिग
161	5	आज्ञायै	आज्ञयै
	10	शान्त्यतीति	शान्तयतीत
	15	कलनायै	कलानायै
163	15	द्वयिन्यै	दयिन्यै
164	9	त्रिगुणायै	त्रिगुणयै
	12	सुखकायै	सुस्वकायै
166	1	चेतोमया	चेतामया
	12	ज्ञाननिर्द्वैत	ज्ञाननिंत
167	13	गृहान्त	गहान्त
177	1	हिरण्यमयी	हरण्यमयी
	3	पुरूषानहम	पुषानहम
	5	तामिहोपह्वेश्रियम	देवजुष्टामुदाराम
	24	पद्मानने	पद्म

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	शुद्ध	अशुद्ध
178	21	प्रञ्नोषि	पलोषि
179	2	रात्रान् संदधामि	रात्रन
	9	प्रथमा	पथमा
	11	रजोभूत	रजोभून
	23	नरोजायेत	विदित्वारो
180	4	हविषा	हावषा
	14	दधातु	दंध..।।तु
	20	टहं	हं
	25	माप्नोति	माप्रोति
	25	टब्रुवन	अत्रुवन
	26	प्रकृत्यै	पकृत्यै
181	21	प्रभाम	पभाम
	26	दुच्यते	दुच्यत
183	4	सुषुम्ना	सुषुन्ना
	5	कूर्मकृकल	कृकर
184	9	स्वभाषयन्त्री	स्वभासयन्ती
	22	प्रत्यङि्गरा	पत्यङि्गरा
185	2	वश्योन्माद	वश्याऽन्माद
192	छठां कोष्ठ	मृगी	मुगी
208	15	कथञ्चित	कथचिञ्त
214	14	ळस	इस
216	1	इ ल	र ल
216	4	इ ल	र ल
	6	ई ल	र ल
	6	ई ल	र ल
	7	इ ल	र ल
	9	ई ल	र ल
	10	र ह्वीं	र ह्वीं
	21	र ह्वीं	र ह्वीं

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	शुद्ध	अशुद्ध
219	14	अग्न	अग्र
223	6	की	के
228	20	दूर हो जाने से	कट
230	22	प्राप्त	प्रापत
231	17	षोडशाक्षरी	पोषशाक्षरी
232	15	धनुष	ध्नुष
234	15	ए	पर पर
	15	ब्रह्म	ब्रह्मा
	16	अनुभव	अनुभवन
	18	मधु	मक्षियो
236	10	षष्ठि	षष्अि
238	2	ब्रह्ना	ब्रह्मा
241	12	ध्येय	येय
245	18	विगलितै	विगलिते
246	7	जीवन	जीवना
	19	त्यङ्गुला	वत्सङ्गुला
	20	द्वय	द्व्य
247	11	सुषुम्णा	सुषुम्णाना
249	5	तदूर्ध्वे	तर्ध्वे
250	24	कालिका	कलिका
251	25	सुषुम्णा	सुषुम्णाना
254	24	पुंरागे	पुरागे
258	18	आधारो	आधार
262	17	ब्रह्मानन्द	ब्रह्मनन्द
263	20	से	के
264	24	घमा	धमा
266	9	आज्ञा	अज्ञा
269	5	अन्धकारे	अन्धाकारे
271	21	वाग्भव	वाग्वै
274	4	वाणी की	वाणी क

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	शुद्ध	अशुद्ध
279	25	प्रयन्त्य	प्रयान्त्य
284	22	छूरी	पूरी
294	19	थ्जत	जिस
299	13	सुमङ्गलि	सुमङ्कलि
300	1	शरीर	शरी
	8	तुम्हारे	तुम्ळोर
301	10	किमाश्चर्यं	किमाश्चर्य
311	18	सृजन	सुजन
314	18	ललाटाग्रे	ललाटाग्र
318	2	सृष्टि	साष्ट
	11	धीपते	यते
319	11	वाच्य	वाज्य
323	3	प्रो	परा
324	5	वैष्णव	वैष्णवव
	5	हित्वा	डित्वा
325	24	बदलती	बदती
	25	तुम	तु
326	14	विधन्ते	विधते
329	19	तवाज्ञा	तवाज्ञज्ञ
330	18	ऐसा	ऐस
333	18	उज्ज्वल	उज्जवल
334	8	आकाशाद्वायुः	आकाद्वायुः
	19	दीप्ति	दपित
	22	कर्णिका	कणिका
335	23	अठारह	अट्टारह
339	20	जिह्वाम	जिह्नाम
343	10	है	हे
344	15	त्रिकोणे	त्रिकोण
	17	स्वयंभू	स्वयम्भू
347	9	मुकुट	कुकुट

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	शुद्ध	अशुद्ध
349	2	विभावरी	विभावर
	9	संसार मे	संसार
350	20	सरणि	सेरणि
	23	वन्द	वन्दि
351	5	दरों के	दरों
352	1	कमल	कतल
353	3	चन्द्र	चन्छ
354	4	भ्रूयुग	भ्रुयुग
	8	कृष्णा	क ।ष्ण
354	15	क्ल	कम
355	11	ब्रह्माभि	ब्रह्मभि
356	19	व्याक्षेप	व्याक्षे
357	12	जननी	जयिनी
358	23	बड़ा	बडत्र
359	25	कर्णाभ्यर्णा	कर्णाभ्य
360	3	भूषण	भूपण
366	4	कटाक्ष	कटाष
371	15	शिवजी	शिवजती
	18	वालार्क	वालाक
372	17	भगवती	भ्ज्ञगती
374	11	उज्ज्वल	उज्जवल
	13	आया	आय
376	13	ग्राम	ग्रमा
377	24	चारो मुख	चरों मुख
378	5	वर्णन	ब्रह्म
	19	लगाने	लगने
379	7	गणेश	गगणेश
	17	इसी से	इसी`
380	11	वनी	वनी
	17	भगवती	भ्ज्ञगवती

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	शुद्ध	अशुद्ध
380	23	प्रभाव	प्रभ्झाव
381	4	स्वभाव	स्वभव
	16	प्रतापाव्या	प्रताप्व्या
383	15	भगवती	भ्झगवती
384	9	उसी राज्य	ऊी राज्य
	17	माता–पिता	मता–पिता
385	19	नवलाभि	नवनाभि
386	16	ध्यान	ध्यन
	20	तटिनी	त्रुटिनी
387	12	भङ्गा	भङ्ग
390	12	प्रथम	प्रमि
391	1	वृक्ष	वक्ष
394	4	भद्रा	मद्रा
	4	मह्याय	मह्यय
396	5	जे	जयो
	16	भूतादिपतये	भूतादिपतयो
	21	जगन्मातु	जगत्त्रातु
397	21	भगवती	भ्झगवती
398	12	छिपा	दिप
399	11	चञ्चल	चञ्च
400	18	नित्यमुक्तस्य	नित्ययुक्तस्य
	19	सुलभ है	सुली है
403	11	सर्वोपरि	सवर्वोपरि
	23	भोक्व्त्री	भोक्त्री
407	15	पाशमुक्तो	पाशुस्क्तो
411	12	त्रपि	त्रिय
	14	प्रभञ्जन	प्रभाञ्जन
412	4	सुख	सुखं
	8	त्वमा	त्वम

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	शुद्ध	अशुद्ध
412	9	प्रघर्षण	प्रघर्णण
429	15	वु शु च गु शु म रा शु के	वु शु च वु शु च वु शु च
434	8/9	श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं	श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं
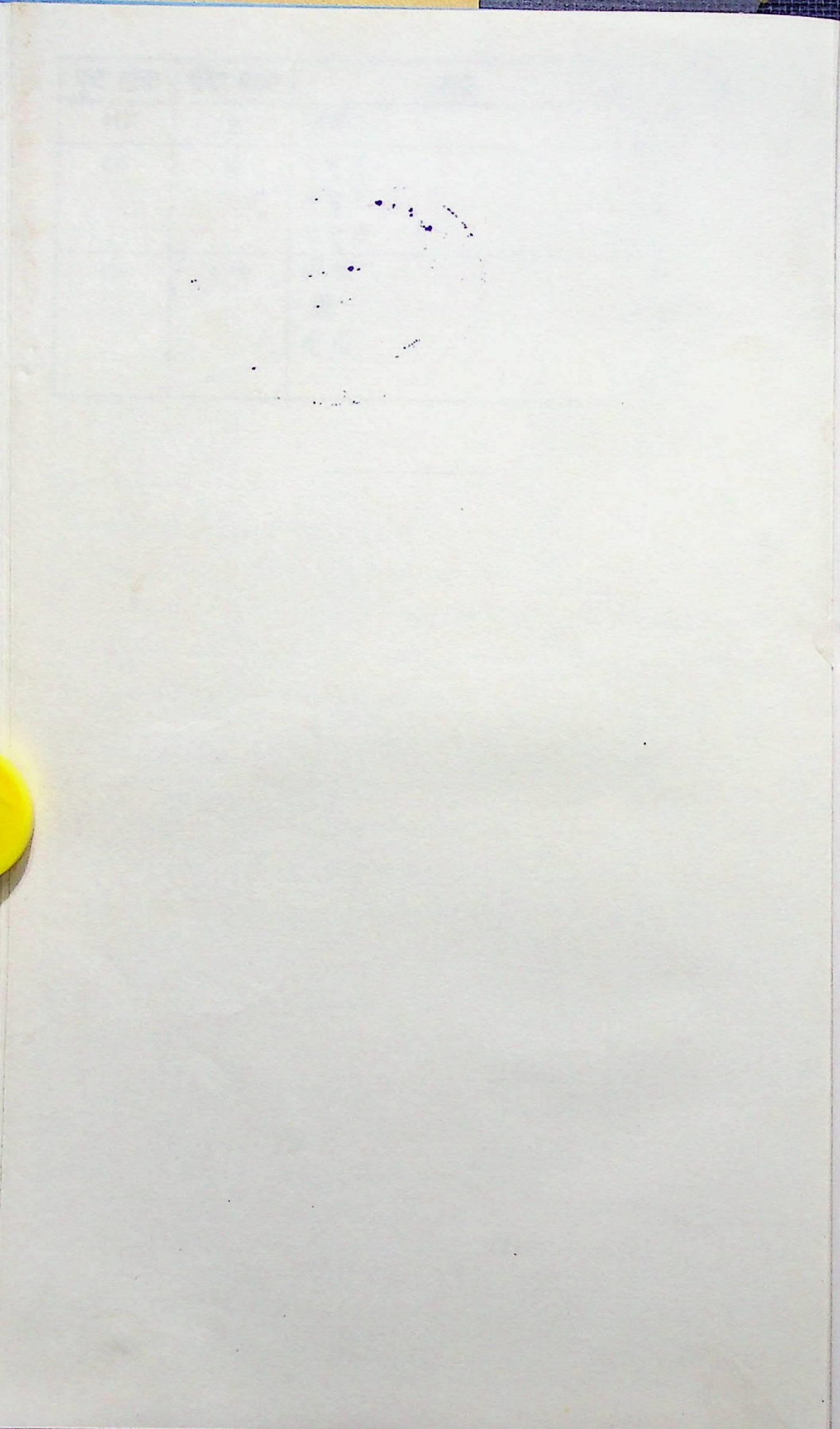
समर्पण

पूज्य गुरुजी

के

श्रीचरणों में -

जिनके आश्रय

से

जगदम्बा के चरण

सुलभ हो सके।

प्रस्तावना

श्री कुल की उपासना पद्धति यद्यपि अनेक विधि से प्रकाशित प्राप्त होती है। तथापि जिज्ञासु साधकों के लिए सूक्ष्म क्रम अनुपलब्ध होने तथा वेदादि शास्त्र सम्मत् पद्धति की परमावश्यकता रही है। इस सन्दर्भ में देश में छपी हुई अनेक पद्धतियों को देखने और तंत्रराज श्री विद्यार्णव वामकेश्वर कुलार्णव श्री विद्या आह्निक आदि ग्रंथों को अच्छी प्रकार मनन करने तथा आदि शंकराचार्य द्वारा स्थापित्व चारों पीठों का निरीक्षण करते हुए परशुराम कल्प सूत्रनुसार ही तथा त्रिपुरा रहस्य क्रमोक्त यह पद्धति प्रकाशित की गई है। विशेषकर मद्रास मैलापुर की श्री विद्या विमार्शिनी गुहानन्द मंडली के द्वारा प्रकाशित पद्धति विशेष सहायक रही है। आशा है उपासक जिज्ञासु बन्धु सूक्ष्म इस क्रम से लाभान्वित होकर उपासना पथ में अग्रसर होंगे ऐहिक पारलौकिक श्रेय तथा निः श्रेयस की प्राप्ति एक मात्र श्री विद्या की उपासना से होती है।

श्री विद्या साधना आध्यात्मिक साधना की अत्यन्त महत्वपूर्ण पद्धति है। श्री विधा के साधक को भोग एवं मोक्ष दोनों समान रूप से उपलब्ध होते हैं। यत्रास्ति भोगों न-तत्र-मोक्ष यत्रास्ति मोक्षः न तत्र भोगः सुरसुंदरी पूजन तत्पराणाम् भोगश्चमोश्चश्च करस्थ एव (कहा जाता है कि जिनकी उपासना से भोग प्राप्त होता है, उसी उपासना से मोक्ष प्राप्त नहीं होता है, तथा जिनकी उपासना से मोक्ष प्राप्त होता है, उनकी उपासना से भोग प्राप्त नहीं होता है, किन्तु सुरसुन्दरी भगवती राजराजेश्वरी पराम्बा, जगदम्बा, त्रिपुरसुन्दरी की उपासना से भोग और मोक्ष दोनों करस्थ हो जाते हैं।)

दशमहाविधाओं में भगवरी बाला त्रिपुर सुंदरी का अप्रतिम स्थान है परशुराम कल्पसूत्र में श्री विधा साधना के चर्या खंड का विवरण सांगोपांग रूप से उपलब्ध है। श्री विधा साधना पद्धति के तीन खंड ज्ञान खंड, चर्याखंड एवं माहात्म्य खंड में से केवल ज्ञान खंड एवं माहात्म्य खंड ही वर्तमान में उपलब्ध है। चर्याखंड के रूप में परशुराम कल्प सूत्र में साधना

मात्र का विवरण प्राप्त है। उसी परशुराम कल्पसूत्र के अनुसार यह पुस्तक दो भागों में प्रकाशित की जा रही है। इसके प्रथम भाग में ''श्री विद्यानित्यार्चन सपरर्या पद्यति'' तथा ''ललिता सहस्रनाम एवं सौन्दर्य लहरी'' तथा दूसरे भाग में ''श्री विद्याखडगमाला साधना'' एवं ''श्रीमहागणपति तर्पण विधान'' संकलित है। इससे यदि साधकों का किंचित मात्र हित होगा तभी इस ग्रंथ का साफल्य होगा। इस ग्रंथ के प्रकाशन में जिन लोगों ने अपना श्रम साध्य परिश्रम किया है, मैं ऐसे संस्थान की प्रकाशन प्रभारी डा. चन्द्रकला शाक्य, लेखाकार श्री दिनेश मिश्र प्रूफ रीडिंग में अपना अमूल्य समय देने के लिए प्रो. धनीन्द्र झा तथा इस ग्रंथ के सफल प्रकाशन के लिए शिवम् आर्ट प्रेस विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र हैं।

सत्येन्द्र सिंह
निदेशक
उ0प्र0 संस्कृत संस्थान, लखनऊ

विषय-सूची

क्रसं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	सम्पादकीय	1
2.	चक्रपूजा के स्त्रोत्र	5
3.	प्रातःकृत्यकम्	8
4.	भूप्रार्थना	10
5.	श्रीविद्या सपर्य्यापद्धतिः	13-
	(क) प्रथमः खण्डः	13
	(ख) द्वितीयः खण्डः	25
	(ग) तृतीयः खण्डः	26
	(घ) चतुर्थः खण्डः	36
	(ङ) पञ्चमः खण्डः	50
	(च) षष्ठः खण्डः	67
	(छ) सप्तमः खण्डः	99
	(ज) अष्टमः खण्डः	100
	(झ) नवतः खण्डः	100
	(ञ) दशमः खण्डः	105
	(ट) एकादशः खण्डः	106

क्रसं.	विषय	पृष्ठ संख्या
6.	रशिममालामन्त्राः	108
7.	अथ वाञ्छाकल्पलता	120
8.	परिशिष्टम्	129
9.	श्रीललितासहस्रनामावलिः	142
10.	आश्चर्याष्टोत्तरशतनामावलिः	165
11.	श्री ललिता त्रिशतीनामावलिः	170
12.	श्रीसूक्तम्	177
13.	दुर्गासूक्तम्	178
14.	त्रिपुरोपनिषद्	179
15.	देव्युपनिषत्	180
16.	भावनोपनिषत्	182
18.	बह्वृचोपनिषत्	183
19.	देवी की मुद्रायें	185
19.	सौन्दर्य लहरी	199

सम्पादकीय

दृश्यमान समस्त चराचर जगत क्षणभंगुर और नाशवान है। एक मात्र ब्रह्म ही सत्य है। ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति के लिए ही जीवन का लक्ष्य सत्य होता है अन्य सभी लक्ष्य नाशवान होते है॥'तत्वमसि' यह एक महावाक्य कहलाता है। अहं ब्रह्मास्मि (मैं ब्रह्म हूँ), इस प्रकार का उद्घाष उपनिषद् तथा प्रस्थानतायी ब्रह्म मीसांसा में महावाक्यों का प्रकरण बहुत अच्छे ढंग से समझाया गया है। समस्त सम्प्रदायों में श्रुतियों (वेदों) का यही एक मात्र परम तात्पर्य है कि जीव और ब्रह्म में अभेद है और इसी प्रकार का सिद्धान्त वेदान्तादि ग्रंथों में बहुधा वर्णित है। इस सिद्धान्त को पंचदशी कार 'स्वामी विधारण्य पंचदशी में, तथा उत्तर मीमांसा चित सुखी विवेक चूड़ामणि, सिद्धान्त लेश, योगवाशिष्ठ तथा श्री मद्भावगत, महाभारत आदि ग्रंथें में प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, तीनों पगकार के प्रमाणों से सिद्ध किया गया है। अधिकरण प्रकरणों में स्वबोध को प्रज्ञप्त करने वाले मतमतान्तरों का खण्डन करके वेदों के परम उत्कृष्ट सारभूत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। लेकिन उन सिद्धान्तों तथा ज्ञान की जिज्ञासा करने पर कर्त्तव्य एवं ज्ञातव्य के रूप में प्रथम ज्ञान भूमिका में उपनिषदों में उद्गीथ विद्या, प्राणाग्नि विद्या प्रभृति अनेक विद्याओं का उपदेश होता है। छान्दोग्य उपनिषद् में एकत्र वर्णन विस्तार से तथा ब्रह्म सूत्र में विशेष रूप से उपदिष्ट है।

परन्तु उस ज्ञान का उपदेश देने वाला आज कौन विद्वान महात्मा प्राप्त है। यह कहना कठिन हो गया है। सहस्त्रें शास्त्र वाक्यों का एक जाल बिछा हुआ है। जीवन पर्यन्त अध्ययन करते रहने पर भी उसका किनारा प्राप्त नहीं होता है। जीवन भर पढ़ते रहने पर भी मुझे प्राप्त करना था। वह पा लिया तथा जिज्ञासा जिस ज्ञान के लिए की गई थी वह हमें प्राप्त हो गई है। इस प्रकार कौन कह सकता है। इसलिए कि वह तत्व अत्यन्त

निगूढ़ है। शात्र का विचार दूसरे प्रकार का क्रमिक है और अनुभव उससे भिन्न होता है। वेदान्त शास्त्रें के अध्यापक अनेक होते हैं परन्तु अनुभवी कोई विरला ही होता है। स्वयं अनुभव करके दूसरों को अनुभव करा दे यह दुर्लभ होता है और अनुभव के अनन्तर ब्रह्म ज्ञान के लिए सुगम उपाय एक मात्र श्री विद्या ही ब्रह्म विद्या कही जाती है। श्री विद्योपासक को ब्रह्म ज्ञान प्राप्त हो जाता है अनेक उपासक जीवनमुक्त होकर संसार में विचरण करते रहे है। इस उपासना में एक क्रम से जीव, जीव भाव से मुक्त होकर स्व प्रकाश एवं चिदात्मा का सम्यक् ज्ञानी हो जाता है। यह देह ही देवालय है ''देहों देवालयः प्रोक्तो जीवो देवः सनातनः। शरीर के अन्दर षड़ाधार कुंडलिनी शक्ति का जागरण श्री विद्योपासक के लिए एक सुलभ उपाय है। सुषुम्ना पथ के द्वारा कुल कुण्डा में जाकर कुंडलिनी का उत्थान संभव होता है। यह जीव रूपी कुंडलिनी शक्ति किन-किन ग्रंथियों का भेदन करते हुए सहस्त्रार में शिव के साथ किस प्रकार मिलन करती है। इसे श्री विद्योपासक समझता है। तेज स्वरूपिणी आत्मा से अभिन्न चित्त को हृदय कमल से ब्रह्म रन्ध्र में ले जाकर पुनः नासिका द्वारा श्री चक्र में स्थापित करके प्रतिदिन पूजन अर्चन करना तथा गुरुपदेश ये पुनः भीतर कुलकुण्डा में स्थापित करना इसी प्रकार श्री ललिता के होम में चिदाग्नि को बाहर नासिका द्वारा निकालकर वागीश्वरी गर्भ से निकली हुई बाहरी अग्नि में सुरभि घृत धारा हुत शतैः इस प्रकार संयम करके हवन करना चाहिए। श्री विद्या सम्प्रदाय में लघु षोडा एवं महाषीन्यास के द्वारा शरीर में दिव्य भाव स्थापित करना, तत्व शोधन क्रम से तत्वों का शोधन गुरुकृपा द्वारा ही यह संभव होता है। गुरु से दीक्षा प्राप्त करके साधक को लयाङ पूजन में अन्तर्योग के द्वारा जीव ब्रह्म की एकता का ही प्रतिपादन करना चाहिए।

श्री पात्र के अमृत द्वारा कुडंलिनी शक्ति जागरण, हवन, चिदग्नि में समस्त कर्मो की पूर्णाहुति की जाती है। आत्मज्ञान के लिए रवण, मनन, निदिध्यासन नामक ज्ञान की सात भूमिकायें है॥वेदान्त शास्त्रनुसार धीरे-धीरे साधक ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करता है।

इसी प्रकार पराशक्ति ललिताम्बा की उपासना यह एक अत्यन्त सरल मार्ग है। समस्त विद्याओं में श्री विद्या साधना अत्यन्त सुगम होती है।

प्रयोग कुशल विद्वान साधक संसारिक समस्त प्रपञ्च एवं शारीरिक समस्त रोग से धन प्रतिष्ठा राज्य प्राप्ति आदि ऐहिक समस्स्त सुखों की अविरल प्राप्ति करते है॥शापानुग्रह शक्ति उनको प्राप्त हो जाती है।

भोग और मोक्ष देने वाली गुप्त यह साधना वैदिक विद्वानों द्वारा आदृत एवं सम्मानित है।

भगवान शंकर जी ने (64) चौसठ आगम ग्रंथों, तंत्रें का उपदेश श्री देवी से किया था।
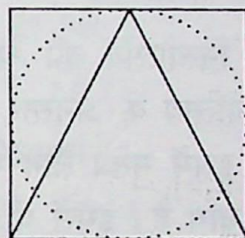
आदि शंकराचार्य भगवत् पाद ने अपनी सौन्दर्य लहरी में पूर्णतया प्रतिपादन किया है। शास्त्र की सर्वस्वभूता सौन्दर्य-लहरी में तथा त्रिशती भाष्य में ज्ञान का सम्पादन प्राप्त होता है। वैदिक शिखामणियों एवं महान कवियों कालीदासादि तथा नीलकण्ठ दीक्षित, अप्पय दीक्षित आदि ने माता श्री की उपासना का पदे-पदे महत्त्व दिया है। श्री विद्यारण्य स्वामी जो कि एक मात्र माता श्री विद्या के परम उपासक थे। उनकी शिष्य परम्परा में 'भास्कर राय, ने वरिवस्या रहस्य ग्रंथ का प्रणयन किया। आचार्य स्वामी विद्यारण्य मुनि ने श्री विद्यार्णव ग्रंथ का संकलन निर्माण किया है।

अप्पय दीक्षित का ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। आदि शंकराचार्य भगवान की क्रम परम्परा में शंकर सभी मठों में श्री विद्या की उपासना समीचीन चलती है। श्री विद्या का पंचदशाक्षरी मंत्र वैदिक है। सभी श्रुति स्मृतियों के उपासक श्री विद्या की अर्चना करते है॥काञ्चींपुरम् में श्री माता कामाक्षी एवं मदुरापुरी में मीनाक्षी मातंगी के रूप में जम्बुकेश्वर क्षेत्र में दंडिनी तथा काशी में विशालाक्षी, कन्याकुमारी में कुमारी रूप में बाला त्रिपुर सुन्दरी ही प्रतिष्ठित है। सभी उपासक विधि विहित आराधना उनकी करते है॥अन्तःशाक्ता वहिः शैवा भुविसर्वेछिजातयः तंत्र शास्त्र की

कौल दक्षिण भेद से दो भागों में अर्चना विहित है। कुलार्णव, ज्ञानार्णव, वामकेश्वर, तंत्रराज आदि ग्रंथों को साधकों के उपकार के लिए आदिनाथ परम शिव ने निर्माण किया है। भगवान परशुराम जी के द्वारा कल्पसूत्र, ग्रंथ उपलब्धहै। उसी के आधार पर वर्तमान में प्रचलित परम्परा विद्यमान है। श्री आचार्य भास्कर राय ने सेतु बन्ध, सौभाग्य भास्कर आदि तीन ग्रंथों का निर्माण किया है। इनका दीक्षानाम उपानन्द नाथ है। इस प्रकार वर्तमान अर्चन पद्धति में गणपति, श्यामा, दण्डिनी, परा के भेद से अर्चना क्रम वर्णित है।

नित्योत्सव की श्री विद्या आह्निक आदि में विस्तार से क्रम है। नित्योत्सव के अनुसार इस पति में एकादश खण्डात्मक क्रम लिखा गया है। इसमें मुख्य तीन भाग है॥1. अन्तर्याग, चतुरायतन पूजा हवन तथा वहिर्याग है। इमसें षोडशोपचार पूर्वक क्रम लिखा गया है।

पात्र स्थापना में शुद्धि पात्र, गुरु पात्र, आत्म पात्र क्रम से 6 अथवा 16 षोडश पात्रों का विधान है।

अभिषेक के लिए आवश्यक श्री सूक्त आदि अर्चना में विहित है।

श्री विद्या की उपासना उपनिषद मूला है। इस प्रकार संक्षिप्त श्री विद्या सपर्य्या पद्धति सभी साधकों के लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होगी।

इस सम्बन्ध में अनेक विशिष्ट साधकों की कामनायें रही है॥श्री विद्या की उपासना का क्रम प्रकाशित किया जाए। अतः प्राचीन उपलब्ध पद्धतियों के स्वरूप को यथासंभव उपासकों के लिए प्रस्तुत किया गया है। माता श्री की कृपा सबको प्राप्त हो।

-कान्यकुब्ज पीठाचार्य

108 शीतलानन्द नाथ (शास्त्री)

चक्रपूजा के स्तोत्र

(1)

गुरु-पादुका स्तुति

नमस्ते भगवन्नाथ! शिवाय गुरु-रूपिणे।
विद्यावतार-संसिद्ध्यै स्वीकृतानेक-विग्रह ।।1।।

नवाय नव-रूपाय परमात्मैक-रूपिणे।
सर्वाज्ञान-तमो-भेद-भानवे चिद्-घनाय ते ।।2।।

स्वतन्त्राय दया-क्लृप्त-विग्रहाय शिवात्मने।
पर-तन्त्राय भक्तानां भव्यानां भव्य-रूपिणे ।।3।।

विवेकिनां विवेकाय विमर्शाय विमर्शिनाम्।
प्रकाशिनां प्रकाशाय ज्ञानिनां ज्ञान-रूपिणे ।।4।।

पुरस्तात् पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्कुर्यामुपर्यधः।
सदा सच्चित्त-रूपेण विधेहि भवदासनम् ।।5।।

अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन-शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।6।।

नमोऽस्तु गुरवे तुभ्यं ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मने।
अविद्या-ग्रस्त-संसार-सागरोत्तर-हेतवे ।।7।।

अर्जन में शक्ति आदि की पूजा के पहले गुरुदेव का स्तवन किया जाता है।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ज्ञानं गुरुरेव परं तपः।।

अतः सर्वत्र देवेशि! गुरु-पूजा गरीयसी।
अन्य-देव-सपर्या वा चान्य-देवस्य कीर्तनम्।।

गुरु-देवं विना देवि! तदग्रे क्रियते यदि।
तदा नरकमाप्नोति सत्यमेतद् वदाम्यहम्।।

पूजिते गुरु-पादे वै सर्वदेव सुखी भवेत्।
सर्वेषां मन्त्र-तन्त्राणां पिताऽऽसौ यः सदाशिवः।।

यस्य भक्तिर्गुरौ नित्यं वर्तते देववत् प्रिये!
तस्य सर्वार्थ-सिद्धिः स्यान्नन्यथा खलु पार्वति ।।1।।

।।गन्धर्व-तन्त्रे षष्ठ-पटले गुरु-पादुका-स्तुतिः।।

गुरु-स्तोत्र

(2)

ज्ञानात्मानं परमात्मानं दानं ध्यानं योगं ज्ञानम्।
जानन्नपि तत् सुन्दरि मातर्न गुरोरधिकं न गुरोरधिक ।।1।।

प्रणां देहं ग्रहं राज्यं भोगं मोक्षं भक्तिं पुत्रम्।
मन्ये मित्रं वित्त-कलत्रं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ।।2।।

वानप्रस्थं यति-विध-धर्म पारमहंस्यं भिक्षुक-चारितम्।
साधोः सेवा बहु-सुर-भक्तिर्न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ।।3।।

विष्णोर्भक्तिः पूजन-चरितं वैष्णव-सेवा मातरि भक्तिः।
विष्णोरिव पितृ-सेवन-योगो न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्।। 4।।

प्रत्याहारं चेन्द्रिय-जयता प्राणायामं न्यास-विधानम्।
'इष्टैः पूजा जप-तप-भक्तिर्न गुरोरधिकं न गुरोधिकम् ।।5।।

काली दुर्गा कमला भुवना त्रिपुरा भीमा बगला पूर्णा।
श्रीमातङ्गी धूमा तारा एता विद्या त्रिभुवनसारा न गुरोरधिकं ।।6।।

मात्स्यं कौर्मं श्रीवाराहं नर-हरि-रूपं वामन-चरितम्।
अवतारादिकमन्यत् सर्वं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ।।7।।

श्रीरघु-नाथं श्रीयदु-नाथं श्रीभृगु-देवं बौद्धं कल्किम्।
अवतारानिति दशकं मन्ये न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ।8।।

गङ्गा काशी काञ्ची द्वारा मायायोध्यावन्ती मथुरा।
यमुना रेवा पर-तर-तीर्थं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ।।9।।

गोकुल-गमनं गोपुर-रमणं श्रीवृन्दावन-मधुपुर-मटनम्।
एतत् सर्वं सुन्दरि मातर्न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ।।10।।

तुलसी-सेवा हरि-हर-भक्तिर्गङ्गा-सागर-सङ्गम-मुक्तिः।
किमपरमधिकं कृष्णे भक्तिः एतत् सर्वं सुन्दरि मातर्न गुरोरधिकम ।।11।।

एतत् स्तोत्रं पठति च नित्यं मोक्ष-ज्ञानी सोऽप्यति-धन्यः।
ब्रह्माण्डान्तर्यद्-यद् ज्ञेयं सर्वं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ।।12।।

।।वृहत्-पारमहंस्यां संहितायां श्रीशिव-पार्वतो-सम्वादे
श्रीगुरु-स्तोत्रम्।।
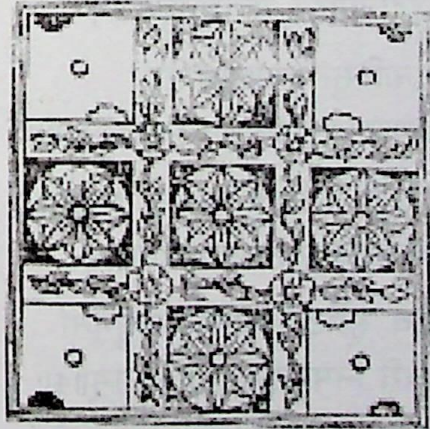
प्रातःकृत्यकम्

भूप्रार्थनादिमुखक्षालनान्तम्

प्रातः प्रभृति सायान्तं सायादिप्रातरन्ततः।
यत्करोमि जगद्योने तदस्तु तव पूजनम्॥

मञ्जुसिञ्जीरं वामधर्म महेशितुः।
आश्रयामि जगन्मूलं यन्मूलं सचराचरम्॥

प्रातः स्मरामि ललितावदनारविन्दं
बिम्बाधरं पृथुलमौक्तिकशोभिनासम्।
आकर्णदीर्घनयनं मणिकुण्डलाढ्यं
मन्दस्मितं मृगमदोज्ज्वलभालदेशम्॥1॥

प्रातर्भजामि ललिता भुजकल्पवल्लीं
रक्ताङ्गुलिपल्लवाढ्याम्।
माणिक्यहेमवलयाङ्गदशोभमानां
पुण्ड्रेक्षुचापकुसुमेषुसृणीर्दधानाम्॥2॥

प्रातर्नमामि ललिताचरणारविन्दं
भक्तेष्टदाननिरतं भवसिन्धुपोतम्।
पद्मासनादिसुरनायकपूजनीयं
पद्माङ्कुशध्वजसुदर्शनलाञ्छनाढ्यम्॥3॥

प्रातः स्तुवे परशिवां ललितां भवानीं
त्रय्यन्तवेद्यविभवां करुणानवद्याम्।
विश्वस्य सृष्टिविलयस्थितिहेतुभूतां
विद्येश्वरीं निगमवाङ्मनसातिदूराम्॥4॥

प्रातर्वदामि ललिते तव पुण्यनाम
कामेश्वरीति कमलेति महेश्वरीति।
श्रीशाम्भवीति जगतां जननी परेति
वाग्देवतेति वचसा त्रिपुरेश्वरीति॥5॥

यः श्लोकपञ्चकमिदं ललिताम्बिकायाः
सौभाग्यदं सुललितं पठति प्रभाते।
तस्मै ददाति ललिता झटिति प्रसन्ना
विद्यां श्रियं विपुलसौख्यमनन्तकीर्तिम्॥6॥

भूप्रार्थना

समुद्र वसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादचारं क्षमस्व मे॥

इति भूमिं सम्प्रार्थ्य, धरणीतलन्यस्तवहन्नाड़ीपार्श्वपादमुत्थाय ग्रामाद्बहिः स्मार्तेन विधिना निर्वर्तितशैचक्रमः।

दन्तधावनम्

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजा पशुवसूनि च।
ब्रह्मप्रज्ञाञ्च मेधाञ्च त्वं नो देहि वनस्पते॥

इति मन्त्रेण दन्तधावनकाष्ठमभिमन्त्र्य 'ऐं ह्रीं श्रीं, 'क्लीं कामदेवाय-सर्वजनप्रियाय नमः' (इति मन्त्रेण दन्तधावनम्)। ऐंह्रींश्रीं ह्ल्लेखया जिह्वोल्लेखनं च विधाय कफविमोचननासाशोधनदूषिकानिरसनपूर्वक-विहितविंशतिगण्डूषः। ऐंह्रींश्रीं, 'श्रीं' ऐं ह्रीं श्रीं 'ॐ ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं ॐ महालक्ष्म्यैं नमः'। ऐंह्रींश्रीं 'श्रीं ह्रीं क्ली॥ऐंह्रींश्रीं 'श्रींसहकलह्रीं श्री' इति मन्त्रचतुष्टयेन मुखं प्रक्षाल्य यथा स्मृत्याचामेत्।

स्नानविधिः

ततो नद्यादौ वैदिकस्नानोत्तरं श्रीललिताप्रीत्यर्थ तान्त्रिकस्नानं करिष्ये, इति सङ्कल्प्य, जले पुरतो हस्तमात्र चतुरस्त्रमण्डलं परिगृह्य तत्र-

ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे।
तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि दिवाकर॥

इति सूर्यमभ्यर्च्य,

आवाहयामि त्वां देवि स्नानार्थमिह सुन्दरि।
एहि गङ्गे नमस्तुभ्यं सर्वतीर्थसमन्विते॥

(इति गङ्गामर्थयित्वा) ऐं ह्रींश्रीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः क्रो, इत्यङ्कुश-मुद्रया सूर्यमण्डलं भित्वा गङ्गादिसर्वतीर्थावाहनोत्तरं "व" इति सलिलबीजेन सप्तावारमभिमन्त्र्य मुहुर्मुहुरावर्तयन् मूर्ध्नि त्रीनुदकाञ्जलीन् दत्वा त्रींश्च पीत्वा, मूलपूर्व श्रीललितां तर्पयामीति त्रिस्तर्पणं मूलेन त्रिःप्रोक्षणञ्चात्मनो योनिमुद्रया विदध्यात्)।

(गृहे तु विना तर्पणम्। अशक्तौ च स्मार्तेन पथा मन्त्रभस्मनोरन्यतरन्निर्वर्त्य मूलेन त्रिराचमनप्रोक्षणे केवलं कुर्यात्)।

सन्ध्याविधिः

अथ धौते वाससी परिधाय विधृतपुण्ड्रः वैदिकीं सन्ध्यामभिवन्द्य तान्त्रिकीमाचरेत्। यथा-मूलेन त्रिराचम्य द्विः परिमृज्य सकृदुपस्पृश्य चक्षुषी नासिके श्रोत्रे अंसौ नाभिं हृदयं शिरश्चाभिमृशेत्। एवं त्रिराचम्य पूर्ववत्प्राणानायम्य त्रिरात्मानञ्च प्रोक्ष्य अञ्जलिना सलिलमादाय 'ऐं ह्रीं श्रीं ह्रां ह्रीं ह्रूं सः मार्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय स्वाहा' इति मन्त्रेण उदयते विवस्वते त्रिरर्घ्यं दत्वा तन्मण्डले श्रीचक्रमनुचिन्त्य तत्र ध्यायेत्-

ध्यायेत्कामेश्वराङ्कस्थां कुविन्दमणिप्रभाम्।
शोणाम्बरस्रगालेपां सर्वाङ्गीणविभूषणाम्॥

सौन्दर्यशेवधिं सेषुचापपाशाङ्कशोज्ज्वलाम्।
स्वभाभिरणिमाद्याभिः सेव्यां सर्वनियामिकाम्॥

सच्चिदानन्दवपुर्षं सदयापाङ्गविभ्रमाम्।
सर्वलोकैजननीं स्मेरास्यां ललिताम्बिकाम॥

(अत्रायुधानां क्रमः स्वरूपञ्च सपर्याप्रकरणे वक्ष्यते)

ततः-'ऐं ह्रीं श्रीं क ए ई ल ह्रीं त्रिपुरसुन्दरि विद्महे,

ऐं ह्रीं श्रीं ह स क ह ल ह्रीं पीठकामनि धीमहि,

ऐं ह्रीं श्रीं स क ल ह्री तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात्'

(इति मन्त्रेण महेश्यै त्रिरर्घ्यं दत्वा मूलेन त्रिस्सन्तर्प्य, मूलेन पूर्ववदाचम्य

जपप्रकरणे वक्ष्यमाणान् ऋष्यादीन् न्यस्य मूलमष्टोत्तरशतवारमावर्तयेत्)। ततः पुनः कराङ्गन्यासादिकं कृत्वा जपं वक्ष्यमाणमन्त्रेण श्रीदेव्यै समर्प्या-चम्य मण्डलस्थं तीर्थं विसर्जनमुद्रया सूर्ये विसृजेत्।

अथ सपर्यासाधनानि सम्पाद्य ब्रह्मयज्ञादि निर्वर्तयेद्। इति शिवम्॥

प्रथममाह्निकप्रकरणं समाप्तम्

॥श्रीविद्यासपर्यापद्धतिः॥

॥प्रथमः खण्डः॥

यागमन्दिरप्रवेशादि चक्रपूजान्तम्।
ब्रह्माविद्यासंप्रदायगुरुस्त्रोत्रम्।

आब्रह्मलोकादाशेषादालोकालोकपर्वतात्।
ये वसन्ति द्विजा देवास्तेभ्यो नित्यं नमाम्यहम्॥

ओं नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्मविद्यासंप्रदायकयर्तृभ्यो वंशर्षिभ्यो नमो गुरुभ्यः। सर्वोपप्लवरहित प्रज्ञान घनप्रत्यगर्थो ब्रह्माहमस्मि, सोहमस्मि, ब्रह्माहमस्मि॥

श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयं भैरवं
सिद्धौघं वटुकत्रयं पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम्।

वीरघष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकं
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम्॥

1

पात्रसादनम्

श्री विद्योपासक साधक को चाहिए कि वह स्नान से निवृत्त होकर शुद्ध प्रक्षालित वस्त्रों को धारण करके कुशासन एवं कम्बलासन विछा कर आसन के नीचे चावल देकर पवित्री धारण करते हुए प्राणायाम एवं भूत शुद्धि करे भूत शुद्धि का क्रम पद्धति में आगे दिया हुआ है।

उस विधान से आचमन करके चंदन कपूर जल में मिलाकर पश्चिम बैठकर सामने बायीं ओर मंडल बनावे मंडल में त्रिकोण वर्त्तुल पुनः चतुष्कोण की कल्पना रोली, चंदन, चावल, जल आदि से करे।

अनन्तर उसमें सुगन्धित जल से भरे हुए कलश को स्थापित करे मंत्रोच्चारण अवश्य करे।

'ॐ कलशस्यमुखे विष्णुः, इस मंत्र से कलश स्थापित करके उसमें चारों वेदों की भावना करनी चाहिए। आठ बार 8 उस कलश में अभिमंत्रणा करते हुए वर्द्धिनी नामक कलश की प्रतिष्ठा आवश्यक है।

2

सामान्यर्ध्य विधि

वर्धिनी पात्र के दाहिनी ओर वर्द्धिनी जल से रोली चावल आदि त्रिकोण, षटकोण बनाकर उसे एक वृत्त के द्वारा वेष्टित करके चार कोणों की वेदी से बंद कर उसके ऊपर शंख की स्थापना करे। यदि दक्षिणावर्त शंख हो तो अधिक उत्तम होता है।

वर्द्धिनी कलश, सामान्य, अर्ध्य विशेषार्ध्य, शुद्धि पात्र, गुरु पात्र, आत्म पात्र (6) पात्रों की दैनिक पूजन में स्थापना करनी चाहिए। सामान्यर्ध्य मंडल त्रिकोण और षट्कोण में समन्त्र पूजन करते हुए शंख को त्रिपाद पर रखकर स्थापित कर यहाँ पर :

अग्नि मंडल 10 कलात्मक

सूर्य मंडल 12 कलात्मक

सोम मंडल 16 कलात्मक की भावना

कर आवाहन कर स्थापन करना चाहिए। सामान्यर्ध्य से दक्षिण की ओर पुनः त्रिकोण, षट्कोण वृत्त को चतुष्कोण से आवृत करते हुए उसके ऊपर एक पात्र की स्थापना करनी चाहिए। यहाँ पूर्ववत तत्व शोधन शुद्धि पात्र में

अग्नि मंडल 10 कलात्मक, सूर्य मंडल 12 कलात्मक

सोम मंडल 16 कलाओं का है।

आवाहन पूजन विधि विहित करना चाहिए। इस पात्र में गाय का

प्रक्षालित शुद्ध दुग्ध भरे अनन्तर केशर गुलाब व जल मिलाकर उसमें अदरख पीसकर छोड़ें पुनः चंदन आदि मिलाकर छोटी इलायची पीसकर छोड़नी चाहिए। उस पात्र में ब्रह्म कला, विष्णु कला, ईश्वर कला तथा सदाशिव कलाओं का पूजन करना चाहिए। पात्र से उस अमृत को जो कि मंत्रों द्वारा अभिमंत्रित है। गुरुपात्र विशेषार्ध्य से दक्षिण में उसकी कल्पना त्रिकोण, षटकोण वृत्त चतुरस्त्र क्रम से है, स्थापना करनी चाहिए।

अभिमंत्रित विशेषार्ध्य पात्र से कुछ अमृत लेकर शुद्धि पात्र, गुरु पात्र में डाले पुनः आत्म पात्र में हंसः सोहं, मंत्र से अभिमंत्रित कर पुनः 10 बार 'पुण्यं जुहोमि इस क्रम से साधक स्वयं अमृतपान कर पुनः 10 बार 'पुण्यं जुहोमि इस क्रम से साधक स्वयं अमृतपान कर और अपने समीप सभी साधकों को अमृत पान कराना चाहिए। अमृत पान के अनन्तर ही श्री चक्र पूजा का अधिकार प्राप्त होता है।

पुनः आचमन करके लयांग पूजन में पद्मासन में बैठकर मूलाधार चक्र में स्थित कुंडलिनी शक्ति का चिंतन करना चाहिए। बिजली के प्रकाश पुंज की तरह तेजो रूपिणी दस हजार सूर्य के प्रकाश से युक्त अमृत किरणों से शीतलता और शान्ति प्रदान करने वाली तेज दण्ड रूपिणी चिति की भावना करनी चाहिए।

1. कुलकुंडा चक्र से कुंडलिनी को उठाकर मूलाधार में स्थापित करे॥चक्र चार दलों का कमल है।
2. स्वाधिस्ठान 6 दलों का चक्र है।
3. मणिपुर चक्र में 10 दल।
4. अनाहत में 12 दल
5. विशुद्ध चक्र में 16 दल
6. लम्बिका नासिका से भृकुटी पर्यन्त त्रिकोण देवी आज्ञा चक्र में दोदल चक्र है॥उसमें बिन्दु स्वरूपिणी चैतन्य शक्ति विराजमान होती है।

इस प्रकार उपरोक्त क्रम से ध्यान करते हुए जीवात्मा को हाथ में पुष्प लेकर नासिका द्वारा यह भावना करते हुए कि इन पुष्पों में जीवात्मा को लेकर आवरण पूजन करेंगे पुनः उस पुष्प को यंत्र के ऊपर स्थपित करना चाहिए। भावना में पुष्प के माध्यम से हृदय कमल द्वारा चेतना जीव यंत्र के मध्य में स्थित पराशक्ति का यजन कर रही है। इस भावना के साथ श्री के सभी अंग उपाङ्ग आवरण के रूप में श्री चक्र में विलीन होकर उपस्थित है। जीवात्मा के साथ श्री देवी को हृदय से पुष्प द्वारा अंञ्जलि में पूजन करके पञ्चभूत (तत्व) मयी पराशक्ति अकुल सहस्त्रर चक्र से अमृतधारा प्रवाह में सुषुम्ना पथ द्वारा कुल चक्र तक प्रवाहित होने वाली चंदन, पुष्प धूप, दीप नैवेद्य चावल हाथ में लिए हुए पीली, काली, श्याम, लाल, श्वेत वर्णा स्वरूपिणी पराशक्ति पृथिवी, आकाश, वायु, आग्नि, जल, स्वरूपिणी समस्त तत्वों के रूप में एक शक्ति रूपा ध्यान करके पूजन करना चाहिए।

इस प्रकार पञ्चमुद्रा पूजन की अर्पणा करे अनन्तर यह भावना करनी चाहिए कि माता श्री की नासिका में चंदन दे रहे है॥कान में पुष्प, नाभि में धूप नेत्र में दीप, जिह्वा में नैवेद्य इस क्रम से पूजा सामग्री को उस पञ्चतत्वात्मक महाशक्ति में यजन की भावना से और उसकी प्रेरणा से हम प्रकृति के साथ उसका यजन करते है॥

तेज स्वरूपिणी भगवती चिति शिव ज्योति समस्त जगत की उत्पादन, पालन, संहार कर्त्रीं सहस्त्रर में शत दल कमल से बाहर निकल कर पुष्प से श्री चक्र में स्थित करते हुए ह्रीं श्रींसौः ललितायाः अमृत चैतन्य मूर्ति कल्पयामि। यह पढ़कर उस चक्र में पूजन प्रारम्भ करना चाहिए।

यह ध्यान करना चाहिए कि तीनों जगत को मोहित करने वाली विकार रहित सूत्रात्मक पराशक्ति सहस्त्रों सूर्यो के समान प्रकाशमयी तपाये हुए सुवर्ण के समान सुरेश्वरी सर्व आनन्द स्वरूपिणी सर्ववेदमयी, सर्वशास्त्रमयी सर्वागममयी ज्ञान गह्वरा है। ध्यान के अनन्तर 'हस्त्रै हस्क्लीं हस्त्रैं, मंत्र से चावल यंत्र पर छोड़ना पुनः पद्धति में यह क्रम सुस्पष्ट है। अनन्तर

चावल लेकर 64 (चौसठ) उपचार पद्धति क्रम में करते हुए गणपति, सूर्य, विष्णु, शिव का पूजन यही चतुरायतन है। अनन्तर नित्या देवी का पूजन करें यह त्रिकोणा में है। चित्रा से कामेश्वरी पर्यन्त विलोम कृष्ण पक्षों तथा कामेश्वरि से चित्रा पर्यन्त शुक्ल पक्ष में यजन होता है गुरुमंडलार्चन में दिव्य गुरु, सिद्ध गुरु, मानव गुरु तीन है॥अब आगे यहाँ से आवरण पूजन प्रारम्भ होता है-

1. त्रैलोक मोहन चक्र
2. सर्वशापरिपूरक चक्र
3. सर्व संक्षोभण चक्र
4. सर्व सौभाग्यदायक चक्रम
5. सर्वार्थ साधक चक्रम
6. सर्व रोग हर चक्रम
7. आयुध अर्चनम् सर्वा सिद्धप्रद चक्रम
8. सर्वानन्दमय चक्रम

यहाँ तक नव आवरण पूजा है षोडडी उपासकों के लिए सर्वा नन्दमय चक्र में सर्व पीठेश्वरी का यजन होता है। अनन्तर पञ्चाग्नि विद्या पञ्जिका पूजन इसमें पांच लक्ष्मी पांच-पांच कोषाम्बा, पांच कल्पलता, पांच कामदुघा, पांच रत्नाम्बा का यजन है।

यहीं पर षटदर्शन विद्या इसमें वौध, वेद, रुद्र,.सूर्य, विष्णु, भुवनेश्वरी का पूजन है आम्नाय समष्टि की अर्चना आगे होती है।

1. दण्डिनी 2. मन्त्रिणी 3. ललिता

इन तीन शक्तियों की नाम-मात्र से पूजन करना चाहिए। पश्चात् श्री सूक्त के द्वारा षोडशोपचार कुलदीप, कर्पूर, नीराजन मंत्रपुष्पम् पुष्पाञ्जलि में समर्पण, अपराध समापन हो जाता है। दैनिक हवन करने वालों के लिए अग्नि में आवाहन करके खड्गमाला से हवन करना चाहिए। यहाँ

इस प्रकार उपरोक्त क्रम से ध्यान करते हुए जीवात्मा को हाथ में पुष्प लेकर नासिका द्वारा यह भावना करते हुए कि इन पुष्पों में जीवात्मा को लेकर आवरण पूजन करेंगे पुनः उस पुष्प को यंत्र के ऊपर स्थपित करना चाहिए। भावना में पुष्प के माध्यम से हृदय कमल द्वारा चेतना जीव यंत्र के मध्य में स्थित पराशक्ति का यजन कर रही है। इस भावना के साथ श्री के सभी अंग उपाङ्ग आवरण के रूप में श्री चक्र में विलीन होकर उपस्थित है। जीवात्मा के साथ श्री देवी को हृदय से पुष्प द्वारा अंञ्जलि में पूजन करके पञ्चभूत (तत्व) मयी पराशक्ति अकुल सहस्त्रर चक्र से अमृतधारा प्रवाह में सुषुम्ना पथ द्वारा कुल चक्र तक प्रवाहित होने वाली चंदन, पुष्प धूप, दीप नैवेद्य चावल हाथ में लिए हुए पीली, काली, श्याम, लाल, श्वेत वर्णा स्वरूपिणी पराशक्ति पृथिवी, आकाश, वायु, आग्नि, जल, स्वरूपिणी समस्त तत्वों के रूप में एक शक्ति रूपा ध्यान करके पूजन करना चाहिए।

इस प्रकार पञ्चमुद्रा पूजन की अर्पणा करे अनन्तर यह भावना करनी चाहिए कि माता श्री की नासिका में चंदन दे रहे है॥कान में पुष्प, नाभि में धूप नेत्र में दीप, जिह्वा में नैवेद्य इस क्रम से पूजा सामग्री को उस पञ्चतत्वात्मक महाशक्ति में यजन की भावना से और उसकी प्रेरणा से हम प्रकृति के साथ उसका यजन करते है॥

तेज स्वरूपिणी भगवती चिति शिव ज्योति समस्त जगत की उत्पादन, पालन, संहार कर्त्री सहस्त्रर में शत दल कमल से बाहर निकल कर पुष्प से श्री चक्र में स्थित करते हुए ह्रीं श्रींसौः ललितायाः अमृत चैतन्य मूर्ति कल्पयामि। यह पढ़कर उस चक्र में पूजन प्रारम्भ करना चाहिए।

यह ध्यान करना चाहिए कि तीनों जगत को मोहित करने वाली विकार रहित सूत्रात्मक पराशक्ति सहस्रों सूर्यो के समान प्रकाशमयी तपाये हुए सुवर्ण के समान सुरेश्वरी सर्व आनन्द स्वरूपिणी सर्ववेदमयी, सर्वशास्त्रमयी सर्वागममयी ज्ञान गह्वरा है। ध्यान के अनन्तर 'हस्त्रै हस्क्लीं हस्त्रैं, मंत्र से चावल यंत्र पर छोड़ना पुनः पद्धति में यह क्रम सुस्पष्ट है। अनन्तर

चावल लेकर 64 (चौसठ) उपचार पद्धति क्रम में करते हुए गणपति, सूर्य, विष्णु, शिव का पूजन यही चतुरायतन है। अनन्तर नित्या देवी का पूजन करें यह त्रिकोणा में है। चित्रा से कामेश्वरी पर्यन्त विलोम कृष्ण पक्षों तथा कामेश्वरि से चित्रा पर्यन्त शुक्ल पक्ष में यजन होता है गुरुमंडलार्चन में दिव्य गुरु, सिद्ध गुरु, मानव गुरु तीन है॥अब आगे यहाँ से आवरण पूजन प्रारम्भ होता है-

1. त्रैलोक मोहन चक्र
2. सर्वशापरिपूरक चक्र
3. सर्व संक्षोभण चक्र
4. सर्व सौभाग्यदायक चक्रम
5. सर्वार्थ साधक चक्रम
6. सर्व रोग हर चक्रम
7. आयुध अर्चनम् सर्वा सिद्धप्रद चक्रम
8. सर्वानन्दमय चक्रम

यहाँ तक नव आवरण पूजा है षोडडी उपासकों के लिए सर्वा नन्दमय चक्र में सर्व पीठेश्वरी का यजन होता है। अनन्तर पञ्चाग्नि विद्या पञ्जिका पूजन इसमें पांच लक्ष्मी पांच-पांच कोषाम्बा, पांच कल्पलता, पांच कामदुघा, पांच रत्नाम्बा का यजन है।

यहीं पर षटदर्शन विद्या इसमें वौध, वेद, रुद्र,.सूर्य, विष्णु, भुवनेश्वरी का पूजन है आम्नाय समष्टि की अर्चना आगे होती है।

1. दण्डिनी 2. मन्त्रिणी 3. ललिता

इन तीन शक्तियों की नाम-मात्र से पूजन करना चाहिए। पश्चात् श्री सूक्त के द्वारा षोडशोपचार कुलदीप, कर्पूर, नीराजन मंत्रपुष्पम् पुष्पाञ्जलि में समर्पण, अपराध समापन हो जाता है। दैनिक हवन करने वालों के लिए अग्नि में आवाहन करके खड्गमाला से हवन करना चाहिए। यहाँ

सुबाषिनी, वटुक, कुमारी पूजा परमावश्यक होती है। प्रायः पर्व विशेष में अवश्य करना चाहिए।

अन्त में पूजा समर्पण (उवूद्धासन) विसर्जन तथा शान्तिस्तवन विशेषाध र्य का विसर्जन यही श्री कल्प की परमाराधना योग है श्री कुल की क्रमबद्ध उपासना का संक्षिप्त वृत्त सर्वसाधारण साधकों के लिए दिया गया है। आशा है जिज्ञासु साधक इस क्रम से लाभान्वित होंगे।
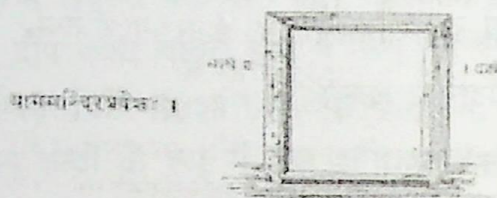
- ॐ शं भूयादिति-

ओं ऐं ह्रीं श्रीं भं भद्रकाल्यै नमः। (द्वारस्य दक्षशाखायां)

4 भं भैरवाय नमः। (” वामशखायां)

4 लं लम्बोदराय नमः। (” ऊर्ध्वशाखायां)

इति द्वारदेवताः संपूज्य।

तत्वाचनम्

ओं ऐं ह्रीं श्रीं ऐं कएईलहीं आत्मतत्त्वं शोधयामि स्वाहा।

4 क्लीं हसकहलहीं विद्यातत्त्वं शोधयामि स्वाहा।

4 सौः सकलहीं शिवतत्वं शोधयामि स्वाहा।

4 ऐं कएईलहीं क्लीं हसकहलहीं सौः सकलह्रीं
सर्वतत्त्वं शोधयामि स्वाहा॥

गुरुपादुकामन्त्रः।

ओं ऐं हीं श्रीं, ऐं क्लीं सौः, हंसः शिवः सोहं, ह्स्ख्फ्रें हसक्षमलवरयूं ह्सौः सहक्षमलवरयीं स्हौः हंसः शिवः सोहं स्वरूपनिरूपणहेतवे श्रीगुरवे नमः, अमुकानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः॥

ओं ऐं ही श्रीं, ऐं क्लीं सौः, साहें हंसाः शिवः, ह्स्ख्फ्रें हसक्षमलवरयूं ह्सौः सहक्षमलवरयीं स्हौः सोहं हंसाः शिवः स्वच्छप्रकाशविमर्शहेतवे श्रीपरमगुरवे नमः, अमुकानन्दनाथ-श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥

ओं ऐ ही श्रीं, ऐं क्लीं सौः, हंसः शिवः सोहं हंसः, ह्स्ख्फ्रें हसक्षमलवरयूं ह्सौः सहक्षमलवरयीं स्हौः हंसाः शिवः सोहं हंसः स्वात्मारामपञ्जरविलीनतेजसे श्रीपरमेष्ठिगुरवे नमः अमुकानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि नमः॥

इति मृगीमुद्रया गुरुपादुकामुच्यार्य, सुमुख-सुवृत्त-चतुरश्र-मुद्रर-योन्याख्याभिः पञ्चभिर्मुद्राभिः श्रीगुरून् वामभुजे प्रणम्य, गणपतिमूलेन स्वदक्षभुजे योनिमुद्रया महागणपतिं प्रणनेत्॥

घण्टापूजा।

हे घण्टे सुस्वरे पीठे घण्टा ध्वनिविभूषिते।
वादयन्ति परानन्दे घण्टादेवं प्रपूजयेत्॥

आगमार्थं च देवानां गमनार्थ तु रक्षसाम्।
कुर्यात् घण्टारवं तत्र देवताह्वानलाञ्छनम्॥

इति घण्टानादं कृत्वा॥

सङ्कल्पः

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्ण चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये॥

मूलेन प्राणानायम्य। देशकालौ संकीर्त्य-

मम श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीप्रीत्यर्थ यथासंभवद्रव्यै-यथाशक्ति

सपर्याक्रर्मनिर्वर्तयिष्ये तेन परमेश्वरं प्रीणयामि॥

आत्मानम् अलंकृत्य ताम्बूलेन सुरभितवदनः सन् प्रमुदित-चित्तः शिवोऽहं इति भावयेत्॥

आसनपूजा

आसनमास्तीर्य दक्षिणहस्ते जलमादाय सौः इति द्वादशवारमाभिमन्त्र्य तज्जलेन मूलमन्त्रेण आसनं प्रोक्षयेत्॥

अस्य श्री आसनमहामन्त्रस्य-पृथिव्या मेरुपृष्ठ ऋषिः, सुतलं छन्दः, कूर्मो देवता, आसने विनियोगः॥

पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।

त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्॥

योगासनाय नमः, वीरासनाय नमः, शरासनाय नमः, ओं ऐं ह्रीं श्रीं ओ ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः॥

इति पुष्पाक्षतैः आसनमभ्यर्च्य आसने उपविशेत्॥

4 रक्तद्वादशशक्तियुक्ताय द्वीपनाथाय नमः।

इति भूमौ पुष्पाञ्जलि विकिरेत्॥

देहरक्षा।

4 श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि आत्मानं रक्ष रक्ष-

इति देहे त्रिः व्यापकं कृत्वा॥

गुं गुरुभ्यो नमः। (दक्षवाहौ)

गं गणपतये नमः। (वामबाहौ)

दुं दुर्गायै नमः (दक्षोरौ)

वं वटुकाय नमः। (वामोरौ)

यां योगिनीभ्यो नमः। (पादयोः)

क्षं क्षेत्रपालाय नमः। (नाभौ)

पं परमात्मने नमः। (हृदये)

4 ओं नमो भगवति तिरस्करिणि महामाये महानिद्रे सकलपशुजनमनश्चक्षुः श्रोत्रतिरस्करणं कुरु कुरु स्वाहा॥

4 हसन्ति हसितालाषे मातङ्गि परिचारिके मम भय-विघ्नापदां नाशं कुरु कुरु ठः ठः ठः हुं फट् स्वाहा॥

4 ओन्नमो भगवति ज्वालामालिनि देवदेवि सर्व-भूतसंहारकारिके जातवेदसि ज्वलन्ति ज्वल-ज्वल प्रज्वल प्रज्वल हां हीं हूं र र र र र र हुं फट् स्वाहा -

इति परितो वह्निप्राकारं विभाव्यः भूर्भुवस्सुवरों इति दिग्वन्धः॥

परमामृतवर्षेण प्लावयन्तं चराचरम्।
संचिन्त्य परमद्वैत भावनाऽमृतसेवया॥

मोदमानो विस्मृतान्यविकल्पविभवभ्रमः।
चिदम्बुधिमहाभङ्गच्छिन्नसंकोचसङ्कटः॥

समुल्लसन्महानादलोकनोऽन्तर्मुखायनः।
मन्त्रमय्या मनोवृत्त्या परमाद्वैतमीहते॥

सपर्या सर्वभावेषु सा परा परिकीर्तिता।
अपरा तु वहिर्वक्ष्यमाण चक्रार्चनाविधिः॥

परापरस्य बाह्यस्य चिद्योभ्नि विलयः स्मृता।
इत्थं त्रिधा समुद्दिष्टा बाह्याभ्यन्तर भेदूतः॥

एवं भावयित्वा

4 समस्तप्रकट-गुप्त-गुप्ततर-संप्रदाय-कुलोत्तीर्ण-निगर्भ- रहस्याति-रहस्य-परापरातिरहस्ययोगनीदेवताभ्यो नमः॥

इति पुषपाञ्जलिं दत्वा॥

4 ऐं ह्रः अस्त्राग्र फट् - इति अस्त्रमन्त्रेण मुहुरावृत्तेन अङ्गुष्ठादि् कनिष्ठिकान्तं करतलयोः कर्पूरयोः देहे च व्यापकं कुर्यात्॥

4 श्रीगुरो दक्षिणामूर्ते भक्तानुग्रहकारक।
अनुज्ञां देहि भगवन् श्रीचक्रयजनाय मे॥।

4 अतिक्रूर महाकाय कल्पान्तदहनोपम।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि॥

लघुप्राणप्रतिष्ठा।

4 ओं आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ओं हंसः सोहं, सोहं हंसः शिवः, श्रीचक्रस्य प्राणा इह प्राणाः॥

4 ओं आं ह्रीं क्रों श्रीचक्रस्य जीव इह स्थितः। सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्र जिह्वाघ्रणा इहैवागत्य अस्मिन् चक्रे सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

4 ओं असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्। ज्योक्पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृळया नस्सवस्ति॥

मन्दिरपूजा।

ओं ऐं ह्रीं श्रीं अमृताम्भोनिधये नमः

4 रत्नद्वीपाय नमः

4 नानावृक्षमहोद्यानाय नमः

4 कल्पवाटिकायै नमः

4 संतानवाटिकायै नमः

4 हरिचन्दनवाटिकायै नमः

4 मन्दारवाटिकायै नमः

4 पारिजातवाटिकायै नमः

ओं ऐं ह्रीं श्रीं कदम्बवाटिकायै नमः

4 पुष्परागरत्नप्राकाराय नमः

4 पद्मरागरत्नप्राकाराय नमः

4 गोमेधकरत्नप्राकाराय नमः

4 बज्ररत्नप्राकाराय नमः

4 वैडूर्यरत्नप्राकाराय नमः

4 इन्द्रनीलरत्नप्राकाराय नमः

4 मुक्तारत्नप्राकाराय नमः

4 मरकतरत्नप्राकाराय नमः

4 विद्रुमरत्नप्राकाराय नमः

4 माणिक्यमण्टपाय नमः

4 सहस्रस्तम्भमण्टपाय नमः

4 अमृतवापिकायै नमः

4 आनन्दवापिकायै नमः

4 विमर्शवापिकायै नमः

4 बालातपोद्वाराय नमः

4 चन्द्रिकोदद्वाराय नमः

4 महाश्रृङ्गारपरिघायै नमः

4 महापद्माटव्यै नमः

4 चिन्तामणिमयगृहराजाय नमः

4 पूर्वाम्नायमयपूर्वद्वाराय नमः

4 दक्षिणाम्नायमयदक्षिणद्वाराय नमः

ओं ऐं ह्रीं श्रीं पश्चिमाम्नायमयपाश्चिमद्वाराय नमः

4 उत्तराम्नायमयोत्तरद्वाराय नमः

4 रत्नप्रदीपवलयाय नमः

4 मणिमयमहासिंहासनाय नमः

4 ब्रह्ममयैकमञ्चपादाय नमः

4 विष्णुमयैकमञ्चपादाय नमः

4 रुद्रमयैकमञ्चपादाय नमः

4 ईश्वरमयैकमञ्चपादाय नमः

4 सदाशिवमयैकमञ्चपादाय नमः

4 सदाशिवमयैकमञ्चफलकाय नमः

4 हंसतूलिकातल्पाय नमः

4 हंसतूलिकामहोपधानाय नमः

4 कौसुम्भास्तरणाय नमः

4 महावितानकाय नमः

4 महामायायवनिकायै नमः

इति चतुश्चत्वारिंशन्मन्दिरमन्त्रैः तत्तदखिलं भावयन्कुसु-माक्षतैरभ्यर्चयेत्॥

दीपपूजा।

स्वदक्षभागे गन्धपुष्पाक्षतादीन्निधाय दीपानभितः प्रज्वाल्य॥

घृतदीपो दक्षिणे स्यात्तैलदीपस्तु वामतः।

सितवर्तियुतो दक्षे रक्तवर्तिस्तु वामतः॥

(दक्षवामभागौ देव्या एव)

दीपदेवि महादेवि शुभं भवतु मे सदा।
यावत्पूजासमाप्तिः स्यात्तावत्प्रज्जव सुस्थिरा॥

इति पुष्पाञ्जलिं दद्यात्॥

मूलेन चक्रमध्ये पुष्पाञ्जलिं विकीर्य, मूलत्रिखण्डेन स्वाग्र-वामदक्षकोणेषु पुष्पाञ्जलीन्दद्यात्॥

॥द्वितीयः खण्डः॥

भूतशुद्ध्यादि विघ्नोत्सारणान्तम्।

भूतशुद्धिः।

श्वाससमीरं पिङ्गलया अन्तराकृष्य-

4 मूलशृङ्गाटकात् सुषुम्नापथेन जीवशिवं परमशिवपदे योजयामि स्वाहा- इति मन्त्रेण मूलाधारस्थितं जीवात्मानं सुषुम्नावर्त्मना ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा परमशिवेन एकीभूतं विभाव्य इडया वायुं रेचयेत्॥

4 यं 16. (इडया पूरयित्वा) संकोचशरीरं शोषय शोषय स्वाहा- इति निजशरीरं शोषितं विभाव्य पिङ्गलया रेचयेत्॥

4 रं 16. (पिङ्गलया पूरयित्वा) संकोचशरीरं दह दह पच पच स्वाहा-इति प्लुष्टं भस्मीकृतं च विभाव्य इडया रेचयेत्॥

4 वं 16. (इडया पूरयित्वा) परमशिवामृतं वर्षय वर्षय स्वाहा-इति तद्भस्म सहस्रारेन्दुमण्डलविगलदमृतरसेन सिक्तं च विभाव्य पिङ्गलयां रेचयेत्॥

4 लं 16. (पिङ्गलया पूरयित्वा) शांभवशरीरमुत्पादयो- त्पादय स्वाहा - इति तद्भस्मनो दिव्यशरीरमुत्पन्नं विभाव्य इडया रेचयेत्॥

4 हंसः सोहं (इडया पूरयित्वा) अवतर अवतर शिवपदात् जीव सुषुम्नापथेन प्रविश मूलशृन्नाटकं उल्लसोल्लस ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल हंसः सोहं स्वाहा - इति परमशिवनैकी-कृतं जीवं पुनः सुषुम्नावर्त्मना मूलाधारे स्थापितं चिन्तयेत्॥

आत्मप्राणप्रतिष्ठा।

हृदि दक्षकरतलं विनधाय - 4 आं सोहं - इति त्रिः पठेत्॥

अथ मूलेन षोडशधा दशधा त्रिधा वा प्राणानायम्य॥

विघ्नोत्सारणम्॥

4 अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥

इति मन्त्रमुच्चार्य युगपद्वामपार्ष्णिभूतलाघातत्रय-करास्फो-टनत्रय - क्रूरदृष्ट-यवलोकनपूर्वक-तालत्रयेण भौमान्तरिक्षदिव्यान् भेदावभासकान् विघ्नानुत्सारयेत्॥

अथ नमः इति अङ्गुठमन्त्रमुच्चारयन् अङ्कुशमुद्रया शिखां बध्नीयात्॥

॥ तृतीयः खण्डः॥

॥न्यासाः॥

मातृकान्यासः।

अस्य श्रीमातृकासरस्वतीन्यासमहामन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्रीमातृकासरस्वती देवता। हल्भ्यो बीजेम्यशे नमः, स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः, बिन्दुभ्यः कीलकेभ्यो नमः, मम श्रीविद्याङ्गत्वेन न्यासे विनियोगः॥

सर्वमातृकेया सर्वाङ्गे अञ्जलिना त्रिर्व्यापकं कुर्यात्॥

* 7 अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः

7 इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां नमः

7 उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां नमः

7 एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां नमः

7 ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठिकाभ्यां नमः

7 अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः

करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

एवं हृदयादिन्यासः। भूर्भुवस्सुवरोम् इति दिग्बन्धः॥

ध्यानम् ।

पञ्चाशद्वर्णभेदैर्विहितवदनदोःपादयुक्कुक्षिवक्षो-

देशां भास्वत्कपर्दाकलितशशिकलामिन्दुकुन्दावदाताम् ।

अक्षस्त्रक्कुम्भचिन्तालिखितवरकरां त्रीक्षणामब्जसंस्था-

मच्छाकल्पामतुच्छस्तनजघनभरां भारतीं तां नमामि॥

लमित्यादि पञ्चपूजां कृत्वा ।

वहिर्मातृका ।

मातृकाः त्रितारीवालापूर्विकाः 'नमः हंसः' इत्यन्ताः स्वाङ्गषु न्यसेत् ।

ओं ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः			ओं ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः		
अं	नमः हंसः	(शिरसि)	गे	नमः हंसः	(दक्षमणिबन्धे)
7 आं	''	(मुखवृत्ते)	7 घं	''	(दक्षकराङ्गुलिमूले)
7 इं	''	(दक्षनेत्रे)	7 ङं	''	(दक्षकराङ्गुल्यग्रे)
7 ईं	''	(वामनेत्रे)	7 चं	''	(वामवाहुमूले)
7 उं	''	(दक्षर्णे)	7 छं	''	(वामकूर्परे)
7 ऊं	''	(वामकर्णे)	7 जं	''	(वाममणिवन्धे)
7 ऋं	''	(दक्षनासापुटे)	7 झं	''	(वामकराङ्गुलिमूले)
7 ॠं	''	(वामनासापुटे)	7 ञं	''	(वामकराङ्गुल्यग्रे)
7 ऌं	''	(दक्षकपोले)	7 टं	''	(दक्षोरुमूले)
7 ॡं	''	(वामकपोले)	7 ठं	''	(दक्षजानुनि)
7 एं	''	(ऊर्ध्वोष्ठे)	7 डं	''	(दक्षगुल्फे)
7 ऐं	''	(अधररोष्ठे)	7 ढं	''	(दक्षपादाङ्गुलिमूले)
7 ओं	''	(ऊर्ध्वदन्तपैंक्तौ)	7 णं	''	(दक्षपादाङ्गुल्यग्रे)
7 औं	''	(अधोदन्तपंक्तौ)	7 तं	''	(वामोरुमूले)

7 अं ” (जिह्वाग्रे) 7 थं ” (वामजानुनि)

7 कं ” (कण्ठे) 7 दं ” (वामगुल्फे)

7 खं ” (दक्षबाहुमूले) 7 धं ” (वामपादाङ्गुलिमूले)

7 आं ” (दक्षकूर्परे) 7 नं ” (वामपादाङ्गुल्यग्रे)

7 पं नमः ह्ंसः (दक्षपार्श्वे)

7 फं ” (वामपार्श्वे)

7 बं ” (पृष्ठे)

7 भं ” (नाभौ)

7 मं ” (जठरे)

7 यं ” (हृदये)

7 रं ” (दक्षकक्षे)

7 लं ” (गलपृष्ठे)

7 वं ” (वामकक्षे)

7 शं ” (हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तं)

7 षं ” (हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तं)

7 सं ” (हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तं)

7 हं ” (हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तं)

7 ळं ” (कट्यादिपादाङ्गुल्यन्तं)

7 क्षं ” (कट्यादिब्रह्मरन्ध्रान्तं)

अन्तर्मातृका।

7 अं नमः हंसः, आं नमः हंसः + + अः नमः हंसः॥
कण्ठे विशुद्धिचक्रे षोडशदलकमले॥

7 कं नमः हंसः, खं नमः हंसः + + ठं नमः हंसः॥
हृदये अनाहते द्वादशदलकमले।

7 कं नमः हंसः, खं नमः हंसः ++ फं नमः हंसः॥
नाभौ मणिपूरे दशदलकमले॥

7 बं नमः हंसः, भं नमः हंसः ++ लं नमः हंसः॥
लिङ्गमूले स्वाधिष्ठाने षड्दलकमले॥

7 वं नमः हंसः, शं नमः हंसः ++ सं नमः हंसः॥
गुदोपरि मूलाधारे चतुर्दलकमले॥

7 हं नमः हंसः, क्षं नमः हंसः भ्रुवोर्मध्ये आज्ञाचक्रे द्विदले॥

7 अं नमः हंसः, आं नमः हंसः ++ क्षं नमः हंसः॥
(50 वर्णाः) मूर्ध्नि सहस्रारे॥

करशुद्धिन्यासः।

4 अं नमः (दक्षकरतले) 4 अं नमः (मध्यमयोः)

4 आं नमः (तत्पृष्ठे) 4 आं नमः (अनामिकयोः)

4 सौः नमः (तत्पार्श्वयोः) 4 सौः नमः (कनिष्ठिकयोः)

4 अं नमः (वामकरतले) 4 अं नमः (अङ्गुष्ठयोः)

4 आं नमः (तत्पृष्ठे) 4 आं नमः (तर्जन्योः)

4 सौः नमः (तत्पार्श्वयोः) 4 सौः नमः (करतलकरपृष्ठयोः)

आत्मरक्षान्यासः।

4 ऐं क्लीं सौः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि आत्मानं रक्ष रक्ष इत्यञ्जलि हृदये दद्यात्॥

बालाषडङ्गन्यासः।

4 ऐं हृदयाय नमः 4 ऐं कवचाय हुं

4 क्लीं शिरसे स्वाहाः 4 क्लीं नेत्रत्रयाय वौसट

4 सौः शिखायै वषट् 4 सौः अस्त्रास फट्

चतुरासनन्यासः

4 ह्रीं क्लीं सौः देव्यात्मासनाय नमः (पदयोः)

4 हैं ह्क्लीं ह्सौः श्रभ्चक्रासनाय नमः (जान्वोः)

4 ह्सै ह्स्क्लीं ह्स्सोः सर्वमन्त्रासनाय नमः (ऊरुमूले)

4 ह्रीं क्लीं ब्लें साध्यसिद्धासनाय नमः (मूलाधारे)

वाग्देवतान्यासः।

4 अं आं ++ अः ब्लूं वाशिनीवाग्देवतायै नमः (शिरसि)

4 कं खं गं घं ङं क्ल्ह्रीं कामेश्वरीवाग्देवतायै नमः (ललाटे)

4 चं छं जं झं ञं न्व्लीं मोदिनीवाग्देवतायै नमः (भ्रूमध्ये)

4 टं ठं ड ढं णं य्लूं विमलावाग्देवतायै नमः (कण्ठे)

4 तं थं दं धं नं ज्म्रीं अरुणावाग्देवतायै नमः (हृदये)

4 पं फं बं भं मं ह्स्ल्व्यूं जयिनीवाग्देवतायै नमः (नाभौ)

4 यं रं लं वं इम्र्यूं सर्वेश्वरींवाग्देवतायै नमः (गुह्ये)

4 शं षं सं हं ळं क्षं क्ष्म्रीं कौळिनीवाग्देवतायै नमः (मूलाधारे)

बहिश्चकन्यासः।

4 अं आं सौः चतुरश्रत्रयात्मकत्रैलोक्यमोहनचक्राधिष्ठात्र्यै अणिमाद्यष्टाविंशतिशक्तिसहित प्रकट योगिनीरूपायै त्रिपुरा-देव्यै नमः (पादयोः)

4 ऐं क्लीं सौः षोडशदळपद्मात्मकसर्वाशापरिपूरकचक्राधिष्ठात्र्यै कामाकर्षिण्यादिषोडशशक्तिसहितगुप्तयोगिनीरूपायै त्रिपुरे-श्वरीदेव्यै नमः (जान्वोः)

4 ह्रीं क्लीं सौः अष्टदळपद्मात्मकसर्वसंक्षोभणचक्राधिष्ठात्र्यै अनङ्गकुसुमाद्यष्टश क्तिसहित गुप्ततरयेगिनीरूपायै त्रिपुरसुन्दरीदेव्यै

नमः (ऊरुमूलयोः)

4 हैं हक्लीं हसौः चतुर्दशारात्मकसर्वसौभाग्यदायकचक्राधिष्ठात्र्यै सर्वसंक्षोभिण्यादिचतुर्दशशक्तिसहितसंप्रदाययोगिनी-रूपायै त्रिपुरवासिनीदेव्यै नमः (नाभौ)

4 हसैं हस्क्लीं हस्सौः बहिर्दशारात्मकसर्वार्थासाधकचक्राधिष्ठात्र्यै सर्वसिद्धिप्रदादिदशशक्तिसहित कुळोत्तीर्णयोगिनीरूपायै त्रिपुराश्रीदेव्यै नमः (हृदये)

4 ह्रीं क्लीं ब्लें अन्तर्दशारात्मकसर्वरक्षाकर चक्राधिष्ठात्र्यै सर्वज्ञादिशशक्ति-सर्हित निगर्भयोगिनीरूपायै त्रिपुरमालिनीदेव्यै नमः (कण्ठे)

4 ह्रीं श्रीं सौः अष्टारात्मकसर्वरोगहर चक्राधिष्ठात्र्यै वशिन्याद्यष्टशक्ति-सहितरहस्ययोगिनीरूपायै त्रिपुरासिद्धादेव्यै नमः (मुखे)

4 हस्रैं हस्क्ल्रीं हस्रौः त्रिकोणात्मकसर्वसिद्धिप्रदचक्राधिष्ठात्र्यै कामेश्वर्यादित्रिशक्तिसहितातिरहस्ययोगिनीरूपायै त्रिपुराम्बादेव्यै नमः (नेत्रयोः)

4 पञ्चदशी बिन्द्वात्मकसर्वानन्दमयचक्राधिष्ठात्र्यै षठङ्गायुध- दशशक्ति-सहितपरापरातिरहस्ययोगिनीरूपायै महात्रिपुर-सुन्दरीदेव्यै नमः (मूर्ध्नि)

अन्तश्चक्रन्यसः।

4 अं आं सौः चतुरश्रत्रयात्मकत्रैलोक्यमोहनचक्राधिष्ठात्र्यै अणिमाद्यष्टाविंशतिशक्तिसहितप्रकटयोगिनीरूपायै त्रिपुरादेव्यै नमः (अधःसहस्रारे)

4 ऐं क्लीं सौः षेडशदळपद्मात्मकसर्वाशापरिपूरकचक्राधिष्ठात्र्यै कामाकर्षण्यादिषोडशदाक्तिसहितगुप्तयोगिनीरूपायै त्रिपुरेश्वरीदेव्यै नमः (अधःसहस्रारस्योपरि विषुसंज्ञो पड्दले)

4 ह्रीं क्लीं सौः अष्टदलपद्मात्मकसवर्संक्षोभणचक्राधिष्ठात्र्यै अनङ्गकुसुमाद्यष्टशक्तिसहितगुप्ततरयोगिनीरूपायै त्रिपुरसु-न्दरीदेव्यै नमः

(मूलाधारे)

4 हैं ह्ल्कीं ह्सौः चतुर्दसारात्मकसर्वसौभाग्यदायकचक्राधिष्ठात्र्यै सर्वसंक्षोभिण्यादिचतुर्दशशक्तिसहितसंप्रदाययोगिनीरूपायै त्रिपुरवासिनीदेव्यै नमः (स्वाधिष्ठाने)

4 ह्सैं ह्स्क्लीं ह्स्सौः बहिर्दशारात्मकसर्वार्थसाधकचक्राधिष्ठात्र्यै सर्वासिद्धिप्रदादिशशक्तिसहितकुळोत्तीर्णयोगिनीरूपायै त्रिपुराश्रीदेव्यै नमः (मणिपूरे)

4 ह्रीं क्लीं ब्लें अन्र्दशारात्मकसर्वरक्षाकरचक्राधिष्ठात्र्यै सर्वज्ञादिदश-शक्तिसहितनिगर्भयोगिनीरूपायै त्रिपुरमालिनीदेव्यै नमः (अनाहते)

4 ह्रीं श्रीं सौः अष्टारात्मकसर्वरोगहरचक्राधिष्ठात्र्यै वशिन्याद्यष्टशक्ति-सहितरहस्ययोगिनीरूपायै त्रिपुरासिद्धद्धादेव्यै नमः (विशुद्धौ)

4 ह्स्रैं ह्स्क्लरीं ह्स्रौः त्रिकोणात्मकसर्वसिद्धिप्रदचक्राधिष्ठात्र्यै कामेश्वर्यादित्रिशक्तिसहितातिरहस्ययोगनीरूपायै त्रिपुराम्बादेव्यै नमः (लम्बिकाग्रे)

4 पञ्चदशी विन्द्वात्मकसर्वानन्दमयचक्राधिष्ठात्र्यै षडङ्गायुधदशशक्ति-सहितपरापरातिरहस्ययोगिनीरूपायैमहात्रिपुरसुन्दरीदेव्यै नमः (आज्ञायां)

पुनः आज्ञाचक्रस्य एकैकाङ्गुलोपरि देशे

अं आं सौः नमः (विन्दौ)

ऐं क्लीं सौः नमः (अर्धचन्द्रे)

ह्रीं क्लीं सौः नमः (रोधिन्यां)

हैं ह्क्लीं ह्सौः नमः (नादे)

ह्सैं ह्स्क्लीं ह्स्सौः नमः (नादान्ते)

ह्रीं क्लीं ब्लें नमः (शक्तौ)

ह्रीं श्रीं सौः नमः (व्यापिकायां)

ह्स्रैं हस्क्ल्रीं ह्स्रौः नमः (समनायां)

पञ्चदशी नमः (द्वन्मनायां)

षोडशी नमः (ब्रह्मरन्ध्रे महाबिन्दौ)॥

कामेश्वर्यादिन्यासः।

4 ऐं कएईलह्रीं अग्निचके कामगिरिपीठे मित्रेशनाथ-नव-योनिचक्रात्मक आत्मतत्व-सृष्टिकृत्य-जाग्रद्दशाधिष्ठायकेच्छाशक्ति - वागभवात्मक - वागीश्वरीस्वरूप - महाकामेश्वरी - * ब्रह्मात्मशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः। (मूलाधारे)

4 क्लीं हसकहलहीं सूर्यचक्रे जालन्धरपीठे षष्ठीशनथ - दशार - द्वयचतुर्दशारचक्रात्मक - विद्यातत्व - स्थितिकृत्य - स्वप्नदशाधिष्ठायक - ज्ञानशक्ति - कामराजात्मक - कामकलास्वरूप - महाबज्रेश्वरी - विष्ण्वात्मशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः। (अनाहते)

4 सौः सकलह्रीं सोमचक्रे पूर्णगिरिपीठे उड्डीशनाथ-अष्टदळ- षोडशदळ-चतुरश्रचक्रात्मक - शिवतत्व - संहारकृत्य - सुषुप्तिदशाधिष्ठायक - क्रियाशक्ति - शक्तिबीजात्मक - परापरशक्तिस्वरूप - महाभगमालिनी रुद्रात्मशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः। (आज्ञायां)॥

4 ऐं कएईलह्री क्लीं हसकहलह्रीं, सौः सकलह्रीं परब्रह्मचक्रे महोड्याणपीठे चर्यानन्दनाथ - समस्तचक्रात्मक - सपरिवार - परमतत्व - सृष्टिस्थितिसंहारकृत्य - तुरीयदशाधिष्ठायकेच्छ - ज्ञानक्रियाशान्ताशक्ति - वाग्भवकारमराजशक्तिबीजात्मक - परमशक्तिस्वरूप - श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी - परब्रह्मात्मशक्ति - श्रीपादुकां पूजयामि नमः। (ब्रह्मरान्ध्रे)॥

मूलविद्यान्यासः।

4 कं नमः (शिरसि)

4 एं नमः (मूलाधारे)

4 ईं नमः (हृदि)

4 लं नमः (दक्षनेत्रे)

4 ह्रीं नमः (वामनेत्रे)

4 हं नमः (भ्रूमध्ये)

4 सं नमः (दक्षश्रोत्रे)

4 कं नमः (वामश्रोत्रे)

4 हं नमः (मुखे)

4 लं नमः (दक्षभुजे)

4 ह्रीं नमः (वामभुजे)

4 सं नमः (पृष्ठे)

4 कं नमः (दक्षजानुनि)

4 लं नमः (वामजानुनि)

4 ह्रीं नमः (नाभौ)

अथ ऋष्यादिषडङ्गन्यासं यथोपदेशं कुर्यात्॥

षोडश्युपासकानां विशेषन्यासाः।

श्रीषोडशाक्षरीन्यासः।

4 मूलं नमः। दक्षमध्यमानामिकाभ्यां शिरसि न्ययेत्। तत्र तो दीपाभां स्रवत्सुधारसां महासौभाग्यदां ध्यात्वा-

4 मूलं नमः महासौभाग्यं में देहि परसौभाग्यं दण्डयामि। सौभाग्यवण्डिन्या मुद्रया वामकर्णसंवेष्टनपूर्वकं आमस्तकचरणं वामाङ्गे न्यसेत॥

4 मूलं नमः मम शत्रून्निगृह्णमि। रिपु जिह्वाग्रया मुद्रया वामपादाधो न्यसेत्॥

4 मूलं नमः त्रैलोक्यस्याहं कर्ता। त्रिखण्डया मुद्रया फाले न्यसेत्॥

4 मूलं नमः । त्रिखण्डया मुद्रया मुखवेष्टनत्वेन न्यसेत॥

4 मूलं नमः । त्रिखण्डया मुद्रया दक्षकर्णादिवामकर्णान्तं फखवेष्टनत्वेन न्यसेत्॥

4 ओं मूलं नमः । त्रिखण्डया गळोर्ध्वमामस्तकं न्यसेत्॥

4 ओं मूलं नमः । त्रिखण्डया मुद्रया मस्तकात् पादपर्यन्तं पादादामस्तकं च न्यसेत्॥

4 मूलं नमः । योनिमुद्रया मुखे न्यसेत्॥

4 मूलं नमः । योनिमुद्रया ललाटे न्यसेत्॥

संमोहनन्यासः ।

4 मूल॥मूलविद्यां स्मृत्वा तत्प्रभया जगद्रुणं विभावयन् अनामिकां मूर्ध्नि त्रिः परिभ्राम्य-

4 मूल॥ब्रह्मरन्ध्रे अङ्गुष्ठानामिके न्यसेत्॥

4 मूल॥मणिबन्धद्वये ''

4 मूल॥फाले ''

4 मूल॥शाक्ततिलकं धारयेत्॥

	संहारन्यासः	सृष्टिन्यासः	स्थितिन्यासः
4	श्रीं नमः पादयोः	ब्रह्मरान्ध्रे	अङ्गुष्ठयोः
4	ह्रीं '' जङ्घयोः	फाले	तर्जन्योः
4	क्लीं '' जान्वोः	नेत्रयोः	मध्यमयोः
4	ऐं '' कटिभागद्वये	कर्णयोः	अनामिकयोः
4	सोः '' पृष्ठे	नासापुटयोः	कनिष्ठिकयोः
4	ओं '' लिङ्गे	गण्डयोः	मूर्ध्नि
4	ह्रीं '' नाभौ	दन्तपंक्तौ	मुखे

4	श्रीं '' पार्श्वयोः	ओष्ठयोः	हृदि
4	क-5 '' स्तनयोः	जिह्वायां	नाभेः आपादद्वयं
4	ह-6 '' अंसयोः	कण्ठे	कण्ठादिनाभ्यन्तं
4	स-4 '' कर्णयोः	पृष्ठे	मूर्धादिकण्ठान्तं
4	सौः '' मूर्ध्नि	सर्वाङ्गे	पादाङ्गुष्ठयोः
4	ऐं '' मुखे	हृदि	पादतर्जन्योः
4	क्लीं '' नेत्रयोः	स्तनयोः	पादमध्यमयोः
4	ह्रीं '' कर्णयुगसन्निधौ	उदरे	पादानामिकयोः
4	श्रीं '' कर्णवेष्टनयोः	लिङ्गें	पादकनिष्ठिकयोः

न्यस्य मूलेन देहे व्यापकं कुर्यात्।

॥ चतुर्थः खण्डः॥

पात्रासादनम्।

वर्धनीकलशस्थापनम्।

स्वपुरतः वामभागे त्रिकोणवृत्तचतुरश्रात्मकं मण्डलं मत्स्य-मुद्रया विलिख्य-

मण्डलं मूलेन समभ्यर्च्य, कर्पूरादिवासितजलपूरितं कलशं गन्धपुष्पाक्षतैः अलंकृत्य मण्डलोपरि संस्थापयेत्॥
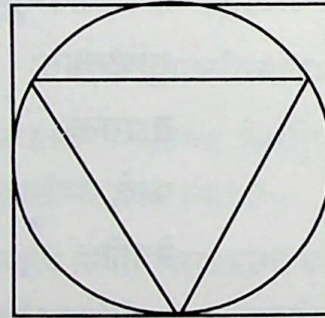
ॐ कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः।
मूले तत्र स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः॥

कुही तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदोऽप्यथर्वणः॥
अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशाम्बुसमाश्रिताः॥

ॐ आपो वा इदँ सर्व विश्वा भूतान्यापः प्राणा वा आपः
पशव आपोऽन्नमापोऽमृतमापः सम्राडापो विराडापः स्वरा-
डापश्छन्दाँस्यापो ज्योतिँष्यापो यजूँष्यापः सत्यमापः
सर्वा देवता आपो भूर्भुवस्सुवराप ओ॥।
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु॥
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि च नदा ह्रदाः।
आयान्तु देवीपूजार्थं दुरितक्षयकारकाः॥

मूलेन अष्टवारमभिमन्त्र्य, धेनुमुद्रां प्रदर्य, तज्जलेन पूजोपकरणानि आत्मानं च प्रोक्षयेत॥

सामान्यार्घ्यविधिः

वर्धनीपात्रस्य दक्षिणतः वर्धनीपात्रगतेन जलेन विन्दुत्रिकोण-षट्कोण-वृत्त-चतुरश्रात्मकं मण्डलं मत्स्यमुद्रया निर्माय॥
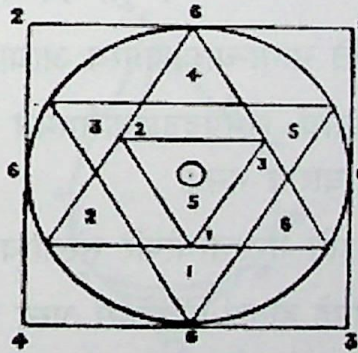
चतुरश्रे अग्नीशासुरवायुकोणेषु मध्ये दिक्षु च वालाषडङ्गैः संपूजयेत्। यथा-

4 ऐं हृदयाय नमः। हृदयशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः॥

4 क्लीं शिरसे स्वाहा। शिरःशक्तिश्रीपादुकां ”

4 सौः शिखायै वषट्। शिखाशक्तिश्रीपादुकां ”

4 ऐं कवचाय हुं॥कवचशक्तिश्रीपादुकां ”

4 क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट्। नेत्रशक्तिश्रीपादुकां ”

4 सौः अस्त्राय फट्। अस्त्रशक्तिश्रीपादुकां ”

षट्कोणे स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन-

4 ऐं क-5 हृदयाय नमः। हृदयशक्तिश्रीपादुकां ”

4 क्लीं ह-6 शिरसे स्वाहा। शिरःशक्तिश्रीपादुकां ”

4 सौः स-4 शिखायै वषट्। शिखाशक्तिश्रीपादुकां ”

4 ऐ क-5 कवचाय हु॥कवचशक्तिश्रीपादुकां ”

4 क्लीं ह-6 नेत्रत्रयाय वौषट्। नेत्रशक्तिश्रीपादुकां ”

4 सौः स-4 अस्त्राय फट्। अस्त्रशक्तिश्रीपादुकां ”

त्रिकोणे स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन-

4 ऐं क-9 नमः 4 सौः स-4 नमः

4 क्लीं ह-6 नमः 4 मूलं नमः (बिन्दौ)

ततः 4 अस्त्राय फट्-इति सामान्यार्व्यपात्रस्य आधारं प्रक्षाल्य

4 अं अग्निमण्डलाय धर्मप्रददशकलात्मने श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः सामान्याघ्र्यपात्राधाराय नमः॥

इति मण्डलस्योपरि संस्थाप्य

4 अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसं अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्। रां रीं रूं रैं रौं रः रमलवरयूं अग्निमण्डलाय नमः इति अग्मिण्डलं विभाव्य दशवह्निकलाः संपूजयेत। तद्यथा-

4 यं धूमार्चिष्कलायै नमः

4 रं ऊष्मा ”

4 लं ज्वलिनी ”

4 वं ज्वालिनी ”

4 शं विस्फुलिङ्गिनी ”

4 षं सुश्री ”

4 सं सुरूपा ”

4 हं कपिला ”

4 ळं हव्यवाहिनी ”

4 क्षं कव्यवाहिनी ”

4 अस्त्राय फट् - इति क्षालितं शङ्खं गृहीत्वा-

4 उं सूर्यमण्डलायार्थप्रदद्वादशकलात्मने श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः सामान्यार्घ्यपात्राय नमः - इति संस्थाप्य

4 आ सत्येन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्य च हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवना विपश्यन्। हां हीं हूं हैं हौं हः। हमलवरयूम्। सूर्यमण्डलाय नमः- इति सूर्यमण्डलं विभाव्य द्वादशसूर्यकलाः संपूजयेत्।

तद्यथा-
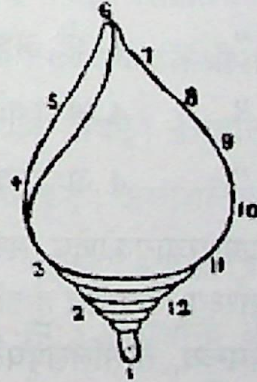
4 कं भं तपिनीकलायै नमः	4 छं दं सुषुम्नाकलायै नमः
4 खं बं तापिनी ”	4 जं थं भोगदा ”

4	गं फं धूम्रा	”	4 झं तं विश्वा ”
4	घं पं मरीची	”	4 ञं णं बोधिनी ”
4	ङं नं ज्वालिनी	”	4 टं ढं धारिणी ”
4	चं धं रुचि	”	4 ठं डं क्षमा ”

4 मं सोममण्डलाय कामप्रदषोडशकलात्मने महात्रिपुरसुन्दर्याः सामान्यार्ध्यामृताय नमः- इति वर्धनीसलिलमापूर्य क्षीरबिन्दुं दत्वा

4 आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोमवृष्णियं भवावाजस्य संगथे। सां सीं सूं सैं सौं सः समलवरयूं सोममण्डलाय नमः- इति सोममण्डलं विभात्य षोडश सोमकलाः संपूजयेत्

तद्यथा-

4	अं अमृताकलायै नमः		4 लृं चन्द्रिकाकलायै नमः
4	आं मानदा	”	4 लॄं कान्ति ”
4	इं पूषा	”	4 एं ज्योत्स्ना ”
4	ईं तुष्टि	”	4 ऐं श्री ”
4	उं पुष्टि	”	4 ओं प्रीति ”
4	ऊं रति	”	4 औं अङ्गदा ”
4	ऋं धृति	”	4 अं पूर्णा ”
4	ॠं शशिनी	”	4 अः पूणामृता ”

ततस्तस्मिन्शङ्खे अग्नीशासुरवायुकोणेषु मध्ये दिक्षु च क्रमेण षडङ्गैः संपूज्य, अस्त्राय फद इति संरक्ष्य, कवचाय हुं इति अवकुण्ठ्य, धेनुयोनिमुद्रे प्रदर्श्य, मूलेन सप्तवारमभिमन्त्र्य, तत्सलिलपृषतैः पूजोपकरणानि आत्मानं च प्रोक्ष्य, शङ्खजलात् किंचित् वर्धन्यां क्षिपेत्॥

विशेषर्घ्यविधिः।

सामान्यार्घ्योदकेन तद्दक्षिणतः बिन्दु-त्रिकोण-पट्कोण-वृत्त-चतुरश्रात्मकं मण्डलं मत्स्यमुद्रया विलिख्य, बिन्दौ सानुस्वारं तुरीयस्वरं विलिख्य,

चतुरश्रे प्राग्वत् षडङ्गं विन्यस्य, षट्कोणे स्वाग्रकोणादि-प्रादक्षिण्येन षडङ्गैभ्यर्च्य, त्रिकोणे मूलत्रिखण्डैः अभ्यर्च्य, मूलेन विन्दुं च अर्चयेत्। तद्यथा-

चतुरश्रे अग्नीशासुरवायुकोणेषु मध्ये दिक्षु च-
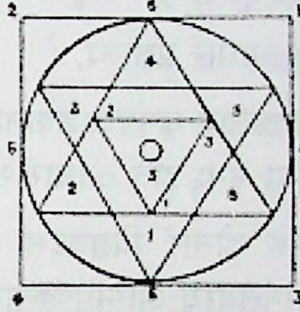
4 ऐं क-5 हृदयाय नमः। हृदयशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि नमः

4 क्लीं ह-6 शिरसे स्वाहा। शिरःशक्तिश्रीपादुकां "

4 सौः स-4 शिखायै वषट्। शिखाशक्ति श्रीपादुकां "

4 ऐं क-5 कवचाय हु॥कवचशक्तिश्रीपादुकां "

4 क्लीं ह-6 नेत्रत्रयाय वौषट्। नेत्रशक्तिश्रीपादुकां "

4 सोः स-4 अस्त्राय फट्। अस्त्रशक्तिश्रीपादुकां "

ततः षट्कोणे स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन-

4 ऐं क-5 हृदयाय नमः। हृदयशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि नमः

4 क्लीं ह-6 शिरसे स्वाहा। शिरःशक्तिश्रीपादुकां "

4 सौः स-4 शिखायै वषट्। शिखाशक्ति श्रीपादुकां "

4 ऐं क-5 कवचाय हुं॥कवचशक्तिश्रीपादुकां "

4 क्लीं ह-6 नेत्रत्रयाय वौषट्। नेत्रशक्तिश्रीपादुकां "

4 सोः स-4 अस्त्राय फट्। अस्त्रशक्तिश्रीपादुकां "

ततस्त्रिकोणे स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन-

4 ऐं क-5 नमः 4 सौः स-4 नमः

4 क्लीं ह-6 नमः 4 मूलं नमः (विन्दौ)

षोडश्युपासकानां तु षोडशीमन्त्रेण सर्वत्र पूजा विधेया।

अध 4 अस्त्राय फट इति आधारं प्रक्षाल्य,

4 ऐं क-5 अं अग्निमण्डलाय धर्मप्रददशकलात्मने श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्या विशेषार्ध्यपात्राधाराय नमः इति आधारं संस्थाप्य

4 अग्नि दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसं अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्। रां रीं रूं रैं रौं रः रमलवरयूं अग्निमण्डलाय नमः-इति अग्निमण्डलं विभाव्य दश वह्निकलाः पूजयेत्। यथा-

4 यं धूम्रार्चिष्कलायै नमः 4 षं सुश्रीकलायै नमः

4 रं ऊष्मा " 4 सं सुरूपा "

4 लं ज्वलिनी " 4 हं कपिला "

4 वं ज्वालिनी-पलंहत्यवाहिनी

4 वं विस्फलिङ्गिनी " 4 क्षं कव्यवाहिनी "

ततः-

4 अस्त्राय फट् इति अस्त्रमन्त्रेण विशेषार्घ्यपात्रं प्रक्षाल्य

4 क्लीं ह-6 उं सूर्यमण्डलाय अर्थप्रदद्वादशकलात्मने श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्या विशेषार्घ्यपात्राय नमः इति आधारोपरि संस्थाप्य॥

4 ह्रीं ऐं महालक्ष्मीश्वरि परमस्वामिनि ऊर्ध्वशून्यप्रवाहिनि सोमसूर्याग्निभक्षिणि परमाकाशभासुरे आगच्छागच्छ विश विश पात्रं प्रतिगृह्ण प्रतिगृह्ण हुं फट् स्वाहा इति पुष्पाञ्जलिं विकीर्य॥

4 आ सत्येन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च हिरण्य-येन सविता स्थेन देवो याति भुवना विपश्यन्। हां हीं हूं हैं हौं हः हमलवरयूं सूर्यमण्डलाय नमः इति सूर्यमण्डलं विभाव्य द्वादश सूर्यकलाः पूजयेत्। यथा-

4	कं भं तपिनीकलायै नमः		4	छं दं सुषुम्नाकलायै नमः	
4	कं वं तापिनी	”	4	जं थं भोगदा	”
4	गं फं धूम्रा	”	4	झं तं विश्वा	”
4	घं पं मरीचि	”	4	ञं णं बोधिनी	”
4	ङं नं ज्वालिनी	”	4	टं ढं धारिणी	”
4	चं धं रुचि रुचि	”	4	ठं डं क्षमा	”

ततः-

4 सौः स-4 मं सोममण्डलाय कामप्रदषोडशकलात्मने श्री-महात्रिपुरसुन्दर्या विशेषार्ध्यामृताय नमः- इति तत्त्वमुद्रया गृहीतनागरखण्डोपरि सविन्दु अकारादिक्षकारान्तं क्षकाराद्यकारान्तं मातृकया अर्पितेन अमृतेन आपूर्य अष्टगन्धलोलितं पुष्पं निधाय नागरखण्डं निक्षिप्य॥

4 आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोमष्टष्णियम्। भवावाजस्य संगथे॥सां सीं मूं सैं सौं सः स म ल व र यूं सोममण्डलाय नमः- इति सोममण्डलं विभाव्य षोडश सोमकलाः पूजयेत्। यथा-

4	अं अमृता कलापै नमः		4	ऌ चन्द्रिका कलायै नमः	
4	आं मानदा	”	4	ॡं कान्ति	”
4	इं पूषा	”	4	एं ज्योत्स्ना	”
4	ईं तुष्टि	”	4	ऐं श्री	”
4	उं पुष्टि	”	4	ओं प्रीति	”
4	ऊं रति	”	4	औं अङ्गदा	”

4	ॠं रशिनी	"	4 अः पूर्णमृता	
4	ॠं धृति	"	4 अं पूर्णा	"
4	ॠं शशिनी	"	4 अः पूर्णामृता	"

ततः 4 ओं जुंसः स्वाहा इति अष्टवारमभिमन्त्र्य।
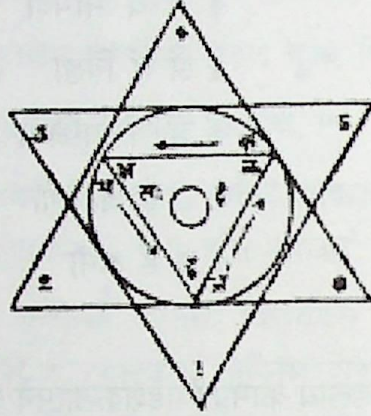
तन्नार्घ्यामृते स्वाग्राद्यप्रादक्षिण्येन अकथादि्-षोडशवर्णात्मक-रेखा-त्रयं त्रिकोणं विलिख्य, तदन्तः स्वाग्रादिकोणेषु अप्रादक्षिण्येन हळक्षान् बहिः प्रादक्षिण्येन पञ्चदशीमूलखण्डत्रयं बिन्दौ स-बिन्दुतुरीयस्वरं, तद्वामदक्षयोः क्रमेण हं सः इति च विलिख्य-

4 हंसः नमः इति आराध्य त्रिकोणस्य परितः वृत्ते तद्बहिश्च षट्कोणं निर्माय स्वाग्रकोणादिप्रादक्षिण्येन षडङ्गमन्त्रैः षट्कोणमभ्यर्च्य

4 मूलं तां चिन्मयीं आनन्दलक्षणां अमृतकलशपिशितहस्तद्वयां प्रसन्नां देवीं पूजयामि नमः स्वाहा इति सुधादेवीं समभ्यर्च्य तदर्ध्यात्किंचित् पात्रातरेण

4 वषट्। इत्युद्धृत्य

4 स्वाहा। इति तत्रैव निक्षिप्य

4 हु॥इति अवकुण्ठ्य

4 वौषट्। इति धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य

4 फट्। इति संरक्ष्य

4 नमः। इति पुष्पं दत्वा

4 मूलेन गालिन्या निरीक्ष्य

4 ऐं इति योनिमुद्रया नत्वा

4 मूलेन सप्तवार मभिमन्त्र्य सुधादेवीं षोडशोपचारैः संपूज्य तद्बिन्दुभिः सपर्यासाधनानि प्रोक्ष्य सर्व विद्यामयं विभावयेत्॥

शुद्धिसंस्कारः।

विशेषार्घ्यस्य दक्षिणतः सामान्यार्घ्योदकेन त्रिकोण-वृत्त चतुर-श्रात्मकं मण्डलं मत्स्यमुद्रया विलिख्य'

4 ओं ह्रीं ह्रौं नमःशिवाय इति मण्डलं अभ्यर्च्य शुद्धिपात्रं संस्थाप्य

4 ओं श्लीं पशु हुं फट् इति अष्टवारमभिमन्त्र्य

4 सद्यो जातं प्रपद्यामि सद्यो जाताय वै नमो नमः।
भवे भवे नाति भवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥

4 वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः॥

4 अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥

4 तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्

4 ईशानस्सर्वविद्यानां ईश्वरस्सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवो॥। इत्यभ्यर्च्य शुद्धिपात्रस्य अधः त्रिकोण-वृत्त-चतुरश्रात्मकं मण्डलद्वयं विलिख्य। प्रथममण्डले-

4 हंसः नमः। इत्यभ्यर्च्य आत्मपात्रं निधायं विशेषार्घ्यपात्रं करेण

संस्पृश्य वक्ष्यमाणचतुर्नवतिमन्त्रैः अभिमन्त्रयेत्-

वह्निकलाः।

4	यं धूम्रार्चिषे	नमः	4	पं सुश्रियै	नमः
4	रं ऊष्मायै	”	4	सं सुरूपायै	”
4	लं ज्वलिन्यै	”	4	हं कपिलायै	”
4	वं ज्वालिन्यै	”	4	ळं हव्यवाहिन्यै	”
4	शं विस्फुलिङ्गिन्यै	”	4	क्षं कव्यवाहिन्यै	”

सूर्यकलाः।

4	कं भं तपिन्यै	नमः	4	छं दं सुषुम्नायै	नमः
4	खं बं तापिन्ये	”	4	जं थं भोगदायै	”
4	गं फं धूम्रायै	”	4	झं तं विश्वायै	”
4	घं पं मरीच्यै	”	4	ञं णं बोधिन्यै	”
4	ङं नं ज्वालिन्यै	”	4	टं ढं धारिण्यै	”
4	चं धं रुच्यै	”	4	ठं डं क्षमायै	”

सोमकलाः।

4	अं अमृतायै	नमः	4	ऌं चन्द्रिकायै	नमः
4	आं मानदायै	”	4	ॡं कान्त्यै	”
4	इं पूषायै	”	4	एं श्रियै	”
4	ईं तुष्ट्यै	”	4	ऐं श्रियै	”
4	उं पुष्ट्यै	”	4	ओं प्रीत्यै	”
4	ऊं रत्यै	”	4	औं अङ्गदायै	”
4	ऋं धृत्यै	”	4	अं पूर्णायै	”

4	ॠं शशिन्यै ”	4	अः पूर्णामृतायै ”

ब्रह्मकलाः ।

4	कं सृष्ट्यै	नमः	4	चं लक्ष्म्यै	नमः
4	खं ऋद्ध्यै	”	4	छं द्युत्यै	”
4	गं स्मृत्यै	”	4	जं स्थिरायै	”
4	घं मेधायै	”	4	झं स्थित्यै	”
4	ङं कान्त्यै	”	4	ञं सिद्ध्यै	”

4 हँसश्शुचिपद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं वृहत्॥नमः॥

विष्णुकलाः ।

4	टं जरायै	नमः	4	तं कामिकायै	नमः
4	ठं पालिन्यै	”	4	थं वरदायै	”
4	डं शान्त्यै	”	4	दं ह्लादिन्यै	”
4	ढं ईश्वर्यै	”	4	धं प्रीत्यै	”
4	णं रत्यै	”	4	नं दीर्घायै	”

4 प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्याय मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा॥नमः॥

रुद्रकलाः ।

4	पं तीक्ष्णायै	नमः	4	बं भयायै	नमः
4	फं रौद्यै	”	4	भं निद्रायै	”
4	मं तन्द्यै	”	4	लं क्रियायै	”
4	यं क्षुधायै	”	4	वं उद्रार्यै	”
4	रं क्रोधिन्यै	”	4	शं मृत्यवे	”

4 त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिबर्धनम्!
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥नमः।

ईश्वरकलाः।

4 षं पीतायै नमः 4 हं अरुणायै नमः

4 सं श्वेतायै " 4 क्षं असितायै "

4 तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्।
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाँसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम्॥नमः॥

सदाशिवकलाः।

4 अं निवृत्त्यै नमः 4 लं परायै नमः

4 आं प्रतिष्ठायै " 4 लृं सूक्ष्मायै "

4 इं विद्यायै " 4 एं सूक्ष्मामृतायै "

4 ईं शान्त्यै " 4 ऐं ज्ञानायै "

4 उं इन्धिकायै " 4 ओं ज्ञानामृतायै "

4 ऊं दीपिकायै " 4 औं आप्यायिन्यै "

4 ऋं रचिकायै " 4 अं व्यापिन्यै "

4 ॠं मोचिकायै " 4 अः त्योमरूपायै "

4 विष्णुयोनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु।
आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते॥
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति।
गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजा॥नमः॥

4 मूलम् नमः॥

4 अखण्डैकरसानन्दकरे परसुधात्मनि।
स्वच्छन्दस्फुरणामत्र निधेहि कुलनायिके॥नमः॥

4 अकुलस्थामृताकारे शुद्धज्ञानकरे परे।
अमृतत्वं निधेह्यास्मिन् वस्तुनि क्लिन्नरूपिणि॥नमः॥

4 तद्रूपिण्यैकरस्यत्वं कृत्वा ह्येतस्वरूपिणि।
भूत्वा परामृताकारा मयि चित्स्फुरणं कुरु॥नमः॥

4 ऐं ब्लूं झौं जुं सः अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवार्षिणि
अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा॥नमः॥

4 ऐं वद वद वाग्वादिनि ऐं क्लीं क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदय महाक्षोभं
कुरु कुरु क्लीं सौः मोक्षं कुरु कुरु ह्सौः स्हौः ॥नमः॥

एवमभिमन्त्रितविशेषार्ध्यामृतते किंचित् गुरुपात्रे उद्धृत्य गुरुत्रयं यजेत्। गुरुः सन्निहितो यदि तस्मैं निवेदयेत्।

पुनः आत्मपात्रे किंचिद्विशेषार्घ्यामृतमुद्धृत्य, मूलाधारे वालाप्रमात्रं अनादिवासनारूपेन्धन प्रज्जवलितं कुण्डलिन्यधिष्ठितं चिदग्निमण्डलं ध्यात्वा

4 कुण्डलिन्यधिष्ठितचिद ग्रिमण्डलाय नमः। इति मनसा संपूज्य

4 मूलं पुण्यं जुहोमि स्वाहा
4 मूलं पापं ''
4 मूलं कृत्यं ''
4 मूलं अकृत्यं ''
4 मूलं सङ्कल्पं ''
4 मूलं विकल्पं ''
4 मूलं धर्म ''
4 मूलं अधर्म ''

4 मूलं अधर्म जुहोमि वौषट्

4 इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतः जाग्रत्स्वजसुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यां उदरेण शिश्रा यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा- इति पूर्णाहुतिं विभाव्य

4 आर्द्रं ज्वलति ज्योतिरहमस्मि

ज्योतिर्ज्वलति ब्रह्माहमस्मि

योऽहमस्मि ब्रह्माहमस्मि।

अहमस्मि ब्रह्माहमस्मि।

अहमेवाहं मां जुहोमि स्वाहा॥

इति आत्मनः कुण्डलिनीरूपे चिदग्नौ होमबुद्ध्या जुहुयात्। विशेषार्घ्यपात्रात्किंचित्क्षीरं कारणकलशे निक्षिपेत॥

॥पञ्चमः खण्डः॥

अन्तर्यागादि लयाङ्गपूजान्तम्।

अन्तर्यागः।

एवं निरस्तनिखिलदोषः सन् आमूलाधारादाब्रह्माविलं विलसन्तीं विसतन्तुतनीयसीं विद्युत्पुञ्जपिञ्जरां विचस्वदवुतभास्वत्प्रकाशं परः शतसुधा-मयूखशीतलते जो दण्डरूपां परचितिं भावयेत्।

ततस्तत्तेजसि-

मूलाधारादधोगते अकुलसहस्रारे भूपुरस्थितदेवीः,
तदुपरि स्थिते विषुवनाम्नि रक्तवर्णषड्दल पद्मे षोडशबलदेवीः,
मूलाधारे चतुर्दले अष्टदलदेवीः,
स्वाधिष्ठाने षड्दले चतुर्दशारदेवीः,
मणिपूरके दशदले बहिर्दशारदेवीः,
अनाहते द्वादशदले अन्तर्दशारदेवीः,
विशुद्धौ षोडशदले अष्टारदेवीः,
लम्बिकाग्रे आयुधदेवीः त्रिकोणदेवीश्च,
आज्ञायां द्विदले बिन्दुतः देवीं च,

ध्यात्वा तत्तदग्रे जीवात्मानं पुष्पपूरिताञ्जलिं निविष्टं भावयन् तत्तत्पूजामन्त्रैः

तत्तदावरणपूजां, देव्या वामहस्ते पूजासमर्पणं च विभाव्य, श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्या सचक्रावयवानि आवरणानि विलीनानि विभाव्य, मध्यत्र्यश्राग्रे (देवीपादमूले) स्थितजीवात्मना सहितां श्रीदेवीं हृदयं नीत्वा स्वाञ्जलिगतकुसुमैः तत्र तां संपूज्य, ततः अकुलेन्दुगलितामृतधारारूपिणीः चन्दनकुसुमधूपदीपनैवेद्य-शालिकरकमलाः पीतासितश्यामरक्तशुक्लवर्णाः धरणिवियदनिलानलजललक्षण पञ्चभूतमयीः सर्वावयवसुन्दरीः पञ्चदेवताः देव्यग्रे संस्मृत्य, ताभिः चन्दनाद्युपचारान् श्रीदेव्यै समर्पितान् स्मारं स्मारं पञ्चोपचारमुद्राञ्च प्रदर्शिता भावयेत्॥

ततो देव्या नासायां गन्धदेवता, श्रोत्रे पुष्पदेवता, नाभौ धूपदेवता, नयने दीपदेवता, जिह्वायां नैवेद्यदेवता इति क्रमेण विलीनाः विभाव्य मूलविद्यां उच्चरन् जीवात्मानं श्रीदेवीपादारविन्दमूले लीनं विभाव्य, हृदयगतदेवीरूपं मध्यत्र्यश्रसहितं तत्रैव केवलं ज्योतिर्मयतामापान्नं ध्यान् संक्षोभिण्यादिनवमुद्राः* भावयित्वा, क्षणं न किंचिदपि चिन्तयेत्॥

अथ देव्या प्रेरितमानसः सन् पुनः प्रकृतिमालम्ब्य तेजोरूपेण परिणतां परमशिवज्योतिरभिन्नप्रकाशात्मिकां वियदादिविश्वकारणां सर्वावभासिकां स्वात्मभिन्नां परचितिं सुषुम्नापथेन उद्गमय्य विनिर्भिन्नविधिबिलविलसदमलदश-शतदलकमलात् वहन्नासापुटेन निर्गतां त्रिखण्डमुद्रा- मण्डितशिखण्डे कुसुमगर्भितेऽञ्जलौ समानीय-

4 ह्रीं श्रीं सौः श्रीललितायाः अमृतचैतन्यमूर्तिं कल्पयामि नमः॥

ध्यानम्।

ध्यायेन्निरामयं वस्तु जगत्त्रयविमोहिनीम्।
अशेषव्यवहाराणां स्वामिनीं संविदं पराम्॥

उद्यत्सूर्यसहस्राभां दाडिमीकुसुमप्रभाम्।
जपाकुसुमसंकाशां पद्मरागमणिप्रभाम्॥

स्फुरत्पद्मनिभां तप्तकाञ्चनाभां सुरेश्वरीम्।
रक्तोत्पलदलाकारपादपल्लवराजिताम्॥

अनर्घ्यरत्नखचितमञ्जीरचरणद्वयाम् ।
पादाङ्गुलीयकक्षिप्तरत्नतेजोविराजिताम्॥

कदलीललितस्तम्भसुकुमारोरुकोमलाम ! ।
नितम्बबिम्बविलसद्रक्तवस्त्रपरिष्कृताम्॥

मेखलाबद्धमाणिक्यकिङ्किणीनादविभ्रामाम् ।
अलक्ष्यमध्यमां निम्ननाभिं शातोदरीं पराम्॥

रोमराजिलतोद्भूतमहाकुचफलान्विताम् ।
सुवृत्तनिबिडोत्तुङ्गकुचमण्डलराजिताम्॥

अनर्घमौक्तिकस्फारहारभारविराजिताम् ।
नवरत्नप्रभाराजद्ग्रैवेयकविभूषणाम्॥

श्रुतिभूषामनोरम्यकपोलस्थलमञ्जुलाम् ।
उद्यदादित्यसंकाशताटङ्कसुमुखप्रभाम्॥

पूर्णचन्द्रमुखीं पद्मवदनां वरनासिकाम् ।
स्फुरन्मदनकोदण्डसुभ्रुवं पद्मलोचनाम्॥

ललाटपट्टसंराजद्रत्नाढ्यतिलकाङ्किताम् ।
मुक्तामाणिक्यघटितमुकुटां च त्रिलोचनाम्।
प्रवालवल्लीविलसद्बाहवल्लीचतुष्टयाम्॥

इक्षुकोदण्डपुष्पेपुपाशाङ्कुशचतुर्भुजाम् ।
सर्वदेवमयीमम्वां सर्वसौभाग्यसुन्दरीम्॥

सर्वतीर्थमयीं दिव्यां सर्वकामप्रपूरिणीम् ।
सर्वमन्त्रमयीं नित्यां सर्वागमविशारदाम्॥

सर्वक्षेत्रमयीं देवीं सर्वविद्यामयीं शिवाम् ।
सर्वयागमयीं विद्यां सर्वदेवस्वरूपिणीम्॥

सर्वशास्त्रमयीं नित्यां सवागमनमस्कृताम् ।
सर्वाम्नायमयीं देवीं सर्वायतनसेविताम्॥

सर्वानन्दमयीं ज्ञानगह्वरां संविदं पराम्।
एवं ध्यायेत्परामम्बां सच्चिदानन्दरूपिणीम्॥

इति निजलीलाङ्गीकृतललितवपुषं विचिन्त्य॥

आवाहनम्।

4 ह्स्त्रैं हस्क्ल्रीं ह्स्त्रौः

महापद्मवनान्तस्थे कारणानन्दविग्रहे।
सर्वभूतहिते मातः ऐह्योहि परमेश्वरि॥

एह्येहि देवदेवेशि त्रिपुरे देवपूजिते।
परामृतप्रिये शीघ्रं सान्निध्यं कुरु सिद्धिदे॥

देवेशि भक्तसुलभे सर्वाचरणसंवृते।
यावत्त्वा पूजयिष्यामि तांवत्त्वं सुस्थिरा भव॥

विन्दुपीठगतनिर्विशेषब्रह्मात्मकश्रीमत्कामेश्वराङ्के
श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकामावाहयामि नमः॥

नित्यादि कमणिमान्तं श्रीकामेश्वराङ्कोचवेशनं विना श्रीदेवीसमानाकृति-वेषभूषणायुधशक्तिचक्रं ओधत्रयगुरुमण्डलं च वक्ष्यमाणेषु आवरणेषु निजस्वामिन्यभिमुखोपविष्टमवमृश्य

4 मूलं आवाहिता भव॥

4 ,, संस्थापिता भव॥

4 ,, सन्निधापिता भव॥

4 ,, संनिरुद्धा भव॥

4 ,, संमुखी भव॥

4 ,, अवकुण्ठिता भव॥

इति मन्त्रैरावाहनादिषण्मुद्राः प्रदर्श्य, वन्दनधेनुयोनिमुद्राश्च प्रदर्शयेत्। अथ हृदयादिषडङ्गमुद्राः बाणाद्यायुधमुद्राश्च तत्तन्मन्त्रपूर्वकं प्रदर्शयेत्॥

चतुःषष्ठप्रचारपूजा।

अथ श्रीपरदेवतायाः चतुष्षष्ट्युपचारानाचरेत्। तेष्वशक्तानां भावनया सामान्यार्घ्योदकान् किञ्चदम्वाचरणाम्बुजेऽर्पणबुद्धय पात्रान्तरे निक्षिपेन्। पुष्पाक्षतान्त्रऽर्पयेत्॥

4 श्रीललितायै पाद्यं कल्पयामि नमः

" आभरणावरोपणं कल्पयामि नमः

" सुगन्धितैलोभ्यङ्गं "

" मज्जनशालाप्रवेशनं "

" मज्जनशालामनिपीठोपवेशनम् "

" दिव्यस्नानीयोद्वर्तनं "

" उष्णोदकस्नानं "

" * कनककलशच्युतसकलतीर्थाभिषेकं "

" धौतवस्त्रपरिमार्जनं "

" अरुणदुकूलपरिधानं "

" अरुणकुचोत्तरीयं "

" आलेपमण्टपप्रवेशनं "

" आलेपमण्टपमणिपीठोपवेशनं "

" चन्दनागरुकुङ्कममृगमदकपूरकस्तूरीगोरोचनादि दिव्यगन्ध सर्वाङ्गीणविलेपनं कल्पयामि नमः

4 श्रीललितायै केशभारस्य कालागरुधूपं कल्पयामि नमः

" मल्लिकामालतीजातीचम्पकाशेकशतपत्र-पूगकुहळी-पुन्नागकल्हारमुख्सर्वर्तुकुसुम- मालाः कल्पयामि नमः

" भूषणमण्टप्रवेशनं कल्पयामि नमः

” भूषणमण्टपमणिपीठोपवेशनं ”

” नवमणिमकुटं ”

” चन्द्रशकलं ”

” सीमन्तसिन्दूरं ”

” तिलकरत्नं ”

” कालाञ्जनं ”

” वाळीयुगलं ”

” मणिकुण्डलयुगलं ”

” नासाभरणं ”

” अधरयावकं ”

” प्रथमभूषणं (माङ्गल्यसूत्रं) ”

” कनकचिन्ताकं ”

” पदकं ”

” महापदकं ”

” मुक्तावलिं ”

” एकावलिं ”

” छन्नवीरं ”

” केयूरयुगलचतुष्टयं ”

” वलयावलिं ”

” ऊर्मिकावलिं ”

” काञ्चीदाम ”

” कटिसूत्रं ”

” सौभाग्याभरणं ”

” पादकटकं ”

" रत्ननूपुरं "

" पादा "

" महापदकं "

" मुक्तावलिं "

" छन्नवीरं "

" केयूरयुगलचतुष्टयं "

" वलयावलिं "

" ऊर्मिकावलिं "

" काञ्चीदाम "

" कटिसूत्रं "

" सौभाग्याभरणं "

" पादकटकं "

" रत्ननूपुरं "

" पादाङ्गुलीयकं "

" एककरे पाशं "

" एककरे पाशं "

" अन्यकरेऽङ्कुशं "

" इतरकरे पुण्ड्रेक्षुचापं "

" अपरकरे पुष्पच्काणान् "

" श्रीमन्माणिक्यापादुके "

" स्वसमानवेषाभिरावरणदेवताभिः "

" सह महाचक्राधिरोहणं "

" कामेश्वराङ्कपर्यङ्कोपवेशनं "

" अमृतासवषपकं "

” आचमनीयं ”

” कर्पूरवीटिकां ”

” आनन्दोल्लासविलासहासं ”

अश्र मङ्गळारार्तिकम् - कलधौतादिभाजने कुङ्कुमचन्दना- दिलिखित-स्याष्टषट्चतुर्दळाद्यन्यतमस्ये कमलस्य चन्द्राकारचरुगोलकवत्यां चणकमुद्रजुषि वा कर्णिकायां दळेषु च पयाःशर्करापिण्डीकृतयवगोधूमादि- पिष्टोपादानकान त्रिकोणशिरस्क-डमर्वाकृतीनि चतुरङ्गुलोत्सेधानि धृतपाचितानि नवसप्तपञ्चान्यतमसंख्यानि दीपपात्रणि निधाय तेषु गोघृतं प्रत्येकं कर्षप्रमितं आपूर्य कर्पूरगर्भितां वर्तिकां ह्ल्लेखया प्रज्चाल्य-

4 श्रीं ह्रीं ग्लूं स्लूं म्लूं प्लूं ह्रीं श्रीं- इति नवाक्षर्या रत्नेश्वरीविद्यया अभिमन्त्र्य चक्रमुद्रां प्रदर्श्य मूलेनाभ्यर्च्य-

4 जगद्ध्वनिमन्त्रमातः स्वाहा- इति मन्त्रपूर्वकं गन्धाक्षतादिना घण्टां संपूज्य तां वादयन् जानुचुम्बितभूतलः तत्पात्रं आमस्तकमुद्धृत्य-

4 श्रीललितायै मङ्गळारार्तिकं कल्पयामि नमः।
समस्तचक्रक्रेशीयुते देवि नवात्मिके।
आरार्तिकमिदं तुभ्यं गृहाण मम सिद्धये॥

इति नववारं श्रीदेव्या आचूडं आचरणाब्जं परिभ्राम्य दक्ष्भागे स्थापयेत्।

4 श्रीललितायै छत्रं कल्पयामि नमः

” चामरयुगलं ”

” दर्पणं ”

” तालवृन्तं ”

” गन्धं ”

” पुष्पं ”

” धूपं ”

” दीपं ”

अथ नैवेद्यम्-देव्याः स्वदक्षिणे चतुरश्रमण्डलं निर्माण तत्र आधारोपरि नैवेद्यं निधाय मूलेन प्रोक्ष्य वं इति धेनुमुदया अमृतीकृत्य मूलेन त्रिवारं अभिमन्त्र्य आपोशनं दत्वा-

4 श्रीललितायै नैवेद्यं कल्पयामि नमः॥

अथ श्रीललितायै पानीयं उत्तरापोशनं हस्तप्रक्षालनं गण्डूषं आचमनीयं ताम्बूलं च कल्पयेत्।

4 द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः कों हूस्ख्फ्रें हूसौः ऐं- इति सर्वसंक्षोभिण्यादिनवमुद्राः प्रदर्शयेत्॥

षोडश्युपासकास्तु हूसैं हूस्क्लरीं हूस्रौः इति त्रिखण्डामपि प्रदर्शयेयुः॥

चतुरायतनपूजा।

नैर्ऋते च गणेशानं सूर्यं वायव्य एव च।

ईशाने विष्णुमाग्नेये शिवं चैव प्रपूजयेत्॥

गणपतिपूजा।

बीजापूरगदेक्षुकार्मुकरुजाचक्राब्जपाशोत्पल-

व्रीह्यग्रस्वविषाणरत्नकलशप्रोद्यत्कराम्भोरुहः।

ध्येयो बल्लभया सपद्मकरया श्लिष्टोज्ज्वलद्भूषया

विश्वोत्पत्तिविपत्तिसंस्थितिकरो विघ्नेश इष्टार्थदः॥

श्रीमहागणपतिं ध्यायामि। आवाहयामि। महागणपतये नमः। आसनं समर्पयामि। पाद्यं समर्पयामि। अर्ध्य समर्पयामि। आचमनीयं समर्पयामि। मधुपकं समर्पयामि। स्नानं समर्पयामि। आचमनीयं समर्पयामि। वस्त्रालंकारान् समर्पयामि। यज्ञोपवीतं समर्पयामि। गन्धान् धारयामि।

ओं सुमुखाय	नमः	ओं धूमकेतवे	नमः
एकदन्ताय	"	गणाध्यक्षाय	"
कपिलाय	"	फालचन्द्राय	"

गजकर्णकाय	"	गजाननाय	"
लम्बोदराय	"	वक्रतुण्डाय	"
बिकटाय	"	शूर्पकर्णाय	"
विघ्नराजाय	"	हेरम्बाय	"
गणाधिपाय	"	स्कन्दपूर्वजाय	"

महागणपतये नमः नानाविधपरिमलपत्रपुष्पाणि समर्पयामि॥4 गणपतिमूलं महागणपति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। इति त्रिः संतर्पयेत्॥

महागणपतये नमः। धूपमाघ्रापयामि। दीपं दर्शयामि। नैवेद्यं समर्पयामि। मध्ये मध्ये पानीयं, उत्तरापोशनं, हस्तप्रक्षालनं, पादप्रक्षालनं, आचमनीयं ताम्बूलं च समर्पयामि। कर्पूरनीराजनं दर्शयामि॥

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्। महागणपतये नमः मन्त्रपुष्पं समर्पयामि। प्रदक्षिणनमस्कारान् समर्पयामि। समस्तराजोपचारदेवोपचारान् समर्पयामि। अनया पूजया भगवान्सर्वदेवात्मकः श्रीमहागणपतिः सुप्रीतः सुप्रसन्नो वरदो भवतु॥

सूर्यपूजा।

अध्यारूढं रथेन्द्रे वसुदळसहिते वृत्तषट्कोणमध्ये
भास्वन्तं भास्करन्तं शुभदमसिगदाशङ्खचक्राब्जयुग्मम्।
वेदाकारं त्रिमूर्तिं त्रिविधनयगुणं विश्वरूपं पुराणं
ह्रांह्रींह्रूंकाररूपं सुरनुतमनिशं भावयेद्धृत्सरोजे॥

आदित्यं ध्यायामि। आवाहयामि। आदित्याय नमः आसनं समर्पयामि। पाद्यं समर्पयामि। अर्घ्यं समर्पयामि। आचमनीयं समर्पयामि। मधुपर्कं समर्पयामि। स्नानं समर्पयामि। आचमनीयं समर्पयामि। वस्त्रालंकारान् समर्पयामि। यज्ञोपवीतं समर्पयामि। गन्धान् धारयामि।

ओं मित्राय	नमः	ओं सूर्याय	नमः

रवये	”	भानवे	”
खगाय	”	आदित्याय	”
पूष्णे	”	सवित्रे	”
हिरण्यगर्भाय	”	अर्काय	”
मरीचये	”	भास्कराय	”

आदित्याय नमः नानात्रिधपरिमलपत्रपुष्पाणि समर्पयामि॥

4 आदित्यमूलं आदित्यश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥

इति त्रिः संतर्पयेत्॥

आदित्याय नमः। धूपमाघ्रापयामि। दीपं दर्शयामि। नैवेद्यं समर्पयामि। मध्ये मध्ये पानीयं, उत्तरापोशनं, हस्तप्रक्षालनं पादप्रक्षालनं, आचमनीयं, ताम्बूलं च समर्पयामि। कर्पूरनीराजनं दर्शयामि॥

ॐ भास्कराय विद्महे महाद्युतिकराय धीमहि तन्नो आदित्यः प्रचोदयात्। आदित्याय नमः मन्त्रपुष्पं समर्पयामि। प्रदक्षिणनमस्कारान् समर्पयामि। समस्तराजोपचारदेवोपचारदेवोपचारान् समर्पयामि। अनया पूजया भगवान्सर्वदेवात्मकः आदित्यः सुप्रीतः सुप्रसन्नो वरदो भवतु॥

विष्णुपूजा॥

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाकारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्॥

श्रीमहाविष्णुं ध्यायामि। आवाहयामि। महाविष्णवे नमः आसनं समर्पयामि। पाद्यं समर्पयामि। अर्ध्य समर्पयामि। आचमनीयं समर्पयामि। मधुपर्कं समर्पयामि। स्नानं समर्पयामि। आचमनीयं समर्पयामि। वस्त्रालंकारान समर्पयामि। यज्ञोपवीतं समर्पयामि। गन्धान् धारयामि।

ओं केशवाय नमः ओं त्रिविक्रमाय नमः

नारायणाय	"	वामनाय	"
माधवाय	"	श्रीधराय	"
गोविन्दाय	"	हृषीकेशाय	"
विष्णवे	"	पद्मनाभाय	"
मधुसूदनाय	"	दामोदराय	"

महाविष्णवे नमः नानाविधपरिमलपत्रपुष्पाणि समर्पयामि॥

4 अष्टाक्षरी महाविष्णुश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

इति त्रिः संतर्पयेत्॥

महाविष्णवे नमः। धूपमाघ्रापयामि। दीपं दर्शयामि। नैवेद्यं समर्पयामि। मध्ये मध्ये पानीयं, उत्तरापोशनं, हस्तप्रक्षालनं, पादप्रक्षालनं, आचमनीयं, ताम्बूलं च समर्पयामि। कर्पूरनीराजनं दर्शयामि॥

ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्। महाविष्णवे नमः मन्त्रपुष्पं समर्पयामि। प्रदक्षिणनमस्कारान् समर्पयामि। समस्तराजोपचारदेवोपचारान् समर्पयामि। अनया पूजया भगवान्सर्वदेवात्मकः श्रीमहाविष्णुः सुप्रीतः सुपसन्नो वरदो भवतु।

शिवपूजा।

मूले कल्पद्रुमस्य द्रुतकनकनिभं चारुपद्मासनस्थं
वामाङ्कारूढगौरीनिबिडकुचभराभोगगाढ़ोपगूढम्।
सर्वालंकारकान्तं वरपरशुमृगाभीतिहस्तं त्रिणेत्रं
वन्दे बालेन्दुमौलिंगजवदनगुहाश्लिष्टपार्श्वं महेशम्॥

साम्बपरमेश्वरं ध्यायामि। आवाहयामि। परमेश्वराय नमः आसनं समर्पयामि। पाद्यं समर्पयामि। अर्घ्यं समर्पयामि। आचमनीयं समर्पयामि। मधुपर्कं समर्पयामि। स्नानं समर्पयामि। आचमनीयं समर्पयामि। वस्त्रालंकारान् समर्पयामि। यज्ञोपवीतं समर्पयामि। गन्धान् धारयामि।

ओं भवाय देवाय नमः ओं रुद्राय देवाय नमः

शर्वाय	"	उग्राय	"
ईशानाय	"	भीमाय	"
पशुपतये	"	महते	"

परमेश्वराय नमः। नानाविधपरिमलपत्रपुष्पाणि समर्पयामि।

4 पञ्चाक्षरी साम्बपरमेश्वरश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

इति त्रिः संतर्पयेत्॥

परमेश्वराय नमः। धूपमाघ्रापयामि। दीपं दर्शयामि। नैवेद्यं समर्पयामि। मध्ये मध्ये पानीयं, उत्तरापोशनं, हस्तप्रक्षालनं, पादप्रक्षालनं, आचमनीयं, उत्तरापोशनं, हस्तप्रक्षालनं, पादप्रक्षालनं, आचमनीयं, ताम्बूलं च समर्पयामि। कर्पूरनीराजनं दर्शयामि॥

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्। परमेश्वराय नमः मन्त्रपुष्पं समर्पयामि। प्रदक्षिणनमस्कारान् समर्पयामि। समस्तराजोपचारदेवोपचारान् समर्पयामि। अनया पूजया भगवान्सर्वदेवात्मकः साम्बपरमेश्वरः सुप्रीतः सुप्रसन्नो वरदो भवतु॥

अभीष्टसिद्धिं में देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं चतुरायतनार्चनम्॥

इति सामान्यार्घ्योदकेन देव्या वामहस्ते पूजां समर्पयेत्॥

लयाङ्गपूजा।

मूलं श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरी (पराभट्टारिका) श्रीपादुकां यामि तर्पयामि नमः इति बिन्दौ देवीं त्रिः संतर्पयेत्।

षडङ्गार्चनम्।

देव्यङ्गे (बिन्दौ) अग्नीशासुरवायुकोणेषु मध्ये दिक्षु च-

4 ऐं क-5 हृदयाय नमः। हृदयाशक्तिश्रीपादुकां पू0त0 नमः

4 क्लीं ह-6 शिरसे स्वाहा। शिरः शक्ति श्रीपादुकां "

4 सौः स-4 शिखायै वषट्। शिखाशक्तिश्रीपादुकां ”

4 ऐं क-5 कवचशक्तिश्रीपादुकां पू0त0नमः

4 क्लीं ह-6 नेत्रत्रयाय चौषट। नेत्रशक्तिश्रीपादुकां ”

4 सौः स-4 अस्त्राय फट्। अस्त्रशक्ति श्रीपदुकां ”

पोडश्युपासकानां तु पोडशीपट्कूटेन षडङ्गपूजा।

नित्यादेवीयजनम्।

4 अः पञ्चदशी अः श्रीललितामहानित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। इति विन्दौ महानित्यं त्रिर्यजेत्॥अथ तत्तत्तिथिनित्यामन्त्रेण तत्तत्तिथिनित्यां विन्दौ त्रिर्यजेत्।

ततः पूर्ववत् महानित्यां त्रिर्यजेत्॥
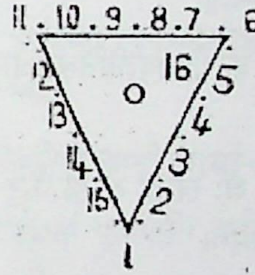
ततो मध्यत्रिकोणस्य दक्षिणरेखायां आग्नेयादीशानान्तं ऊं क्रमेण अं आं इं ईं उं इति, पूवरेखायां आग्नेयादीशानान्तं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं इति, उत्तररेखायां ईशानादिवारुण्यन्तं एं ऐं ओं औं अं इति, पञ्चपञ्चस्वरान् विभाव्य तेषु वामावर्तेन कामेश्वर्यादिनित्या यजेत्। बन्दौ षोडशं स्वरं (अः) विचिन्त्य महानित्यां यजेत्। यथा-

4 अं ऐं सकलह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे सौः अं कामेश्वरीनित्याश्रीपादुकं पूजयामि तर्पयामि नमः॥

4 आं ऐं भगभुगे भगिनि भगोदरि भगमाले भगवाहे भगगुह्ये भगयोनि भगनिपातिनि सर्वभगवशंकरि भगरूपे नित्यक्लिन्ने भगस्वरूपे सर्वाणि

भगानि मे ह्यानय वरदे रेते सुरेते भगक्लिन्ने क्लिन्नद्रवे क्लेदय द्रावय अमोघे भगविच्चे क्षुभ क्षोभय सर्वसत्वान् भगेश्वरि ऐं ब्लूं हें क्लिन्ने सर्वाणि भगानि में वशमानय स्त्रीं हर ब्लें ह्रीं आं भगमालिनीनित्या-श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥

4 इं ओं हीं नित्याक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा इं नित्यक्लिन्नानित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥

4 ईं ओं क्रों भ्रों क्रौं झौं छ्रौं ज्रौं स्वाहा ईं भेरुण्डानित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥

4 उं ओं ह्रीं वाह्निवासिन्यै नमः उं वह्निवासिनीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥

4 ऊं ह्रीं क्लिन्ने ऐं क्रों नित्यमददवे ह्रीं ऊं महाबज्रेश्वरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥

4 ऋं ह्रीं शिवदूत्यै नमः ऋं शिवदूतीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः

4 ॠं ओं हीं हुं खे च छे क्षः स्त्रीं हुं क्षें हीं फट् ॠं त्वरितानित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥

4 ऌं ऐं क्लीं ऌं कुलसुन्दरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामिं नमः॥

4 ॡं ह्स्क्ल्र्डैं ह्स्क्ल्रडीं ह्स्क्ल्र्डौः ॡं नित्यानित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥

4 एं हीं फ्रें स्रूं क्रों आं क्लीं ऐं ब्लूं नित्यमदद्रवे हुं फ्रें हीं एं नीलपताकानित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥

4 ऐं भ्म्र्यूं ऐं विजयानित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥

4 ओं स्वौं ओं सर्वमङ्गळानित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥

4 औं ओं नमो भगवति ज्वालामालिनि देवदेवि सर्वभूतसंहारकारिके जातवेदसि ज्वलन्ति ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ह्रां ह्रीं ह्रूं र र र र

र र हुं फट। स्वाहा औं ज्वालामालिनीतिन्याश्रीपादुका पूजयामि तर्पयामि नमः

4 अं च्कौं अं चित्रानित्याश्रीपादुकां जूजयामि तर्पयामि नमः॥

4 अः पञ्चदशी अः ललितामहानित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥

एवं शुक्लपक्षे। कृष्णपक्षे तु चित्राद्याः कामेश्वर्यन्ताः स्वस्वमन्त्रेण तथैव संपूज्यबिन्दौ महानित्यां यजेत्॥

गुरुमण्डलार्चनम्।

4 परौघेभ्यो नमः। इति विन्दुत्रिकोणयोः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा विन्दौ महापादुकां यजेत्॥यथा-

4 ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ऐं ग्लौं ह्स्ख्फ्रें हसक्षमलवरयूं ह्सौः सहक्षमलवरयीं स्हौः श्रीविद्यानन्दनाथात्मकचार्यनन्दनाथश्रीमहापादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः॥

त्रिकोणे वामरेखायां-

4 उड्डीशानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः

4 प्रकाशानन्दनाथ ,,

4 विमर्शानन्दनाथ ,,

4 आनन्दानन्दनाथ ,,

पूर्वरेखायां-

4 षष्ठीशानन्दनाथ ,,

4 ज्ञानानन्दनाथ ,,

4 सत्यानन्दनाथ ,,

4 पूर्णानन्दनाथ ,,

दक्षरेखायां-

4 मित्रेशानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः

4 स्वभावानन्दनाथ ''

4 प्रतिभानन्दनाथ ''

4 सुभगानन्दनाथ ''

ततो देव्याः पश्चात् मूलत्रिकोणपूर्वरेखायाः तदव्यवहितप्रागग्रत्रिकोण- पश्चिमरेखायाश्चान्तरे विमलाजयिन्योर्मध्ये अरुणावाग्देवतासन्निधौ दक्षिणोत्तरायतं रेखात्रयं विभाव्य दक्षिणसंस्थाक्रमेण दिव्यसिद्धमानवायमोघत्रयं मुनिवेदवसुसङ्ख्यं समर्चयेत्। यथा-
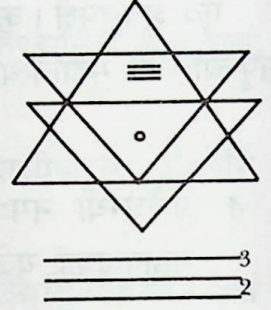
4 दिव्यौघसिद्धौघमानवौघेभ्यो नमः-इति पुष्पाञ्जलिः। दिव्यौघः। प्रथमरेखायां-

4 परप्रकाशनान्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः

4 परशिवानन्दनाथ ''

4 पराशक्त्यम्बा ''

4 कौलेश्वरानन्दनाथ ''

4 शुक्लदेव्यम्बा ''

4 कुलेश्वरानन्दनाथ ''

4 कामेश्वर्यम्बा ''

सिद्धौघः। द्वितीयरेखायां-

4 भोगानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः

4 क्लिन्नानन्दनाथ ''

4 समयानन्दनाथ ''

4 सहजानन्दनाथ ”

मानावैघः। तृतीयरेखायां-

4 गगनानन्दनाथ ”

4 विश्वानन्दनाथ ”

4 विमलानन्दनाथ ”

4 मदनानन्दनाथ ”

4 भुवनानन्दनाथ ”

4 लीलाम्बा ”

4 स्वात्मानन्दनाथ ”

4 प्रियानन्दनाथ ”

ततः प्रथमरेखायां परमोष्ठिगुरुमन्त्रेण परमष्ठिगुरं, द्वितीय रेखायां परमगुरुमन्त्रेण परमगुरुं, तृतीयरेखायां स्वगुरुमन्त्रेण स्वगुरु च यजेत॥

॥षष्ठः खण्डः॥

आवरणपूजा।

4 संविन्मये परे देवि परामृतरुचिप्रिये।
अनुज्ञां त्रिपुरे देहि परिवारार्चनाय मे॥

प्रथमावरणम्।

4 अं आं सौः त्रैलोक्यमोहनचक्राय नमः। इति पुष्पाञ्जलिं दद्यात॥
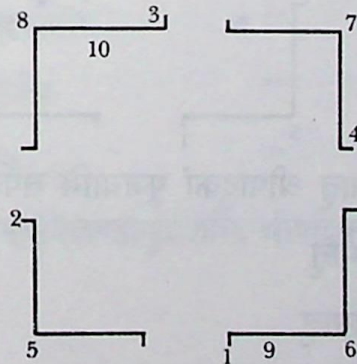
क्रमेण शुक्लारुणपीतवर्णरेखात्रयस्य लकारप्रकृतिकपृथ्विव्यात्मकस्य चतुरश्रस्य प्रवेशरीत्या श्रमरेखायां पश्चिमादिद्वार- चतुष्टयदक्षिणभागेषु वाय्वादिकोणेषु च पश्चिमनैर्ऋतयोः पूर्वेशानयोश्च मध्ये क्रमेण-

4 अं अणिमासिद्धि श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः

4 लं लघिमासिद्धि ,,

4 मं महिमासिद्धि ,,

4 ईं ईशित्वसिद्धि ,,

4 वं वशित्वसिद्धि ,,

4 पं प्राकाम्यसिद्धि ,,

4 भुं भुक्तिसिद्धि ,,

4 इं इच्छासिद्धि ,,

4 पं प्राप्तिसिद्धि ,,

4 सं सर्वकामसिद्धि ,,

इति स्वस्य तत्तदाभिमुख्यं भावयन् पूजयेत्। एवमुत्तर-त्रपि॥

अथ चतुर श्रमध्यरेखायां प्रागुक्तद्वारवामभागेषु कोणेषु च क्रमेण-
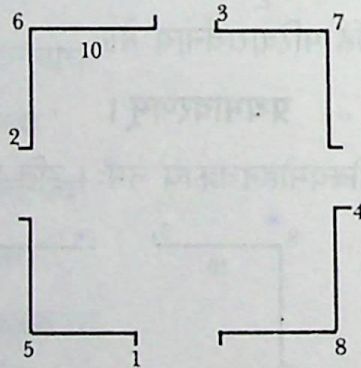
4 आं ब्राह्मीमातृ श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः

4 ईं माहेश्वरीमातृ ,,

4 ऊं कौमारीमातृ ,,

4 ॠं वैष्णवीमातृ ,,

4 लृं वाराहीमातृ ,,

4 ऐं माहेन्द्रीमातृ ,,

4 औं चामुण्डामातृ ,,

4 अः महालक्ष्मीमातृ ,,

ततः चतुरश्रान्त्यरेखायां प्रथमरेखोक्तक्रमेण-

4 द्रां सर्वसंक्षोभिणीमुद्राशक्ति श्रीपादुकां पू0 त0 नमः

4 द्रीं सर्वविद्राविणीमुद्राशक्ति ,,

4 क्लीं सर्वाकर्षिणीमुद्राशक्ति ,,

4 ब्लूं सर्ववशङ्करीमुद्राशक्ति ,,

4 सः सर्वोन्मादिनीमुद्राशक्ति ,,

4 क्रों सर्वमहाङ्कुशामुद्राशक्ति ,,

4 ह्स्ख्फ्रें सर्वखेचरीमुद्राशक्ति ,,

4 ह्सौः सर्वबीजमुद्राशक्ति ,,

4 ऐं सर्वयोनिमुद्राशक्ति ,,

4 ह्स्रैं ह्स्क्ल्रीं ह्स्रौः सर्वत्रिखण्डामुद्राशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 एताः प्रकटयोगिन्यः त्रैलोक्यमोहने चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः संपूजिताः संतर्पिताः संतुष्टाः सन्तु नमः। (पुष्पाञ्जलिः) अणिमासिद्धेः पुरनः-

4 अं आं सौः त्रिपुराचक्रेश्वरी श्रीपादुकां पू0त0 नमः

4 अं *अणिमासिद्धि "

4 द्रां सर्वसंक्षोभिणीमुद्राशक्ति "

4 द्रां-इति सर्वसंक्षोभिणीमुद्रां प्रदर्श्य-

4 मूलं श्रीललितामहात्रिपुरसुनन्दरीपराभट्टारिकाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। इति त्रिवारं संतर्प्य-

धूपं दीपं नैवेद्यं ताम्बूलं नीराजनं च समर्प्य-

4 अभीष्टसिद्धिं में देहि शरणागतवत्सले।
भक्तया समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्॥

इति सामान्यार्घ्योदकेन देव्या वामहृस्ते पूजां समर्प्य-

4 प्रकटयोगिनीमयूखायै प्रथमावरणदेवनासहितायै श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकायै नमः।

इति योनिमुद्रया प्रणमेत्॥

द्वितीयावरणम्।

4 ऐं क्लीं सौः सर्वाशापरिपूरकचक्राय नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

श्वेतवर्णे सकारप्रकृतिकषोडश- कलात्मके चन्द्रस्वरूपे स्रवदमृतरसे षोडशदलकमले देव्यग्रदलमारभ्य वामावर्तेन-

4 अं कामाकर्षिणी नित्याकलादेवी श्रीपादुकां पू0 त0 नमः
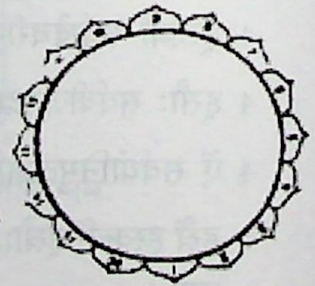
4 आं बुद्ध्याकर्षिणी नित्याकलादेवी ”

4 इं अहङ्काराकर्षिनी नित्याकलादेवी ”

4 ईं शब्दाकर्षिणी नित्याकलादेवी ”

4 उं स्पर्शाकर्षिणी नित्याकलादेवी ”

4 ऊं रूपाकर्षिणी नित्याकलादेवी ”

4 ऋं रसाकर्षिणी नित्याकलादेवी ”

4 ॠं गन्धाकर्षिणी नित्याकलादेवी ”

4 ऌं चित्ताकर्षिणी नित्याकलादेवी ”

4 ॡं धैर्याकर्षिणी नित्याकलादेवी ”

4 एं स्मृत्याकर्षिणी नित्यकलादेवी ”

4 ऐं नामाकर्षिणी नित्याकलादेवी ”

4 ओं बीजाकर्षिणी नित्याकलादेवी ”

4 औं आत्माकर्षिणी नित्याकलादेवी श्रीपादुकां पू0 त0 नमः

4 अं अमृताकर्षिणी नित्याकलादेवी ”

4 अः शरीराकर्षिणी नित्यकलादेवी ”

4 एताः गुप्तयोगिन्यः सर्वाशापरिपूरके चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः संपूजिताः संतर्पिताः संतुष्टाः सन्तु नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

कामाकर्षिण्याः पुरतः-

4 ऐं क्लीं सौः त्रिपुरेशीचक्रेश्वरी श्रीपादुकां पू0 त0 नमः

4 लं लघिमासिद्धि ”

4 द्रीं सर्वाविद्राविणीमुद्राशक्ति ”

4 द्रीं- इति सर्वविद्राविणीमुद्रां प्रदर्श्य-

मूलेन देवीं त्रिः संतर्प्य-

धूपं दीपं नैवेद्यं ताम्बूलं नीराजनं च समर्प्य-

4 अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमाचरणार्चनम्॥

इति सामान्यार्घ्योदकेन देव्या वामहस्ते पूजां समर्प्य-

4 गुप्तयोगिनीमयूखायै द्वितीयावरणदेवतासहितायै श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकायै नमः।

इति योनिमुद्रया प्रणमेत्॥

तृतीयावरणम्।

4 ह्रीं क्लीं सौः सर्वसंक्षोभणचक्राय नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

हकारप्रकृतिक - अष्टमूर्त्यात्मकशिवाभिन्ने जपाकुसुममित्रे अष्टपत्रे श्रीदेव्याः पृष्ठदलमारभ्य पूर्वादिदिक्षु आग्नेयादिविदिक्षु च क्रमेण-
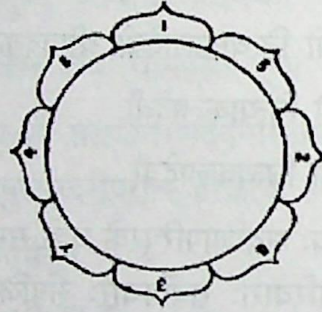
4 कं खं गं घं ङं अनङ्गकुसुमादेवी श्रीपादुकां पू0त0 नमः

4 चं छं जं झं ञं अनङ्गमेखलादेवी ”

4 टं ठं डं ढं णं अनङ्गमदनादेवी ”

4 तं थं दं धं नं अनङ्गमदनातुरादेवी ”

4 पं फं बं भं मं अनङ्गरेखादेवी ”

4 यं रं लं वं अनङ्गवेगिनीदेवी ”

4 शं षं सं हं अनङ्गाङ्कुशादेवी ”

4 ळं क्षं अनङ्गमालिनीदेवी ”

4 एताः गुप्तयोगिन्यः सर्वसंक्षोभणे चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः संपूजिताः संतर्पिताः संतुष्टाः सन्तु नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

अनङ्गकुसुमायाः पुरतः-

4 ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरीचक्रेश्वरी

श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः

4 मं महिमासिद्धि ”

4 क्लीं सर्वाकर्षिणीमुद्राशक्ति”

4 क्लीं- इति सर्वाकर्षिणीमुद्रां प्रदर्श्य-

मूलेन देवीं त्रिः संतर्प्य-

धूपं दीपं नैवेद्यं ताम्बूलं नीराजनं च समर्प्य-

4 अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तृतीयाचरणार्चनम्॥

इति पूजां समर्प्य-

4 गुप्ततरयोगिनीमयूखायै तृतीयावरणदेवतासहितायै श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकायै नमः।

इति योनिमुद्रया प्रणमेत्॥

तुरीयावरणम्।

4 हैं ह्क्लीं ह्सौः र्सवसौभाग्यदायकचक्राय नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

ईकारप्रकृतिकचतुर्दशभुव नात्मकमहामायारूपे दाडिमीप्रसूनसहोदरे चतुर्दशारे देव्यग्रकोंणमारभ्य वामावर्तेन-
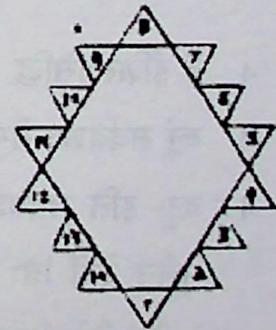
4 कं सर्वसंक्षोभिणीशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः

4 खं सर्वाविद्राविणीशक्ति ”

4 गं सर्वाकर्षिणीशक्ति ”

4 घं सर्वाह्लादनीशक्ति ”

4 ङं सर्वसंमोहिनीशक्ति ”

4 चं सर्वस्तम्भिनीशक्ति ”

4 छं सर्वजृम्भिणीशक्ति ”

4 जं सर्ववशंकरीशक्ति ”

4 झं सर्वरञ्जिनीशक्ति ”

4 ञं सर्वोन्मादिनीशक्ति ”

4 टं सर्वार्थसाधिनीशक्ति ”

4 ठं सर्वसंपत्तिपूरणीशक्ति ”

4 डं सर्वमन्त्रमयीशक्ति ”

4 ढं सर्वद्वन्द्वक्षयंकरीशक्ति ”

4 एतः संप्रदाययोगिन्यः सर्वसौभाग्यदायके चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः संपूजिताः संतर्पिताः संतुष्टाः सन्तु नमः। (पुष्पाञ्जलिः)। सर्वसंक्षोभिण्याः पुरतः-

4 हैं ह्क्लीं ह्सौः त्रिपुरवासिनीचक्रेश्वरी

श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः

4 ईं ईशित्वसिद्धि ”

4 ब्लूं सर्ववशंकरीमुद्राशक्ति ”

4 ब्लूं- इति सर्ववशंकरीमुद्रां प्रदर्श्य-

मूलेन देवीं त्रिः संतर्प्य-

धूपं दीपं नैवेद्यं ताम्बूलं नीराजनं च समर्प्य-

4 अभीष्टसिद्धिं में देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तुरीयावरणार्चनम्॥

इति पूजां समर्प्य-

4 संप्रदाययोगिनी मयूखायै तुरीयावरणदेवतासहितायै
श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकायै नमः।

इति योनिमुद्रया प्रणमेत्॥

पञ्चमावरणम्।

4 ह्सैं ह्स्क्लीं ह्स्सौः सर्वार्थसाधकचक्राय नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

एकारप्रकृतिकदशावतारात्मकविष्णुस्वरूपे प्रभापराभूतसिन्दूरे बहिर्दशारे देव्यग्रकोणमारभ्य वामावर्तेन-
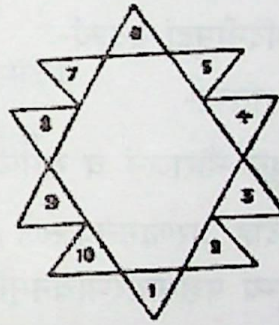
4 णं सर्वसिद्धिप्रदादेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
4 तं सर्वसंपत्प्रदादेवी ,,
4 थं सर्वप्रियंकरीदेवी ,,
4 दं सर्वमङ्गळकारिणीदेवी ,,
4 धं सर्वकामप्रदादेवी ,,
4 नं सर्वदुःखविमोचिनीदेवी ,,
4 पं सर्वमृत्युप्रशमनीदेवी ,,
4 फं सर्वविघ्ननिवारिणीदेवी ,,

4 बं सर्वाङ्गसुन्दरीदेवी "

4 भं सर्वसौभाग्यदायिनीदेवी "

4 एताः कुलोत्तीर्णयोगिन्यः सर्वार्थसाधके चक्रे समुद्राः समिद्धय सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः संपूजिताः संतर्पिताः संतुष्टाः सन्तु नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

सर्वसिद्धिप्रदायाः पुरतः-

4 ह्सैं ह्स्क्लीं ह्स्सौः त्रिपुराश्रीचक्रेश्वरी

श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः

4 वं वशित्वसिद्धि "

4 सः सर्वोन्मादिनीमुद्राशक्ति "

4 सः- इति सर्वोन्मादिनीमुद्रां प्रदर्श्य-

मूलेन देवीं त्रिः संतर्प्य-

धूपं दीपं नैवेद्यं ताम्बूलं नीराजनं च समर्प्य-

4 अभीष्टसिद्धिं में देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं पञ्चमावरणार्चनम्॥

इति पूजां समर्प्य-

4 कुलोत्तीर्णयोगिनीमयूखायै पञ्चमावरणदेवतासहितायै
श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकायै नमः।

इति योनिमुद्रया प्रणमेत्॥

षष्ठावरणम्।

4 ह्रीं क्लीं ब्लें सर्वरक्षाकरचक्राय नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

रेफप्रकृतिक-दशकलात्मकवैश्वानराभिन्ने जपासुमनःसहचरे अन्तर्दशारे देव्यग्रकोणमारभ्य वामावर्तेन-
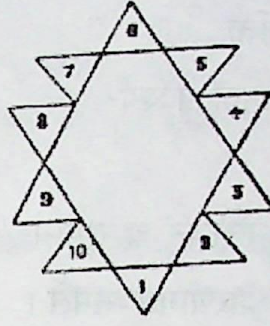
4 मं सर्वज्ञादेवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 यं सर्वशक्तिदेवी ”

4 रं सर्वैश्वर्यप्रदादेवी ”

4 लं सर्वज्ञानमयीदेवी ”

4 वं सर्वव्याधिविनाशिनीदेवी ”

4 शं सर्वाधारस्वरूपादेवी ”

4 षं सर्वपापहरादेवी ”

4 सं सर्वानन्दमयीदेवी ”

4 हं सर्वरक्षास्वरूपिणीदेवी ”

4 क्षं सर्वेप्सितफलप्रदादेवी ”

4 एताः निगर्भयोगिन्यः सर्वरक्षाकरे चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः संपूजिताः संतर्पिताः संतुष्टाः सन्तु नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

सर्वज्ञायाः पुरतः

4 ह्रीं क्लीं ब्लें त्रिपुरमालिनीचक्रेश्वरी

श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः

4 पं प्राकाम्यसिद्धि ”

4 क्रों सर्वमहाङ्कुशामुद्राशक्ति "

4 क्रों- इति सर्वमहाङ्कुशामुद्रां प्रदर्श्य-

मूलेन देवीं त्रिः संतर्प्य-

धूपं दीपं नैवेद्यं ताम्बूलं नीराजनं च समर्प्य-

4 अभीष्टसिद्धिं में देहि शरणागतवसमले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं पष्ठाख्यावरणार्चनम्॥

इति पूजां समर्प्य-

4 निगर्भयोगिनीमयूखायै पष्ठावरणदेवतासहितायै

4 यां रां लां वां सां द्रां द्रीं क्लीं ब्लं सः सर्वजम्भनेभ्यः कामेश्वरीकामेश्वर-वाणेभ्यो नमः। वाणशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 थं धं सर्वसंमोहनाभ्यां कामेश्वरीकामेश्वरधनुभ्यौ नमः।
धनु'शक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 ह्रीं आं सर्ववशीकरणाभ्यां कामेश्वरीकामेश्वरपाशाभ्यां नमः।
पाशशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 क्रों क्रों सर्वस्तम्भनाभ्यां कामेश्वरीकामेश्वराङ्कुशाभ्यां नमः।
अङ्कुशशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

इत्यायुधार्चनं विदध्यात्। ततः।-

4 ह्स्रैं ह्स्क्ल्रीं ह्स्रौः सर्वसिद्धिप्रदचक्राय नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

नादप्रकृतिकगुणत्रयप्रधानत्रिशक्तिरूपरेखात्रयात्मके वन्धूकपुष्पवन्धुकिरणे त्रिकोणे अप्रदक्षवामकोणेषु बिन्दौ च क्रमेण-

4 ऐं क-5 अग्निचक्रे कामगिरिपीठे मित्रेशनाथ नवयोनिचक्रात्मक-आत्मतत्व-सृष्टिकृत्य-जाग्रद्दशाधिष्ठायक-इच्छाशक्ति-वाग्भवात्मक-वागीश्वरीस्वरूप * रुद्रात्मशक्ति-महाकामेश्वरी-श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 क्लीं ह-6 सूर्यचक्रे जालन्धरपीठे षष्ठीशनाथ-दशारद्वयचतुर्दशारचक्रात्मक-विद्यातत्व-स्थितिकृत्य-स्वप्रदशाधिष्ठायक-ज्ञानशक्ति-कामराजात्मक-कामकलास्वरूप-विष्ण्वात्मकशक्ति-महावज्रेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 सौः स-4 सोमचक्रे पूर्णगिरिपीठे उड्डीशनाथ - अष्टदळ-षोडशदळ-चतुरश्रचक्रात्मक - शिवतत्व-संहारकृत्य- सुषुप्ति- दशाधिष्ठायक-क्रियाशक्ति - शक्तिवीजात्मक-परापरशक्तिस्वरूप ब्रह्मात्मशक्ति-महाभगमालिनी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 ऐं क-5 क्लीं ह-6 सौः स-4 परब्रह्मचक्रे महोड्याणपीठे चर्यानन्दनाथ-समस्तचक्रात्मक - सपरिवारपरमतत्वसष्ट-स्थिति- संहारकृत्य-तुरीपदशधिष्ठायक- इच्छाज्ञानक्रिया-शान्ताशक्ति- वाग्भवकामराज-शक्तिवीजात्मक- परमशक्तिस्वरूप - परब्रक्तात्मशक्ति - श्रीमहात्रिपुर-सुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 एताः अतिरहस्ययोगिन्यः सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः संपूजिताः संतर्पिताः संतुष्टाः सन्तु नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

महाकामेश्वर्याः पुरतः-

4 ह्स्त्रैं ह्स्क्ल्रीं ह्स्त्रौः त्रिपुराम्बाचक्रेश्वरी

श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 इं इच्छासिद्धि "

4 ह्सौः सर्वबीजमुद्राशक्ति "

4 ह्सौः - इति सव्रबीजमुद्रां प्रदर्श्य-

मूलेन देवीं त्रिः संतर्प्य-

धूपं दीपं नैवेद्यं ताम्बूलं नीराजनं च समर्प्य-

4 अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।

भक्तया समर्पये तुभ्यमष्टमावरणार्चनम्॥

इति पूजां समर्प्य-

4 अतिरहस्ययोगिनीमयूखायै अष्टमावरणदेवतासहितायै श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकायै नमः।

इति योनिमुद्रया प्रणमेत्॥

सप्तमावरणम्।

4 ह्रीं श्रीं सौः सर्वरोगहरचक्राय नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

ककारप्रकृतिक-अष्टमूर्त्यात्मक-कामेश्वरस्वरूपे पद्मरागरुचिरे अष्टारे देव्यग्रकोणमारभ्य वामावर्तेन-
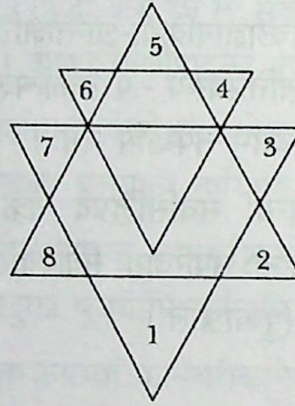
4 अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः ब्लूं वशिनी वाग्देवता श्रीपादुकां पू0त0 नमः

4 कं खं गं घं ङं क्ल्हीं कामेश्वरी वाग्देवता "

4 चं छं जं झं ञं न्व्लीं मोदिनी वाग्देवता "

4 टं ठं डं ढं णं य्लूं विमला वाग्देवता "

4 तं थं दं धं नं ज्म्रीं अरुणा वाग्देवता "

4 पं फं बं भं मं ह्स्ल्व्यूं जयिनी वाग्देवता "

4 यं रं लं वं झ्म्र्यूं सर्वेश्वरी वाग्देवता "

4 शं षं सं हं ळं क्षं क्ष्म्रीं कौलिनी वाग्देवता ”

4 एताः रहस्योगिन्यः सर्वरोगहरे चक्रे समुद्राः ससिद्धयाः सायुधाः सशक्तयः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः संपूजिताः संतर्पिताः संतुष्टाः सन्तु नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

वशिन्याः पुरतः-

4 ह्रीं श्रीं सौः त्रिपुरासिद्धाचक्रेश्वरी

श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः

4 भुं भुक्तिसिद्धि ”

4 ह्स्ख्फ्रें सर्वखेचरीमुद्राशक्ति ”

4 ह्स्ख्फ्रें सर्वखेचरीमुद्राशक्ति ”

4 ह्स्ख्फ्रें - इति सर्वखेचरीमुद्रां प्रदर्श्य-

मूलेन देवीं त्रिः संतर्प्य-

धूपं दीपं नैवेद्यं ताम्वूलं नीराजनं चमर्प्य-

4 अभीष्टसिद्धिं में देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं सप्तमावरणार्चनम्॥

इति पूजां समर्प्य-

4 रहस्ययोगिनीमयूखायै सप्तमावरणदेवतासहितायै
श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकायै नमः।

इति योनिमुद्रया प्रणमेत्॥

अष्टमावरणम् ।

4 मध्यत्र्यश्रस्य बहिः पश्चिमादिदिक्षु प्रादक्षिण्येन-
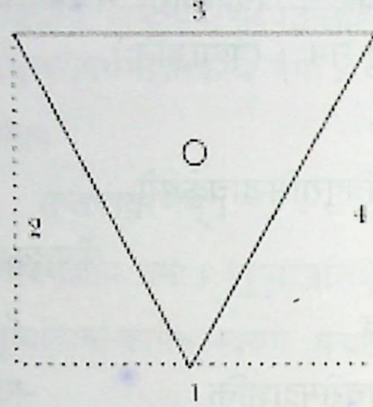
4 यां रां लां वां सां द्रां द्रीं क्लीं ब्लं सः सर्वजम्भनेभ्यः कामेश्वरीकामेश्वरबाणेयो नमः । बाणशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

4 थं धं सर्वसंमोहनाभ्यां कामेश्वरीकामेश्वरधनुभ्यां नमः । धनुःशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

4 ह्रीं आं सर्ववशीकरणाभ्यां कामेश्वरीकामेश्वरपाशाभ्यां नमः पाशशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

4 क्रों क्रों सर्वस्तम्भनाभ्यां कामेश्वरीकामेश्वराङ्कुशाभ्यां नमः । अङ्कुशशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

इत्यायुधार्चनं विदध्यात् । ततः-

4 ह्स्रैं ह्स्क्ल्रीं ह्स्रौः सर्वसिद्धिप्रदचक्राय नमः । (पुष्पाञ्जलिः)

नादप्रकृतिकगुणत्रयप्रधानत्रिशक्तिरूपरेखात्रयात्मके वन्धूकपुष्पवन्धुकिरणे त्रिकोणे अग्रदक्षवामकोणेषु बिन्दौ च क्रमेण-

4 ऐं क-5 अग्निचक्रे कामगिरिपीठे मित्रेशनाथ-नवयोनिचक्रात्मक-आत्मतत्व-सृष्टिकृत्य-जाग्रद्दशाधिष्ठायक-इच्छाशक्ति-

वाग्भवात्मक-वागीश्वरीस्वरूप रुद्रात्मशक्ति-महाकामेश्वरी-श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 क्लीं ह-6 सूर्यचक्रे जालन्धरपीठे षष्ठीशनाथ-दशारद्वयचतुर्दशारचक्रात्मक-विद्यातत्व-स्थितिकृत्य-स्वप्रदशाधिष्ठायक-ज्ञानशक्ति-कामराजात्मक-कामकलास्वरूप-विष्ण्वात्मशक्ति-महावज्रेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 सौः स-4 सोमचक्रे पूर्णगिरिपीठे उड्डीशनाथ-अष्टळ-षोडशदळचतुरश्रचक्रात्मक-शिवतत्व-संहारकृत्य-सुषुप्ति-दशाधिष्ठायक-क्रियाशक्ति-शक्तिवीजात्मक-परापरशक्तिस्वरूप ब्रह्मात्मशक्ति-महाभगमालिनी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 ऐं क-5 क्लीं ह-6 सौः स-4 परब्रह्मचक्रे महोड्याणपीठे चर्यानन्दनाथ - समस्तक्रात्मक - सपरिवारपरमतत्व-सृष्टिस्थितिसंहारकृत्य-तुरीयदशाधिष्ठायक-इच्छाज्ञान क्रिया-शान्तशक्ति - वाग्भवकामराज-शक्तिवीजात्मक - परमशक्तिस्वरूप - परब्रह्मात्मशक्ति - श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 एताः अतिरहस्ययोगिन्यः सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे मुद्राः ससिद्धयः सायुधाः संतर्पिताः संतुष्टाः सन्तु नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

महाकामेश्वर्याः पुरतः-

4 ह्स्रैं ह्स्क्ल्रीं ह्स्रौः त्रिपुराम्वाचक्रेश्वरी

श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 इं इच्छासिद्धि ”

4 ह्सौः सर्ववीजमुद्राशक्ति ”

4 ह्सौः- इति सर्ववीजमुद्रां प्रदर्श्य-

मूलेन देवीं त्रिः संतर्प्य-

धूपं दीपं नैवेद्यं ताम्बूलं नीराजनं च समर्प्य-

4 अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यमष्टमावरणार्चनम्॥

इति पूजां समर्प्य-

4 अतिरहस्ययोगिनीमयूखायै अष्टमावरणदेवतासहितायै
श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकायै नमः।

इति योनिमुद्रया प्रणमेत्॥

नवमावरणाम्।

4 क-15 सर्वानन्दमयचक्राय नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

विन्द्वभिन्नपरब्रह्मात्मके बिन्दुचक्रे-

4 मूलं श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकाश्रीपादकां पूजयामि
तर्पयामि नमः। इति त्रिः संतर्प्य।
एषा परापरातिरहस्ययोगिनी सर्वानन्दमये चक्रे समुद्र ससिद्धिः
सायुधा सशक्तिः सवाहना सपरिवारा सर्वोपचारै' संपूजिता
संतर्पिता संतुष्टास्तु नमः। (पुष्पाञ्जलिः)

महात्रिपुरसुन्दर्या' पुरतः-

4 पञ्चदशी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीचक्रेश्वरी

श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः

4 पं प्राप्तिसिद्धि "

4 ऐं सव्रयोनिमुद्राशक्ति "

4 ऐं- इति सर्वयोनिमुद्रां प्रदर्श्य*

* षोडश्युपासकानामेव-

4 हसकल हसकइल सकलह्रीं तुरीयाम्बा श्रीपादुकां पूजयामि
तर्पयामि नमः। इति त्रि संतर्प्य-

4 सर्वानन्दमये चक्रे महोड्याणपीठे चर्यानन्दनाथात्मकतुरी-यातीतद शाधिष्ठायक-शान्त्यतीतकलात्मक-प्रकाशविमर्श-सामरस्यात्मक परब्रह्मस्वरूपिणी परामृतशक्तिः सर्वमन्त्रेश्वरी

4 मूलेन देवीं त्रिः संतर्प्य

धूपं दीपं नैवेद्यं ताम्बूलं नीराजनं च समर्प्य-

4 अभीष्टसिद्धिं में देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं नवमावरणार्चनम्।

इति पूजां समर्प्य-

4 परापरातिरहस्ययोगिनीमयूखायै नवमावरणदेवतासहितायै श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकायै नमः।

इति योनिमुद्रया प्रणमेन्।

सर्वपीठेश्वरी सर्वयोगेश्वरी सर्ववागीश्वरी सर्वसिद्धेश्वरी सववीरेश्वरी सकलजगदुत्पत्तिमातृका सचक्रा सदेवता सासना सायुधा सशक्तिः सवाहना सपरिवारा सचक्रेशिका परया अपरया परापरया सपर्यया सर्वोपचारैः संपूजिता संतर्पिता संतुष्टास्तु नमः।

इति समष्टयञ्जलिं विधाय।

4 सं सर्वकामसिद्धि श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 ह्स्रैं ह्स्क्ल्रीं ह्स्रौः सर्वत्रिखण्डमुद्राशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 ह्स्रै हस्क्ल्रीं ह्स्रौः सर्वत्रिखण्डमुद्रां प्रदर्श्य।

पञ्चपश्चिकापूजा।

बिन्दुचक्रोपरि सिंहामनाकारेण पीठभावनां कृत्वा मध्ये वाय्वीशानाग्निनिर्ऋतिकोणेषु च क्रमेण यजेत्॥
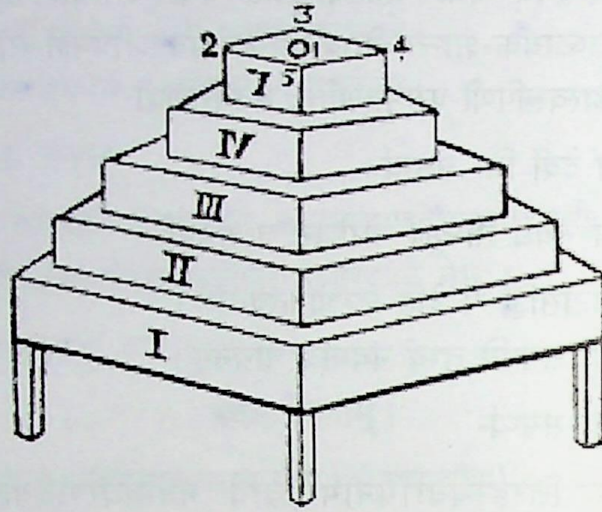
4 मूलं। श्रीमहालक्ष्मीश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी। श्रीविद्यालक्ष्म्यम्बाजश्री-पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (मध्ये)

4 श्रीं। श्रीमहालक्ष्मीश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी। श्रीविद्यालक्ष्म्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (वायव्ये)

4 ओं श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं ओं महाळल्म्यै नमः। श्रीमहालक्ष्मीश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी। महालक्ष्मीलक्ष्म्यम्बाश्रीपादुकां पू0त0 नमः। (ईशाने)

4 श्रीं ह्रीं क्लीं। श्रीमहालक्ष्मीश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्य-जननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी। त्रिशक्तिलक्ष्म्यम्वाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (आग्नेये)

4 श्रीं सहकलह्रीं श्रीं। महालक्ष्मीश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्य-जननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी। सर्वसाम्राज्य-लक्ष्म्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (नैर्ऋते)

II पञ्च कोशाम्बाः ।

4 मूलं । महाकोशेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी । श्रीविद्याकोशाम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । (मध्ये)

4 ओं ह्रीं हंसस्सोहं स्वाहा । महाकोशेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी । परंज्योतिः- कोशाम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । (वायव्ये)

4 ओं हंसः । महाकोशेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी । परानिष्कळाकोशाम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । (ईशाने)

4 हंसः । महाकोशेश्वरीवृन्दमंडितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी । अजपाकोशाम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । (आग्रेये)

4 अं आं ळं क्षं । महाकोशेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी । मातृकाकोशाम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । (नैर्ऋते)

III पञ्च कल्पलताः ।

4 मूलं । महाकल्पलतेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी । श्रीविद्याकल्पलताम्बा-श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । (मध्ये)

4 ह्रीं क्लीं ऐं ब्लूं स्त्रीं । महाकल्पलतेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी । (पञ्चकामेश्वरी) त्वरिताकल्पलताम्बाश्रीपादुकां पू0 ता0 नमः । (वायत्ये)

4 ओं ह्रीं ह्रां हसकलह्रीं ओं सरस्वत्यै नमः ह्स्रैं । महकल्पलतश्वरी-कल्पलताम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । (ईशाने)

4 श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं क्लीं सौः। महाकल्पलतेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी। (कुमारी) त्रिपुटाकल्पलताम्बा-श्रीपादुकां पू0त0 नमः। (आग्नेये)

4 द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः। महाकल्पलतेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी। पञ्चबाणेश्वरी-कल्पलताम्बा-श्रीपादुकां पू0त0 नमः। (नैर्ऋते)

IV पञ्च कामदुघाः।

4 मूलं। महाकामदुघेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी। श्रीविद्याकामदुघाम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (मध्ये)

4 ओं ह्रीं हंसः जुं संजीवनि जीवं प्राणग्रन्थिस्थं कुरु कुरु स्वाहा। महाकामदुघेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजनी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी। अमृतपीठेश्वरीकाम-दुघाम्बाश्रीपादुका पूजयामि तर्पयामि नमः। (वायव्ये)

4 ऐं वद वद वाग्वादिनि ह्स्त्रैं क्लीं क्लिन्ने क्लेदिनि महाक्षोमं कुरु कुरु ह्स्क्ल्रीं सौः ओं मोक्षं कुरु कुरु ह्स्रसौ महाकामदुघेश्वरी- वृन्दमण्डितासन-संस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी। सुधासूकामदुघाम्बाश्र-पादुका पूंजयामि तपर्यामि नमः। (ईशाने)

4 ऐं ब्लूं झ्रौं जुं सः अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा। महाकामदुघेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी। अमृतेश्वरीकामदुघाम्बाश्री पू0त0 नमः। (आग्रेये)

4 ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ओं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे ममाभिलषितमन्नं देहि स्वाहा। महाकामदुघेश्वरीवृन्दमण्डितामनासंस्थिता सर्वसौभाग्य-जननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी। अन्नपूर्णाकामदुघाम्बाश्रीपादुकां पू0त0 नमः। (नैर्ध्रते)

V पञ्च रत्नाम्बाः ।

4 मूले । महारत्नेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी । श्रीविद्यारत्नाम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । (मध्ये)

4 ज्झीं महाचण्डे तेजःसंकर्षिणि कालमन्थाने हः । महारत्नेश्वरीश्रीवृन्द-मण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी । सिद्धलक्ष्मीरत्नाम्बाश्रीपादुका पूंजयामि तर्पयामि नमः । (वायव्ये)

4 ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ओं नमो भगवति राजमातङ्गीश्वार सर्वजनमनोहरि सर्वमुखरञ्जनि क्लीं ह्रीं श्रीं सर्वराजवशंकरि सर्वस्त्रीपुरुषवशंकरि सर्वदुष्टमृवशंकरि सर्वसत्ववशंकरि सर्वलोकवशंकरि त्रैलोक्यं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं श्रीं ह्रीं ऐं । महारत्नेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी । राजमातङ्गीश्वरीरत्नाम्बा-श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । (ईशाने)

4 श्रीं ह्रीं श्रीं । महारत्नेश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी । भुवनेश्वरीरत्नाम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । (आग्रेये)

4 ऐं ग्लौं ऐं नमो भगवति वार्ताळि वार्ताळि बाराहि बाराहि बराहमुखि बराहमुखि अन्धे अन्धिनि नमः रुन्धे रुन्धिनि नमः जम्भे जम्भिनि नमः मोहे मोहिनि नमः स्तम्भे स्तम्भिनि नमः सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां सर्ववाक्चित्त-चक्षुर्मुखगतिजिह्वास्तम्भनं कुरु कुरु शीघ्रं वश्यं ऐं ग्लौं ऐं ठः ठः ठः ठः हुं फट् स्वाहा । महारत्नेश्वरीबृन्दमण्डिता-सनसंस्थिता सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी । वाराहीरत्नाम्बा-श्रीपादुकां पू0त0 नमः । (नैर्ऋते)

षड्दर्शनविद्या ।

4 तारे तुत्तारे तुरे स्वाहा । तारादेवताधिष्ठितबौद्धदर्शनश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

4 गायत्री परोरजसि सावदों। ब्रह्मदेवताधिष्ठितवैदिकदर्शनश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 ओं ह्रीं नमश्शिवाय। रुद्रदेवताधिष्ठितशैवदर्शन श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 ओं ह्रीं घृणिस्सूर्य आदित्यो। सूर्यदेवताधिष्ठितसौरदर्शनश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 ओं नमो नारायणाय। विष्णुदेवताधिष्ठितवैष्णवदर्शन-श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 ओं श्रीं ह्रीं श्रीं भुवनेश्वरीदेवताधिष्ठितशाक्तदर्शनश्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

षडाधारपूजा।

4 सां हंसः मूलाधाराधिष्ठानदेवतायै साकिनीसहितगणनाथस्वरूपिण्यै नमः। गणनाथस्वरूपिण्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 कां सोहं स्वाधिष्ठानाधिष्ठानदेवतायै काकिनीसहितब्रह्मस्वरूपिण्यै नमः। ब्रह्मस्वरूपिण्यम्बाश्रीपादुकां पू0 त0 नमः।

4 लां हंसस्सोहं मणिपूरकाधिष्ठानदेवतायै लाकिनीसहितविष्णुस्वरूपिण्यै नमः विष्णुस्वरूपिण्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 रां हंसश्शिवस्सोहं अनाहताधिष्ठानदेवतायै राकिणीसहित पदाशिवस्वरूपिण्यै नमः। सदाशिवस्वरूपिण्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 डां0 सोहं हंसश्शिवः विशुद्ध्यधिष्ठानदेवतायै डाकिनीसहित जीवेश्वरस्वरूपिण्यै नमः। जीवेश्वरस्वरूपिण्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 हां हंसश्शिवस्सोहं सोह हंसश्शिवः आज्ञाधिष्ठानदेवतायै हाकिनीसहित पर मात्मस्वरूपिण्यै नमः। परमात्मस्वरूपिण्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

आम्नायमसमष्टिपूजा।

4 ह्स्रैं ह्स्क्ल्रीं ह्स्रौः। पूर्वाम्नायसमयविद्येश्वर्युन्मोदिनी-देव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 मूलं गुरुत्रयगणपतिपीठत्रयसहितायै शुद्धविद्यादिसमय-विद्येश्वरीपर्यन्त चतुर्विंशतिसहस्त्रदेवतारिसेवितायै कामगिरिपीठस्थितायै पूर्वाम्नाय-समष्टिरूपिण्यै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः। श्रीमहात्रिपुर- सुन्दरीश्रीपादुकां पू0त0 नमः।

4 मूलं भैरवाष्टकनवसिद्धौघवटुकत्रयपदयुगसहितायै सौभाग्य-विद्यादिसमयविद्येश्वरीपर्यन्तत्रिंशत्सहस्रदेवतापरिसेवितायै पूर्णगिरिपीठस्थितायै दक्षिणाम्नायसमष्टिरूपिण्यै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः। श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 ह्स्रैं ह्स्रौः ह्स्ख्फ्रें भगवत्यम्बे हसक्षमलवरयूं ह्स्ख्फ्रें अघोरमुखि छ्रां छ्रीं किणि किणि विच्चे ह्स्रौः ह्स्ख्फ्रें ह्स्रौः। पश्चिमाम्नायसमय-विद्येश्वरीकुब्जिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 मूलं नवदूतीमण्डलत्रयदशवीरचतुषष्टिसिद्धनाथसहितायै लोपामुद्रा-दिसमयविद्येश्वरीपर्यन्तद्विसहस्त्रदेवतापरिसेवितायै जालन्धरपीठस्थितायै पश्चिमाम्नायसमष्टिरूपिण्यै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः। श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीश्री पू0त0 नमः।

4 हस्ख्फ्रें महाचण्डयोगीश्वरि कालिक फट्। उत्तराम्नायसमयविद्येश्वरी-कालिकादेव्यम्बाश्रीपादुकां पू0त0नमः।

4 मूलं नवमुद्रापञ्चवीरावळीसहितायै तुर्याम्वादिसमविद्येश्वरीपर्यन्तद्विसहस्त्र-देवतापरिसेवितायैओड्याणपीठस्थितायै उत्तराम्नायसमष्टिरूपिण्यै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः। श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।'

ततः अङ्गप्रत्यङ्गदेवतार्चनं कृत्वा, मूलेन देवीं त्रिः संतर्पयेत्॥

षोडयुपासकानाम्॥

4 मखपरयघच् महिचनडयङ् गंशफर् ऊर्ध्वाम्नायसमयविद्येश्वर्यम्बा-श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

4 मूलं श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजगुरुमण्डलसहितायै परम्बादिसमय-विद्येश्वरीपर्यन्ताशीतिसहस्रदेवतापरिसेवितायै शाम्भवपीठस्थितायै ऊर्ध्वाम्नायसमष्टिरूपियै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः।

4 भगवति विच्चे महामाये मातङ्गिनि ब्लूं अनुत्तरवाग्वादिनि ह्स्ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रें ह्स्रौः। अनुत्तरशङ्कर्यम्बाश्रीपादुकां

दण्डनायानामानि।

ओं पञ्चम्यै	नमः	ओं पोत्रिण्यै	नमः
ललितायै	”	परमेश्वर्यै	”
महाराज्ञयै	”	कामराजप्रियायै	”
वराङ्कुशायै	”	कामकोटिकायै	”
चापिन्यै	”	चक्रवर्तिन्यै	”
त्रिपुरायै	”	महाविद्यायै	”
महात्रिपुरसुन्दर्यै	”	शिवायै	”
सुन्दरीचक्रनाथायै	”	अनङ्गवल्लभायै	”
सम्राज्ञयै	”	सर्वपाटलायै	”
चक्रिण्यै	”	कुलनाथायै	”
महादेव्यै	”	सर्वाम्नायनिवासिन्यै	”

ओं शृङ्गारनायिकायै नमः

अथ यथावकाशं सहस्रनामावल्यादिना अर्चनं कुर्यात्।

धूपः।

4 धूरसि धूर्वं धूर्वन्तं तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्वयं वयं धूर्वामस्त्वं देवानामसि सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं वह्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं वह्नितमं देवहूतममह्रुतमसि हविर्धानं दृंहस्व माह्वर्मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रेक्षे माभेर्मा संविक्था मा त्वा हिंसिषम्।

श्रीविद्यासपर्यापद्धतिः।

ओं श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकायै नमः धूपमाघ्रापयामि। धूपानन्तरं आचमनीयं समर्पयामि॥

दीपः।

4 उद्दीप्यस्व जातवेदोपघ्नन्निर्ऋतिं मम। पशूंश्च मह्यमावह जीवनं च दिशो दिश। मा नो हिंसीर्जातवेदो गामश्वं पुरुषं जगत्। अविभ्रदग्र आगहि श्रिया मा परिपातय। ओं श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीपरा-भट्टारिकायै नमः दीपं दर्शयामि। दीपानन्तरं आचमनीयं समर्पयामि॥

ततः सर्वसंक्षोभिण्यादिमुद्राः प्रदर्शयेत्॥

नैवेद्यम्।

श्रीदेव्यग्रे चतुरश्रमण्डलं सामान्यार्घ्योदकेन विधाय तत्र आधारोपरि स्थापितं सौवर्णरौप्यकांस्यादिस्थालीचषकभरितं भक्ष्यभोज्यचोष्यलेह्यपेयात्मकं रसवद्यञ्जनमञ्जुलं प्राज्यकपिलाज्यं दधिदुग्धमुग्धं यथासंभवं वा नैवेद्यं विधाय-

मूलेन निरीक्ष्य-

4 ऐं ह्रः - इति अस्त्रेण प्रोक्ष्य-

4 ओं जुं सः वौषट् - इति सप्तवारमभिमन्त्रितजलेन प्रोक्ष्य चक्रमुद्रां प्रदर्श्य-

4 यं - इति वायुबीजेनाधोमुखवामकरेण सप्तवारं जपन् तद्गतदोषान् संशोष्य-

4 रं - इति वह्निबीजेन अधोमुखदक्षकरेण संदह्य-

4 वं - इति धेनमुद्रया अमृतीकृत्य-

4 मूलेन विशेषार्ध्यविन्दुभिः प्रोक्ष्य-

4 मूलेन सप्तवारमभिमन्त्र्य-

4 ओं क्लीं कामदुघे अमोघे वरदे विच्चे स्फुर स्फुर श्रीं परश्रीं।

इति कामधेनुविद्यया धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य-

देव्यै पाद्यं अर्ध्य आचमनीयं दत्वा-

4 मूलेन देवीं त्रिः संतर्प्य-

पात्रान्तरे विशेषार्व्य किंचिदद्गृहीत्वा वामाङ्गुष्ठेन नैवेद्यपात्रं स्पृशन्

4 मूलं साङ्गायै सायुधायै सवाहनायै वपरिवारायै सर्वात्मिकायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकायै नैवेद्यं कल्पयामि नमः - इति नैवेद्यपरिसरे संस्थाप्य। कृताञ्जलिः

4 हेमपात्रगतं दिव्यं परमान्नं सुसंस्कृतम्।
पञ्चधा षड्सोपेतं गृहाण परमेश्वरि॥

शर्करापायसापूपघृतव्यञ्जनसंयुतम्।
विचित्ररुचि नैवेद्यं हृद्यमावेदयाम्यहम्॥इति निवेद्य

ओं भूर्भुवस्सुवः+ परिषिञ्चामि। अमृतोपस्तरणमसिं- इति देव्यै आपोशनं दत्वा-

वामकरेण ग्रासमुद्रां दर्शयन्, दक्षकरेण प्राणादिपञ्चमुद्रा-प्रदर्शनपूर्वकं पञ्च प्राणाहुतीः कल्पयेत्। यथा-

4 ऐं प्राणाय स्वाहा।

4 क्लीं अपानाय स्वाहा।

4 सौः व्यानाय स्वाहा।

4 ऐं क्लीं उदानाय स्वाहा।

4 ऐं क्लीं सौः समानाय स्वाहा।

4 ब्रह्मणे स्वाहा।

4 ऐं क-5 आत्मतत्वव्यापिका श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी तृप्यतु।

4 क्लीं ह-6 विद्यातत्वव्यापिका "

4 सौः स-4 शिवतत्वव्यापिका "

4 ऐं क्लीं सौः मूलं सर्वतत्वव्यापिका "

इति किंचित्किंचित् सामान्यार्घ्योदकं दद्यात्।

4 चित्पात्रे सद्धविस्सौख्यं विविधानेकभक्षणम्।
निवेदयामि ते देवि सानुगायै जुषाण तत्॥

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। मधु नक्तमुतोषसि मधुमत्पार्थिवँ रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता। मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः। इति पुष्पाञ्जलिं विन्यस्य नैवेद्यजातं तादात्म्येन समर्पयेत्।

4 नमस्ते देवदेवेशि सर्वतृप्तिकरं परम्।
अन्यानिवेदितं शुद्धं प्रकृतिस्थं सुशीतलम्।
अमृतानन्दसंपूर्ण गृहाण जलमुत्तमम्॥

4 श्रीललितायै अमृतपानीयं समर्पयामि।

भुञ्जानां परदेवतां ध्यायेत्।

4 ब्रह्मेशाद्यैः सरसमभितः सूपविष्टैः समन्ता-
द्दिव्याकल्पैर्ललितरमणी वीज्यमाना, सखीभिः।
नर्मक्रीडाप्रहसनपरा हासयन्ती सुरेशान्
भुङ्क्ते पात्रे कनकखचिते षड्सान् लोकधात्री॥

देवीं भुक्तवतीं सुतप्तां ध्यात्वा-

4 ओं अमृतापिधानमसि। इत्युत्तरापोशनं दत्वा-

4 श्रीललितायै हस्तप्रक्षालनं गण्डूषं पादप्रक्षालनं आचमनीयं

कल्पयामि नमः।

ताम्रबलिपात्रे निवेदनसामग्रीः किंचित्किंचिदादाय निवेदनपात्राणि निर्गमय्य तत्स्थलीं अस्त्रेण शोधयेत्।

ताम्बूलं-4 वनस्पतिदेवत्याय ताम्बूलाय नमः। इति सामान्यार्ध्योदकेन प्रोक्ष्य-

4 तमालदलकर्पूरपूगभागसमन्वितम्।
एलापत्रसुयंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्॥

4 ओं श्रीललिताये ताम्बूलं कल्पयामि नमः॥

कुलदीपः।

4 मूलं अन्तस्तेजो बहिस्तेज एकीकृत्यामितप्रभम्।
त्रिधा दीपं परिभ्राम्य कुलदीपं निवेदये॥

कर्पूरनीरजनम्।

4 सोमो वा एतस्य राज्यमादत्ते। यो राजा सन्राज्यो वा सोमेन यजते। देवसुवामेतानि हवीꣳषि भवन्ति। एतावन्तो वै देवानाँ सवाः। त एवासौ सर्वान् प्रयच्छन्ति। त एनं पुनः सुवन्ते राज्याय। देवसू राजा भवति॥

4 साम्राज्यं भोज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमष्ठिकं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यम्॥ न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रातारकं नेमा विद्युतो भान्ति कृतोऽयमाग्निः। समेव भान्तमनुभाति सर्व तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे। समेकामान्कामकामाय मह्यम्। कामेश्वरो वैश्रवणों ददातु। कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः॥

मन्त्रपुष्पम्।

योऽपां पुष्पां वेद। पुष्पवान् प्रजावान् पशुमान् भवति। चन्द्रमा वा अपां पुष्पम्। पुष्पवान् प्रजावान् पशुमान् भवति। य एवं वेद। योऽपामायतनं

वेद। आयतनवान् भवति। अग्निर्वा अपामायतनम्। आ0। योऽग्नेरायतनं वेद। आ0। आपो वा अग्नेरायतनम्। आं0। य एवं वेद। योऽपामायतनं वेद। आ0। वायुर्वा अपामायतनम्। आ0। यो वायोरायतनं वेद। आ0। आपो वै वायोरायतनम्। आ0। य एवं वेद। योऽपामायतनं वेद। आ0। असौ वै तपन्नपामायतनम्। आ0। योऽमुष्य तपत आयतनं वेद। आ0। आपो वा अमुष्य तपत आयतनम्। आ0। य एवं वेद। योऽपामायतनं वेद। आ0। चन्द्रमा वा अपामायतनम्। आ0। यश्चन्द्रमस आयतनं वेद। आ0। आपो वै चन्द्रमस आयतनम्। आ0। य एवं वेद। योऽपामायतनं वेद। आ0। नक्षत्राणि वा अपामायतनम्। आ0। यो नक्षत्राणामायतनं वेद। आ0। आपो वै नक्षत्राणामायतनम्। आ0। य एवं वेद। योऽपामायतनं वेद। आ0। पर्जन्यो वा अपामायतनम्। आ0। यः पर्जन्यस्यायतनं वेद। आ0। आपो वै पर्जन्यस्यायतनम्। आ0। य एवं वेद। योऽपामायतनं वेद। आ0। संवत्सरो वा अपामायतनम्। आ0। यस्संवत्सरस्यायतनं वेद। आ0। आपो वै संवत्सरस्यायतनम्। आ0। य एवं वेद। योऽप्सु नावं प्रतिष्ठितां वेद। प्रत्येव तिष्ठति॥

शिवे शिवसुशीतलामृततरङ्गगन्धोल्लस-
न्नवावरणदेवते नवनवामृतस्यन्दिनि।
गुरुक्रमपुरस्कृते गुणशरीर नित्योज्ज्वले
षडङ्गपरिवारिते कलित एप पुष्पाञ्जलिः॥

समसतमुनियक्षाकिंपुरुषसिद्धविद्याधर-
गुहासुरसुराप्सरोगणमुखैर्गणैः सेविते।
निवृत्तितिलकाम्बरप्रकृतिशान्तिविद्याकला-
कलापमधुराकृते कलित एष पुष्पाञ्जलिः॥

त्रिवेदकृतविग्रहे त्रिविधकृत्यसंधायिनि
त्रिरूपसमचायिनि त्रिपुरमार्गासंचारिणि।
त्रिलोचनकुटुम्बिनि त्रिगुणसंविदुद्यत्पदे
त्रयि त्रिपुरसुन्दरि त्रिजगदीशि पुष्पाञ्जलिः॥

पुरन्दरजलाधिपान्तककुबेररक्षोहर-
प्रभञ्जनधनञ्जयप्रभृतिवन्दनानन्दिते।
प्रवालपदपीठिकानिकटनित्यवर्तिस्वभू-
विरिञ्चिविहितस्तुते विहित एष पुष्पाञ्जलिः॥

यदानतिबलादलंकृतिरुदेति विद्यावय-
स्तपोद्रविणसौरभाकृतिकवित्वसंपन्मयी।
जरामरणजन्मजं भयमपैति तस्यै समा-
हिताखिलसमीहित प्रसवभूमि् तुभ्यं नमः॥

निराबरणसंविदुद्रमपरास्तभोदोल्लस-
स्पदास्पदचिदेकतावरशरीरिणि स्वैरिणि।
रसायनतरङ्गिणीरुचितरङ्गसंचारिणि
प्रकामपरिपूरणि प्रसृत एष पुष्पाञ्जलिः॥

तरङ्गयति संपदं तदनु संहरत्यापदं
सुखं वितरति श्रियं परिचिनोति हन्ति द्विषः।
क्षिणोति दुरितानि यत्प्रणतिरम्ब तस्यै सदा
शिवंकरि शिवे परे शिवपुरन्धि तुभ्यं नमः॥

त्वमेव जननी पिता त्वमथ वान्धवस्त्वं सखा
त्वमायुरपरं त्वमाभरणमात्मनस्त्वं कला।
त्वमेव वपुषः स्थितिस्त्वमखिलायतिस्त्वं गुरुः
प्रसीद परमेश्वरि प्रणतिपात्नि तुभ्यं नमः॥

कञ्जासनादिसुरवृन्दलसत्किरीट-
कोटिप्रघर्षणसमुज्जवलदङ्घ्रिपीठे।
त्वामेव यामि शरणं विगतान्यभावं
दीनं विलोकय दयार्द्रविलोचनेन॥

श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः। पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि॥

॥सप्तमः खण्डः॥

कामकलाध्यानम्।

स्थूलं- विन्दुना मुखं विन्दुद्वयेन कुचौ सपरार्धेन योनिः इति कामकलां ध्यायेत्॥

महामन्त्रराजान्तवीजं पराख्यं
स्वतो न्यस्तविन्दु स्वयं न्यस्तहार्दम्।
भावबक्षोजमुह्याभिधानं
स्वरं किकृन्वियेतस त्वमेव॥
तथान्ये विकल्पेषु निर्विण्णचित्ता-
स्तदेकं समाधाय बिन्दुत्रयं ते।
परानन्दसंधानसिन्धौ निमग्नाः
पुनर्गर्भरन्ध्रं न पश्यन्ति धीराः॥

सूक्ष्मं-

कामकला क् + अ + अ, म् + अ; क् + अ, ल् + अ + अ।

कामशब्दविमर्शः-

क्=माया, अ = तद्वच्छिन्नं चैतन्यमीश्वरः, अ=शुद्ध-चैतन्यं; म्=अविद्या, अ=तद्वच्छिन्नं चैतन्यं जीवः। मायावच्छिन्नचैतन्यं अविद्यावच्छिन्नचैतन्यं चशुद्धचैतन्यमेव। उपाधिनिरसनेन जीवेश्वरौ शुद्धब्रह्मणोऽभिन्नौ। सामानाधि ाकरण्येन जीव एव ईश्वरः। भागत्यागलक्षणयाऽयमर्थः पर्यवसन्नः। अहं सः=हंसः; सः=अहं सोहम्।

कलाशब्दविमर्शः-

क्=आकाशं, अ=तदुपहितचैतन्यं, ल्=प्रथिवी, अ=तदुप-हितचैतन्यं, अ=शुद्धचैतन्यम्। पृथिव्याद्याकाशान्तं परिदृश्यमानंः सर्वः प्रपञ्चो ब्रह्मैव। 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' इति हि श्रुतिः।

शिवाद्यवनिपर्यन्तपरिदृश्यमानसर्वप्रपञ्चाधिष्ठाननिर्चिशेष-ब्रह्मैवाह-

मित्यखण्डार्थानुसंधनं कामकलाविमर्शः॥

सौभाग्यहृदयम्-

सौः इति शक्तिबीजं श्रीदेव्या हृदयत्वेन भावयेत्। सकारविसर्ग-औकार-समुदायः- सौः इति। सकारः तच्छब्दपर्यायः। विसर्गेण ह्कारो लक्षितः। स च अहंशब्दपर्यायः। औकारः तयोः सामरस्यबोधकः ब्रह्मैवाहमिति॥

कामकला ध्यातैव सौभाग्यहृदयमामृष्टं भवति॥

॥अष्टमः खण्डः॥

होमस्य इतिर्तव्यता। होमः कृताकृतः। अकरणे न प्रत्यवायः, करणे तु श्रेय एव॥

॥नवमः खण्डः॥

बलिदानादिहविःप्रतिपत्यन्तम्।

बलिदानम्।

देव्या दक्षभागे सामान्याघर्योदकेन त्रिकोणवृत्तचतुरश्रात्मकं मण्डलं परिकल्प्य-

4 ऐं व्यापकमण्डलाय नमः- इति गन्धाक्षतैरभ्यर्च्य - अर्धभक्तपूरितोदकं सक्षीरादित्रयं बलिपात्रं तत्र विन्यस्य -

4 ओं ह्रीं सर्वविघ्नकृभ्द्यः सर्वभूतेभ्यो हुं फट् स्वाहा- इति मन्त्रं त्रिः पठित्वा दक्षकरार्पितं वामकरतत्त्वमुद्रास्पृष्टं सलिलं बल्युपरि दत्वा वामपार्ष्णिघातकरारफोटौ कुर्वाणः समुदञ्चितवक्त्रे वाणमुद्रया बलिं भूतैर्ग्रोसितं विभाव्य योनिमुद्रया प्रणमेत्॥

ततः पादौ प्रक्षाल्य, आचम्य प्रद्क्षिणनमस्कारं कृत्वा यथाशक्ति जपमाचरेत्॥

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्मयि स्थिरा॥

इति जपं समर्पयेत्॥

स्तोत्रम्।

4 गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम्।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकां पीठरूपिणीम्॥1॥

प्रणमामि महादेवीं मातृकां परमेश्वरीम्।
कालहल्लोहलोल्लोलकलनाशमकाारिणीम्॥2॥

यदक्षरैकमोत्रऽपि संसिद्धे स्पर्धते नरः।
रविताक्ष्येन्दुकन्दर्पशङ्करानलविष्णुभिः॥3॥

यदक्षरशशिज्योत्स्नामण्डितं भुवनत्रयम्।
वन्दे सर्वेश्वरीं देवीं महाश्रीसिद्धमातृकाम्॥4॥

यद्क्षरमहासूत्रप्रोतमेतज्जगत्रयम्॥
ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं तां वन्दे सिद्धमातृकाम्॥5॥

यदेकादशमाधारं बीजं कोणत्रयोद्भवम्।
ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं जगद द्यापि दृश्यते॥6॥

अकचादिटतोन्नद्धपयशाक्षरवर्गिणीम्।
ज्येष्ठाङ्गबाहुपादाग्रमध्यस्वान्तनिवासिनीम्॥7॥

तामीकाराक्षरोद्धारां सारात्सारां परात्पराम्।
प्रणमामि महादेवीं वरमानन्दरूपिणीम्॥8॥

अद्यापि यस्या जानन्ति न मनागपि देवताः।
केयं कस्मान् केनेति सरूपारूपभावनाम्॥9॥

वन्दे तामहमक्षय्यां क्षकाराक्षररूपिणीम्।
देवीं कुलकलोल्लासप्रोल्लसन्तीं परां शिवाम्॥10॥

वर्गानुक्रमयोगेण यस्यां मात्रष्टकं स्थितम्।
वन्दे तामष्टवर्गोत्थमहासिद्ध्यष्टकेश्वरीम्॥11॥

कामपूर्णजकाराख्यश्रीपीठान्तर्निवासिनीम्।
चतुराज्ञाकोशभूतां नौमि श्रीत्रिपुरामहम्॥12॥

इति द्वादशभिः श्लोकैः स्तवनं सर्वसिद्धिकृत्।
देव्यास्त्वखण्डरूपायाः स्तवनं तव तद्यतः॥

भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम्।
त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं शिवे॥

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुदाविरचना
गतिः प्रादक्षिण्यक्रमणमशनाद्याहुतिविधिः।

प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदृशा
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम्॥

पिता माता भ्राता गुरुरथ सुहृद्बान्धवजनः
प्रभुस्तीर्थं कर्माविकलमिह चामुत्र च हितम्।

विशुद्धा विद्या वा पदमपि च तत्प्राप्यमसि मे
त्वमेव श्रीमातः स्वपिमि गतशङ्कः सुखतमः॥

दृशा द्राघीयस्या दरदलितनीलोत्पलरुचा।
दवीयासं दीनं स्नपय कृपया मामपि शिवे।

अनेनायं धन्यो भवति न च ते हानिरियता
वने वा हर्म्ये वा समकरनिपातो हिमकरः॥

हे सद्रूपिणि हे चिदर्चिरुदये हे कामराजप्रिये
हे भण्डासुरहन्त्रि हेऽद्भुतनिधे हेऽनङ्गसंजीविनि।

हे विश्वप्रसवित्रि हे सकरुणे हे दीनरक्षामणे
हे श्रीमल्ललिताम्ब हे परशिवे मां पाहि डिम्भं निजम्॥

नमो हेमाद्रिस्थे शिवसति नमः श्रीपुरगते
नमः पद्माटव्यां कुतुकिनि नमो रत्नगृहगे।

नमः श्रीचक्रस्थेऽखिलमयि नमो बिन्दुनिलये
नमः कामेशङ्कस्थितिमति नमस्तेऽम्ब ललिते।

जय जय जगदम्ब भक्तवश्ये
जय जय सान्द्रकृपावशान्तरङ्गे।

जय जय निखिलार्थदानशौण्डे
जय जय हे ललिताम्ब चित्सुखाब्धे॥

षडङ्गदेवता नित्या दिव्याद्योघत्रयीगुरुन्।
नमाम्यायुधदेवीश्च शक्तीश्चवरणस्थितः॥

अमुकानन्दनाथाय मम श्रीगुरवे नमः।
अमुकानन्दनाथाय गुरवे परमाय मे
अमुकानन्दनाथाय गुरवे परमेष्ठिने॥
एवमादिभिः स्तुतिभिर्देवीं स्तुयात्॥

सुवासिनीपूजा।

प्राङ्निमन्त्रितां सुवासिनीमाहूय तां देवीरूपां विभाव्य-

4 ऐं क्लीं सौः सुवासिन्यै अर्घ्य कल्पयामि नमः। इत्यादिरीत्या अर्घ्य-आचमन-स्नान-गन्ध-हरिद्राकुङ्कुम-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य-ताम्बूलानि दद्यात्, (सति विभवे वसनादीनि च)।

सा च दीक्षिता, चेत् मूलेन समस्तप्रकटेत्यादिसमष्टिमन्त्रेण च क्रमेण श्रीदेव्यै आवरणदेवताभ्यश्च पुष्पाञ्जलिं दद्यात्। ततस्तस्याः करे क्षीरपात्रं नागरखण्डं च समर्पयेत्। सा च उत्थाय शिरसि श्रीगुरुपादुकामनुना त्रिरिष्ठा, हृदये आत्मचतुष्टयं संतर्प्य, चक्रे देवीं त्रिः संतर्प्य, मूलेन पात्रं वामकरे धृत्वा दक्षकरेणाच्छाद्योपविश्य तत्वानि शोधयेत्। कर्ता पुनः पालान्तरमादाय वक्ष्यमाणमन्त्रेण तस्यै समर्पयेत्। यथा-

4 अलिपात्रमिदं तुभ्यं दीयते पिशितान्वितम्

स्वीकृत्य सुभगे देवि यशो देहि रिपून् जहि॥

इति मन्त्रेण सुवासिन्यै अथवा श्रीदेव्यै समर्पयेत्। सापि तत् सावशेषं स्वीकृत्य-

4 वत्स तुभ्यं मया दत्तं पीतशेषं कुलामृतम्।
त्वच्छत्रून् संहरिष्यामि तवाभीष्टं ददाम्यहम्॥

इति मन्त्रेण प्रतिदद्यात। ततः साधकः सुवासिनीं भोजयित्वा संतर्प्य ताम्बूलाद्यैः संतोषयेत्॥

सामयिकपूजा।

ततः संनिहिते गुरौ गुरुं नत्वा, गन्धकुङ्कुमादिभिरुपचर्य गुरुपादुकामन्त्रेण अभिपूज्य पात्राणि समर्पयेत्। असंनिहिते गुरौ स्वशिरसि गुरुत्रयं यजेत्। संनिहितान् सामयिकानाहूय गन्धकुङ्कमादिभिरुपचर्य पात्राणि दद्यात्। पश्चात् तत्वशोधनं कुर्यात्। सामयिकश्च पात्रमादाय समस्तप्रकटेत्यादिसमष्टि-मन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं दत्वा स्वशिरसि गुरुत्रयं, हृदये आत्मचतुष्टयं च इष्ट्वा देवीं संतर्प्य तत्वशोधनं यथोपदिष्टं कुर्यात्।

तत्वशोधनम्।

4 क-5 प्रकृत्यहंकारबुद्धिमनस्त्वक्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणवाक्पाणिपाद-पायूपस्थ- शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाशवायुवह्नि सलिलभूम्यात्मना अं + अः क-5 आत्मतवेन आणवमलशोधनार्थं स्थूलदेहं परिशोधयामि जुहोमि स्वाहा। आत्मा मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासँ स्वाहा।

4 ह-6 मायाकलाऽविद्यारागकालनियतिपुरुषात्मना कं+मं ह-6 विद्यातत्वेन मायिकमलशोधनार्थं सूक्ष्मदेहं परिशोधयामि जुहोमि स्वाहा। अन्तरात्मा में शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयाँस स्वाहा।

4 स-4 शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यात्मना यं+क्षं स-4 शिवतत्वेन कार्मिकमळशोधनार्थं कारणदेहं परिशोधयामि जुहोमिं स्वाहा। परमात्मा

मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासँ स्वाहा।

4 मूलं प्रकृत्यहंकारवुद्धिमनस्त्वक्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणवा-क्याणि-पादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाशवायुवह्निस-लिलभूमिमाया-कलाऽविद्याराग कालनियतिपुरुषशिवशक्ति-सदाशिवेश्वरशुद्धविद्यात्मना अं आं+ळं क्षं मूलं सर्वतत्वेन सर्वदेहं सर्वदेहाभिमानिनं जीवात्मानं परिशोधयामि जुहोमि स्वाहा। ज्ञानात्मा में शुध्यन्तां ज्योतिरहं विन्जा विपाप्मा भूयासँ स्वाहा।

4 आर्द्र ज्वलति ज्योतिरहमस्मि। ज्योतिर्ज्वलति ब्रह्माहमस्मि। योऽहमास्मि ब्रह्माहमस्मि। अहमस्मि ब्रह्माहमसि। अहमेवाहं मां जुहोमि स्वाहा॥*

इति (गुरौ संनिहिते होष्यामि इति संप्रार्थ्य गुरोरनुज्ञां लब्ध्वा) चिदग्नौ होमबुद्ध-या जुहुयात्।

ततः पात्रं प्रक्षाल्य तत्र सुवर्णपुष्पाक्षतान्निक्षिप्य

4 देवनाथ गुरो स्वामिन् देशिक स्वात्मनायक।
त्राहि त्राहि कृपासिन्धो पात्रं पूर्णतरं कुरु॥

इति गुरवे समर्पयेत्। असंनिहिते गुरौ स्वशिरसि पात्रं निधाय आत्मपात्रमण्डले निक्षिपेत्॥

* षोडश्युपासकानां पञ्चमपात्रेण-

4 मूलं पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

॥दशमः खण्डः॥

पूजासमर्पण-देवतोद्वासने।

साधु वाऽसाधु वा कर्म यद्यदाचरितं मया।
तत्सर्व कृपया देवि गृहाणाराधनं मम॥

देवनाथ गुरो स्वामिन् देशिक स्वात्मनायक।
त्राहि त्राहि कृपासिन्धो पूजां पूर्णतरां कुरु॥

इति देव्या वामहस्ते पूजां समर्प्य, शङ्खमुद्धत्य, देव्युपरि त्रिः परिभ्राम्य, तज्जलं हस्ते समादाय, सामयिकानात्मानं च मूलेन प्रोक्ष्य, शङ्खं प्रक्षाल्य निदध्यात्।

ततो मूलेन तीर्थनिर्माल्ये स्वकृत्य-

4 ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यन्मयाचरितं शिवे।
तव कृत्यामिति ज्ञात्वा क्षमस्व परमेश्वरि॥

इति क्षमाप्य सर्वासामावरणदेवतानां श्रीदेव्यङ्गे विलयं विभाव्य खेचरीं बद्धा-

4 हृत्पद्मकर्णिकामध्ये शिवेन सह शङ्करि।
प्रविश त्वं महादेवि सर्वैरावरणैः सह॥

इति तेजोरूपेण परिणतां श्रीदेवी पूर्ववन् हृदयं नीत्वा, तत्र च मूति पञ्चोपचारैः संपूज्य, पुनः आत्माभिन्नसंविद्रूपेण भावयेत्॥

॥एकादशः खण्डः॥

शान्तिस्तव-विशेषाध्योंद्वासने।

शान्तिस्तवः।

4 संपूजकानां परिपालकानां
यतेन्द्रियाणां च तपोधनानाम्।

देशस्य राष्ट्रस्य कुलस्य राज्ञां
करोतु शान्तिं भगवान् कुलेशः॥

नन्दन्तु साधककुलान्मणिमादिसिद्धाः
शापाः पतन्तु समयद्विषि योगिनीनाम्।

सा शाम्भवी स्फुरतु कापि ममाप्यवस्था
यस्यां गुरोश्चरणपङ्कजमेव लभ्यम्॥

शिवाद्यवनिपर्यन्तं ब्रह्मादिस्तम्वसंयुतम्।
कालाग्न्यादि शिवान्तं च जगद्यज्ञेन तृप्यतु॥

विशेषार्घ्योद्वासनम्।

मूलेन विशेषार्घ्यपात्रं आमस्तकमुद्धृत्य तत्क्षीरं पात्रान्तरेणादाय आर्द्रं ज्वलति इति मन्त्रेण आत्मनः कुण्डिलिन्यग्रौ हुत्वा ब्राह्मणान सुवासिनीश्च भोजयित्वा स्वयमपि भुक्त्वा यथासुखं विहरेत्॥

॥इति शिवम्॥

॥रश्मिमालामन्त्राः॥

ततो रश्मिमालाप्रवर्तनम्। रश्मिमालामन्त्रेषु वैदिकान्मन्त्रान् सस्वरान् पठेत्।

ॐ भूर्भुवस्स्वः, तत्सवितुर्वरेयं भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् (इति गायत्री मूलाधारे)॥1॥

सावित्र्या विश्वामित्र ऋषिः नृचिद्गायत्रीच्छन्दः सविता देवता, तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवल - च्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै-
र्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम्।
गायत्री वरदाभयांकुशकशः शुभ्रं कपालं गुणं
शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे॥

'यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये विद्विषो विमृधो जहि॥

स्वस्तिदा विशस्पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी।
वृषेन्द्रः पुर एतु नः स्वस्तिदा अभयङ्करः॥

(इत्यैन्द्री विद्या सप्तषष्ट्यर्णा सङ्कटे भयनाशिनी, हृदये)॥2॥

अभयङ्करमन्त्रस्य गृत्समद ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः, अभयङ्करो देवता, तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

आरूढो वारणेन्द्रं दशशतनयनः श्यामलः कोमलाङ्गः
वर्मी वीरः प्रतापी प्रतिभटदहनप्रज्ज्वलच्चक्रपाणिः।

दोर्भिर्दिव्यायुधाढ्यैर्मणिगणखचितैर्देवमन्त्रीसनाथो
दत्वाभीष्टानि शश्वत्परिहृतदुरितः पातु विश्वं महेन्द्रः॥

'ॐ' घृणिस्सूर्य आदित्योम्' (इत्याष्टार्णा सौरी तेजोदा, फाले)॥3॥

(सौरमन्त्रस्य देवभाग ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, सूर्यो देवता, तत्प्रसाद-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

धृतपद्मद्वयं भानुं तेजोमण्डलमध्यगम।
सर्वाधिव्याधिशमनं छायाश्लिष्टतनुं भजे॥)

'ॐ' (इति प्रणवः केवलो ब्रह्मविद्या मुक्तिप्रदा, ब्रह्मरन्ध्रे)॥4॥

प्रणवस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, परमात्मा देवता, तत्प्रसाद सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

ओंकारवाच्यमुच्चण्डचण्डांशुसदृशप्रभम्।
वासुदेवाभिधं ब्रह्म विश्वगर्भमुपास्महे॥

'ॐ' परोरजसेऽसावदोम्' (इति नवार्णा तुरीया गायत्री स्वैक्यविमर्शिनी, द्वादशान्ते)॥4॥

(तुरीयागायत्रीमन्त्रस्य विश्वामित्र ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, सविता देवता, तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

देवी तुरीयगायत्रीं तुर्यातीतपदाश्रयाम्।
परोरजःप्रकाशात्मचितिरूपामहं भजे॥

रश्मिपञ्चकमेतन्मूलाधारहृत्फालविधिबिलद्वादशान्तस्थानबी जतय-ाविभावनीयम्। (द्वादशान्तस्थानन्तु ललाटस्योत्तरभागः)।

'ॐ सूर्याक्षितेजसे नमः। खेचराय नमः। असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय। उष्णो भगवान् शुचिरूपः। हंसो भगवान् शुचिरप्रतिरूपः।

विश्वरूपं घृणिनं जातवेदसं हिरण्मयं ज्योतिरेकं तपन्तम्।
सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः॥

'ॐ नमो भगवते सूर्यायाहोवाहिनि वाहिन्यहोवाहिनि वाहिनि स्वाहा'।

वयस्सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाथमाना'।

अपध्वान्तमूर्णहि पूर्धिचक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान्॥

'पुण्डरीकाक्षाय नमः। पुष्करेक्षणाय नमः। कमलेक्षणाय नमः। विश्वरूपाय नमः। श्रीमहाविष्णवे नमः' (इति षोडश-मन्त्रसमष्टिरूपिणी चक्षुष्मती विद्या दूरदृष्टिसिद्धिप्रदा मूलाधारे)॥6॥

(चक्षुष्मतीमन्त्रस्य भार्गवऋषिः, नानाच्छन्दांसि, चक्षुष्मती देवता तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।) ध्यानम्:-

चक्षुस्तेजोमयं पुष्पकन्दुकं बिभ्रतीं करैः।
रौप्यसिंहासनारूढां देवीं चक्षुष्मतीं भजे॥

'ॐ गन्धर्वराज विश्वावसो ममाभिलषितां कन्यां प्रयच्छ स्वाहा' (इत्युत्तमकन्याविवाहदायिनी हृदये)॥7॥

(विश्वावसुमन्त्रस्य सम्मोहन ऋषिः। गायत्रीच्छन्दः विश्वावसुदेवता। तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।) ध्यानम्-

रक्ताङ्गरागारुणभूषणाढ्यं वीणाधरं वीटिकयोल्लसन्तम्।
गन्धर्वकन्याजनगीयमानं विश्वावसुं सद्बृहतीं नमामि॥

ॐ नमो रुद्राय पथिषदे स्वस्ति मां सम्पारय' (इति मार्गसङ्कटहारिणी विद्या, फाले)॥8॥

पथिषद्रुद्रमन्त्रस्य वामदेवः ऋषिः पंक्तिच्छन्दः, पथिषद्रुद्रो देवता। तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

आत्तसज्जधनुर्बाणकरं वृषभसंस्थितम्।
अन्नपूर्णासमाश्लिष्टं पथिषद्रुद्रमाश्रये॥8॥

ॐ तारे तुत्तारे तुरे स्वाहा, (इति जलापच्छमनी विद्या, ब्रह्मरन्ध्रे) ॥9॥

तारा मन्त्रस्य मत्स्य ऋषिः, ताराम्बा देवता, तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

नौकासिंहासनारूढां शाक्यदर्शनदेवताम्।
जलापच्छमनीं वन्दे तारां वारिदमेचकाम्॥

'अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः, (इति महाव्याधिनाशिनी नामत्रयी विद्या, द्वादशान्ते)॥10॥

(नामत्रयमन्त्रस्य काश्यपात्रिभरद्वाजा ऋषयः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहाविष्णुर्देवता, तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

ध्यानम्- समस्तदुस्तरव्याधिसंघध्वंसपटीयसे।

अच्युतानन्तगोविन्दनाम्ने धाम्ने नमो नमः॥

(एतद्रश्मिपञ्चकं मूलधारादिपरिकरतया ज्ञेयम्)।

''ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौंर्ग गणपतये वर वरदं सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा'' (इति महागणपतिविद्या)॥11॥

महागणपतिमन्त्रस्य गणक ऋषिः, निचुद्गायत्री छन्दः, श्रीमहागणपति-देवता, तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

बीजापूरगदेक्षुकार्मुकरुजा चक्राब्जपाशोत्पल-

ब्रीह्यग्रस्वविषाणरत्नकलशप्रोद्यत्कराम्भोरुहः।

ध्येयो वल्लभया सपद्मकरया श्लिष्टोज्ज्वलद्भूषया

विश्वोत्पत्तिविपत्तिसंस्थितिकरो विघ्नेश्वरोऽभष्टदः॥

'ॐ नमः शिवायै, ॐ नमः शिवाय' (इति द्वादशार्णा शिवतत्त्व, विमर्शिनी विद्या, हृदये)॥12॥

(शिवशक्त्यात्मकपञ्चाक्षरमन्त्रस्य वामदेव ऋषिः, पंक्तिच्छन्दः, उमामहेश्वरो देवता, तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

वामांसन्यस्तवामेतरकरकमलायास्तथा वामहस्त-

न्यस्तारक्तोत्पलायाः स्तनभरविलसद्वामहस्तः प्रियायाः।

सर्वाकल्पाभिरामः श्रितपरशुमृगेष्टः करैः काञ्चनाभः

ध्येयः पद्मासनस्थः स्मरललितवपुः सम्पदे पार्वतीशः॥)

'ॐ जु सः मां पालय-पालय' (इति दशार्णा मृत्योरपि मृत्युरेषा विद्या, फाले)॥13॥

(अमृतमृत्युञ्जयस्य कहोल ऋषिः, विराट्छन्दः अमृतमृत्युञ्जयसदा-शिवो देवता। तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

स्फुटितनलिनसंस्थं मौलिबद्धेन्दुरेखा-
स्रवदमृतरसार्द्रं चन्द्रवन्ह्यर्कनेत्रम्।
स्वकरलसितमुद्रापाशवेदाक्षमालं
स्फटिकरजतमुक्तागौरमीशं नमामि॥)

ॐ नमो ब्रह्मणे धारणं में अस्तु निराकरणं धारयिता भूयासं कर्णयोः श्रुतं मा च्योढवं ममामुष्य ॐ (इति श्रुतधारिणी विद्या ब्रह्मरन्ध्रे)॥14॥

(श्रुतधारिणीमन्त्रस्य भार्गव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, ब्रह्मा देवता, तत्प्रसादसिद्धयर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

चतुराननमम्भोजनिषण्णं भारतीसखम्।
अक्षमालावराभीतिकमण्डलुधरं भजे॥)

"अं आं......अः कं खं...... ळं क्षं" (इति सबिन्दुरकारादि-क्षकारान्तवर्णमालिकामातृका सर्वज्ञताकरी द्वादशान्ते)॥15॥

(मातृकामन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः गायत्री छन्दः, मातृको सरस्वती देवता तत्प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

पचाशता मातृकया ह्यारब्धाखिलदेहया।
समस्तविद्यारूपिण्या धन्योऽहं मातृकाम्बया॥)

(पञ्चेमाः रश्मयो मूलादिरक्षात्मकतया द्रष्टव्याः)॥

'हसकलह्रीं, हसकहलह्रीं सकलह्रीं,' (इति लोपामुद्राविद्या स्वस्वरूपविमर्शिनी, मूलाधारे)॥16॥

(श्रीहादिलोपामुद्रामन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिः ऋषिः, पंक्तिच्छन्दः,

श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी देवता, ह 5 बीजम्, ह 6 शक्तिः, स 4 कीलकम्, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। बालया षडङ्गम्। ध्यानम्-

श्रीदेवीभूषितोत्सङ्गं सान्द्रसिन्दूररोचिषम्।
हकारादिमनोर्वाच्यं वन्दे कामेश्वर' हरम्॥)

'क्लीं हैं ह्सौः स्हौः हैं क्लीं (इति षट्कूटा सम्पत्करी विद्याहृदये)॥17॥

(सम्पत्करीमन्त्रस्य कण्व ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, सम्पत्सरस्वती देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

अनेककोटिमातङ्गतुरङ्गरथपत्तिभिः।
सेवितामरुणाकारां वन्दे सम्पत्सरस्वतीम्॥

'सं सृष्टिनित्ये स्वाहा, हं स्थितिपूर्णे नमः, रं महासंहारिणि कृशे चण्डकालि फट्, रं हस्रूफ्रे महानाख्ये अनन्त भास्करि महाचण्डकालि फट्, रं महासंहारिणि कृशे चण्डकालि फट्, हं स्थितिपूर्णे नमः, स सृष्टिनित्ये स्वाहा, ह्स्ख्फ्रें महाचण्डयोगेश्वरि' (इति विद्यापञ्चकरूपिणी कालसङ्कर्षणी परमायुः प्रदा, फाले॥18॥

(चण्डयोगेश्वरीमन्त्रस्य ईश्वर ऋषिः, नानाच्छन्दांसि, चण्डयोगीश्वरी देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

सृष्टिस्थितिभ्यां संहृत्यनाख्यया भासया श्रिताम्।
कूलङ्कषकपालढ्यां चण्डयोगीश्वरीं भजे॥

ऐं ह्रीं रीं ह् स्ख्फ्रें ह्सौः अहमहं अहमहं ह्सौःह्स्ख्फ्रें श्रीं ह्रीं ऐं'' (इति शुद्धज्ञानदा शाम्भवी विद्या। वह्मरन्ध्रे)॥19॥

(परशम्भुनाथमन्त्रस्य वामदेव ऋषिः, पंक्तिच्छन्दः, परशम्भुनाथो देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

पूर्णाहन्तास्वरूपाय तस्मैं परमसम्भ्वे।
आनन्दताण्डवोद्दण्डपण्डिताय नमो नमः॥)

'सौः' (इयं परा विद्या द्वादशान्ते)॥20॥

(परामन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, परा सरस्वती देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

अकलङ्कशशाङ्काभा त्र्यक्षा चन्द्रकलावती।
मुद्रापुस्तलसद्बाहा पातु मां परमा कला॥)

(एताः पञ्च रश्मयो मूलाद्यधिष्ठानतया कलनीयाः)।

'ऐं क्लीं सौः, क्लीं ऐं, ऐं क्लीं सौः' (इति नवाक्षरी श्रीदेव्यङ्ग-भूता बाला)॥21॥

(बालामन्त्रस्य दक्षिणामूर्ति ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः बालात्रिपुर सुन्दरी देवता। तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

अरुणकिरणजालै रञ्जिताशावकाशा
विधृतजपवटीका पुस्तकाभीतिहस्ता।
इतरकरवराढ्या फुल्लकह्लारसंस्था
निवसतु हृदि बाला नित्यकल्याणशीला॥)

'श्रीं ह्रीं क्लीं ॐ नमो भगवति अन्नपूर्णे ममाभिलषितमन्नं देहि स्वाहा' इति श्रीदेव्या उपाङ्गभूता अन्नपूर्णा॥22॥

(अन्नपूर्णेश्वरीमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, अन्नपूर्णेश्वरी देवता। तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

आदाय दक्षिणकरेण सुवर्णदर्वी
दुग्धान्नपूर्णमितरेण च रत्नपात्रम्।
अन्नप्रदाननिरतां नवहेमवर्णाम्
अम्बां भजे कनकभूषणमाल्यशोभाम्॥)

'ॐ आं ह्रीं क्रों एहि परमेश्वरि स्वाहा' (इयं श्रीदेवीप्रत्यङ्गभूता-अश्वारूढा)॥23॥

(अश्वारूढामन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, अश्वारूढा देवता। तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

बद्ध्वा पाशेनाङ्कुशेन कृष्यमाणां स्वसाध्यकम्।
घ्नन्तीं वेत्रेण फालस्रक्पाणिमश्वासनां भजे॥)

ध्यानान्तरम्-

अश्वारूढा कराग्रे नवकनमयीं वेत्रयष्टिं दधाना
इचेऽन्ये धारयन्ती स्फुरति धनुर्लता पाशहस्ता सुसाध्या॥
देवी नित्यप्रसन्ना शशिशकललसत्केशपाशा त्रिणेत्रा
दद्यदद्यानवद्यां श्रियमखिलसुखप्राप्तिहृद्यां श्रियै नः॥)

(श्रीविद्यागुरुपादुकामन्त्रस्तु-आन्हिकप्रकरण एवोक्त इह पठितव्यः)। तद्यथा-

'ऐ ह्रीं श्रीं हस्ख्फ्रे ह स क्ष म ल व र यू स ह क्ष म ल व र यीं हसौः, स्हौः अमुकानन्दनाथ श्रीगुरुपादुकां पूजयामि नमः॥24॥

(श्री विद्यागुरुपादुकामन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिः ऋषिः, पंक्तिच्छन्दः, श्रीविद्यागुरुपादुका देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

तेजोमयमहाविद्यां शेखराञ्चितमस्तकाम्।
रक्तां चतुर्भुजां वन्दे श्रीविद्यागुरुपादुकाम्॥)

(अथ मूलविद्या-सा च गुरुमुखादवगता कादिनाम्नी-

'कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्री॥। 25॥

(बाला अन्नपूर्णा अश्वारूढा श्रीपादुका चेत्येताभिश्चतसृभिर्युक्ता मूलविद्या साम्राज्ञी मूलधारे विलोकनीया)।

(ध्रषिच्छन्दोदेवतादिकं गुरुपरम्परातः प्राप्तमवगन्तव्यम्।)

'ऐं नमः उच्छिष्टचण्डालि मातङ्गि सर्ववशङ्करि स्वाहा'

(इति श्यामाङ्गभूता लघुश्यामा)॥26॥

(लघुश्यामामन्त्रस्य मतङ्ग ऋषिः, विराट्छन्दः, श्रीलघुश्यामाम्बा देवता तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

स्मरेत्प्रथमपुष्पिणीं रुधिरबिन्दुशोणाम्बरां
गृहीतमधु-पात्रिकां मदविघूर्णनेत्राञ्चलाम्।
घनस्तनभरालसां गलितचूलिकां श्यामलां
करस्फुरितवल्लकीविमलशङ्खताटङ्किनीम्॥
माणिक्यवीणामुपलालयन्तीं मदालसां मञ्जुलवाग्विलासाम्।
माहेन्द्रनीलद्युतिकोमलाङ्गीं मातङ्गकन्यां मनसा स्मरामि॥

(इति वा॥)

'ऐं क्लीं सौ' वद वद वाग्वादिनि स्वाहा'।

(इयं श्यामाङ्गभूता वाग्वादिनी)॥27॥

(वांगीश्वरीमन्त्रस्य कण्व ऋषिः, विराट्छन्दः, वागीश्वरी देवता तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

अमलकमलसंस्था लेखनीपुस्तकोद्यत्
करयुगलसरोजा कुन्दमन्दारगौरा।
धृतशशधरखण्डोल्लासिकोटीरपीठा
भवतु भवभयानां भङ्गिनी भारती नः॥)

ॐ ओष्ठपिधाना नकुली दन्तैः परिवृता पविः।
सर्वस्यैवाच ईशाना चारु मामिह वादयेत्॥

(इयं श्यामाप्रत्यङ्गभूता नकुलीविद्या)॥28॥

(नकुलीवागीश्वरीमन्त्रस्य कहोल ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, नकुली-वागीश्वरी देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

नकुली वज्रदन्ताली साध्यजिह्वाहिदंशिनी।
भक्तवक्तृत्वजननी भावनीया सरस्वती॥)

श्री विद्यागुरुपादुकैव प्रथमबीजत्रयस्थाने बालासहिता श्यामागुरुपादुका भवति। यथा-

'ऐं क्लों सोः ह्स्ख्फ्रे हसक्षमलवरयूं सहक्षमलवरयीं ह्सौः स्हौः अमुकानन्दनाथश्रीगुरूपादुकां पूजयामि नमः'॥29॥

(श्यामागुरुपादुकामन्त्रस्य मतङ्ग ऋषिः, पंक्तिच्छन्दः, श्यामागुरु-पादुका देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियेगः। ध्यानम्-

वन्दे गुर्वङ्घ्रिमुकुटां श्यामलां शुकपाणिनीम्।
समस्तसिद्धिजननी श्यामलागुरुपादुकाम्॥)

'ऐं ह्रीं श्रीं ऐ क्लीं सौः ॐ नमो भगवति श्रीमातङ्गीश्वरि सर्वजन-मनोहारि सर्वमुखरञ्जिनि, क्लीं ह्रीं श्रीं सर्वराजवशङ्करि सर्वस्त्री पुरुषवशङ्करि सर्वदुष्टमृगवशङ्करि सर्वसवशङ्करि सर्वलोकवशङ्करि (त्रैलोक्य) अमुकं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं श्रीं ह्रीं ऐ' (इत्यष्ट-नवतिवर्णा राजश्यामला पूर्वोक्ताभिरङ्गोपाङ्गपादुकेत्येताभिश्च-चतसृ-भिर्विद्याभित्सहिता हृच्चक्रें यष्टव्या)॥30॥

(ऋष्यादिकं गुरुपरम्परातोऽवगन्तव्यम्)

'लृ' वाराहि लृ उम्मत्तभैरवि पादुकाभ्यां नमः'

(इयं वार्ताल्यङ्गभूता लघुवार्ताली)॥31॥

(लघुवाराहीमन्त्रस्य नारद ऋषिः, पंक्तिच्छन्दः, लघुवाराही देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

महार्णवे निपतितामुद्धरन्तीं वसुन्धराम्।
महादंष्ट्रां महाकायां नमाम्युन्तङ्गभैरवीम्॥)

'ॐ ह्रीं नमो वाराहि घोरे स्वप्नं ठः ठः स्वाहा'

(इयं स्वप्ने शुभाशुभवक्त्री वार्ताल्या उपाङ्गभूता स्वप्नवाराही)॥32॥

(स्वप्नवाराहीमन्त्रस्य अग्नि ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, स्वप्नवाराही देवता। तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

स्वप्ने शुभाशुभं भावि शासन्तीं भक्तकार्ययोः।
दुःस्वप्नहारिणीं वन्दे वाराहीं स्वप्नायिकाम्॥)

ॐ नमो भगवति तिरस्करिणि महामाये महानिद्रे सकल पशुजनमनश्च-चक्षुःश्रोत्र तिरस्कारणं कुरु कुरु स्वाहा॥33॥

(तिरस्करिणीमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्रीच्छन्दः, तिरस्करिणी देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

मुक्तकेशीं विवसनां सर्वाभरणभूषिताम्।
स्वयोनिदर्शनान्मुह्यत्पशुवर्गां नमाम्यहम्॥

'ऐ ग्लौं ह्स्ख्फ्रें हसक्षमलवरयूं सहक्षमलवरयीं ह्सौः स्हौः अमुका-नदनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः'। (एषा वार्तालीगुरुपादुका)॥34॥

(वाराहीगुरुपादुकामन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः गायत्रीच्छन्दः, वाराहीगुरु-पादुकादेवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

देशिकाङ्घ्रिलसन्मौलि खड्गिनीञ्च कपालिनीम्।
भावयामि घनच्छायां पञ्चमीगुरुपादुकाम्॥)

'ऐं ग्लौं ऐं नमो भगवति वार्तालि वार्तालि वाराहि वाराहि वराह-मुखि वराहमुखि अन्धे अन्धिनि नमः। रुन्धे रुन्धिनि नमः। जम्भे जम्भिनि नमः। मोहे मोहिनि नमः। स्तम्भे स्तम्भनि नमः। सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां र्ववाक्चित वक्षुर्मुखगतिजिह्वास्तम्मनं कुरु करु शीघ्रं वश्यं ऐं ग्लौं ठः ठः हुँ अस्त्राय फट् (इति द्वादशोत्तरशताक्षरो महावराही-मन्त्रः)॥35॥

(पूर्वोक्ताभिश्चतसृभिर्युक्तयं महावाराही आज्ञाचक्रे परिपूज्या।)

प्रथमद्वितीयकूटयोः हल्लेखावर्जं पञ्चदश्येव त्रयोदशाक्षरी श्रीपूर्तिविद्या ब्रह्मरान्ध्रे यष्टव्या।

तद्यथा- 'क ए ई ल ह स क ह ल स क ल ह्रीं' (इयं कादिपूर्तिविद्या) 'ह सक ल ह स क ह ल स क ल ह्रीं' (इयं हादिपूर्तिविद्या)॥36॥

(श्रीपूर्तिविद्यामन्त्रस्य दक्षिणामूर्ति ऋषिः, पंक्तिच्छन्दः, श्रीपूर्तिविद्या देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।)

प्रथमत्रिकस्थाने त्रितारी कुमारीवाक् ग्लौं इत्यष्टबीजपूर्वा श्रीगुरुपादुकैव

महापादुका सर्वमन्त्रसमष्टिरूपिणी स्वैक्यविमर्शिनी महासिद्धिप्रदायिनी द्वादशान्ते वरिवस्या। यथा-

''ऐं ह्रीं श्रीं ऐ क्लीं सौः ऐं ग्लौं ह्स्ख्फ्रें हसक्षमलवरयूं सहक्षमलवारयों ह्सौः स्हौः अमुकानन्दनाथश्रीगुरुपादुकां पूजयामि नमः॥37॥

(महापादुकामन्त्रस्य दक्षिणामूर्ति ऋषिः, पंक्तिच्छन्दः, श्रीमहापादुका देवता, तत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ध्यानम्-

सर्वविद्यामयीं सर्वशक्तिपीठस्वरूपिणीम्।
कराग्रे हृदये मूले देशिकाङ्घ्रियुगत्रयम्॥
दधतीं दीप्तभूषाढ्यां श्रीमहापादुकां नमः।

(इति ऋष्यादिसहितरश्मिमाला)। रश्मिमालामन्त्रा आहत्य सप्तत्रिशति। एते ब्राह्मे मूहूर्ते सकृदावर्तनीयाः सर्व एववे मन्त्राः श्रीगुरुमुखा-दवगत्यैव पठिताः महते श्रेयसे, नान्यथेति शिवशासनम्।

पुस्तके लिखितान् मन्त्रानवलोक्य जपेत्तु यः।
स जीवन्नेव चाण्डालो मृतः श्वा चाभिजायते॥

इति सांख्यायनतन्त्रवचनेन गुरुमुखागमं विना जपस्य निषेधात्॥

अथ वाञ्छाकल्पलता

श्रीगुरुभ्यो नमः। श्रीगणेशाय नमः। श्रीक्षेत्रपालाय नमः। श्रीसरस्वत्यै नमः। श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्यै नमः। मूलमुच्चार्य। तालत्रयं कृत्वा। मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा।

ॐ अस्य श्रीवाञ्छाकल्पलताविद्यागणेशस्य मनोर्नानासूक्तसमूहस्य, आनन्दभैरवगणकाङ्गिरसकश्यपवशिष्ठविश्वामित्रसंवनना ऋषयः, देवीगायत्री-निचृद्गायत्रीपङ्क्त्यनुयष्टुपूनिचृत्त्रिष्टफब्जगत्यश्छन्दांसि, श्रीमन्महात्रिपुर-सुन्दरोमहागणपतिसम्वादारन्यमृतरुद्रा देवताः, श्रीं बीजम्, ह्रीं शक्ति, क्लीं कीलकम्, मम श्रीमहागणपतिमहात्रिपुरसुन्दरीसम्वादाग्न्यमृत-रुद्रप्रसादवाञ्छितार्थफलप्रसिद्वये वाञ्छाकल्पतोपस्थाने विनियोगः। इति सङ्कल्प्य।

आनन्दभैरवगणकाङ्गिरसकश्यपवशिष्ठविश्वामित्रसंवनन ऋषिभ्यो नमः शिरसि, देवीगायत्रीनिचृद्गायत्रीपंक्त्यनुष्टुपूनिचृत्त्रिष्टुब्जगतीछन्देभ्यो नमः मुखे, महाश्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी गणपतिसंवादाग्न्यमृतरुद्रदेवताभ्यो नमः हृदये, श्रीं बीजाय नमो नाभौ, ह्रीं शक्तये नमो गुह्ये, क्लीं कीलकाय नमः आधारे, इति न्यस्य मूलेन व्यापकं चरेत्।

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गं क ए ई ल ह्रीं गणपतये हसकहलह्रीं वरवरद सकलह्रीं सर्वजनं में वशमानय स्वाहा। इति त्रिचत्वारिंशदर्णोमनुः।

ऐं क्लीं सौः श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी 11 ह्रीं सर्वज्ञायै ह्रां गां ब्रह्मात्मने अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ऐं0 11 ह्रीं नित्यतृप्तायै ह्रीं गीं विष्ण्वात्मने तर्जनीभ्यां स्वाहा। ऐं0 11 ह्रीं स्वतन्त्रायै हैं गैं ईश्वरात्मने अनामिकाभ्यां हुम्। ऐं0 11 श्रीं नित्यमलुप्तायै श्वहौं गौं सदाशिवात्मने कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्। ऐं0 11 ह्रीं अनन्तायै हः गः सर्वात्मने करतलकरपृष्ठाभ्या फट्। एवं हृदयादिन्यासं विधाय पुनर्मूलेन त्रिर्त्याप्य ध्यायेत्। यथा-

हेमाद्री हेमपीठस्थितिममरगणैरीड्यमानां विराजत्-
पुष्पेष्विक्ष्वासिपाशाङ्कुशकरकमलां रक्तवेषातिरक्ताम्।
दिक्षूद्यद्भिश्चतुर्भिर्मणिमयकलशैः पञ्चशक्त्यैकविद्याम्,
स्वस्थां क्लृप्ताभिषेकां भजत भगवतीं भूतिदामन्त्ययामे॥1॥

बीजापूरगदेक्षुकार्मुकरुजा चक्राब्जपाशोत्पल-
ब्रीह्यग्रस्वविषाणरत्नकलशप्रोद्यत्कराम्भोरुहः
ध्येयो वल्लभया सपद्मकरया, श्लिष्टो ज्वलद्भूषया,
विश्वोत्पत्तिविपत्तिस्थितिकरो विघ्नेश इष्टार्थदः॥2॥

धवलनलिनराजच्चन्द्रमध्ये निषण्णम्, करधृतवरपाशं
साभयं साङ्कुशञ्च।
अमृतवपूपमिन्दुक्षीरवर्ण त्रिनेत्रम्, प्रणमत सुरवन्द्यं
मङ्क्षु सम्वादयन्तम्॥3॥

स्फुटितनलिनसंस्थं मौलिबद्धेन्दुरेखा गलदमृतरसार्द्र
चन्द्रवह्न्यर्कनेत्रम्।
स्वकरकलितमुद्रावेदपाशाक्षमालम्, स्फटिर
जतमुक्तागौरमीशं नमामि॥4॥

(मुद्राज्ञानमुद्रेत्यर्थः)।

इति ध्यात्वा, मुद्रां प्रदर्श्य-

श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी महागणपतिसम्वादाग्न्यमृतरुद्रेभ्यः लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि नमः इति अङ्गुष्ठकनिष्ठिकाभ्याम्। श्रीमन्महात्रिपुर-सुन्दरीमहागणपतिसंवादाग्न्यमृत रुद्रेभ्यः हं आकाशत्मकं पुष्पं समर्पयामिः इति तर्जन्यङ्गुष्ठाभ्याम्। श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीमहागणपतिसंवादा-अमृतरुद्रेभ्यः यं वाय्वात्मकं धूपं समर्पयामि नमः इति अङ्गुष्ठतर्जनीभ्याम्। श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी महागणपतिसंदाग्न्यमृतरुद्रेभ्यः रं वह्न्यात्मकं दीपं समर्पयामि नमः इति अङ्गुष्ठाभ्या॥श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी- महागणपतिसंवादग्न्यमृत रुद्रेभ्यः वं अमृतात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि नमः अष्ङ्गुष्ठमध्यमाभ्या॥श्रीमन्महात्रिपुर-

सुन्दरीमहागणपतिसंवादग्यमृत रुद्रेभ्यः वं अमृतात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि नमः अङ्गुष्ठानामिकाभ्याम्। श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीमहागणपतिसंवादाग्न्य-मृतरुद्रेभ्यः सं सर्वात्मकं सर्वोपचार समर्पयामि नमः इति संहताभिः सर्वाङ्गुलीभिः दद्यात्। एवं मानसोपचारैः सम्पूज्य, गुरुदेवतात्मनामैक्य भावयित्वा। रात्रै अन्त्ययामे सूर्योदयात्पूर्व शनैः शनैः जपेत्।

(1) ॐ ऐं ह्रीं श्री "ई"

(2) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं परोरजसे सावदोम्,

(3) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हसकल हसकहल सकलह्रीं, प्रत्येकं दशवारं जपित्वा,

ॐ एं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गुगुरीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं सौः 29। यदद्यकच्चवृत्रहन्नुदगा अभिसूर्य व तदिन्द्र ते वशे 23। गं क्षिपप्रसादनाय गणपतये वर वरद आं ह्रीं कों सर्वजनं में वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐ॥36॥1॥

ॐ ऐं.... सौः 29। तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् 23। गं......ऐं 36॥2॥

ॐ ऐं.... सौः 29। त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिबर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृततात्॥32॥गं......ऐं 36॥3॥

ॐ ऐं.... सौः 29। जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहादि वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः 43। गं.... ..ऐं 36॥4॥

ॐ ऐं.... सौः 29। समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्। समानं मनमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि 44 गं. .....ऐं 36॥5॥

ॐ ऐं.... सौः 29। सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर 30। गं......ऐं 36॥36॥

ॐ ऐं.... सौः 29। समानो .... जुहोषि 44॥गं......ऐं 36॥7॥

ॐ ऐं.... सौः 29। जात .... त्यग्निः 43॥गं......ऐं 36॥8॥

ॐ ऐं.... सौः 29। त्र्यम्ब ..... मृतात् 32॥गं......ऐं 36॥9॥

ॐ ऐं.... सौः 22। तत्स ..... यात् 23॥गं......ऐं 36॥10॥

ॐ ऐं.... सौः 29। यदद्य ...... वशे 23॥गं......ऐं 36॥11॥

ॐ ऐं.... सौः 29। गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कविनामुप-श्रवस्तमम्। ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आनः शृण्वन्नूतिभिः सीदसाद-नम् 48॥गं......ऐं 36॥12॥

ॐ भः भद्रं नो अपिवातयः मनः। ॐ ह्रीं वं ठं अमृतरुद्राय आं ह्रीं क्रों प्रतिकूलं में नश्यत्वनुकूलं में वशमानय वशमानय स्वाहा॥13॥

दमयन्तीनलाभ्याश्च नमस्कारं करोम्यहम्। अविवादो भवेदत्र कलिदोषप्रशान्तिदः॥

ऐकमत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानाम् पृथग्धियाम्।
निर्वैरिता च जायेत संवादाग्ने! प्रसीद मे॥।

इति प्रथमः पर्यायः

ॐ ऐं.... सौः 29। यदद्य ...... वशे 23॥गं......ऐं 36॥1॥

ॐ ऐं.... सौः 29। तत्स ...... यात् 23॥गं......ऐं 36॥2॥

ॐ ऐं.... सौः 29। त्र्यम्ब ...... मृतात् 32॥गं......ऐं 36॥3॥

ॐ ऐं.... सौः 29। जात ...... त्यग्नि 43॥गं......ऐं 36॥4॥

ॐ ऐं.... सौः 29। समा ...... होमि 44॥गं......ऐं 36॥5॥

ॐ ऐं.... सौः 29। संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनासि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते 32॥गं......ऐं 36॥6॥

ॐ ऐं.... सौः 29। समा ...... होमि.... 44॥गं......ऐं 36॥7॥

ॐ ऐं.... सौः 29। जात ...... त्यग्नि.... 43॥गं......ऐं 36॥8॥

ॐ ऐं.... सौः 29। त्र्यम्ब ...... मृत्तत् 32॥गं......ऐं 36॥9॥

ॐ ऐं.... सौः 29। तत्स .... यात् 23॥गं......ऐं 36॥10॥

ॐ ऐं.... सौः 29। यदद्य वशे 23॥गं......ऐं 36॥11॥

ॐ ऐं.... सौः 29। अग्गेमन्युं प्रतिनुदन् परेषामदब्धो गोपाः परिपाहि नस्त्वम्। प्रत्यञ्चों यन्तु निगुतः पुनस्ते मैषां चित्तं प्रबुधां विनेषत् 43॥गं......ऐं 36॥12॥

ॐ भुवः मरुतामोजसे स्वाहा॥13॥ॐ ह्रीं वं ठं अमृतरुद्राय आं ह्रीं क्रों प्रतिकूलं में नश्यत्वनुकूलं मे वशमानय वशमानय स्वाहा।

दमयन्तीनलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम्।
अविवादो भवेदत्र कलिदोषप्रशान्तिदः॥

ऐकमत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग्धियाम्।
निर्वैरिता च जायेत संवादाग्ने! प्रसीद मे॥

इति द्वितीयः पर्यायः

ॐ ऐं.... सौः 29। यदद्य ...... वशे 23॥गं......ऐं 36॥1॥

ॐ ऐं.... सौः 29। तत्स ...... यात् 23॥गं......ऐं 36॥2॥

ॐ ऐं.... सौः 29। त्र्यम्ब ...... मृतात् 32॥गं......ऐं 36॥3॥

ॐ ऐं.... सौः 29। जात ...... त्यग्नि 43॥गं......ऐं 36॥4॥

ॐ ऐं.... सौः 29। समा ...... होमि 44॥गं......ऐं 36॥5॥

ॐ ऐं.... सौः 29। समा ...... होमि 44॥गं......ऐं 36॥6॥

ॐ ऐं.... सौः 29। समा ...... होमि 44॥गं......ऐं 36॥7॥

ॐ ऐं.... सौः 29। जतः ...... त्यग्नि 43॥गं......ऐं 36॥8॥

ॐ ऐं.... सौः 29। त्र्यम्ब ...... मृतात् 32॥गं......ऐं 36॥9॥

ॐ ऐं.... सौः 29। यो मामग्ने भागिनं सन्तशथाभागं चिकीर्षति। अभागमग्ने तं कुरु मामग्ने भागिनं कुरु स्वाहा 36॥गं......ऐं 36॥12॥

ॐ स्क इन्द्रो विश्वस्य राजति॥13॥ॐ ह्रीं वं ठं अमृतरुद्राय आं ह्रीं क्रों प्रतिकूलं में नश्यत्वनुकूलं में वशमानय वशमानय स्वाहा।

दमयन्तीनलाभ्याञ्च नमस्कारं करोम्यहम्।
अविवादो भवेदत्र कलिदोषप्रशान्तिदः॥

ऐकमत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग्धियाम्।
निर्वैरिता च जायेत संवादाग्ने प्रसीद मे॥।

इति चतुर्थः पर्यायः

इति जपित्वा,

गुह्यातिगुह्यगोप्त्रीत्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु देवेशि, त्वत्प्रसादान्महेश्वरि॥

इति जपं निवेदयेत्॥

एवं प्रत्यहं निशान्ते चतुर्वारं पठेत्॥सर्वैश्वर्य॥सर्ववेदान्त-फलमश्नुते। इति शम्॥

॥इतिवाञ्छाकल्पलताप्रयोगः समाप्तः॥

अथ श्रीवाञ्छाकल्पलता-विधानम्

प्रजपेद्दिष्टसिद्ध्यर्थ विद्याग्रहणसंयुतः।
तद्भवेद् वेकिमन्त्राः भेदेनात्यर्थविद्यया॥
अष्टवारं जपेन्नित्यं सर्वाभीष्टमवाप्नुयात्।
जपेत् षोडशसाहस्रं तर्पणाहुतियोगतः॥2॥

श्री विद्यायास्तु साधर्म्य साधीयेत्साधितो मनुः।
पुरश्चर्याविधानेन साधकः सर्वदा जपेत्॥3॥

तत्सर्व लभते नित्यं वाञ्छाकल्पलतामनीः।

इत्येतत्कथितं गुह्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥4॥

जपेत्षोडशसाहस्रं षट्साहस्रमथापि वा।
पायसेन हुनुद्देवि नारिकेलफलैस्तिलैः॥5॥

असाध्यं साधयेल्लोके अवश्यं वशमाप्नुयात्।
किमत्र बहुनोक्तेन सर्वान् कानानवाप्नुयात्॥6॥

(इतिकुमारसंहितायाम्)

(तन्त्रान्तरे)

वाञ्छाकल्पलतायास्त न होमो न च तर्पणम्।
स्मरणादेव सिद्धिःस्यात् यदिच्छति हि तद्भवेत्॥1॥

एकावृत्या वशे लक्ष्मीः पञ्चावृत्त्या वशं जगत्।
दशावृत्त्या तथा विष्णुरुद्रशक्तिर्भवेदिह॥2॥

सार्वभौमः शतावृत्त्या भवत्येव न संशयः।

तन्त्रराजोक्तं नित्याकवचम्

समस्तापतद्विमुक्त्यर्थं सर्वसम्पदवाप्तये।
भूतप्रेतपिशाचादिपीडाशान्त्ये सुखाप्तये॥

समस्तरोगनाशाय समरे विजयाय च।
चौरसिंहद्वीपिगजगवयादि - भयानके॥

अरण्ये शैलगहने मार्गे दुर्भिक्षके तथा।
सलिलाग्निमरुपीडास्वब्धौ पीतादिसङ्कटे॥

प्रजय्य नित्याकवचं सकृत्सर्व तरत्यसौ।
सुखी जीवति निर्द्वन्द्वो निःसपत्नो जितेन्द्रियः॥

शृणु तत्कवचं देवि! वक्ष्ये तव तदात्मकम्।
येनाहमपि युद्धेषु देवासुरजयी सदा॥

सर्वतः सर्वदाऽऽत्मानं ललिता पातु सर्वदा।
कामेशी पुरतः पातु भगमाला त्वनन्तरम्॥

दिशं पातु तथा दक्षपार्श्व में मातु सर्वदा।
नित्यक्लिन्ना तु भेरुण्डा दिशं पातु सदा मम॥

तथैव पश्चिमं भागं रक्षेत्सा बह्निवासिनी।
महावज्रेश्वरी रक्षेदनन्तरदिशं सदा॥

वामपार्श्व सदा पातु दूती में त्वरिता ततः।
पालयेतु दिशं वात्यां रक्षेन्मां कुलसुन्दरी॥

नित्यामामूर्ध्वतः पातु साऽधो मे पातु सर्वदा।
नित्या नीलपताकाख्या विजया सर्वतश्च माम्॥

करोतु मे मङ्गलानि सर्वदा सर्वमङ्गला।
देहे नियमनः प्राणान् ज्वालामालिनिविग्रहा॥

पालयेदनिशं चित्रा चित्तं मे पातु सर्वदा।
कामात कोधात् तथा लोभान्मोहान्मानान्मदादपि॥

पापान्मत्सरतःशोकात् संशयात्सर्वतः सदा।
स्तौमित्याच्च समुद्योगादशुभेषु तु कर्मसु॥

असत्यसात् क्रूरचिन्तातो हिंसातश्चोरतस्तथा।
रक्षन्तु मां सर्वदा ताः कुर्वन्त्विच्छां शुभेषु च॥

नित्याः षोडश मां पान्तु गजारूढाः स्वशक्तिभिः।
तथा हयसमारूढाः पान्तु मां सर्वतः सदा॥

सिंहारूढास्तथा पान्तु मां तरक्षुगता अपि।
रथारूढाश्च मां पान्तु सर्वतः सर्वदा रणे॥

तार्क्ष्यारूढाश्च मां पान्तु तथा व्योमगतास्तु ताः।
भूगताः सर्वदा पान्तु मां सर्वत्र च सर्वदा॥

भूत-प्रेतपिशाचापस्मारकृत्यादिकान् गदान्।
द्रावयन्तु स्वशक्तीनां भीषणैरायुधैर्मम॥

गजाश्वद्वीपिपञ्चास्यतार्क्ष्यारूढाखिलायुधाः।
असंख्याः शक्तयो देव्याः पान्तु मां सर्वतः सदा॥

सायं प्रातर्जपन्नित्या कवचं सर्वरत्नकम्।
कदाचिन्नाशुभं पश्येन्न शृणोति च तत्समः॥

श्रीकरपात्रस्वामिविरचिते श्रीविद्यारत्नाकरे नित्याकवचं समाप्तम्।

ओं श्रीगुरुभ्यो नमः।

ओं श्रीमहागणपतये नमः।

ओं श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दर्यैमः।

॥परिशिष्टम्॥

होमः।

*पूजामण्टपस्य ईशानभागे चतुरश्राकारं हम्नायाममङ्गुष्ठोन्नतं स्थण्डिलं परिकल्प्य मूलेन निरीक्ष्य, फट् इति सामान्यार्घ्योदकेन प्रोक्ष्य कुशेन ताडयित्वा, हुं इत्यवकुण्ट्य स्थण्डिलोपरि दक्षिणमध्यमोत्तरेषु क्रमेण प्रागग्रास्तिस्रो रेखा विलिख्य, तासु रेखासु उल्लेखक्रमेण- ओं ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ब्रह्मणे नमः। 7 ययाम नमः। 7 सोमाय नमः। रुद्राय नमः। 7 विष्णवे नमः। 7 इन्द्राय नमः। इत्यभ्यर्चयेत्॥

ततः स्वदेहे षडङ्गन्यासं कुर्यात्। यथा-

7 सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः। 7 स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा। 7 उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्। 7 धूमव्यापिने कवचाय हुं। 7 सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्। 7 धनुर्धराय अस्त्राय फट्।

अनेनैव षडङ्गेन अग्नीशासुरवायुकोणेषु मध्ये दिक्षु च स्थण्डिलमभ्यचर्य तत्र अष्टकोणषट्कोणान्त्रिकोणात्मकमग्निचक्रं प्रवेण्येन दिक्षु मध्ये च क्रमात्-

7 पीतायै नमः। 7 श्वेतायै नमः। 7 अरुणावै नमः। 7 कृष्णायै नमः। 7 धूम्रायै नमः। 7 तीव्रायै नमः। 7 स्फुलिङ्गिन्यै नमः। 7 रुचिरायै नमः। 7 ज्वलिन्यै नमः। इति पीठशक्तीः समर्चयेत॥

ततः पीठमध्ये- 7 तं तमसे नमः। 7 रं रजसे नमः। 7 सं सत्वाय नमः। 7 आं आत्मने नमः। 7 अं अन्तरात्मने नमः। 7 पं परमात्मने नमः। 7 ह्रीं ज्ञानात्मने नमः।

इति पूजयेत्॥

ततः त्रिकोणे- 7 ओं ह्लीं वागीश्वरीवागीश्वराभ्यां नमः- इति मन्त्रेण जनिष्यमाणस्य वश्वेः पितरौ वागीश्वरीत्रागीश्वरौ संपूज्य तयोर्मिथुनीभावं

भावयित्वा, अरणेः सूर्यकान्ताद्वा वह्निमुत्पाद्य द्विजगृहाद्वा आनीय मृत्पात्रे ताम्रपात्रे वा अग्निस्थण्डिलाद्वहिः आग्नेय्यां ऐशान्यां नैर्ऋत्यां वा दिशि निध ााय, तस्मात्क्व्यादांशमेकमग्निशकलं फट् इति अस्त्रमन्त्रेण नैर्ऋत्यां निरस्य अग्निं मूलेन निरीक्ष्य प्रोक्ष्य च, अस्त्रेण कुशैस्ताडयित्वा कवचेमावकुण्ट्य, धेनुयोनिमुद्रे प्रदर्श्य, ततः 7 ओं रं वैश्वानर ज्ञातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा इति मूलाधारोद्गतं संविदग्निं ललाटनेत्रद्वारा निर्गमय्य तें वागीश्वरवीजस्य वागीश्वरीयोन्यां प्रवेशबुद्धया वाह्याग्नौ संयोजयेत्॥

ततः 7 कवचाय हुं इति मन्त्रेण इन्धनैराच्छाद्य 7 अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। सुवर्णत्रर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम्॥ इत्युपस्थाय। 7 उत्तिष्ठ पुरुष हरितपिङ्गल लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय मे देहि दापय स्वाहा इति वह्निमुत्थाप्य ततः ओं ह्रीं इति स्थण्डलोपरि अग्नि त्रिवारं भ्रामयित्वा स्थण्डिले स्थापयेत्। 7 चित्पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा इति प्रज्वाल्य, ज्वालिनीमुद्रां प्रदर्श्य, वागीश्वरीगर्भे धुतं ध्यात्वा 7 ऐं नमः अस्य होमाग्नेः गर्भाधानकर्म, पुंसवनकर्म, सीमन्तोन्नयनकर्म, जातकर्म, ललिताग्निरितिनाम्ना नामकरणकर्म कल्पयामि नमः, 7 ऐं नमः अस्य ललिताग्नेः अन्नप्राशनकर्म, चौलकर्म, उपनयनकर्म, गोदामकर्म, विवाहकर्म कल्पयामि नमः- इति तत्तत्कर्मभावनया अक्षतैरभ्यर्चयेत्॥

ततः मसामान्याघ्र्योदकेनाग्निं मूलेन परिषिच्य अग्निमलंकृत्य प्रागग्रैरुदगग्रैश्च कुशैः परिस्तीर्य उत्तरतो दर्भानास्तीर्य दर्वी आज्यस्थालीं प्रोक्षणीं प्रणीतां इतरदर्वी इध्मं च द्वन्द्वन्यश्चि (अधोबिलं) पात्राणि सादयित्वा द्वौ दर्भौ प्रादेशमात्रे पवित्रे कृत्वा अद्भिरनुमूज्य, सामान्याध्र्योदकेन षट् पात्राणि प्रोक्ष्य, प्रोक्षणीपात्रमादाय पुरतो निधाय, अक्षतैः सह सामान्यघ्र्यो-व्योंदकेन पूरयित्वा, हस्तयोः अङ्गुष्ठोपकनिष्ठिकाभ्यामुदग्राभ्यां पवित्राभ्यां मूलेन त्रिः प्रागुत्पूय, मूलेन सप्तधा अभिमन्त्र्य, उत्तानानि पात्राणि कृत्वा, इध्मं विस्रस्य त्रिः प्रोक्ष्य, प्रोक्षणीपात्रं दश्रिणतो निधाय, प्रणीतापात्रमादाय पुरतो निधाख्य, पवित्रे तम्मिन्निधाय, अक्षतैः सह अङ्कुशमुद्रया मूलेन सामान्याध्र्योदकेन पूरयित्वापूर्ववदुत्पूय घ्राणसममुद्धृत्य पात्रसादनादुत्तरतो

दर्भेषु सादयित्वा, वरुणाय नमः इति गन्धपुष्पाक्षतैरभ्यर्च्य दर्भैः प्रच्छाद्य, पवित्रे आज्यपात्रे निधाय, अग्नेः दक्षिणतो ब्रह्माणं दर्भेषु निषाद्य, अस्मिन् श्रीललिताहोमकर्मणि ब्रह्माणं त्वां वृणे। ओं ब्रह्मणे नम्फ सकलाराधनैः स्वर्चितम्। अपरेणाग्नि पवित्रान्तर्हितायामाज्यस्थायां आज्यं निरुप्य निरुप्य उदीचोऽङ्गारान्निरूह्य तेषु आज्यमधिश्रित्य ज्वलता तृणेनावद्योत्य द्वे दर्भाग्रे प्रच्छिद्य प्रक्षाल्य प्रतयस्य त्रिः पर्यग्निकृत्वा उदगुद्वास्य अङ्गारान्प्रत्यूह्य आज्यस्थालीं स्वपुरतो निधाय मूलेन सप्वारमभिमन्त्रय ईक्षणप्रोक्षणताडनावकुण्ठनानि कृत्वा उद्गग्राभ्यां पवित्राभ्यां पुनराहारमाज्यं त्रिरुत्पूय पवित्रग्रन्थि विस्रस्य अप उपस्पृश्य प्रागग्रं अग्नौ प्रहरित। अथ दर्व्यौ अग्नौ प्रतितप्य दर्भैः संमृज्य पुनः प्रतितप्य प्रोक्ष्य निधाया दर्भान् अद्भिः संस्पृश्य अग्नौ प्रहरति॥

इष्मम‌ादाय परिधीन् परिदधाति- स्थूलम् उदगग्रं पश्चात्, अणीयांसं दीर्घ प्रागग्रं दक्षिणतः, अणिष्ठं ह्रसिष्ठं प्रागग्रं उत्तरतः अग्निपरिस्तरणयोर्मध्ये अन्योन्यसंस्पृष्टान् निधाय, मध्यमं परिधि दक्षिणहस्तेनोपस्पृश्य अग्नेः दीक्षिणपूर्व-उत्तरपूर्वदेशयोः आधार-समिधौ निधाय अथाग्निं परिषिञ्चति- अदितेऽनुमन्यस्व, अनुमतेऽनुमन्यस्व, सरस्वतेऽनुमन्यस्व, देव सवितः प्रसुव इति परिषिच्य अग्निमलंकृत्य इध्ममादाय द्विारभिघार्य मूलमध्ययोः मयं मृगीमुद्रया गहीत्वा अस्मिन् श्रीललिताहोमकर्मणि ब्रह्मान् इध्ममाधास्ये ओं आधत्स्व इत्यनुज्ञातः हस्ताभ्यां इध्मं आदधाति। स्रुवेण आज्यमादाय तूष्णीं आघारावाघारयति। यथा-

(इतरदव्या) वायव्यादाग्नेयान्त्तं स्वाहा प्रजापतय इदं न मम।

(प्रधानदव्यो) नैर्ऋत्यादीशानान्त्तं स्वाहा इन्द्रायेदं न मम।

(उत्तरार्धपूर्वाधे) अग्नये स्वाहा अग्नय इदं।

(दक्षिणार्णपूर्वाधे) सोमाय स्वाहा सोमायेदम्।

(समं पूर्वेण मध्ये) अग्नये स्वाहा अग्नय इदम्॥

आरम्भप्रभृति एतत्क्षणपर्यन्तं मध्ये संभावितसमस्तदोषप्रायश्चित्तार्थं

सर्वप्रायश्चित्तं होष्यामि। ओं भूर्भुवःस्वः स्वाहा प्रजापतय इदम्। अथाग्निं ध्यायेत्-

त्रिण्नयनमरुणप्ताबद्धमौलिं सुशुक्लां-
शुकमरुणमनेकाकल्पमम्भोजसंस्थम्।
अभिमतवरशक्तिं स्वस्तिकाभीतिहस्तं
नमत कनकमालालंकृतांसं कृशानुम्॥

[शारदातिलके - वैश्वानरं स्थितं ध्यायेत् समिद्धोमेषु देशिकः। शयानमाज्यहोमेषु निषण्णं शेषवस्तुषु॥]

अध अष्टकोणे स्वाग्रादिप्राढक्षिप्येन-

7 जातवेदसे नमः। 7 सप्तजिह्वाय नमः। 7 हव्यवाहनाय नमः। 7 अश्वोदराय नमः। 7 वैश्वानराय नमः 7 कौमारतेजसे नमः। 7 विश्वमुखाय नमः। 7 देवमुखाय नमः।

इत्याभिपूज्य॥

षट्कोणे षडङ्ग यथा-

7 सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः। 7 स्वस्ति पूर्णाय शिरसे स्वाहा। 7 उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्। 7 धूमव्यापिने कवचाय हुम्। 7 सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्। 7 धनुर्धराय अस्त्राय फट्। इत्यभ्यर्च्य।

त्रिकोणे-

7 ओं वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा इति मन्त्रेण अग्नि पुष्पाक्षतैरर्चयेत्।

अथ अग्नेः सप्तजिह्वासु एकैकां आज्याहुतिं कुर्यात्। यथा-

7 हिरण्यायै नमः	स्वाहा -	हिरण्याया इदं न मम		(ऐशान्यां)
7 कनकायै	"	कनकाया	"	(प्राच्यां)
7 रक्तायै	"	रक्ताया	"	(आग्नेय्यां)

7 कृष्णायै "	कृष्णाया	"	(नैर्ऋत्यां)
7 सुप्रभायै "	सुप्रभाया	"	(पश्चिमायां)
7 अतिरक्तायै "	अतिरक्ताया	"	(वायव्यायां)
7 बहुरूपायै "	बहुरूपाया	"	(मध्ये)

ततस्तिस्र आहुतीर्जुहुयात्। यथा-

7 वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा- अग्नय इदम्। 7 उत्तिष्ठपुरुष हरितपिङ्गळलोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय मे देहि दापय स्वाहा - अग्नय इदम्। 7 चित्पिङ्गळ हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा - अग्नय इदम्। अथ अग्नेर्मध्यभागे स्थितायां दक्षिणोत्तरायतायां बहुरूपाख्यजिह्वायां, ओं ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्रैं ह्स्क्ल्रीं ह्स्रौः। महापद्मवनान्तस्थे कारणानन्दविग्रहे। सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि॥इति श्रीदेवीमावाह्यां, उपचारमन्त्रैः गन्धादीन् पञ्चोपचारानाचर्य पूजाक्रमेण जुहुयात्। यथा-

4 गणपतिमूलं महागणपतये स्वाहा (त्रिः)॥

4 मूलं श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दर्यै स्वाहा (दशकृत्वः)॥

क-5 हृदयाय नमः हृदयादेव्यै, ह-6 शिरसे स्वाहा शिरोदेव्यै, स-5 शिखायै वषट् शिखादेव्यै, क-5 कवचाय हुं कवचदे, ह-6 नेत्रत्रयाय वौष्ट नेत्रदेव्यै, स-4 अस्त्राय फट् अस्त्रदेव्यै स्वाहा॥

अः मूलं अः ललितामहानित्यायै (त्रिः), तत्तिथिनित्यामन्त्र तत्तिथिनित्यायै, अः मूलं अः ललितामहानित्यायै स्वाहा॥4 अ ऐं सकलह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे सौः अं कामेश्वरीनित्यायै।

4 आं ऐं भगभुगे भगिनि भगोदरि भगमाले भगावहे भगगुह्ये भगयोनि भगनिपातिनि सर्वभगवशंकर भगरूपे नित्यक्लिन्ने भगस्वरूपे सर्वाणि भगानि मे ह्यानय वरदे रेते सुरेते भगक्लिन्ने क्लिन्नद्रवे क्लेदय द्रावय अमोघे भगविजे क्षुभ क्षोभय सर्वसत्वान् भागेश्वरि ऐं ब्लूं जं ब्लं में ब्लूं मों ब्लूं हें

ब्लूं हें क्लिन्ने सर्वाणि भगानि मे वशमानय स्त्रीं हर ब्लें ह्रीं आं भगमालिनीनित्यायै स्वाहा॥

4 इं ओं ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा इं नित्यक्लिन्नानित्यायै॥

4 ईं ओं क्रों भ्रों क्रौं झ्रौं छ्रौं त्रे स्वाहा ईं भेरुण्डानित्यायै।

4 उं ओं ह्रीं वह्निवासिन्यै नमः उं वह्निवासिनीनित्यायै स्वाहा॥

4 ऊं ह्रीं क्लिन्ने ऐं क्रों नित्यमदद्रवे ह्रीं ऊं महावज्रेश्वरीनित्यायै॥

4 ऋं ह्रीं शिवदूत्यै नमः ह्धं शिवदूतीनित्यायै स्वाहा।

4 ॠं ओं ह्रीं हु स्रे च छे क्षः स्त्रीं हुं क्षें ह्रीं फट् ॠं त्वरितनित्यायै स्वाहा॥

4 ऌं ऐं क्लीं सौः ऌं कुलसुन्दरीनित्यायै स्वाहा॥

4 ॡं ह्स्क्ल्र्डैं ह्स्क्ल्र्डीं ह्स्क्ल्र्डौः ॡं नित्यानित्यायै स्वाहा॥

4 एं ह्रीं फ्रें स्रूं क्रों आं क्लीं ऐं ब्लूं नित्यमदद्रवे हुं फ्रें ह्रीं एं नीलपताकानित्यायै स्वाहा॥

4 ऐं भ्म्र्यूं ऐं विजयानित्यायै स्वाहा॥

4 ओं स्वौं ओं सर्वमङ्गळानित्यायै स्वाहा॥

4 औं ओं नमो भगवति ज्वालामालिनि देवदेवि सर्वभूतसंहारकारिके जातवेदसि ज्वलन्ति ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ह्रां ह्रीं ह्रूं र र र र र र हुं फट् स्वाहा औं ज्वालामालिनीनित्यायै स्वाहा॥

4 अं च्कौं अं चित्रानित्यायै स्वाहा॥

4 पञ्चदशी अः ललितामहानित्यायै स्वाहा॥

4 ऐं ग्लौं ह्स्ख्फ्रें हसक्षमलवरयूं ह्सौः सहक्षमलवरयीं स्हौः श्रीविद्यानन्दनाथात्मकाचर्यानन्दनाथाय स्वाहा, उड्डीशानन्दनाथाय प्रकाशानन्दनाथाय, विमर्शानन्दनाथाय, आनन्दानन्दनाथाय, षष्ठीशानन्दनाथाय, ज्ञानानन्दनाथाय, सत्यानन्दनाथाय, पूर्णानिन्दनाथाय, मित्रेशानन्दनाथाय,

स्वभावानन्दनाथाय, प्रतिभानन्दनाथाय, सुभगानन्दनाथाय स्वाहा।

4 परप्रकाशानन्दनाथाय, परशिवानन्दनाथाय, पराशक्त्यम्बायै, कौलेश्वरानन्दनाथाय, शुक्लदेव्यम्बायै, कुलेश्वरानन्दनाथाय, कामेश्वर्यम्बायै, भोगानन्दनाथाय, क्लिन्नानन्दनाथाय, समयानन्दनाथाय, सहजानन्दनाथाय, गगनानन्दनाश्राय, विश्वानन्दनाथाय, विमलानन्दनाथाय, मदनानन्दनाथाय, भुवनानन्दनाथाय, लीलाम्बायै, स्वात्मानन्दनाथाय, प्रियानन्दनाथाय, (परमेष्ठिगुरु) अमुकानन्दनाथाय, (परमगुरु) अमुकानन्दनाथाय, (स्वगुरु) अनमुकानन्दनाथाय स्वाहा॥

4 अं आं सौः त्रैलोक्यमोहनचक्राय, अं अणिमासिद्धये, लघिमासिद्धयै, मं महिमासिद्धये, ईं ईशित्वसिद्धये, वं वशित्वसिद्धयै, पं प्राकाम्यसिद्धये, भुं भुक्तिसिद्धयै, इं इच्छासिद्धये पं प्रासिद्धये, सं सर्वकामसिद्धये, आं ब्राह्मीमात्रे, ईं माहेश्वरीमात्रे, ऊं कौमारीमात्रे, ॠं वैष्णवीमात्रे, ॡं वाराहीमात्रे, ऐं माहेन्द्रीमात्रे, औं चामुण्डामात्रे, अः महालक्ष्मीमात्रे, द्रां सर्वसंक्षोभिणीमुद्राशक्तयै, द्रीं सर्वविद्राविणीमुद्राशक्तये, क्लीं सर्वाकर्षिणीमुद्राशक्तये, ब्लूं सर्ववशंकरीमुद्राशक्तयै, सः सर्वोन्मादिनी मुद्राशक्त्यें, क्रों सर्वमहाङ्कुशामुद्राशक्त्यै, ह्स्ख्फ्रें सर्वखेचरीमुद्राशक्त्यै, ह्सौः सर्ववीजमुद्राशक्त्यै, ऐं सर्वयोनिमुद्राशक्त्यै, ह्स्रैं ह्स्क्ल्रीं ह्स्रौः सर्वत्रिखण्डामुद्राशक्त्यै, प्रकटयोगिनीभ्याः, अं आं सौः त्रिपुराचक्रेश्वर्ये, अं अणिमासिद्ध-यै, द्रां सर्वसंक्षोभिणी-मुद्राशक्त्यै, मूलं ललितामहात्रिपुरसुन्दर्यै स्वाहा॥

4 ऐं क्लीं सौः सर्वाशापरिपूरकचक्राय, अं कामाकर्षिण्यै, आं बुद्ध्याकर्षिण्यै, इं अहङ्काराकर्षिण्यै, ईं शब्दाकर्षिण्यै, उं स्पर्शाकर्षिण्यै, ऊं रूपाकर्षिण्यै, ॠं रसाकर्षिण्यै, ॠं गन्धाकर्षिण्यै, ऌं चित्ताकर्षिण्यै, ॡं धैर्याकर्षिण्यै, एं स्मृत्याकर्षिण्ये, ऐं नामाकर्षिण्यै, ओं बीजाकर्षिण्यै, औं आत्माकर्षिण्यै, अं अमृताकर्षिण्यै, अः शरीराकर्षिण्यै, गुप्तयोगिनीभ्यः, ऐं क्लीं सौः त्रिपुरेश्वरीचक्रश्वर्ये, लं लघिमासिद्धयै, द्रीं सर्वविद्राविणीमुद्राशक्त्यै, मूलं ललितामहात्रिपुरसुन्दर्यै स्वाहा॥

4 ह्रीं क्लीं सौः सर्वसंक्षोभणचक्राय, कं-5 अनङ्गकुसुमायै, चं-5 अनङ्गमेखलायै, टं-5 अनङ्गमदनायै, तं-5 अनङ्गमदनातुरायै, पं-5 अनङ्गरेखायै, यं-4 अनङ्गवेगिन्यै, शं-4 अनङ्गाङ्कुशायै, ळं क्षं अनङ्गमालिन्यै, गुप्ततरयोगिनीभ्यः, ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरीचक्रेश्वर्यै, मं महिमासिद्ध्यै, क्लीं सर्वाकर्षिणी मुद्राशक्त्यै, मूलं ललितामहात्रिपुरसुन्दर्यै स्वाहा॥

4 हैं ह्क्लीं ह्सौः सर्वसौभाग्यदायकचक्राय, कं सर्वक्षोभिण्यै, खं सर्वविद्राविण्यै, गं सर्वाकर्षिण्यै, घं सर्वाह्लादिन्यै, ङं सर्वसंमोहिन्यै, चं सर्वस्तम्भिन्यै, छं सर्वजृम्भिण्यै, जं सर्ववशंकर्यै, झं सर्वरञ्जिन्यै, त्रं संर्वोन्मोदिन्यै, टं सर्वार्थसाधिन्यै, ठं सर्वसंपत्तिपूरण्यै, डं सर्वमनमय्यै, ढं सर्वद्वन्द्वक्षयंकयैं, संप्रदाययोगिनीभ्यः, हैं ह्क्लीं ह्सौः त्रिपुरवासिनीचक्रेश्वर्यै, ईं इशित्वसिद्ध्यै, ब्लं सर्ववशंकरीमुद्राशक्त्यै, मूलं ललितामहात्रिपुरसुन्दर्यै स्वाहा॥

4 ह्रीं क्लीं ब्लें सर्वरक्षाकरचक्राय, मं सर्वज्ञायै, यं सर्वशक्त्यै, रं सर्वैश्वर्यप्रदायै, लं सर्वज्ञानमय्यै, वं सर्वव्याधिविनाशिन्यै, शं सर्वाधार-स्वरूपायै, षं सर्वपापहृरायै, सं सर्वानन्दमय्यै, हं सर्वरक्षास्वरूपिण्यै, क्षं सर्वेप्सितफलप्रदायै, निगर्भयोगिनीभ्यः, ह्रीं क्लीं ब्लें त्रिपुरमालिनीचक्रेश्वर्यै, पं प्राकाम्यसिद्ध्यै, क्रों सर्वमहाङ्कुशामुद्राशक्त्यै, मूलं ललितामहात्रिपुरसुन्दर्यै स्वाहा॥

4 ह्रीं श्रीं सौः सर्वरोगहरचक्राय, अं + अः (16) ब्लू वशिनीवाग्देवतायै, कं-5 क्ल्हीं कामेश्वरीवाग्देवतायै, चं-5 न्व्लीं मोदिनीवाग्देवतायै, टं-5 प्लूं विमलावाग्देवतायै, तं-5 ज्म्रीं अरुणावाग्देवतायै, पं-5 ह्स्ल्व्यूं जयिनीवाग्देवतायै, यं-4 झ्म्र्यूं सर्वेश्वरीवाग्देवतायै, शं-6 क्ष्म्रीं कौलिनीवाग्देवतायै, रहस्ययोगिनीभ्यः, ह्रीं श्रीं सौः त्रिपुरासिद्धाचक्रेश्वर्यै, भुं भुक्ति सिद्धये, ह्स्ख्फ्रें सर्वखेचरीमुद्राशक्त्यै, मूलं ललितामहात्रिपुरसुन्दर्यै स्वाहा॥

4 यां रां लां वां सां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः सर्वजम्भनेभ्यः कामेश्वरीकामेश्वर-वाणेभ्यः स्वाहा।

4 थं धं सर्वसंमोहनाभ्यां कामेश्वरीकामेश्वरधनुभ्यां स्वाहा।

4 ह्रीं आं सर्ववशीकरणाभ्यां कामेश्वरीकामेश्वरपाशाभ्यां स्वाहा।

4 क्रों क्रों सर्वस्तम्भनाभ्यां कामेश्वरीकामेश्वराङ्कुशाभ्यां स्वाहा॥

4 ह्स्रैं ह्स्क्ल्रीं ह्स्रौः महावज्रेश्वर्यै, सौः स-4 महाभगमालिन्यै, ऐं क-5 क्लीं ह-6 सौः स-4 श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै, अतिरहस्ययोगिनीभ्यः, ह्स्रैं ह्स्क्ल्रीं ह्स्रौः त्रिपुराम्बाचक्रेश्वर्यै, इं इच्छासिद्ध्यै, ह्सौः सर्वबीजमुद्राशक्त्यै, मूलं ललितामहात्रिपुरसुन्दर्यै स्वाहा॥

4 पञ्चदशी सर्वानन्दमयचक्राय, मूलं श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दर्यै स्वाहा। इति दशवारं, परापरातिरहस्ययोगन्यै, मूलं त्रिपुरसुन्दरचिक्रेश्वर्यै, पं प्राप्तिसिद्ध्यै, ऐं सर्वयोनिमुद्राशक्त्यै, मूलं ललितामहात्रिपुरसुन्दर्यै स्वाहा॥

4 षोडश्युपासकानां- तुरीयविद्या तुरीयाम्बायै, सं सर्वकाामासिद्ध्यै, ह्स्रैं ह्स्क्ल्रीं ह्स्रौः सर्वत्रिखण्डामुद्राशक्त्यै, महाषोडशी महात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकायै स्वाहा॥

पञ्चपञ्चिकादिहोमे तत्तन्मन्त्रेण प्रदर्शितरीत्या होमः कर्तव्यः॥

ततो होमावशिष्टेन आज्येन शुचं पूरयित्वा पुष्पं फलं अग्ने निधाय स्रुवेणाच्छाद्य मूलेन वौषट् इति उत्थितो जुहुयात्॥ततो बलिदानम् (पुटं 104)। ततो महाव्याहतिहोमः। यथा-

7 भूरग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा। अग्नये पृथिव्यै महत इदम्। 7 भुवो वायवे चान्तरिक्षाय च महते च स्वाहा। वायवे अन्तरिक्षाय महत इदम्। 7 सुवरादित्याय च दिवे च महते च स्वाहा। आदित्याय दिवे महत इदम्। 7 भूर्भुवःस्वश्चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते च स्वाहा। चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्यो दिग्भ्यो महत इदम्। इति चतस्र आहुतीराज्येन हुत्वा।

ऐं ह्रीं श्रीं ओं इतः पूर्व प्राणबुद्धिदेह धर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यव-स्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत स्मृतं यत्कृतं यदुक्तं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा। परब्रह्मण इदम्। इति ब्रह्मार्पणाहुतिं विदध्यात्॥

एतत्कर्मसमृद्धयर्थं जयादिहोमं करिष्ये। चित्तं च स्वाहा। चित्तयेदम्। चित्तिश्च स्वाहा। चित्या इदम्। आकूतं च स्वाहा। आकूतायेदम्। आकूतिश्च स्वाहा। आकूत्या इदम्। विज्ञातं च स्वाहा। विज्ञातायेदम्। विज्ञानं च स्वाहा। विज्ञानायेदम्। मनश्च स्वाहा। मनस इदम्। शकरीश्च स्वाहा। शकरीभ्य इदम्। दर्शश्च स्वाहा। दर्शायेदम्। पूर्णमासश्च स्वाहा। पूर्णमासायेदम्। बृहच्च स्वाहा। बृहत इदम्।

रथान्तरं च स्वाहा। रथान्तरायेदम्। मजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रपृतनाज्येषु तस्मै विशः समनमन्त सर्वाः स उग्रः स हि हव्यो बभूव स्वाहा। प्रजापतय इदम्। अग्निर्भूतानामधिपतिः स माऽवत्वस्मिन् ब्रह्मन्नस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यास्या पुरोधायामस्मिन्कर्मन्नस्यां बहूल्यॉं स्वाहा। अग्नय इदम्। इन्द्रो ज्येष्ठानामधिपतिः स माऽवतु+स्वाहा। यमायेदम्। वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स माऽवतु+स्वाहा। वायव इदम्। सूर्यो दिवोऽधिपतिः स माऽवतु+स्वाहा। यमायेदम्। चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स माऽवतु+स्वाहा। सूर्यायेदम्। चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स माऽवतु+स्वाहा। चन्द्रमस इदम्। बृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः स माऽवतु+स्वाहा। मित्रयेदम्। वरुणोऽपामधिपतिः स माऽवतु+स्वाहा। समुद्रायेदम्। अन्नँ साम्राज्यानामधिपति तन्माऽवतु+स्वाहा। अन्नायेदम्। सोम ओषधीनामधिपतिः स माऽवतुन्न। सोमायेदम्। सविता प्रसवानामधिपतिः सा माऽवतु+स्वाहा। सवित्र इदम्। रुद्र पशूनामधिपतिः स माऽवतु+स्वाहा। रुद्रायेदम्। अप उपस्पृश्य। त्वष्टा रूपाणामधिपतिः स माऽवतु+स्वाहा। त्वष्ट्र इदम्। विष्णु पर्वतानामधिपतिः स माऽवतु+स्वाहा। विष्णव इदम्। मरुतो गणानामधिपतयस्ते माऽवतु+स्वाहा। मरुद्भ्य इदम्। पितर पितामहा परेवरे ततास्ततामहा इह माऽवत। अस्मिन् ब्रह्मन्नस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मन्नस्यां देवहूत्याँ स्वाहा।

पितृभ्य इदम्। अप उपस्पृश्य। तपाड्तधामाऽन्रिर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरस ऊर्जो नाम स इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु ता इदं ब्रह्मक्षत्रं पान्तु तस्मै स्वाहा। अग्नये गन्ध्र्वायेदम्। ताभ्यः स्वाहा। ओषधीभ्योऽप्सरोभ्य इदम्। सँहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम+स्वाहा। सूर्याय गन्धर्वायेदम्। ताभ्यः स्वाहा। मरीचिभ्योऽप्सरोभ्य इदम्। सुषुम्नः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो वेकुरयो नाम+स्वाहा। चन्द्रमसे गन्धर्वायेदम्। ताभ्यः स्वाहा। नक्षत्रेभ्योऽप्सरोभ्य इदम्। भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसः स्तवा नाम+स्वाहा। यज्ञाय गन्धर्वायेदम्। ताभ्यः स्वाहा। दक्षिणाभ्योऽप्सरोभ्य इदम्। प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्यर्क्सामान्यप्सरसो वह्नयो नाम+स्वाहा। मनसे गन्धर्वायेदम्। ताभ्यः स्वाहा। ऋक्सामभ्योऽप्सरोभ्य इदम्। इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापोऽप्सरसो मुदा नाम+स्वाहा। वाताय गन्धर्वायेदम्। ताभ्यः स्वाहा। अभ्द्योऽप्सरोभ्य इदम्। भुवनस्य पते यस्य त उपरि गृहा इह च। सनोरास्वाज्यानिꣳरायस्पोषँ सुवीर्यꣳ संवत्सरीणाँ स्वस्तिꣳ स्वाहा। भुवनस्य पत्य इदम्। परमेष्ठ्यधिपतिर्मृत्युर्गन्धर्वस्तस्य विश्वमप्सरसो भुवो नाम+स्वाहा। मृत्यवे गन्धर्वायेदम्। ताभ्यः स्वाहा। विश्वस्मा अप्सरोभ्य इदम्। सुक्षितिः सुभूतिर्भद्रकृथ्सुवर्वान्पर्जन्यो विद्युतोऽप्सरसो रुचो नाम+स्वाहा। पर्जन्याय गन्धर्वायेदम्। ताभ्यः स्वाहा। विद्यभ्योऽप्सरोभ्य इदम्। दूरे हेतिरमृडयो मृत्युर्गन्धर्वस्तस्य प्रजा अप्सरसो भीरुवो नाम+स्वाहा। मृत्यवे गन्धर्वायेदम्। ताभ्यः स्वाहा। प्रजाभ्योऽप्सरोभ्य इदम्। चारु कृपणकाशी कामो गन्धर्वस्तस्याधयोऽप्सरसः शोचयन्तीर्नाम स इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु ता इदं ब्रह्म क्षत्रं पान्तु तस्मै स्वाहा। कामाय गन्धर्वायेदम्। ताभ्यः स्वाहा। अधिभ्योऽप्सरोभ्य इदम्। स नो भुवनस्य पते यस्य त उपरि गृहा इह च। डरु ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महिशर्म यच्छ स्वाहा। भुवनस्य पत्यै ब्रह्मण इदम्। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि पूरिता बभूव। यत्कामास्ते जुहमस्तन्नो अस्तु वँ स्याम पतयो रयीणां स्वाहा। प्रजापतय इदम्। भूः स्वाहा। अग्नये इदम्। भुवः स्वाहा। वायव इदम्। सुवः स्वाहा। सूर्यायेदम्। यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्रिष्टथ्स्विष्टकृद्विद्वान्थ्यर्वꣳ स्विष्टँ सुहुतं करोतु स्वाहा। अग्रये स्विष्टकृत इदम्। चरुकर्मसु प्रधानदर्व्याज्येन

निधानक्रमात् परिध्यञ्जनं कृत्वा लेपकार्यं कुर्यात्। आज्यस्थल्या दक्षिणतः प्रधानदर्वी निधाय, इतरदवी मध्ये निधाय, पात्रसाद-नार्थदर्भानादाय, प्रध ानदर्व्यामग्रं, इतरस्यां मध्यं, आज्यस्थाल्यां मूलमित्युदगपवर्ग क्रमेण त्रिरक्तवा, अक्तस्व बर्हिषस्तृणमपादाय, प्रज्ञातं निधाय, दक्षिणोत्तराभ्यां पाणिभ्यां प्रधानदर्व्यां बर्हिःप्रतिष्ठाप्य, दक्षिणेन करेणाग्नौ प्रहरति। विरुद्यम्य, अपात्ततृणमद्मौ प्रहरति। तित्ररङ्गुल्या निर्दिश्य, अग्रिमभिमन्त्रयते। अथ भूमिमुपस्पृश्य, परिधीन्प्रहृरति। मध्यमं परिधिमग्रौ प्रहृत्य, अन्यौ परिधी हस्ताभ्यामादाय युगपदग्नो प्रहरन्नुतराध्र्यस्याप्रमङ्गारेपूपोहति। दर्वीद्वयेन संस्रावं परिधीनभिजुहोति (स्वाहा) वसुभ्यो रुद्रेभ्य आदित्येभ्यः सँस्रावभागेभ्य इदम्। ओं भूर्भुवस्सुवः स्वाहा। प्रजापतय इदम्। (संकल्पः) अस्मिन् ललिताह्रोमकर्मणि अविज्ञातप्रायश्चित्तादीनि होष्यामि। अनाज्ञातं यदाज्ञातं यज्ञस्य क्रियते मिथु। अग्ने तदस्य कल्पय त्वँ हि वेत्थ यथातथँ स्वाहा। अग्नय इदम्। पुरुषसंमितो यज्ञो यज्ञ पुरुषसंमितः। अग्ने तदस्य कल्पय त्वँ हि वेत्थ यथातथँ स्वाहा। अग्नय इदम्। यत्पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्तासः। अग्ष्ठिद्वोता ऋतुविद्विजानन्यजिष्ठो देवाँ ऋतुशो यजाति स्वाहा। अग्नय इदम्। भूः स्वाहा। वायव इदम्। सुवाः स्वाहा। सूर्यायिदम्। ओं भूर्भुवस्सुवः स्वाहा। प्रजापतय इदम्। सुवाः स्वाहा। सूर्यायिदम्। ओं भूर्भुवस्वः स्वाहा। प्रजापतय इदम्। अस्मिन् ललिताहोमकर्मणि मध्ये संभावितसमस्तमन्त्रलोप-तन्त्र- लोपद्रव्यलोपाक्रियालोपाज्यलोपन्यूना- तिरेकविस्मृतिविपर्यासप्रायश्चित्तार्थ सर्वप्रायश्चितं होष्यामि। ओं भूर्भुवस्सुवः स्वाहा। प्रजापतय इदम्। श्रीविष्णवे स्वाहा। विष्णवे परमात्मन इदम्। नमो रुद्राय पशुपतये स्वाहा। रुद्राय पशुपतय इदम्। अप उपस्पृश्य। सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऋषयः सप्त धामप्रियाणि। सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरापृणस्वा घृतेन स्वाहा। अग्नये सप्तवत इदम्। आज्यपात्रदीनुत्तरतो निधाय, प्राणायामं कृत्वा, अग्नि परिषिश्चति। अदितेऽन्वमँस्थाः। अनुमतेऽन्वमँस्थाः। सरस्वतेऽन्वमँस्थाः। देव सवित प्रासावीः॥

ततः प्रणीतपात्रं स्वस्य पुरतः आदाय, पूर्णमासि पूर्ण मे भूयाः। सदसि

सन्मे भूयाः। सर्वमसि सर्व में भूयाः॥इति अन्यजलं निनीय तज्जलं प्रागादिप्रदक्षिणं - प्राच्यां दिशि देवा ऋत्विजो मार्जयन्ताम्। दक्षिणस्यां दिशि मासाः पितरो मार्जयन्ताम्। प्रतीच्यां दिशि गृहाः पशवो मार्जयन्ताम्। उदीच्यां दिश्याप ओषधयो वनस्पतये मार्जयन्ताम्। ऊर्ध्वायां दिशि यज्ञाः संवत्सरो यज्ञपतिर्मार्जयन्ताम्- इति प्रतिदिशमुत्सृज्य पुरस्तात् क्षतोपरि निस्राव्य, तेन - ब्राह्मणेष्वमृतं हितं येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनीते सदा तेन सहस्रधारेण पावमान्यः पुनन्तु मा - इत्यात्मानं प्रोक्ष्य दक्षिणतो निषादितं ब्रह्माणं संपूज्य तस्य वरं दत्त्वा प्रागादिपरिस्तरणमुत्तरे विसृजेत्। अग्नि प्रज्वलितं वन्दे जावेदं हुताशनम्। सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम्॥ इत्युपस्थाय चिदर्ग्नि, उपावरोह जातवेदः पुनस्त्वं देवेभ्यो हव्यं वह नः प्रजानन्। आयुः प्रजाँ रयिमस्मासु धेहि अजस्रो दीदिहि नो दुरोणे॥ललिताग्नि मात्युद्वासयामि नमः इत्युद्वास्य हृदये अञ्जलिं दद्यात्। तद्भूतितिलकं - त्र्यायुषं जमदग्नेः हृदये अञ्जलिं दद्यात्। तद्भूतितिलकं - त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् अगस्त्यस्य त्र्यायुषं यद्देवानां त्र्यायुषं तन्मेऽस्तु त्र्यायुषे। शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा हिँसीः॥- इति त्रियायुषेण मन्त्रेण धारयेत्। इति शिवम्॥

श्रीललितासहस्रनामावलिः

अस्य श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रमालामन्त्रस्य वशिन्यादिभ्यो वाग्देवताभ्य ऋषिभ्यो नमः मुखे। श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै देवतायै नमः हृदये। क 5 बीजाय नमः गृह्ये। स0 4 शक्तये नमः पादयीः। ह0 6 कीलकाय नमः नाभौ। चतुर्विधपुरुषार्थसिद्ध्यर्थे जपे (श्रीललिताम्बाप्रीत्यर्थ) (पूजने) विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

कूटत्रयं द्विरावृत्य (बालया वा) षडङ्गद्वयम्।
सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुर-
त्तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीनवक्षोरुहाम्।
पाणिभ्यामलिपूर्णर लचषकं रक्तोत्पलं बिभ्रतीं
सौम्यां रत्नघटस्थरक्तचरणां ध्यायेत्परामम्बिकाम्॥

ओं-ऐं-ह्रीं-श्रीं

ओं श्रीमात्रे नमः ओं   ओं चंतुर्वाहुसमान्वितायै
श्रीमहाराज्ञयै   नमः ओं
श्रीमत्सिहासनेश्वर्यै   रागस्वरूपपाशढ्यायै
चिदग्निकुण्डसंभूतायै   क्रोधाकाराङ्कुशोज्ज्वलायै 10
उद्यद्भानुसहस्राभयै   पञ्चतन्मात्रसायकायै

ओं निजारुणप्रभापूरमज्ज्द्राह्माण्डमण्डलायै नमः ओं
चम्पकाशोकपुन्नागसौगन्धिकलसत्कचायै
कुरुविन्दंमणिश्रेण्धीकनत्कोटीरमण्डितायै
अष्टमीचन्द्रविभ्राजदलिकस्थलशोभितायै
मुख चन्द्रकलङ्काभमृगनाभिविशेषकायै
वदनम्मरमाङ्गल्यगृहतोरणचिल्लिकायै

वकत्रलक्ष्मीपरीवाहचलन्मीनाभलोचानायै
नवचम्पकपुष्पाभनासादण्डविराजितायै
ताराकान्तितिरस्कारिनासाभरणभासुरायै 20
कदम्बमञ्जरीक्लृप्तकर्णपूरमनोहरायै
ताटङ्कयुगलीभूततपनोडुपमण्डलायै
पद्मरागशिलादर्शपरिभाविकपोलभुवे
न्यक्करि दशनच्छदायै
नवविद्रुमबिम्बश्रीन्यक्कयुगलीभूततपनोडुपमण्डलायै
शुद्धविद्याङ्कुराकारद्विजपङ्क्तिद्वयोज्ज्वलायै
कर्पूरत्रीवीटिकामोदसमाकर्षिदिगन्तरायै
निजसलापमाधुर्यविनिर्भर्त्सितकच्छप्यै
मन्दस्मितप्रभापूर मज्जत्कामेशमानसायै
अनाकलितसादृश्यचुबुकश्रीविराजितायै
कामेशबद्धमाङ्गल्यसूत्रशोभितकन्धरायै 30
कनकाङ्गदकेयूरकमनीयभुजान्वितायै
रत्नग्रैवेयचिन्ताकलोलमुक्ताफलान्वितायै
कामेश्वरप्रेमरत्नमणिप्रतिपणस्तन्यै
नाभ्यालवालरोमालिलताफलकुचद्वय्यै
लक्ष्यरोमलताधारतोसमुन्नेयमध्यमायै
स्तनभारदलन्मध्यपट्टबन्धवलित्रयायै
अरुणारूणकौसुम्भवस्त्रभास्वत्कटीतट्यै
रत्नकिङ्किणिकारम्यरशनादामभूषितायै
कामेशज्ञातसौभाग्यमार्दवोरुद्वयान्वितायै
माणिक्यमकुटाकारजानुद्वयविराजितायै 40
इन्द्रगोपपरिक्षिप्तस्मरतूणाभजङ्घिकायै

गूढगुल्फायै
कूर्मपृष्ठजयिष्णुप्रपदान्वितायै
नखदीधितिसंछन्ननमज्जनतमोगुणायै
पदद्वयप्रभाजालपराकृतसरोरुहायै
शिञ्जानमणिमञ्जीरमण्डित श्रीपादाम्बुजायै

ओं	मरालीमन्दगमनायै नमः		ओं सुमेरुमध्यश्रृङ्गस्थायै नमः
	महालावण्यशेवधये		श्रीमन्नगरनायिकायै
	सर्वारुणायै		चिन्तामणिगृहान्तस्थायै
	अनवद्याङ्ग्यै	50	पञ्चब्रह्मासनस्थितायै
	सर्वाभरणभूषितायै		महापद्माटवीसंस्थायै
	शिवकामेश्वराङ्कस्थायै		कदम्बवनवासिन्यै 60
	शिवायै		सुधासागरमध्यस्थायै
	स्वाधीनवल्लभायै		कामाक्ष्यै

ओं कामदायिन्यै नमः ओं
देवर्षिगण संघातस्तूयमानात्मवैभवायै
भण्डासुरवधोद्युक्तशक्तिसेनासमन्वितायै
सम्पत्करीसमारूढसिन्धुरब्रजसेबितायै
ओं अश्वारूढाधिष्ठिनाश्वश्वकोटिकोटिभिरावृतायै नमः ओं
चक्रराजरथारूढसर्वायुधपरिष्कृतायै
गेयचक्ररथरूढमन्त्रिणीपरिसेवितायै
किरिचक्ररथारूढदण्डनाथपुरस्कृतायै
ज्वालामालिनिका क्षिप्तवह्निप्राकारमध्यगायै
भण्डसैन्यवधोद्युक्तशक्तिविक्रनहर्षिताय।
नित्यापराक्रमाटोपनिरीक्षणसमुत्सुकायै
भण्डपुत्रव धोद्युक्तबालाविक्रमनन्दितायै

मन्त्रिण्यम्बाविरचितविषङ्गवधतोषितायै
विशुक्रप्राणहरणवाराही वीर्यनन्दितायै
कामेश्वरमुखालोक कल्पितश्रीगणेश्वरायै
महागणेशनिर्भिन्नविघ्नयन्त्रप्रहर्षितायै
भण्डासुरेन्द्र निर्मुक्तशस्त्रप्रत्यस्त्रवर्षिण्यै
कराङ्गुलिनखोत्पन्ननारायणदसाकृत्यै
महापाशुपतास्त्राग्निनिर्दग्धासुरेसनिकायै
कामेश्वरास्त्रनिर्दग्धसभण्डासुरशून्यकायै
ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्रादिदेवसंस्तुतवैभवायै
हरनेत्राग्निसंदग्धकामसंजीवनौषध्यै
श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपङ्कजायै
कण्ठाधः कटिपर्यन्तमध्यकूटस्वरूपिण्यै
शक्तिकूटैकतापन्नकट्यधोभागधारिण्यै

ओं मूलमन्त्रात्मिकायै नमः ओं		ओं महासक्त्यै नमः ओं
मूलकूटत्रयकलेबरायै		कुण्डलिन्यै 110
कुलामृतैकरसिकायै	90	विसन्तुतनीयस्यै
कुलसंकेतपालिन्यै		भवान्यै
कुलाङ्गनायै		भावनागम्यायै
कुलान्तस्थायै		भवारण्यकुठारिकायै
अकुळायै		भक्तसौभाग्यदायिन्यै
समयान्तस्थायै		भक्तिप्रियायै
समयाचारतत्परायै		भक्तिवश्यायै 120
ब्रह्मग्रन्थिविभेदिन्यै	100	भयापहायै
मणिपूरान्तरुदितायै		शांभव्यै
विष्णुग्रन्थिविभेदिन्यै		शारदाराध्यायै

आज्ञाचक्रान्तरालस्थायै		शर्वाण्यै
रुद्रग्रन्थिविभेदिन्यै		शर्मदायिन्यै
सहस्राराम्बुजारूढायै		श्रीकर्यै
सुधासाराभिवर्षिण्यै		श्रीकर्यै
तटिल्लतासमरुच्यै		साध्व्यै
षट्चक्रोपरिसंस्थितायै		शरच्चन्द्रनिभाननायै
शातोदर्यै नमः ओं	130	निरन्तरार्य नमः ओं
शान्तिमत्यै		निष्कारणायै
निराधारायै		निष्कलङ्कायै
निरञ्जनायै		निरुपाधये
निर्लेपायै		निरीश्वरायै
निर्मलायै		नीरागायै
नित्यायै		रागमथन्यै
निराकारायै		निर्मदायै
निराकुलायै		नदनाशिन्यै
निर्गुणया		निश्चिन्तायै
निष्कलायै		निरहंकारायै
शान्तायै		निर्मोहायै
निष्कामै		मोहनाशिन्यै
निरुपप्लवायै		निर्ममायै
नित्यमुक्तायै		नमताहन्त्र्यै
निर्विकारायै		निष्पापायै
निष्प्रपञ्चायै		पापनाशिन्यै
निराश्रयायै		निष्क्रोधायै

नित्यशुद्धायै

नित्यबुद्धायै

निरवद्यायै

निःसंशयायै

संशयघ्नै

निर्भवायै

भवनाशिन्यै

निर्विकल्पायै

निरावाधायै

निर्भेदायै

भेदनाशिन्यै

निर्नाशायै

मृत्युमथन्यै

निष्क्रियायै

निष्परिग्रहायै

निस्तुलायै

नीलचिकुरायै

निरपायायै

नित्यायै

दुर्लभायै

दुर्गमायै

दुर्गायै

दुःखहन्त्र्यै

सुखप्रदायै

क्रोधशमन्यै

निर्लोभायै

लोभनाशिन्यै

दुष्टदूरायै

दुराचारशमन्यै

दोषवर्जितायै

सर्वज्ञायै

सान्द्रकरुणायै

समानाधिकवर्जितायै

सर्वशक्तिमय्यै

सर्वमङ्गलायै 200

सद्गतिप्रदायै

सर्वेश्वर्यै

सर्वमय्यै

सर्वमन्त्रस्वरूपिण्यै

सर्वयन्त्रात्मिकायै

सर्वतन्त्ररूपायै

मनोन्मन्यै

माहेश्वर्यै

महादेव्यै

महालक्ष्म्यै 210

मृडप्रियायै

महारूपायै

महापूज्यायै

महापातकनाशिन्यै
महामायायै
महाशक्त्यै
महासत्तवायै
महारत्यै
महाभोगायै
महैश्वर्यायै 220
महावीर्यायै
महाबलायै
महाबुद्धयै
महासिद्धयै
महायोगीश्वरेश्वर्यै
महातन्त्रायै
महामन्त्रायै
महायन्त्रायै
महासनायै
महायागक्रमाराध्यायै
महाभैरवपूजितायै
महेश्वरमहाकल्पमहा-
- ताण्डवसाक्षिण्यै
महाकामेशमहिष्यै
ध्यानध्यातृध्येयरूपायै
धर्माधर्मविवर्जितायै
विश्वरूपायै
महात्रिपुरसुन्दर्यै
चतुषष्ट्युपचारढयै
चतुःषष्टिकलामय्यै
महाचतुःपष्टिकोटियोगिनी-
-गणसेवितायै
मनुविद्यायै
चन्द्रविद्यायै
चन्द्रमण्डलमध्यगायै 240
चारुरूपायै
चारुहासायै
चारुचन्द्रकलाधरायै
चराचरजगन्नाथायै
चक्रराजनिकेतनायै
पार्वत्यै
पद्मनयनायै
पद्मरागसमप्रभायै
पञ्चप्रेतासनासीनायै
पञ्चब्रह्मस्वरूपिण्यै 250
चिन्मय्यै
परमानन्दायै
विज्ञानघनरूपिण्यै
भानुमण्डलमध्यस्थायै
भैरव्यै
भगमालिन्यै

जागरिण्यै
स्वपन्त्यै
तैजसात्मिकायै
सुप्रायै 260
प्राज्ञात्मिकायै
तुर्यायै
सर्वावस्थाविवर्जितायै
सृष्टिकर्त्र्यै
बह्मरूपायै
गोप्त्र्यै
गोविन्दरूपिण्यै
संहारिण्यै
रुद्ररूपायै
तिरोधानकर्यै 270
ईश्वर्यै
सदाशिवायै
अनुग्रहदायै
पञ्चकृत्यपरायणयै
भोगिन्यै
भुवनेश्वर्यै
अम्बिकायै
अनादिनिधनायै
हरिब्रह्मेन्द्रसेवितायै
नारायण्यै

पद्मासनायै
भगवत्यै
पद्मनाभसहोदर्यै 280
उन्मेषनिमिषोत्पन्नविपन्न-
- भुवनावलयै
सहस्रशीर्षवदनायै
सहस्राक्ष्यै
सहस्रपदे पदायै
आब्रह्मकीटजनन्यै
वर्णाश्रमविधायिन्यै
निजाज्ञारूपनिगमायै
पुण्यापुण्यफलप्रदायै
श्रुतिसीमन्तसिन्दूरीकृत-
- पादाब्जधूलिकायै
सकलागमसोहशुक्ति-
- संपुटमौक्तिमौक्तिकायै 260
पुरुषार्थप्रदायै
पूर्णायै
राकेन्दुवदनायै
रतिरूपायै
रतिप्रियायै
रक्षाकर्यै
राक्षसघ्न्यै
रामायै

नादरूपायै
नामरूपविवर्जितायै 300
ह्रींकार्यै
ह्रीमत्यै
हृद्यायै
हेयोपादेयवर्जितायै
राजराजार्चितायै
राज्ञ्यै
रम्यायै
राजीवलोचनायै
रञ्जन्यै
रमण्यै 310
रस्यायै
रणत्किङ्किणिमेखलायै
रमायै
वेदवेद्यायै
विन्ध्याचलनिवासिन्यै
विधात्र्यै
वेदजनन्यै
विष्णुमायायै
विलासिन्यै 340
क्षेत्रस्वरूपायै
क्षेत्रेश्यै
क्षेत्रक्षेत्रज्ञपालिन्यै

रमणलम्पटायै 320
काम्यायै
कामकलारूपायै
कम्बकुसुमप्रियायै
कल्याण्यै
जगतीकन्दायै
करुणरससागरायै
कलावत्यै
कलालापायै
कान्तायै
कादम्बरीप्रियायै 330
वरदायै
वामनयनायै
वारुणीमदविह्वलायै
विश्वाधिकायै
सदाचारप्रवर्तिकायै
तापत्रयाग्निसंतप्तसमाह्लाद-
- नचन्द्रिकायै
तरुण्यै
तापसाराध्यायै
तनुमध्यायै 360
तमोपहायै
चित्यै
तत्पदलक्ष्यार्थायै

क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तायै
क्षेत्रपालसमर्चितायै
विजयायै
विमलायै
वन्द्यायै
वन्दारुजनवत्सलायै
वाग्वादिन्यै 350
वामकेश्यै
वह्निमण्डलवासिन्यै
भक्तिमत्कल्पलतिकायै
पशुपाशविमोचन्यै
संहृताशेषपाषण्डायै
कामपूजितायै
शृङ्गाररससंपूर्णायै
जयायै
जालन्धरस्थितायै
ओड्यापीठनिलद्यायै
विन्दुमण्डलवासिन्यै 380
रहोयागक्रमाराध्यायै
रहस्तर्पणतर्पितायै
सद्यःप्रसादिन्यै
विश्वसाक्षिण्यै
साक्षिवर्जितायै
षडङ्गदेवतायुक्तायै

चिदेकरसरूपिण्यै
स्वात्मानन्दलवीभूतब्रह्म-
- द्यानन्दसंतत्यै
परायै
प्रत्यकूचितीरूपायै
पश्यन्त्यै
परदेवतायै
मध्यमायै 370
वैस्वरीरूपायै
भक्तमानसहंसिकायै
कामेश्वरप्राणनाड्यै
कृतज्ञायै
परमेश्वर्यै
मूलप्रकृत्यै
अव्यक्तायै
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिण्यै
व्यापिन्यै 400
विविधाकारायै
विद्याविद्यास्वरूपिण्यै
महाकामेशनयनकुमुदाहाद-
- कौमुद्यै
भक्तहार्दतमोभेदभानुमद्धा-
- नुसंतत्यै
शिवदूत्यै

षाड्गुण्यपरिपूरितायतै
नित्यक्लिन्नायै
निरुपमायै
निर्वाणसुखदायिन्यै 390
नित्याषोडशिकारूपायै
श्रीकण्ठार्धशरीरिण्यै
प्रभावत्यै
प्रभारूपायै
प्रसिद्धायै
मनोवाचामगोचरायै
चिच्छक्त्यै
चेतनारूपायै
जडशक्त्यै
जडात्मिकायै
गायत्र्यै 420
व्याहृत्यै
संध्यायै
द्विजबृन्दनिषेवितायै
तत्त्वासनायै
तस्मै
तुभ्यं
अय्यै
पञ्चकोशान्तरस्थितायै
निःसीममहिम्ने

शिवाराध्यायै
शिवमूर्त्यै
शिवंकर्यै
शिवप्रियायै
शिवपरायै 410
शिष्टेष्टायै
शिष्टपूजितायै
अप्रमेयायै
स्वप्रकाशायै
कुशलायै
कोमलाकारायै
कुरुकुल्लायै
कुलेश्वर्यै
कुलकुण्डालायै 440
कौलेमार्गतत्वपरसेवितायै
कुमारगणनाथाम्बायै
तुष्ट्यै
पुष्ट्यै
मत्यै
धृत्यै
शान्त्यै
स्वस्तिमत्यै
कान्त्यै
नन्दिन्यै 450

नित्ययौवनायै 430

मदशालिन्यै

मदघूर्णितरक्ताक्ष्यै

मदपाटलगण्डभुवे

चन्दनद्रवदिग्धाङ्ग्यै

चाम्पेयकुसुमप्रियायै

मात्रे

मलयाचलवासिन्यै

सुमुख्यै

नलिन्यै 460

सुभ्रुवे

शोभनायै

सुरनायिकायै

कालकण्ठ्यै

कान्तिमत्यै

क्षोभिण्यै

सूक्ष्मरूपिण्यै

बज्रेश्वर्यै

वामदेव्यै

वयोवस्थाविवर्जितायै 470

सिद्धेश्वर्यै

सिद्धविद्यायै

सिद्धमात्रे

यशस्विन्यै

विघ्ननाशिन्यै

तेजोवत्यै

त्रिनयनायै

लोलाक्षीकामरूपिण्यै

मालिन्यै

हंसिन्यै

खटाङ्गादिप्रहरणायै

वदनैकसमन्विनायै

पायसान्नप्रियायै 480

त्वक्स्थायै

पशुलोकभ्यायंकर्यै

अमृतादिमहाशक्तिसंवृतायै

डाकिनीश्वर्यै

अनाहताब्जनिलयायै

श्यामाभायै

वदनद्वयायै

दंष्टोज्ज्वलायै

अक्षमालादिधरायै

रुधिरसंस्थितायै 490

कालरात्र्यादिशक्त्योघवृतायै

स्निग्धौदनप्रियायै

महावीरेन्द्रवरदायै

राकिण्यम्बास्वरूपिण्यै

मणिपूराब्जनिलयायै

विशुद्धिचक्रनिलायायै
आरक्तवर्णायै
त्रिलोचनायै
रक्तबर्णाचै
मांसनिष्ठायै
गुडान्नप्रीतमानसायै
समस्तभक्तसुखदायै
लाकिन्यम्बास्वरूपिण्यै
स्वाधिष्ठानाम्बुजगतायै
चतुर्वक्त्रमनोहरायै
शूलद्यायुधसम्पन्नायै
पीतवर्णायै
अतिगर्वितायै
मेदोनिष्ठायै
मधुप्रीतायै 510
बन्धिन्यादिसमन्वितायै
दध्यन्नासक्तहृदयायै
काकिनीरूपधारिण्यै
मूलाधाराम्बुजारूढायै
पञ्चवक्त्रायै
अस्थिसंस्थितायै
अङ्कुशादिप्रहरणायै
वरदादिनिषेवितायै
मुद्गौदनासक्तचित्तायै
वदनत्रयसंयुतायै
वज्रादिकायुधोपेतायै
डामर्यादिभिरावृतायै
साकिन्यम्बास्वरूपिण्यै
आज्ञाचक्राब्जनिलायायै
शुक्लवर्णायै
षडाननायै
मज्जासंस्थायै
हंसवतीमुख्यशक्ति-
- समन्वितायै
हरिद्रान्नैकरसिकायै
हाकिनीरूपधारिण्यै
सहस्रदलपद्मस्थायै
सर्ववर्णोपशोभितायै
सर्वायुधधरायै 530
शुक्लसंस्थितायै
सर्वतोमुख्यै
सर्वौदनप्रीतचित्तायै
याकिन्यम्बास्वरूपिण्यै
स्वाहा
स्वधा
अमत्यै
मेधायै
श्रुत्यै

स्मृत्यै	मृगाक्ष्यै
अनुत्तमायै	मोहिन्यै
पुण्यकीर्त्यै	मुख्यायै
पुण्यलभ्यायै	मुख्यायै
पुण्यश्रवणकीर्तनायै	मृडान्यै
पुलोमजार्चितायै	मित्ररूपिण्यै
बन्धमोचन्यै	नित्यतृप्तायै
वर्वरालाकायै	भक्तनिधये
विमर्शरूपिण्यै	नियन्त्र्यै
विद्यायै	निखिलेश्वर्यै
वियदादिजगत्प्रसुवे 550	मैत्र्यादिवासनालभ्यायै
सर्वव्याधिप्रशमन्यै	महाप्रलयसाक्षिण्यै
सर्वमृत्युनिवारिण्यै	परस्यै शक्त्यै
अग्रगण्यायै	परायै निष्ठायै
अचिन्त्यरूपायै	प्रज्ञानघनरूपिण्यै
कलिकल्मषनाशिन्यै	माध्वीपानालसायै
कात्यायन्यै	मत्तायै
कालहन्त्र्यै	मातृकावर्णरूपिण्यै
कमलाक्षनिषेवितायै	महाकालासनिलयायै
ताम्बूलपूरितमुख्यै	मृणालमृदुदोर्लतायै
दाडिमीकुसुमप्रभायै 560	महनीयायै 580
महासाम्राज्यशालिन्यै	दयामूर्त्यै
आत्मविद्यायै	दरहासोज्जवलन्मुख्यै

महाविद्यायै

श्रीविद्यायै

कामसेवितायै

श्रीषोडशाक्षरीविद्यायै

त्रिकूटायै

कामकोटिकायै

कटाक्षकिङ्करीभूतकमला-
-कोटिसेवितायै 590

शिरःस्थितायै

चन्द्रनिभयै

भालस्थायै

इन्द्रधनुःप्रभायै

हृदयस्थायै

रविप्रख्यायै

त्रिकोणान्तरदीपिकायै

दाक्षायण्यै

दैत्यहन्त्र्यै

दक्षयज्ञविनाशिन्यै 600

दरान्दोलितदीर्घाक्ष्यै

दिव्यविप्रहायै

क्लींकार्यै

केवलायै

गुह्यायै

कैवल्यपददायिन्यै

गुरुमूर्तये

गुणनिधये

गोमात्रे

गुहजन्मभुवे

दण्डनीतिस्थायै

दहराकाशरूपिण्यै

प्रतिपन्मुख्यराकान्ततिथि-
-मण्डलपूजितायै 610

कलात्मिकायै

कलानाथायै

काव्यालापविनोदिन्यै

सचामररमावाणीसेव्ये-
- दक्षिणसेवितायै

आदिशक्त्यै

अमेयायै

आत्मने

परमायै

पावनाकृतये

अनेककोटिब्रह्माण्डजनन्यै

अपरिच्छेद्यायै

ज्ञानदायै

ज्ञानविग्रहायै

सर्ववेदान्तसंवेद्यायै

सत्यानन्दस्वरूपिण्यै

त्रिपुरायै
त्रिजगद्वन्द्यायै
त्रिमूतये
त्रिदशेश्वर्यै
त्र्यक्षर्यै 630
दिव्यगन्धाढ्यायै
सिन्दूरतिलकाञ्चितायै
उमायै
शैलेन्द्रतनयायै
गौर्यै
गन्धर्वसेवितायै
विश्वगर्भायै
स्वर्णगर्भायै
अवरदायै
वागधीश्वर्यै 640
ध्यानगम्यायै
सदसद्रूपधारिण्यै
अष्टमूर्त्यै
अजाजेत्र्यै
लोकयात्रविधायिन्यै
एकाकिन्यै
भूमरूपायै
निर्द्वैतायै
द्वैतवर्जितायै

लोपामुद्रार्चितायै
लीलाक्लृप्तब्रह्माण्डमण्ड-
- लायै
अदृश्यायै
दृश्यरहितायै 650
विज्ञात्र्यै
वेद्यवर्जितायै
योगिन्यै
योगदायै
योग्यायै
योगानन्दायै
युगन्धरायै
इच्छाशक्तिज्ञानशक्तिक्रिया-
- शक्तिस्वरूपिण्यै
सर्वाधारायै
सुप्रतिष्ठायै 660
शुभकर्यै
शोभनायै सुलभायै गत्यै
राजराजेश्वर्यै
राज्यदायिन्यै
राज्यवल्लभायै
राजत्कृपायै
राजपीठनिवेशितनिज्ञाश्रि-
- तायै

अन्नदायै
वसुदायै 670
वृद्धायै
ब्रह्मात्मैक्यस्वरूपिण्यै
बृहत्यै
ब्राह्मण्यै
ब्राह्म्यै
ब्रह्मानन्दायै
बलिप्रियायै
भाषारूपायै
बृहत्सेनायै
भावाभावविवर्जितायै 680
सुखाराध्यायै
सर्वगायै
सर्वमोहिन्यै
सरस्वत्यै
शस्त्रमय्यै
गुहाम्बायै
गुह्यरूपिण्यै
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तायै
सदाशिवपतिव्रतायै
संप्रदायेश्वर्यै 710
साधुने
यै

राज्यलक्ष्म्यै
कोशनाथायै 690
चतुरङ्गबलेश्वर्यै
साम्राज्यदायिन्यै
सत्यसन्धायै
सागरमेखलायै
दीक्षितायै
दैत्यशमन्यै
सर्वलोकवशंकर्यै
सवार्थदात्र्यै
सावित्र्यै
सच्चिदानन्दरूपिण्यै 700
देशकालापरिच्छिन्नायै
स्वतन्त्रायै
सर्वतन्त्रेश्यै
दक्षिणामूर्तिरूपिण्यै
सनकादिसमाराध्यायै
शिवज्ञानप्रदायिन्यै
चित्कलायै
आनन्दकलिकायै
प्रेमरूपायै 730
प्रियंकर्यै
नामपारायणप्रीतायै
नन्दिविद्यायै

गुरुमण्डलरूपिण्यै
कुलोत्तीर्णायै
भगाराध्यायै
मायायै
मधुमत्यै
मह्यै
गणाम्बायै
गुह्यकाराध्यायै 720
कोमलाङ्ग्यै
गुरुपियायै
दौर्भाग्यतूलवातूलायै
जराध्वान्तरविप्रभायै
भाग्याधिचन्द्रिकायै
भक्तचित्तकेकिघनाघनायै
रोगपर्वतदम्भोलये
मृत्युदारुकुठारिकायै
महेश्वर्यै 750
महाकाल्यै
महाग्रासायै
महाशनायै
अपर्णायै
चण्डिकायै
चण्डमुण्डासुरनिषूदिन्यै
क्षराक्षरात्मिकायै

नटेश्वर्यै
मिथ्याजगदधिष्ठानायै
मुक्तिदायै
मुक्तिरूपिण्यै
लास्यप्रियायै
लयकर्यै
लज्जायै 740
रम्भादिवन्दितायै
भवदावसुधावृष्ट्यै
पापारण्यदवानलायै
शुद्धायै
जपापुष्पनिभाकृतये
ओजोवत्यै
द्युतिधरायै
यज्ञरूपायै
प्रियव्रतायै 770
दुराराध्यायै
दुराधर्षायै
पाटलीकुसुमप्रियायै
महत्यै
मेरुनिलयायै
मन्दारकुसुमप्रियायै
वीराराध्यायै
विराड्रूपायै

सर्वलोकेश्यै

विश्वधारिण्यै

त्रि गर्दात्र्यै 760

सुभगायै

त्र्यम्बकायै

त्रिगुणात्मिकायै

स्वर्गापवर्गदायै

मन्त्रिणीन्यस्तराज्यधुरे

त्रिपुरेश्यै

जयत्सेनायै

निस्त्रैगुण्यायै

परापरायै 790

सतयज्ञानानन्दरूपायै

सामरस्यपरायणायै

कपर्दिन्यै

कलामालायै

कामदुहे

कामरूपिण्यै

कलानिधये

काव्यकलायै

रसज्ञायै

रसशेवधये 800

पुष्टायै

पुरातनायै

विरजसे

विश्वतोमुख्यै 780

प्रत्यग्रूपायै

पराकाशायै

प्राणदायै

प्राणरूपिण्यै

मार्तण्डभैरवाराध्यायै

परस्मै धाम्ने

परमाणवे

परात्परायै

पाशहस्तायै 810

पाशहन्त्र्यै

परमन्त्रविभेदिन्यै

मूर्तायै

अमूर्तायै

अनित्यतृप्तायै

मुनिमानसहंसिकायै

सत्यव्रतायै

सत्यरूपायै

सर्वान्तर्यामिन्यै

सत्यै 820

ब्रह्माण्यै

ब्रह्माणे

जनन्यै

पूज्यायै
पुष्करायै
पुष्करेक्षणायै
परस्मै ज्योतिषे
आज्ञयै
प्रतिष्ठायै
प्रकटाकृतये 830
प्राणेश्वर्यै
प्राणदात्र्यै
पञ्चाशत्पीठरूपिण्यै
विशृङ्खलायै
विविक्तस्थायै
वीरमात्रे
वियत्प्रसुवे
मुकुन्दायै
मुक्तिनिलयायै
मूलविग्रहरूपिण्यै 840
भावज्ञायै
भवरोगघ्नयै
भवचक्रप्रवर्तिन्यै
छ दःसारायै
शास्त्रसारायै
मन्त्रसारायै
तलोदर्यै

बहुरूपायै
बुधार्चितायै
प्रसवित्र्यै
प्रचण्डायै
उद्दामवैभवायै
वर्णरूपिण्यै 850
जन्ममृत्युजरातप्तजनत्रिश्रा-
- न्तिदायिन्यै
सर्वोपनिषदुद्धुष्टायै
शान्त्यतीतकलात्मिकायै
गम्भीरायै
गगनान्तस्थायै
गर्वितायै
गानलोलुपायै
कल्पनारहितायै
काष्ठायै
अकान्तायै 860
कान्तार्धविग्रहायै
कार्यकारणनिर्मुक्तायै
कामकेलितरङ्गितायै
कनत्कनकताटङ्कायै
लीलाविग्रहधारिण्यै
अजायै
क्षयविनिर्मुक्तायै

उदारकीर्तये
क्षिप्रप्रसादिन्यै
अन्तर्मुखसमाराध्यायै 870
बहिर्मुखसुदर्लभायै
त्रय्यै
त्रिवर्गनिलमायै
त्रिस्थायै
त्रिपुरमालिन्यै
निरामयायै
निरालम्बायै
स्वात्मारामायै
सुधासृत्यै
संसारपङ्कनिर्मग्नसमुद्धरण-
- पण्डितायै 880
यज्ञप्रियायै
यज्ञकर्त्र्यै
यज्ञमानस्वरूपिण्यै
धर्माधारायै
धनाध्यक्षायै
धनधान्यविवर्धिन्यै
विप्रप्रियायै
विप्ररूपायै
सोम्यायै
सदाशिवकुटुम्बिन्यै

मुग्धायै
विश्वभ्रमणकारिण्यै
विश्वग्रासायै
विद्रुमाभायै
वैष्णव्यै
विष्णुरूपिण्यै
अयोन्यै
योनिनिलयायै
कूटस्थायै
कुलरूपिण्यै
वीरगोष्ठीप्रियायै
वीरायै
नैष्कर्म्यायै 900
नादरूपिण्यै
विज्ञानकलानायै
कल्यायै
विदग्धायै
बैन्दवासनायै
तत्त्वाधिकायै
तत्त्वमय्यै
तत्त्वमर्थस्वरूपिण्यै
सामगानप्रियायै
मानवत्यै
महेश्यै

सव्यापसव्यमर्मास्थायै	मङ्गलाकृतये
सर्वापद्विनिवारिण्यै	विश्वमात्रे
स्वस्थायै	जगद्धात्र्यै
स्वभावमधुरायै	विशालाक्ष्यै
धीरायै	विरागिण्यै
धीरसमर्चितायै	प्रगल्भायै
चैतन्यार्ध्यसमाराध्यायै	परमोदारायै
चैतन्यकुसुमप्रियायै	परामोदायै 940
सदोदितायै 920	मनोमय्यै
सदातुष्टायै	व्योमकेश्यै
तरुणादित्यपाटलायै	विमानस्थायै
दक्षिणादक्षिणाराध्यायै	वज्रिण्यै
दरस्मेरमुखाम्बुजायै	वामकेश्वर्यै
कौलिनीकेवलायै	प्रञ्चयज्ञप्रियायै
अर्घ्यकैवल्यपददयिन्यै	पञ्चप्रेतमञ्चाधिशायिन्यै
स्तोत्रप्रियायै	पञ्चम्यै
स्तुतिमत्यै	पञ्चभूतेश्यै
श्रुतिसंस्तुतवैभवायै	पञ्चसंख्योपचारिण्यै 950
मनस्विन्यै 930	शाश्वत्यै
शाश्वतैश्चर्यायै	शुद्धमानसायै
शर्मदायै	विन्दुतर्पणसंतुष्टायै
शम्भुमोहिन्यै	पूर्वजायै
धरायै	त्रिपुराम्बिकायै
धरसुतायें	दशमुद्रासमाराध्यायै

धन्मायै

धर्मिण्यै

धर्मर्धिन्यै

लोकातीतायै 960

गुणातीतायै

सर्वातीतायै

शमात्मिकायै

बन्धूककुसुमप्रख्यायै

बालायै

लीलाविनोदिन्यै

सुमङ्गल्यै

सुस्वकायै

सुवेशाढ्यायै

सुवासिन्यै 970

सुवासिन्यर्चनप्रीतायै

आशोभनायै

आबालगोपविदितायै

सर्वानुल्लङ्घ्यशासनायै

श्रीचक्रराजनिलयायै

त्रिपुराश्रीवशंकर्यै

ज्ञानमुद्रायै

ज्ञानगंम्यायै 980

ज्ञानज्ञेयस्वरूपिण्यै

योनिमुद्रायै

त्रिखण्डेश्यै

त्रिगुणयै

अम्बायै

लिकोणगायै

अनघायै

अद्भुतचारित्रायै

वाञ्छितार्थप्रदायिन्यै

अभ्यासातिशयज्ञातायै

षडध्वातीतरूपिण्यै

अव्याजकरुणामूर्तये

अज्ञानध्वान्तदपिकायै

श्रीमत्रिपुरसुन्दर्यै

श्रीशिवायै

शिवशक्तयैक्यरूपिण्यै 999

ओं ललिताम्बिकायै नमः ओं॥

॥श्रीललितास्त्रहस्त्रनामावलिः संपूर्णा॥

॥आश्चर्याष्टोत्तरशतनामावलिः॥

ओं ऐ ह्रीं श्रीं

ओं परमानन्दलहर्यै नमः ओं

परचैतन्यदीपिकायै नमः

स्वयंप्रकाशकिरणायै नमः

नित्यवैभवशालिन्यै नमः

विशुद्धकेवलाखण्डसत्यकालात्मकरूपिण्यै नमः

आदिमध्यान्तरहितायै नमः

महामायाविलासिन्यै नमः

महामायाविलासिन्यै नमः

गुणत्रयपरिच्छेत्र्यै नम

सर्वतत्वप्रकाशिन्यै नमः

स्त्रीपुंसभावरसिकायै नमः

जगत्सर्गादिलम्पटायै नमः

अशेषनामरूपादिभेदच्छेदरविप्रभायै नमः

अनादिवासनारूपायै नमः

वासनोद्यत्प्रपञ्चिकायैं नमः

प्रपञ्चोपशमप्रौढायै नमः

चराचरजगन्मय्यै नमः

समस्तजगदाधारायै नमः

सर्वसंजीवनोत्सुकायै नमः

भक्तचेतामयानन्तस्वार्थवैभवविभ्रमायै नमः

सर्वाकर्षणवश्यादिसर्वकर्मधुरंधरायै नमः

विज्ञानपरमानन्दविद्यायै नमः

संतानसिद्धिदायै नमः

आयुरारोग्यसौभाग्यबलश्रीकीर्तिभाग्यदायै नमः

धनधान्यमणीवस्त्रभूषालेपनमाल्यदायै नमः

गृहग्राममहाराज्यसाम्राज्यसुखदायिन्यै नमः

सप्ताङ्गशक्तिसंपूर्णसार्वभौमफलप्रदायै नमः

ब्रह्मविष्णुशिवेन्द्रादिपदविश्राणनक्षमायै नमः

भुक्तिमुक्तिमहाभक्तिविरक्तयद्वैतदायिन्यै नमः

निग्रहानुग्रहाध्यक्षायै नमः

ज्ञानर्निर्तदायिन्यै नमः

परकायप्रवेशादियोगसिद्धिप्रदायिन्यै नमः

शिष्टसंजीवनप्रौढायै नमः

दुष्असंहारसिद्धिदायै नमः

लीलाविनिर्मितानेककोटिब्रह्माण्डमण्डलायै नमः

एकस्यै नमः

अनेकात्मिकायै नमः

नानारूपिण्यै नमः

अर्धाङ्गनेश्वर्यै नमः

शिवशक्तिमय्यै नमः

नित्यशृङ्गारैकरसप्रियायै नमः

तुष्टायै नमः

पुष्टायै नमः

अपरिच्छिन्नायै नमः

नित्ययौवनमोहिन्यै नमः

समस्तदेवतारूपायै नमः

सर्वदेवाधिदेवतायै नमः

देवर्षिपितृसिद्धादियोगिनीभैरवात्मिकायै नमः

निधिसिद्धिमणीमुद्रायै नमः

शस्त्रास्त्रायुधभासुरायै नमः

छत्रचामरवादित्रपताकाव्यजनाञ्चितायै नमः

हस्त्यश्वरथपादातानात्यसेनासुसेवितायै नमः

पुरोहितकुलाचार्यगुरुशिष्यादिसेवितायै नमः

सुधासमुद्रमध्योद्यत्सुरद्रुमनिवासिन्यै नमः

मणिद्वीपान्तरप्रोद्यत्कदम्बवनवासिन्यै नमः

चिन्तामणिग1हान्तस्थायै नमः

मणिमण्टपमध्यगायै नमः

रत्नसिंहासनप्रोद्यच्छिवमञ्चाधिशायिन्यै नमः

सदाशिवमहालिङ्गमूलसंघट्टयोनिकायै नमः

अन्योन्यालिङ्गसघर्षकण्डूसंक्षुब्धमानसायै नमः

कळोद्यद्बिन्दुकाळिन्यातुर्यनादपरम्परायै नमः

नादान्तानन्दसंदोह स्वयंव्यक्तवचोऽमृतायै नमः

कामराजमहातन्त्ररहस्याचारदक्षिणायै नमः

मकारपञ्चकोद्भूतप्रौढान्तोल्लाससुन्दर्यै नमः

श्रीचक्रराजनिलयायै नमः

श्रीविद्यामन्त्रविग्रहायै नमः

अखण्डसच्चिदानन्दशिवशक्त्यैक्यरूपिण्यै नमः

त्रिपुरायै नमः

त्रिपुरेशान्यै नमः

महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः

त्रिपुरावासरसिकायै नमः

त्रिपुराश्रीस्वरूपिण्यै नमः

महापद्मवनान्तस्थायै नमः

श्रीमत्रिपुरमालिन्यै नमः

महात्रिपुरसिद्धाम्बायै नमः

श्रीमहात्रिपुराम्बिकायै नमः

नवचक्रक्रमादेव्यै नमः

महात्रिपुरभैरव्यै नमः

श्रीमात्रे नमः

ललितायै नमः

बालायै नमः

राजराजेश्वर्यै नमः

शिवायै नमः

उत्पत्तिस्थितिसंहारक्रमस्थायै नमः

सर्वलोकमहेश्वर्यै नमः

वल्मीकिपुरमध्यस्थायै नमः

जम्बूवननिवासिन्यै नमः

अरुणाचलशृङ्गस्थायै नमः

व्याघ्रालयनिवासिन्यै नमः

श्रीकाळहस्तिनिलयायै नमः

काशीपुरनिवासिन्यै नमः

श्रीमत्कैलासनिलयायै नमः

द्वादशान्तमहश्वेयै नमः

श्रीषोडशान्तमध्यस्थायै नमः

सर्ववेदान्तलक्षितायै नमः

श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासागमकलेश्वर्यै नमः

मूतभौतिकतन्मात्रदेवताप्राणहृन्मय्यै नमः

जीवेश्वरब्रह्मरूपायै नमः

श्रीगुणाढ्यायै नमः

गुणात्मिकायै नमः 100

अवस्थात्रयनिर्मुक्तायै नमः

वाग्रमोमामहीमय्यै नमः

गायत्रीभुवनेशानीदुर्गाकाव्यादिरूपिण्यै नमः

मत्स्यकूर्मवराहादिनानारूपविलासिन्यै नमः

महायोगीश्वराराध्यायै नमः

महावीरवरप्रदायै नमः

सिद्धेश्वराराध्यायै नमः

श्रीमच्चरणवैभवायै नमः ओं॥

॥इति श्रीदेवीवैभवाश्चर्याष्ठत्तरशतनामावलिः॥

॥श्रीललितात्रिशतीनामावलिः॥

अतिमधुरचापहस्तामपरिमितामोदबाणसौभाग्याम् ।
अरुणामतिशयकरुणामभिनवकुलसुन्दरीं वन्दे॥

ओं-ऐं-ह्रीं-श्रीं

4 ककाररूपायै नमः ओ
कल्याण्यै
कल्याणगुणशालिन्यै
कल्याणशैलनिलयायै
कमनीयायै
कलावत्यै
कमलाक्ष्यै
कल्मषघ्नयै
करुणामृतसागरायै
कदम्बकाननावासायै 10
कदम्बकुसुमप्रियायै
कन्दर्पविद्यायै
कन्दर्पजनकापाङ्गवीक्षणायै
एवामित्यागमावोध्यायै
एकभक्तिमदर्चितायै
एकागचित्तनिर्ध्यानायै
एषणारहितादृतायै
एलासुगन्धिचिकुरायै 30

4 कर्पूरवीटीसौरभ्यकल्लोलिता-
- ककुप्तटायै नमः ओं
कलिदोषहरायै
कञ्जलोचनायै
कम्रविग्रहायै
कर्मादिसाक्षिण्यै
कारयित्र्यै
कर्मफलप्रदायै 20
एकाररूपायै
एकाक्षर्यै
एकानेकाक्षराकृत्यै
एत्तत्तदित्यनिर्देश्यायै
एकानन्दचिदाकृत्यै
ईशत्वाद्यष्टसिदियै
ईक्षित्र्यै
ईक्षणसृष्टाण्ठकोट्यै
ईश्वरवल्लभायै 50
ईडितायै

एनःकूटविनाशिन्यै
एकभोगायै
एकरसायै
एकैश्वर्यप्रदायिन्यै
एकातपत्रसाम्राज्यप्रदायै
एकान्तपूजितायै
एधमानप्रभायै
एजदनेकजगदीश्वर्यै
एकवीरादिसंसेव्यायै
एकप्राभावशालिन्यै 40
ईकाररूपायै
ईशित्र्यै
ईप्सितार्थप्रदायिन्यै
ईदृगित्यविनिर्देश्यायै
ईश्वरत्वविधायिन्यै
ईशानादिब्रह्ममय्ये
ललाटनयनार्चितायै
लक्षणोज्ज्वलदिव्याङ्ग्यै
लक्षकोट्यण्डनायिकायै 70
लक्ष्यार्थायै
लक्षणागम्यायै
लब्धकामायै
लतातनवे
ललामराजदलिकायै

ईश्वरार्धाङ्गशरीरायै
ईशाधिदेवतायै
ईश्वरप्रेरणकर्यै
ईशताण्डवसाक्षिण्यै
ईश्वरोत्सङ्गनिलयायै
ईतिबाधाविनाशिन्यै
ईहाविरहितायै
ईशशक्त्यै
ईषत्स्मिताननायै 60
लकाररूपायै
ललितायै
लक्ष्मीवाणीनिषेवितायै
लाकिन्यै
ललनारूपायै
लसद्दाडिमपाटलायै
ललन्तिकालसत्फालायै
ह्रींविभूषणायै
ह्रींशीलायै 90
ह्रींपदाराध्यायै
ह्रींगर्भायै
ह्रींपदाभिधायै
ह्रींकारवाच्यायै
ह्रींकारपूज्यायै
ह्रींकारपीठिकायै

लम्बिमुक्तालताञ्चितायै		ह्रींकारवेद्यायै	
लम्बोदरप्रसुवे		ह्रींकारचिन्त्यायै	
लभ्यायै		ह्रीं	
लज्जाढ्यायै		शरीरिण्यै	100
लयवर्जितायै		हकाररूपायै	
ह्रींकाररूपायै		हलधृत्पूजितायै	
ह्रींकारनिलयायै		हरिणेक्षणायै	
ह्रींपदप्रियायै		हरप्रियायै	
ह्रींकारबीजायै		हराराध्यायै	
ह्रींकारमन्त्रयै		हरिब्रह्मेन्द्रवन्दितायै	
ह्रींकारलक्षणायै		हयारूढासेवितांघ्रयै	
ह्रींकारजपसुप्रीतायै		हयमेधसमर्चितायै	
ह्रींमत्यै		हर्यक्षवाहनायै	
हंसवाहनायै नमः	110	सर्वसाधिण्यै नमः	
हतदानवायै		सर्वात्मिकायै	
हत्यादिपापशमन्यै		सर्वसौख्यदात्र्यै	
हरिदश्वादिसेवितायै		सर्वविमोहिन्यै	
हस्तिकुम्भोत्तुङ्गकुचायै		सर्वाधारायै	
हस्तिकृत्तिप्रियाङ्गनायै		सर्वगतायै	
हरिद्राकुङ्कुमादिग्धायै		सर्वावगुणवर्जितायै	
हर्यश्वाद्यमरार्चितायै		सर्वारुणायै	
हरिकेशसख्यै		सर्वमात्रे	
हादिविधायै		सर्वभूषणभूषितायै	140
हालामदालसायै	120	ककारार्थायै	

सकाररूपायै
सर्वज्ञायै
सर्वेश्यै
सर्वमङ्गळायै
सर्वकर्त्र्यै
सर्वभर्त्र्यै
सवहर्त्र्यै
सनातन्यै
सर्वानवद्यायै
सर्वाङ्गसुन्दर्यै 130
कपालिप्राणनायिकायै
कारुण्यविग्रहायै
कान्तायै
कान्तिधूतजपावल्यै
कलालापायै
कम्बुकण्ठ्यै
करनिर्जितपल्लवायै
कल्पवल्लीसमभुजायै
कस्तूरीतिलकाञ्चितायै 160
हकारार्थायै
हंसगत्यै
हाटकाभरणोज्ज्वलायै
हारहारिकुचाभोगायै
हाकिन्यै

कालहन्त्र्यै
कामेश्यै
कामितार्थदायै
कामसंजीविन्यै
कल्यायै
कठिनस्तनमण्डलायै
करभोरवे
फलानाथामुख्यै
कचजिताम्बुदायै 150
कटाक्षस्यन्दिकरुणायै
हंसमन्त्रर्थरूपिण्यै
हानोपादाननिर्मुक्तायै
हर्षिण्यै
हरिसोदर्यै
हाहाहूहूमुखस्तुत्यायै
हानिवृद्धिविवर्जितायै
ह्य्यंगवीनहृदयायै
हरिगोपारुणांशुकाय 180
लकाराख्यायै
लतापूज्यायै
लयस्थित्युद्भवेश्वर्यै
लास्यदर्शनसंतुष्टायै
लाभालाभविवर्जितायै
लङ्घ्येतराज्ञायै

हल्यवर्जितायै
हरित्पतिसमाराध्यायै
हठात्कारहतासुरायै
हर्षप्रदायै
हविर्भोक्त्र्यै 170
हार्दसंतमसापहायै
हल्लीसलास्यसंतुष्टायै
लग्नचामरहस्त श्रीशरदा-
- परिवीजितायै
लज्जापदसमाराध्यायै
लम्पटायै
लकुळेश्वर्यै
लब्धमानायै
लब्धरसायै
लब्धसंपत्समुन्नत्यै 200
हींकारिण्यै
हींकाराद्यायै
हींमध्यायै
हींशिखामणये
हींकारकुण्डाग्निशिखायै
हींकारशशिचन्द्रिकायै
हींकारभास्कररुच्यै
हींकाराम्भोदचञ्चलायै
हींकारकन्दाङ्कुरिकायै

लावण्यशालिन्यै
लघुसिद्धिदायै
लाक्षरससवर्णाभायै
लक्ष्मणाग्रजपूजितायै 190
लभ्येतरायै
लब्धभक्तिसुलभायै
लाङ्गलायुधायै
हींकारवालवल्लर्यै
हींकारपञ्जरशुक्यै
हींकाराङ्गणदीपिक्रायै
हींकारकन्दरासिंझै
हींकारम्भोजभृङ्गिकायै
हींकारसुमनोमाध्व्यै
हींकारतरुमञ्जर्यै
सकाराख्यायै
समरसायै
सकलागमसंस्तुतायै
सर्ववेदान्ततात्पर्यनूप्यै
सदसदाश्रयायै
सकलायै
सच्चिदनन्दायै
साध्यायै
सद्गतिदायिन्यै
सनकादिमुनिध्येयायै 230

ह्रींकारैकपरायणायै 210
सकलाधिष्ठानरूपायै
ह्रींकारोद्यानकेकिन्यै
ह्रींकारारण्यहरिण्यै
सर्वप्रपञ्चनिर्मात्र्यै
समानाध्किावर्जितायै
सर्वोत्तुङ्गायैकामेश्वर्यै
सङ्गहीनायै
सगुणायै
सकलेष्टदायै 240
ककारिण्यै
काव्यकोलायै
कामेश्वरमनोहरायै
कामेश्वरप्राणनाड्यै
कामेशोत्सङ्गवासिन्यै
कामेश्वरालिङ्गिताङ्ग्यै
कामेश्वरसुखप्रदायै
कमेश्वरप्रणयिन्यै
कमेश्वरविलासिनयै
कामेश्वरतपःसिद्धये 250
कामेश्वरमनःप्रियायै
कामेश्वरप्राणनाथायै
कामेश्वरविमोहिन्यै
कामेश्वरब्रह्मविद्यायै

सदाशिवकुटुम्बिनयै
ह्रींकारदीर्घिकाहंस्यै
सत्यरूपायै
समाकृत्यै
कामेश्वराह्लादकार्यै
कामेश्वरमहेश्वर्यै
कामेश्वर्यै
कामकोटिनिलायायै
काङ्क्षितार्थदायै 260
लकारिण्यै
लब्धरूपायै
लब्धधियै
लब्धवाञ्छितायै
लब्धपापमनोदूरायै
लब्धाहंकारदुर्गमायै
लब्धशक्तयै
लब्धदेहायै
लब्धैश्वर्यसमुन्नत्यै
लब्धवृद्धये 270
लब्धलीलायै
लब्धयौवनशालिन्यै
लब्धातिशयसर्वाङ्गसौन्द-
- र्यायै
लब्धविभ्रमायै

कामेश्वरगृहेश्वर्यै
लब्धपत्यै नमः
लब्धनानागमस्थित्यै
लब्धभोगायै
लब्धसुखायै
खब्धहर्षाभिपूरितायै 280
हीँकारमूर्तये
हींकारसौधशृङ्गकपोतिकायै
हींकारदुग्धब्ध्यिासुधायै
हींकारकमलेन्दिरायै
हींकारमणिदीपार्चिषे
हींकारतरुशारिकायै
हींकारपेटकमणयै
हींकारदर्शबिम्बितायै
हींकारकोशासिलतायै

लब्धरागायै
हींकारास्थानानर्तक्यै
हींकारशुक्तिकामुक्तामणये
हींकारत्रेधितायै
हींकारमयसौवर्णस्तम्भ-
- विद्रुमपुत्रिकायै
हींकारवेदोपनिषदे
हींकारध्वरदक्षिणायै
हींकारनन्दनारामनव-
- कल्पकवल्लयै
हींकारहिमवद्गङ्गायै
हींकारार्णवकौस्तुमायै
हींकारमन्त्रसर्वस्वायै
हींकारपरसौख्यदायै
नमः ओं 300

4 श्रीमद्राजराजेश्वर्यै नमः ओं॥

॥श्रीललितात्रितीनामावलिः संपूर्णा॥

॥श्रीसूक्तम्॥

हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम। चन्द्रांहूरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह॥1॥ तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्। यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुषानाहम्॥2॥अश्वपूर्वा रथमध्यां हस्तिनादप्रबेधिनीम्। श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवीर्जुषताम्॥3॥कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामामर्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्। पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहेलोके देवजुष्टामुदाराम्। तां पद्मिनीमीं शरणमहं प्रपद्येऽलक्ष्मीमें नश्यतां त्वां वृणे॥5॥

आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः। तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तरायाश्च बाह्या अलक्ष्मीः॥6॥ उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह। प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे॥7॥ क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्। अभूतिमसमृद्धिं च सर्वा निर्णुद मे गृहात्॥8 गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्॥9॥ मनसः काममाकूतिं वाचस्त्यमशीमहि। पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः॥10॥

कर्दमेन प्रजाभूता मयि संभव कर्दम ।श्रियं वासय मे कुले मातरे पद्ममालिनीम्॥11। आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे। नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले॥12॥। आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं सुवर्णांहेममालिनीम्। सूर्या हिण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह॥13॥आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्। चन्द्रां हिरण्यमीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह॥14॥। तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्। यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्ववान् विन्देयं पुरुषानाहम्॥15॥

यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्। सूक्तं पञ्चदशर्च च श्रीकामः सततं जपेत्॥पद्मानने पद्मऊरू पद्माक्षी पद्मसंभवे। तन्मे भजसि पद्माक्षी येन सौख्यं लभाम्यहम्॥अश्वदायी गोदायी धनदायी महाघने। धनं मे जुषतां देवि सर्वकामांश्च देहि मे॥पद्मविपद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि। विश्वप्रिये

विश्वमनोनुकूले त्वत्पादपद्मं मयि संनिधत्स्व॥ पुत्रपौत्रधनं धान्यं हस्त्यश्वादिगवेरथम्। प्रजानां भवसी माता आयुष्मन्तं करोतु मे। धनमाग्निर्धनं वायुर्धनं सूर्यो धनं वसुः। धनमिन्द्रो बृहस्पतिर्वरुणं धनमस्तु ते॥वैनतेय सोमं पिब सोमं पिबतु वृत्रहा। सोमं धनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोगिनः॥न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः। भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां श्रीसूक्तं जपेत्॥ सरसिजनिलाये सरोजहस्तेधवलतरांशुकरान्ध- माल्यशोभे। भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवनभूतिकारि प्रसीद मह्यम्॥विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम्। लक्ष्मीं प्रियसखीं देवीं नमाम्यच्युतवल्लभाम्॥ महालक्ष्मीं च विद्महे विष्णुपत्नी च धीमहि। तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्॥ श्रीवर्चस्वमायुष्यमारोग्यमापिघाच्छोभमानं महीयते। धान्यं धनं पशुं बहुपुत्रलाभं शतसंवथ्सरं दीर्घमायुः।

॥इति श्रीसूक्तम॥

॥दुर्गासूक्तम्॥

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः॥1॥तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुषम्। दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसि तरसे नमः॥2॥अग्ने त्वं पारयानव्यो अस्मान्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा। पूश्च पृथ्वी बहुलान उर्वी भवा तोकाय तनयाय शंयोः॥3॥ विश्वानिनो दुर्गहा जातवेदस्सिन्धुं न नावा दुरितातिपर्षि। अग्ने अत्रिवन्मनसा गृणानोऽस्माकं बोध्यविता तनूनाम्॥4॥पृतनाजितँ सहमानमुग्रमग्निꣳ हुवेम परमाथ्सधस्थात्। स नः पर्षदतिदुर्गाणि विश्वा क्षामद्देवो अतिदुरितात्यग्निः॥5॥

पलोषि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सथ्सि। स्वाञ्चाग्रे तनुवं पिप्रयम्बास्मभ्यं च सौभागमायजस्व॥गोभिर्जुष्टमयुजो निषिक्तं तवेन्द्रविष्णोरनसंचरेम। नाकस्य पृष्ठमभिसंवसानो वैश्णवीं लोक इह मादयन्ताम्॥

॥इति दुर्गासूक्तम्॥

॥ त्रिपुरोपनिषत्॥

ॐ वाङ्भे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मां प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रन्त्संदधाम्यृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारमवतु वक्तारम्॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

ॐ तिस्रः पुरस्त्रिपथा विश्वचर्षणी अत्राकथा अक्षरा संनिविष्टा। अधिष्ठायैनामजरा पुराणी महत्तरा महिमा देवतानाम्॥1॥नवयोनीर्नव चक्राणि दीधिरे नवैव योगा नव योगिनीश्च। नवानां चक्रे अधिनाथाः स्योना नव मुद्रा नव भद्रा महीनाम्॥2॥ एका सा आसीत्पथमा सा नवासीदासो नविंशदासोनत्रिंशत्। चत्वारिंशदथ तिस्रः समिधा उशतीरिव मातरो मा विशन्तु॥3॥ ऊर्ध्वज्वलज्ज्वलनज्योतिरग्रे तमो वै तिरश्चीनमजरं तद्रजोऽभून्। आनन्दनं मोदनं ज्योतिरिन्दोरेता उ वै मण्डला मण्डयन्ति॥4॥ तिस्रश्च रेखाः सदनानि भूमेस्त्रिविष्टपास्त्रिगुणास्त्रिप्रकाशाः। एतत्पुरं पूरकं पूरकाणामत्र प्रथेते मदनो मदन्या॥5॥ मदन्तिका मानिनी मङ्गला च सुभगा च सा सुन्दरी शुद्धमत्ता। लज्जा मतिस्तुष्टिरिष्टा च पुष्टा लक्ष्मीरुमा ललिता लालपन्ती॥6॥ इमां विज्ञाय सुधया मदन्ति परिस्रुता तर्पयन्तः स्वपीठम्। नाकस्य पृष्ठे महतो वसन्ति परं धाम त्रैपुरं चाविशन्ति॥7॥ कामोयोनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः। पुनर्गुहा सकला मायया च पुरूच्येषा विश्वमातादिविद्या॥8॥ षष्ठं सप्तममथ वह्निसारथिमस्या मूलत्रिकमादेशयन्तः। कथ्यं कविं कल्पकं काममीशं तुष्टुवांसो अमृतत्वं भजन्ते॥9॥ त्रिविष्ठपं त्रिमुखं विश्वमातुर्नव रेखाःस्वरमध्यं तदीळे। बृहत्तिथीर्दश पञ्चादि नित्या सा षोडशी पुरमध्यं बिभर्ति॥10॥ द्वा मण्डला द्वा स्तना बिम्बमेकं मुखं चाधस्त्रीणि गुहा सदनानि। कामीं कलां काम्यरूपां विदित्वारो जायते कामरूपश्च काम्यः॥11॥ परिस्रुतं झषमाद्यं पलं च भक्तानि योनीः सुपरिष्कृतानि। निवेदयन्देवतायै महत्यै स्वात्मीकृत्य सुकृती सिद्धिमेति॥12॥

सृण्येव सितया विश्वचर्षणिः पाशेन प्रतिबधानात्यभीकान्। इषुभिः पञ्चभिर्धनुषा चविध्यत्यादिशक्तिररुणा विश्वजन्या॥13॥ भगः शक्तिर्भगवान्काम ईश उभा दातारावेिह सौभगानाम्। समप्रधानौ समसत्त्वौ समोतयोः समशक्तिरजरा विश्वयोनिः॥14॥ परिस्रुता हावषा पावितेन प्रसंकोचे गलिते वै मनस्तः। सर्वः सर्वस्य जगतो विधाता धर्ता हर्ता विश्वरूपत्वमेति॥15॥ इयं महोषनिपत्रिपुराया वामक्षरं परमेगीर्भिरीट्टे। एषग्र्यजुः परमेतञ्च सामेवायमथर्वेयमन्या च विद्योम्॥16॥ एवं वेदेत्युपनिषत्॥

ॐ वाङ्भे मनसीति शान्तिः॥हरिः ओं तत्सत्॥

॥इति त्रिपुरोपनिषत्॥

देव्युपनिषत्

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टु वांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः। स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः। स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमिः। स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दध ाातु॥ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

हरिः ॐ सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः। कासि त्वं महादेवि॥1॥ साब्रवीदहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगच्छून्यं चाशून्यं च। अहमानन्दानान्नदाः। विज्ञानाविज्ञाने अहम्। ब्रह्मा ब्रह्माणी वेदितव्ये। इत्याहाथर्वणी श्रुतिः॥2॥ अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि। अहमखिलं जगत्। वेदोऽहमवेदोऽहम्। विद्याहमविद्याहम्। अजाहमनजाहम्। अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्चाहम्॥3॥ हं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः। अहं मित्रवरुणावुभा विभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमाश्विनावुभौ॥4॥ अहं सोमं त्वष्टारं भूषणं भगं दधाम्यहम्। विष्णुमुरुक्रमं ब्रह्माणमुत प्रजापतिं दधामि॥5॥ अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये 3 ये यजमनाय सुन्वते। अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनामहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्॥4॥ मम योनिरप्स्वन्तः समुदे। य एवं वेद स देवीपदमाप्रोति॥7॥ ते देवा अत्रुवन्। नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः। नमः पकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥8॥तामग्निवर्णां

तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनी कर्मफलेषु जुष्टाम्। दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरां नाशय ते तमः॥9॥ देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति। सा नो मन्द्रेषमूर्ज दुहानाधेनुर्वास्मानुपसुष्टुतैतु॥10॥ कालरात्रिं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कन्दमातरम्। सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम्॥11॥महालक्ष्मीश्च विद्महे सर्वसिद्धिश्च धीमहि; तन्नो देवी प्रचोदयात्॥12॥ आदितिर्ह्यजनिष्ठ दक्ष या दुहिता तव। तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्ध्वः॥13॥ कामो योनिः कामकला बज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः। पुनर्गुहा सकला मायया च पुरूच्येषा विश्वमातादिविद्योम्॥14॥ एषात्मशक्तिः। एषा विश्वमोहिनी पाशङ्कुशधनुर्वाणधरा। एषा श्रीमहाविद्या॥15॥ य एवं वेद स शोकं तरति॥16॥ नमस्ते अस्तु भगवति भवति मातरस्मान्पातु सर्वतः॥17॥ सैषाऽष्टौ वसवाः। सैषैकादश रुद्राः। सैषा द्वादशादित्याः। सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च। सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः सिद्धाः। सैषा सत्त्वरजस्तमांसि सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः। सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतींषि कलाकाष्ठादिकालरूपिणी। तामहं प्रणौमि नित्यम्॥18॥तापापहारिणीं देवीं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम्। अनन्तां विजयां शुद्धां शरण्यां शिवदां शिवाम्॥19॥ वियदीकारसंयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितम्। अर्धेन्दुलसितं देव्या बीजं सर्वार्थसाधकम्॥20॥ एवमेकाक्षरं मन्त्रं यतयः शुद्धचेतसः। ध्यायन्ति परमानन्दमया ज्ञानाम्बुराशयः॥21॥ वाङभाया ब्रह्मभूस्तस्मात्षष्ठं वक्त्रसमन्वितम्। सूर्यो वामश्रोत्रबिन्दुसंयुक्तष्टात्तृतीयकः॥22॥ नारायणेन संयुक्तो वायुश्चाधरयुक्ततः। विशे नवार्णकोऽणुः स्यान्महदानन्ददायकः॥23॥ हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां प्रातःसूर्यसमपभाम्। पाशङ्कुशधरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम्। त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुघां भजे॥4॥ नमामि त्वामहं देवीं महाभयविनाशिनीम्। महादुर्गप्रशमनीं महाकारुण्यरूपिणीम्॥25॥ यस्याः स्वरूपं ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मादुच्यतेऽज्ञेया। यस्या अन्तो न विद्यते तस्मादुच्यतेऽनन्ता। यस्या ग्रहणं नोपलभ्यते तस्मादुच्यतेऽलक्ष्या। यस्या जननं नोपलभ्यते तस्मादुच्यतेऽजा। एकैव सर्वत्र वर्तते तम्मादुच्यत एका। एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका। अत एवोच्यतेऽज्ञेया- नन्तालक्ष्याजैका नैकेति॥26॥ मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी। ज्ञानानां चिन्मयातीता

शून्यानां शून्यसाक्षिणी॥27॥ यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता। [दुर्गात्संत्रायते यस्मादेवी दुर्गेति कथ्यते। प्रपद्ये शरणं देवीं दुंदुर्गे दुरितं हर॥] तां दुर्गां दुर्गमां देवीं दुराचारविघतिनीम्। नमामि भवभीतोऽहं संसारार्णवतारिणीम्॥28॥ इदमथर्वशीर्षं योऽधीते स पञ्चाथर्वशीर्षजप-फलमवाप्रोति। इदमथर्वशीर्षमज्ञात्वा योऽर्चां स्थापयति शतलक्षं प्रजप्त्वापि सोऽर्चासिद्धिं न विन्दति॥29॥ शतमष्टोत्तरं चास्याः पुरश्चर्याविधिः स्मृतः॥30॥ दशवारं पठेद्यस्तु सद्यः पापैः प्रमुच्यते। महादुर्गाणि तरति महादेव्याः प्रसादतः॥31॥ सायमधीयानो दिवसकृत पाप नाशयति। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायं प्रातः प्रयुञ्जानोऽपापो भवति। निशीथे तुरीयसन्ध्यायां जप्त्वा वाक्सिद्धिर्भवति। नूतनप्रतिमायां जप्त्वा देवतासांनिध्यं भवति। प्राणप्रतिष्ठायां जप्त्वा प्राणानां प्रतिष्ठा भवति। भौमाश्विन्या महादेवीसंनिधौ जप्त्वा महामृत्युं तरति। य एवं वेदेत्युपनिषत्॥32॥

ॐ भदं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥हरिः ओं तत्सत्॥

॥इति देव्युपनिषत्॥

॥भावनोपनिषत्॥

ओं भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥

हरिः ॐ। आत्मानमखण्डमण्डलाकारमावृत्य सकलब्रह्माण्डमण्डलं स्वप्रकाशं ध्यायेत्। श्रीगुरुः सर्वकारणभूता शक्तिः॥1॥ तेन नवरन्ध्ररूपो देहः॥2॥ नवचक्ररूपं श्रीचक्रम्॥3॥ बाराही पितृरूपा कुरुकुल्ला बलिदेवता माता॥4॥ पुरुषार्थाः सागराः॥5॥ देहो नवरत्नद्वीपः॥6॥ त्वगादिसप्तधातुरोमसंयुक्तः॥7॥ संकल्पाः कल्पतरवस्तेजः कल्पकोद्यानम्॥8॥ रसनया भव्यमाना मधुराम्लतिक्तकटुकषाय लवणरसाः षड्तवः॥9॥ ज्ञानमध्य ज्ञेयं हविर्ज्ञाता होता ज्ञातृज्ञानज्ञेयानामभेदभावनं श्रीचक्रपूजनम्॥10॥ नियतिः शृङ्गारादयो रसा अणिमादयः॥11॥ कामक्रोधलोभमोहमद-मात्सर्यपुण्यपापमया ब्राह्मयाद्यष्ट शक्तयः॥12॥आधारनवकं मुद्राशक्ततः॥13॥ पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाश-श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वा- घ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थानि मनोविकारः

कामाकर्षिण्यादि-षोडश शक्तयः॥14॥ वचनादानगमनविसर्गानन्द-हानोपादा-नोपेक्षाख्यबुद्धयोऽनङ्गकुसुमा- द्यष्टौ॥15॥ अलम्बुसा कुहूर्विश्वोदरा वारणा हस्तिजिह्व यशोवती पयस्विनी गान्धारी पूषा शङ्खिनी सरखतीडा पिङ्गला सुषुन्ना चेति चतुर्दश नाड्यः सर्वसंक्षो-भिण्यादिचतुर्दश शक्तयः॥16॥ प्राणापानव्यानोदान- समानानाग- कूर्मकृकरदेवदत्तधनञ्जया दश वायवः सर्वसिद्धि-प्रदादिबहिर्द- शारदेवताः॥17॥ एतद्वायुसंसर्गकोपाधिभेदेन रेचकः पाचकः शोषको दाहकः प्लावक इति प्राणमुख्यत्वेन पञ्चधा जठराग्निर्भवति॥ 18॥ क्षारक उद्धारकः श्रोभको जृम्भको मोहक इति नागप्राधान्येन पञ्चविध ाास्ते मनुष्याणां देहगा भष्यभोज्यचोष्यलेह्यपेयात्मकपञ्चविधमन्नं पाचयन्ति॥ 19॥ एता दश वह्निकलाः सर्वज्ञाया अन्तर्दशारदेवताः॥ 20॥ शीतोष्णसुखदुःखेच्छाः सत्त्वं रजस्तमो वशिन्यादि शक्तयोऽष्टौ॥ 21॥ शब्दादितन्मात्राः पञ्च पुष्पबाणाः॥ 22॥ मन इक्षुधनुः॥ 23॥ रागः पाशः॥ 24॥ द्वेषोऽङ्कुशः॥ 25॥ अव्यक्तमहदहङ्काराः कामेश्वरीवज्रश्वरीभगमालिन्योऽन्त-स्त्रिकोणगा देवताः॥ 26॥ निरुपाधिकसंविदेव कामेश्वरः॥ 27॥ सदानन्दपूर्णः स्वात्मैव परदेवता ललिता॥ 28॥ लौहित्यमेतस्य सर्वस्य विमर्शः॥ 29॥ अनन्यचित्तत्वेन च सिद्धिः॥ 30॥ भावनायाः क्रिया उपचारः॥ 31॥ अहं त्वमस्ति नास्ति कर्तव्यमकर्तव्यमुपासितव्यमिति विकल्पानामात्मनि विलापनं होमः॥ 32॥ भावनाविषयाणामभेदभावना तर्पणम्॥ 33॥ पञ्चदशतिथिरूपेण कालस्य परिणामवलोकनम्॥ 34॥ एवं मुहूर्तत्रितयं मुहूर्तद्वितयं मुहूर्तमात्रं वा भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति स एव शिवयोगीति गद्यते॥ 35॥ कादिमतेनान्तश्चक्रभावनाः प्रतिपादिताः॥ 36॥ य एवं वेद सोऽथर्वशिरोऽधीते॥ 37॥ इत्युपनिषत्॥

ओं भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥ हरिः ओं तत्सत्॥

॥ इति भावनोपनिषत्॥

॥ बह्वृचोपनिषत्॥

ओंङ्गो मनसीति शान्तिः॥

हरिः ॐ। देवी ह्येकाग्र एवासीत्। सैव जगदण्ड-मसृजत्। कामकलेति विज्ञायते। श्रृङ्गारकलेति विज्ञायते। तस्या एव ब्रह्मा अजीजनत्। विष्णुरजीजनत्। रुद्रोऽजीजनत्। सर्वे मरुद्गणा अजीजनन्। गन्धर्वाप्सरसः किंनरा वादित्रवादिनः समन्तादजीजनन्। भोग्यमजीजनत्। सर्वमजीजनत्। सर्वं शाक्तमजीजनत्। अण्डजं स्वेदजमुद्भिज्जं जरायुजं यत्किंचैतत्प्राणि स्थावरजङ्गमं मनुष्यमजीजनत्॥

सैषा परा शक्तिः। सैषा शांभवी विद्या कादिविद्येति वा हादिविद्येति वा सादिविद्येति वा। रहस्यमोमों वाचि प्रतिष्ठा। सैव पुरत्रयं शरीरत्रयं व्याप्य वहिरन्त-रवभासयन्ती देशकालवस्त्वन्तरासङ्गान्महात्रिपुरसन्दरी वै प्रत्यक् चितिः। सैवात्मा ततोऽन्यदसत्यमनात्मा। अत एषा ब्रह्मसं-वित्तिर्भावा-भावकलाविनिर्मुक्ता। चिद्विद्याऽद्वितीयब्रह्मसंवित्तिः सच्चिदानन्दलहरी महात्रिपुरसुन्दरी बहिरन्तरनुप्रविश्य स्वयमेकैव विभाति। यदस्ति सन्मात्रम्। यद्विभाति चिन्मात्रम्। यत्प्रियमानन्दं तदेतत्पूर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी। त्वं चाहं च सर्वं विश्वं सर्वदेवता। इतरत्सर्वं महात्रिपुरसुन्दरी। सत्यमेकं ललिताख्यं वस्तु तदद्वितीयमखण्डार्थं परं ब्रह्म। पञ्चरूपपरित्यागा-दर्वरूपप्रहाणतः। अधिष्ठानं परं तत्त्वमेकं सच्छिष्यते महत्॥ इति। प्रज्ञानं ब्रह्मेति वा अहं ब्रह्मास्मीति वा भाष्यते। तत्त्वमसीत्येव संभाष्यते। अयमात्मा ब्रह्मेति वा ब्रह्मैवाहमस्मीति वा योऽहमस्मीति वा सोहमस्मीति वा योऽसौ सोऽहमस्मीति वा या भाव्यते सैषा षोड़शी श्रीविद्या पञ्चदशाक्षरी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी बालाम्बिकेति बगलेति वा मातङ्गीति स्वयंवरकल्याणीति भुवनेश्वरीति चामुण्डेति चण्डेति बाराहीति तिरस्करिणीति राजमातङ्गीति वा शुकश्यामलेति वा लघुश्यामलेति वा अश्वारूढेति वा पत्यङ्गिरा धूमावती सावित्री गायत्री सरस्वती ब्रह्मानन्दकलेति। ऋषो अक्षरे परमे व्योमन्। यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति। य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥ इत्युपनिषत्॥ ओं वाङो मनसीति शान्तिः॥ हरिः ओं तत्सत्॥

॥ इति बह्वृचोपनिषत्॥

ॐ

देवी की मुद्रायें

प्राणायाम एवं षडङ्गन्यास करने के बाद मुद्राएँ दिखलानी चाहिए। संक्षोभिणी, द्राविणी, आकर्षणी, वश्याऽन्माद, महांकुशा, खेचरी, बीज एवं महायोनि में 9 मुद्रायें देवी की प्रिय मुद्रायें हैं। फिर श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी देवी का ध्यान करना चाहिए।

टिप्पणी- देवी की प्रिय संक्षोभ आदि 9 मुद्राओं के लक्षण इस प्रकार हैं।

1. संक्षोभ मुद्रा-

मध्यमां मध्यमे कृत्वा कनिष्ठांगुष्ठरोधिते।
तर्जन्यौ दण्डवत् कृत्वा मध्यमोपर्यनामिके॥
क्षोभाभिधान मुद्रेयं सर्वसंक्षोभकारिणी॥

2. द्राविणी मुद्रा-

एतस्या एव मुद्राया मध्यमे सरले यदा।
क्रियेते परमेशानि तदा विद्राविणी मता॥

3. आकर्षिणी मुद्रा-

मध्यमातर्जनीभ्यां तु कनिष्ठानामिके समे।
अंकुशाकार रूपाभ्यां मध्यमे परमेश्वरि॥
इयमाकर्षिणीमुद्रा त्रैलोक्याकर्षणे क्षमा॥

4. वश्य मुद्रा-

पुटाकारौ करौ कृत्वा तर्जन्यावंकुशाकृती।
परिवर्त्य क्रमेणैव मध्यमे तदधोगते।
संयोज्य विनिडाः सर्वा अंगुष्ठावग्रदेशतः॥
मुद्रेयं परमेशानि सर्ववश्यकरी मता।

5. उन्माद मुद्रा-

सम्मुखौ तु करौ कृत्वा मध्यमामध्यमेनुजे।

अनामिके तु सरले तदधस्तर्जनीद्वयम्॥
दण्डाकारौ ततोङ्गुष्ठौ मध्यमानस्वदेशगौ।
मुद्रैषोन्मादिनी नाम क्लेदिनी सर्वयोषिताम्॥

6. महांकुशा मुद्रा-

अस्यास्त्वनामिका युग्ममधः कृत्वांकुशाकृति।
तर्जन्यावपि तेनैव क्रमेण विनियोजयेत्॥
इयं महांकुशा मुद्रा सर्वकामार्थसाधिनी॥

7. खेचरी मुद्रा-

सव्यं दक्षिणहस्ते तु सव्यहस्ते तु दक्षिणम्।
बाहूकृत्वा महादेवि हस्तौ सम्परिवर्त्य च॥
कनिष्ठानामिके देवि युक्ता तेन क्रमेण तु।
तर्जनीभ्यां समाक्रान्ते सर्वोर्ध्वमपि मध्यमे॥
अंगुष्ठौ तु महादेवि सरलावपि कारयेतु।
इयं सा खेचरी वाम मुद्रा सर्वोत्तमोत्तमा॥

8. बीजमुद्रा-

परिवर्त्य करौ स्पष्टावर्द्धचन्द्राकृती प्रिये।
तर्जन्यंगुष्ठयुगलं युगपत्कारयेत्ततः॥
अधः कनिष्ठावष्टब्धे मध्यमे विनियोजयेत्।
तथैव कुटिले योज्ये सर्वाधस्तादनामिके॥
बीज मुद्रेयमुदिता सर्वसिद्धिप्रदायिनी॥

9. महायोनिमुद्रा-

मध्यमे कुटिले कृत्त्वा तर्जन्युपरि संस्थिते।
अनामिका मध्यगते तथैव हि कनिष्ठके॥
सर्वा एकत्र संयोज्या अंगुष्ठपरिपीडिताः।
एषा तु प्रथमा मुद्रा महायोन्याभिधा मता॥
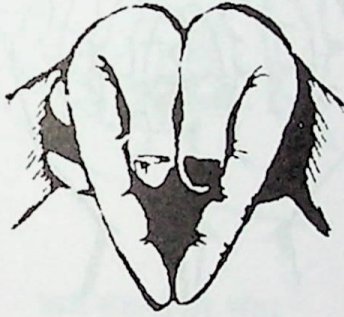
वर मुद्रा
अभय मुद्रा
पाश मुद्रा
मोदक मुद्रा
मूशल मुद्रा
मुण्ड मुद्रा

ग्रास मुद्रा

शंख मुद्रा
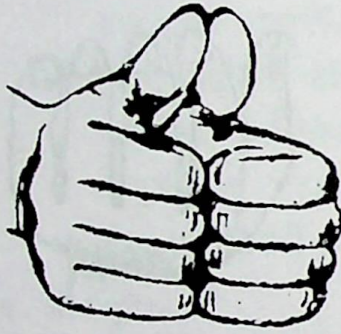
सन्निधापनी मुद्रा

पद्म मुद्रा

अवगुण्ठनी मुद्रा

मत्स्य मुद्रा
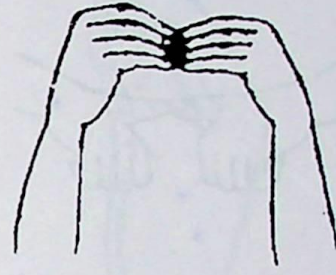
सर्वाकर्षिणी मुद्रा
सुमुखी मुद्रा
सर्व-महाकुंशा मुद्रा
विस्तृत मुद्रा
संहार मुद्रा
चतुर्मुखी मुद्रां
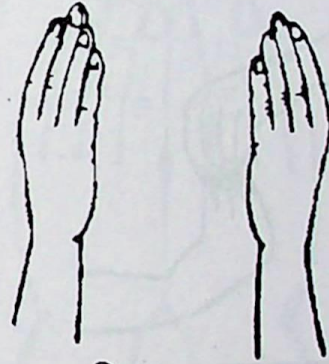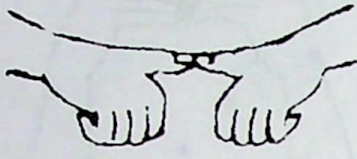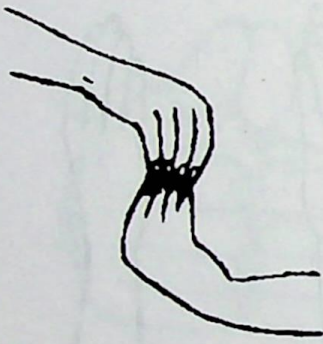
शकट मुद्रा
सिंहाक्रान्त मुद्रा
सम्मुखोन्मुख मुद्रा
पल्लव मुद्रा
वराह मुद्रा
त्रिखण्डा मुद्रा

उदान मुद्रा
समान मुद्रा
आवाहनी मुद्रा
संस्थापनी मुद्रा
सन्निरोधिनी मुद्रा
सम्मुखीकरणी मुद्रा

महाक्रान्त मुद्रा

मुद्‌गर मुद्रा

धेनु मुद्रा
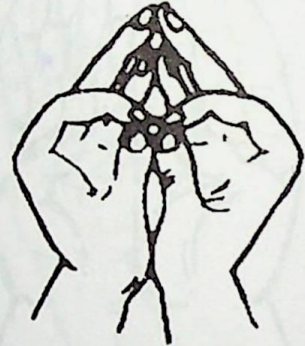
बीज मुद्रा
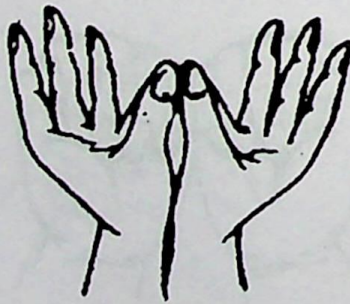
ज्वालिनी (सप्त-जिह्वा) मुद्रा

मुगी मुद्रा

अधोमुखी मुद्रा

व्यापकांजलि मुद्रा
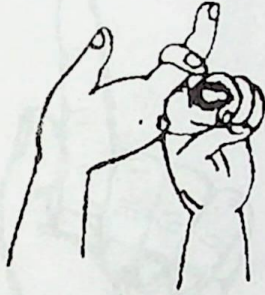
यम-पाश मुद्रा

ग्रन्थिव मुद्रा
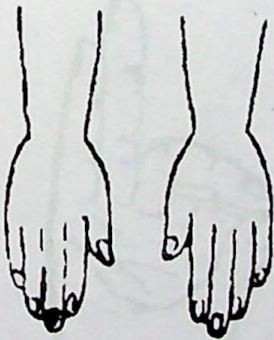
प्रलम्ब मुद्रा

मुष्टिक मुद्रा

दन्त मुद्रा
प्रार्थना मुद्रा
खड्ग मुद्रा
कुन्त मुद्रा
लेलिहा मुद्रा
प्राण मुद्रा

सम्पुटी मुद्रा
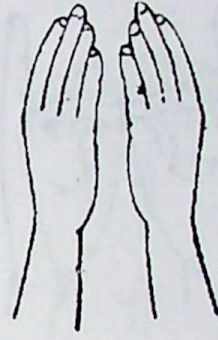
वितत मुद्रा
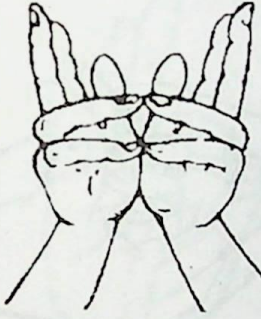
द्विमुखी मुद्रा

त्रिमुखी मुद्रा
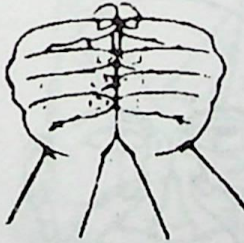
पंचमुखी मुद्रा

षणमुखी मुद्रा
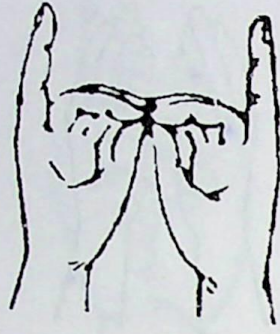
सर्व-संक्षोभिणी मुद्रा
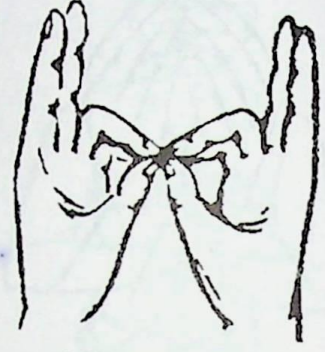
सर्व-विद्राविणी मुद्रा
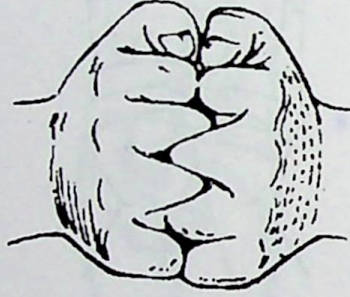
सर्व-वशंकरी मुद्रा

सर्वोन्मादिनी मुद्रा

खेचरी मुद्रा

योनि मुद्रा

चक्र मुद्रा
गदा मुद्रा
ज्ञान मुद्रा
परशु मुद्रा
कूर्म (कच्छप) मुद्रा
हयग्रीव मुद्रा

अंकुश मुद्रा (१)
अंकुश मुद्रा (२)
कुम्भ मुद्रा
तत्त्व मुद्रा
अपान मुद्रा
व्यान मुद्रा

श्री जगत गुरू आदि शंकराचार्य कृत

सौन्दर्य लहरी

हिन्दी विज्ञान भाष्यम्
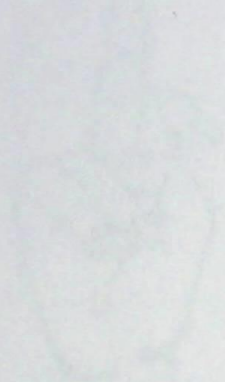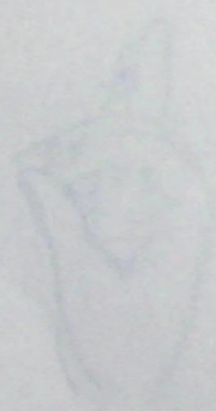
सौन्दर्य लहरी

शक्ति तत्व के संबंध में वेदोपनिषद पुराणेतिहास ग्रन्थों में सर्वत्र विशद विवेचन प्राप्त होता है।

शक्ति ही सृष्टि की मूल नाड़ी है शक्ति चेतना है और सर्वव्यापी है।

ऋग्वेद के देवी सूक्त में देवी की सर्वव्यापकता का वर्णन प्राप्त होता है।

रुद्र, वसु, आदित्य, विश्वेदेव मित्रावरुण, इन्द्र, अग्नि, सोम, त्वष्टा, भग, सभी में शक्ति की एक मात्र सत्ता है उस महा शक्ति की कला ही एक मात्र इन नामों में व्याप्त है।

यथा- अहं रुद्रेभिः इत्यादि मन्त्रों में पराम्बा भगवती ने बताया है कि एक मात्र मैं ही ब्रह्म स्वरूपिणी चिति हूं प्रकृति पुरुषात्मक यह जगत् शून्य भी है अशून्य भी है।

आनन्द तथा अनानन्द, विज्ञान तथा अविज्ञान मैं ही हूं, विद्या अविद्या, अजा अनजा, पंचभूत तथा अपन्चीकृत सब कुछ मेरा ही स्वरूप है सभी देवताओं की कारण भूता सनातनी होने के कारण मैं सर्वदेवमयी हूं।

दुःख दारिद्र का शमन करने वाली जन्म मृत्यु के भय से जीव का उद्धार करने वाली वही शक्ति ज्ञान स्वरूपिणी शब्द मयी चिन्मयी परमानन्द स्वरूपा उन समस्त दुराचारों की विध्वंसिका को प्रतिक्षण प्रणाम करते रहना चाहिये।

भगवान शक्ति से युक्त होकर ही सृष्टि के विधाता, धर्ता और हर्त्ता होते हैं।

जगत् में सभी कुछ चिती चेतना का एकांशभूत है अतः समाहित चित्त के द्वारा उस महाशक्ति का स्तवन चिंतन करना चाहिये।

श्री ललिताम्बा सहस्र नाम विष्णु सहस्र नाम तथा शिव सहस्र नाम यह सभी मोक्ष देने वाले हैं विष्णु शिव का नामोच्चारण करते रहना चाहिये।

भगवत्पाद आदि शंकराचार्य ने धर्म रक्षा स्थापना और सार्वजनिक प्रबोध प्राप्ति कराने के लिये इस भारत भूमि के चारों स्तम्भों (भागों) में चार आम्नाय पीठों की स्थापना करते हुये शक्ति तत्व को पुनः जागृत किया है।

आचार्यपाद की यह दिग्विजय यात्रा चारों मठों (पीठों) में चक्रराज की स्थापना करके श्री चक्र की पूजा अर्चना एवं शक्ति साधना की परम्परा को स्थिर करना था।

आम्नाय पीठों की स्थापना को प्रथम शृंगेरी पीठ एक विशिष्ट शान्तिमय दिव्य क्षेत्र में श्री चक्र के ऊपर शारदाम्बा की स्थापना किया साथ ही कैलाश पर्वत से लाये हुये स्फटिक लिंग की अर्चना के साथ श्री विद्या श्री चक्र की एक अर्चना पद्धति स्थापित किया उस समय से अद्यावधि वह अर्चना पद्धति देश भर में प्रचलित है।

शिव शक्त्यात्मक श्री चक्र में शिव के चार और शक्ति के पाँच त्रिकोण होते हैं इसी अर्चना में पञ्चदशी मंत्र तथा षोडशी मन्त्रों के अनुसार अर्चना का साधक धीरे-धीरे अन्तर्याग षट्चक्र की साधना में प्रविष्ट होता है ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार

कत्रयं हृद्वयं चैव शैवो भागः प्रकीर्तितः
शक्त्यक्षराणि शेषाणि ह्रींकार उभयात्मकः

एवं विभागमज्ञात्वा ये विद्याजपशालिनः
न तेषां सिद्धिदा विद्या कल्पकोटिशतैरपि॥

त्रिपुरातापिनिउपनिषद में भी श्रीचक्र के संबंध में विशेष विवरण प्राप्त होता है।

यह शक्ति ही एक मात्र माया है महामायामयी है शक्ति अर्थात्

योगमाया ही अनिर्वाच्या अपार महिमा रूपिणी शुद्ध विद्यान्तर्गत माया तत्व है।

सौन्दर्य्य लहरी के 97वें श्लोक में सर्वदेव मयी का स्वरूप वर्णित है-

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो।

शक्ति को ब्रह्म महिषी अम्बा।

ब्रह्म की पत्नी सरस्वती विष्णु पत्नी महालक्ष्मी

एवं हर महादेव की सहचरी पार्वती कहते हैं परन्तु वह शक्ति इस सब से परे तुरीया अनिर्वाच्या अपार शक्ति है इसी को स्वतंत्रा चिति के रूप में वर्णन शास्त्रों में प्राप्त होता है।

चिति रूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत्

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः

विमुक्ति का साधन एक मात्र मानव शरीर में ही प्राप्त होता है।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, रूपी पुरुषार्थ के द्वारा मनुष्य साधना का उपयोग कर सकता है यह साधन चतुष्टय मानव जीवन को सफल कराने वाले होते हैं। उपरोक्त पुरुषार्थ चतुष्ट्य के बिना मनुष्य की पशु संज्ञा शास्त्रों में बताई गयी है।

महान दुःख जन्म-मृत्यु की श्रृंखला है यह श्रृंखला अज्ञान से ही बनती है। जब तक महामोह अज्ञान का आधिपत्य जीवन में रहता है। वहाँ तक जन्म मृत्यु की यह श्रृंखला बनी रहती है इसका विलय एक मात्र ज्ञान में ही होता है।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः,

ज्ञान से जिन का अज्ञान नष्ट हो जाता है वही साधक इससे छुटकारा पा सकते हैं, ज्ञान अनुभव गम्य है ज्ञान सबको नहीं होता।

जिसको स्वयं अनुभव नहीं है वह दूसरे को कैसे अनुभव करा सकते हैं।

अनुभवगम्य ज्ञान, श्री विद्या की उपासना एवं वेदान्तवेद्य तत्व का अनुशीलन करने से योग युक्त अवस्था में साधक को प्राप्त होता है।

श्री विद्या की साधना में पराशक्ति के यन्त्रात्मक, कुंडलन्यात्मक आध्यात्मिक अर्चनायें हैं और इसी में लययोग प्राप्त होता है। इस मंत्र में देहो देवालयः प्रोक्तः

देह ही देवालय हो जाता है पूजन, हवन आदि अर्चनाओं से शरीर के अन्दर चिदग्नि का विकास होता है।

यह आराधना, भोग, मोक्ष, देने वाली है।

आदि शंकराचार्य जी ने मंत्र शास्त्र के सर्वस्व "सौंदर्य्य लहरी" स्तवन की रचना किया।

श्रीविद्या के आदि उपासक

मनुः

चन्द्रः

कुबेरः लोपामुद्रा, मन्मथ, अगस्त्य, नन्दिकेश्वर, सूर्य, विष्णु, षण्मुख, शिव, दुर्वासा, ब्रह्मा, इन्द्र और यम आदिको ने, जिन मंत्रों से उपासना की है उसका वृत्त का यहाँ प्रथम श्लोक से विशदीकरण किया गया है।

श्रीविद्या और ब्रह्म एक ही हैं ब्रह्म प्रकाश स्वरूप हैं

श्रीविद्या विमर्श रूपा है।

कुलार्णव तन्त्र, ज्ञानार्णव, वामकेश्वर, आदि तन्त्र ग्रन्थों में इस विचार धारा का विस्तार प्राप्त होता है। परशुराम कल्प सूत्र में अर्चना का विशाल स्वरूप वर्णित है।

पन्चदशी विद्या "शिवः शक्तिः काम इस 32वें श्लोक में तीन खण्डों में यह वृत्त प्राप्त होता है "त्रिपुरा तापिनि, उपनिषद, वहृर्च, में त्रिपदा गायत्री तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् इन तीन चरणों में से माता श्री का वर्णन है।

ऋग्वेद के प्रथम अक्षर अग्नि मीले से "अकार" इषे त्वेर्जेत्वा से इकार सामवेद के प्रथमाक्षर अग्नि आयाहि वीतये से अकार इन तीनों के मिलाने से अनुस्वार रहित ऐं वाग्भवबीज कादि विद्या का प्रथम कूट बनता है। इसलिये इस विद्या को वेद त्रयी कहते हैं। यह पंचदशी विद्या है। रमाबीज के योग से षोडशाक्षरी हो जाती है।

अविद्यानामन्तश्लोक में श्री विद्या की उपासना से अज्ञान दूर हो जाता है। और आत्म साक्षात्कार की प्राप्ति होती है।

"कामो योनिः कमलेत्येवं संकीर्तितैशब्दैर्व्यवहरति नु प्रकृष्टं यां विद्यां वेद पुरुषोऽपि, बह्वर्चोपनिषद् में स्पष्टीकरण है।

देवी एकाग्र आसीत् इत्युप्रक्रम्य, श्रृंङ्गार कला कामकला इन्हीं कलाओं से समस्त जगत ओत प्रोत हैं श्लोक 49 में विशाला कल्याणी, इस परा (शक्ति शाम्भवी विद्या) से- कादि विद्या प्रकट हुयी है, यह कादि विद्या, हादि विद्या, सादि विद्या रूपी रहस्य एक मात्र ॐकार से प्रकट होता है यही कादि, हादि, सादि, स्वरूपिणी पराशक्ति पुर त्रय तथा शरीरत्रय में व्याप्त होकर बाह्य अन्तर जगत को प्रकाशित करती है।

श्लोक (2) तनीयांसंपांसुं आत्मा और अनात्मा का भेद इसी से प्रकट होकर अन्त में वेदान्त सम्मत महावाक्य में "अहंब्रह्मास्मि" "अयमात्मा" ब्रह्म "तत्वमसि" "प्रज्ञानं ब्रह्म" इन चार महा वाक्यों में एकत्व की स्थिति प्राप्त होती है, "यह विद्या ही षोडशी पंचदशाक्षरी महात्रिपुर सुन्दरी है इसका वह्वृच उपनिषद में वर्णन प्राप्त होता है।

श्री विद्या की उपासना गुरूपदिष्ट दीक्षा और पूर्णाभिषिक्त होकर अनुशीलित होने पर ब्रह्म का साक्षात्कार कराती है।

माता श्री की सुन्दरता का वर्णन करते हुये 7 सात करोड़ महामन्त्र जोकि षडाम्नाय से निकले हैं उनसे प्रतिपादित श्री चक्र, चतुर्भिः श्री कण्ठैः, (श्लोक 11) आदि श्लोक से नवयोन्यात्मक यन्त्र की अर्चना का विधान है उसमें आवरण अर्चन का क्रम प्राप्त होता है।

सौन्दर्य्य लहरी के प्रत्येक श्लोक मन्त्र रूप है उनका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया गया है।

श्री विद्या, श्री चक्र की सूक्ष्म अर्चना यही मूलाधार (श्लोक 9) के अनुसार जपो जल्पः शिल्पं (श्लोक 2) तथा पुरारातेरन्तः (श्लोक 96)

आदि श्लोकों में सूक्ष्म षट्चक्र भेदन की विधि वर्णित है। इसमें गुप्त मन्त्र साधना योग मंत्रों का विशुद्ध विवेचन तथा क्रम वर्णित है। यद्यपि श्लोकों के पूर्व में भावों का विशुद्धीकरण अत्यन्त दुर्लभ है तथापि उसका संक्षिप्त भाव व्यक्त किया है। श्लोक 1 से 41 तक सभी श्लोक मंत्रात्मक हैं आगे 43 से मूर्त्यात्मक हैं। यह मनुष्य का शरीर नवयोन्यात्मक श्री यन्त्र का प्रतिबिम्ब मात्र है।

श्री विद्या पूजन का क्रम

एक श्लोक में ही वर्णित है।

श्री नाथादि, गुरुत्रयं,

गणपतिं पीठत्रयं भैरवं,

सिद्धौघं, वटुकत्रयं, पदयुगं,

दूतीक्रमं-मंडलम्

वीरान्ह्यष्टचतुष्क, षष्टिनवकं

वीरावलीपंचकम्

श्रीमन्मालिनि मन्त्रराज, सहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम्॥ 1॥

श्री विद्यार्णवतन्त्र में उपरोक्त श्लोकों का पूजन क्रम दिया हुआ है।

विज्ञान भाष्य-

भगवान आदि शंकराचार्य जी अपनी अष्ट वर्षीय अवस्था में 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या इस सिद्धान्त का डिंडिम घोष कर समस्त विद्वत्संसार को आत्माभिमुखी वृत्ति करने का निर्देश देते हुये स्थान 2 पर कर्म उपासना

भक्ति सब की एक वाक्यता से "अद्वैत वाद द्वारा निःश्रेयस पथ को प्रकाशित किया था तथापि उत्तर मीमांसा में वर्णित।

"पुरुष विद्यानित्यत्वात् कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रो वेदे, इस सूत्र के अनुसार त्रिगुणात्मक मन और बुद्धि के रहते हुये ज्ञान निरन्तर मनुष्य जीवन में स्थिर नहीं रहता इसलिये "श्री विद्या की उपासना नित्य ज्ञान निष्ठा करते हुये, "शिवः शक्त्या युक्तः श्लोक से सौन्दर्य्य लहरी इस स्त्रोत्र की रचना उनके मुखारविन्द से प्रकट हुयी, शिव शब्द मंगलात्मक होने से इस स्तवन का प्रारम्भ शिव शब्द से किया है। "शिव शब्द का प्रयोग षट्चक्र निरुपण में इस प्रकार आया है-

शिवस्थानं शैवा परमपुरुषं वैष्णव गणः लपन्तीति प्रायो हरिहरपदं केचिदपरे पदं देव्या देवीचरणयुगलाम्भोजरसिकाः मुनीन्द्रा अप्यन्ने प्रकृति पुरुषस्थानममलम्-

(षट्चक्र निरुपण 555)

साधक सहस्रार चक्र में शिव आत्मा का दर्शन करते हैं अर्थात शिव शब्द आत्मा का बोधक होने से मंगलार्थक मङ्गलमय होता है।

शिवेति मंगलं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते
भस्मी भवन्ति तस्याशु महापातकराशयः

(शिव वह 2 दो शब्द का वाक्य जिस भावुक साधक की जिह्वा से जपा जाता है उस व्यक्ति के सम्पूर्ण पाप नाश हो जाते हैं।)

"शान्तं शिवमद्वैतं स आत्मा सविज्ञेयः" शिव शब्द मंगल वाचक और आत्मबोधक तथा वेद विहित है इसलिये यजुर्वेद में भी उक्त मंत्र आया है।

"तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु"

मन में शिव का संकल्प होने की आराधना करते हैं। इसलिये शिव संकल्पात्मक ही मन आनन्द का साधन हो सकता है।

शिव निष्कल आत्म तत्व में जब शक्ति (विमर्ष) अर्थात् इच्छा क्रिया ज्ञान अथवा रौद्री ज्येष्ठा वामा शक्ति का संयोग होता है तब शिव तत्व इस संसार का निर्माण और संचालन कर सकता है।

यथा- श्रुतिः इन्द्रो मायाभिः बहुरूपमीयते। इन्द्र आत्मा माया शक्ति से ही विचित्र संसार को रचता है जैसे- इच्छा शक्ति के संयोग से एकोऽहं बहु स्याम् शिव तत्व में यह कल्पना होती है।

आत्मा शक्ति, क्रिया शक्ति के योग से हिरण्य गर्भ रूप धारण करती है तथा शिव, आत्मा शक्ति, ज्ञान शक्ति के योग से परम श्रेयः (मोक्ष) की प्राप्ति कराती है।

मुझे सुख हो दुःख न हो। यह कामना जीव मात्र में स्वाभाविक होती है। परन्तु दुःख से विमुक्ति का साधन एक-मात्र मनुष्य शरीर में ही है। मनुष्य पुरुषार्थ द्वारा इस साधन सम्पत्ति का उपयोग कर सकता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, पुरुषार्थ चतुष्टय मनुष्य जीवन को सफल करने वाले हैं। उक्त पुरुषार्थ विहीन मनुष्य पशु जाति से पृथक् अपने को बताने में कथचिञ्त भी समर्थ नहीं हो सकता है। जब तक महान् दुःख, जन्म-मरण रूपी श्रृङ्खला बनी है तब तक सुख कहां? यह श्रृङ्खला अज्ञान से बनती है, और अज्ञान में बनी रहती है। जब तक महामोह अज्ञान का आधिपत्य जीवन में रहता है, तब तक यह श्रृङ्खला पुष्ट रहती है, इसका विलय, ज्ञान से ही होता है। ''ज्ञानेन तु तदज्ञानंयेषां नाशितमात्मनः'' ज्ञान से जिनका अज्ञान नाश हो जाता है, वह दुःख से छुटकारा पा सकते हैं। ज्ञान अनुभवगम्य कहते हैं। अनुभव सबको नहीं, जिसे स्वयं अनुभव नहीं है, वे दूसरों को कैसे अनुभव करा सकते हैं। अनुभवगम्य ब्रह्मज्ञान श्रीविद्या की उपासना से प्राप्त होता है। श्रीविद्या की उपासना में भगवती के यन्त्रात्मक, कुण्डल्यात्मक आध्यात्मिक पूजन हैं, लय योग इसी में है। यह श्रीविद्या के उपाशक को ज्ञान हो जाता है, उसका शरीर देवालाय, जीवात्मा देवता है। ''देहो देवालयः प्रोक्तः, जीवोदेवः सनातनः।'' इस मनुष्य देह में षड्चक्र-भेदन कुण्डलिनी को जागृत करना उपासक को

बताया है। भगवती की विधिवत् पूजा हवन करने से उसके अन्तः करण में चिदग्नि का विकास हो जाता है।

श्री विद्या की उपासना भोग, मोक्ष दोनों सिद्धियों को देने वाली है, स्वयं शिवजी ने कहा है- ''अखिल पुरुषार्थैक घटना, स्वतंत्रं ते तन्त्रं'' सम्पूर्ण पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को देने वाला श्री विद्या का यह स्वतंत्र तन्त्र पृथ्वी लोक में प्रकट हुआ। इस श्रीविद्या के आदि उपाशक 15 प्रधान थे, जिनके नाम ये हैं- मनु, चन्द्र, कुबेर, लोपामुद्रा, मन्मथ, अगस्त्य, नन्दिकेश्वर, सूर्य, विष्णु, पण्मुख, शिव, दुर्वासा, ब्रह्मा, इन्द्र और यम। जिस 2 मंत्र से जिसने उपासना की है। श्लोक नं0 1 में इसका विशदीकरण किया गया है। श्रीविद्या की उपासना सच्चिदानन्द परब्रह्म की ही उपासना है, जिसे पराशक्ति की उपासना कहा है। उसी से सारे ब्रह्माण्ड का सृजन हुआ है। श्री विद्या और ब्रह्म एक ही हैं। ब्रह्म प्रकाश स्वरूप है और श्रीविद्या विमर्षरूप हैं। कुलार्णव, ज्ञानार्णव, वामकेश्वर तन्त्र तथा परशुराम कृत कल्पसूत्र में श्रीविद्या का विस्तार दिखाया है।

अक्षर (वर्ण) दो प्रकार के होते हैं। स्वर और व्यञ्जनः - लकारसे अः विसर्ग तक 16 स्वर होते हैं। इन्हें शक्तिके अक्षर कहते हैं, क कारसे ह कार तक 35 वर्णों को व्यंजन कहते हैं ये शिवाक्षर हैं। जब तक ये शिवाक्षर (व्यञ्जन) शक्ति स्वर वर्गो से युक्त नहीं होते तब तक उनका मुख से उच्चारण तक नहीं हो सकता है। शिव शब्द का देव शब्द विशेषण होने से यथा 'न चेदेवं देवो' दिवु क्रीड़ा से देव शब्द बनता है। इससे यह द्योतना होती है कि यह सारी सृष्टि लीला मात्र है ब्र0 सू0 ''लीलामात्रं तु कैवल्यं'' यह सारा प्रपञ्च एकमात्र लीला विलास है। शिव (आत्मा या विद्या) और विमर्श (अविद्या या माया) के संयोग से स्फुरण हो रहा है इसलिए वेदों ने विद्या (शिवतत्व) अविद्या (विमर्ष) इन दोनों का विचार लिखा है ''विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयथ्ठ - सह अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते'' साधक अविद्या कर्मकाण्ड से मृत्यु तक का निग्रह कर सकता है, विद्या आत्मज्ञान से मोक्ष प्राप्त करता है यह श्रुति का तात्पर्य

है। जो कुछ व्यक्त अव्यक्त संसार अनुभूत होता है। यह समग्र शिव शक्ति का ही परिणाम है। शब्दमय जगत की रचना भी तब ही हो सकती है जब शिव शक्यात्मक अक्षरों का परस्पर संयोग हो।

तन्त्र शास्त्रः-

शिवशक्तिमयान् प्राहुः तस्मात् वर्णान् मनीषिणः

तथा च मातृकारहस्ये :-

ककारादिक्षकारान्ताः वर्णास्ते शिवरूपिणः

समस्तव्यस्तरूपेण षट्पदं तत्वविग्रहाः

शिवशक्तिमयावर्णाः शब्दार्थप्रतिपादकाः॥

जब शिवाक्षर शक्ति अक्षरों से युक्त होते हैं तब शब्दार्थ की अभिव्यक्ति और शब्दमय संसार बन सकता है। कालिदासने भी कहा है- ''वागर्थाविव संपृक्तौ....... पार्वती परमेश्वरौ' शब्द के साथ जिस प्रकार अर्थ मिला रहता है इसी प्रकार शिव-शक्ति के ऐक्य भाव से सारा संसार बनता है। शिवः शक्त्यायुक्तः यह पद आया है। यद्वा शिव हकार शक्ति अकार इनके योग से द्वयक्षरी वाग्-वादिनी मन्त्र बनता है। ''अनन्तो नकुलीशश्च विद्या वाग्वादिनी मता'' शिव पञ्चाक्षरका भी इसी से उद्धार होता है। शिव शब्द में इ शक्ति के योग से ''ॐ नमः शिवाय'' बनता है। अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्च्यादिभिरपि'' यहां त्वा से अ मा से अनुस्वार आं पाश बीज बनता है हीं भुवनेश्वरी का बीज भी बनता है। हरिसे ओं हरसे र विरञ्चीसे क, इनके लोम विलोम से उन-उन देवताओं के बीजाक्षर और मधुमति विद्या (चन्द्रकला) भी बनती है। यतः पञ्चदशी विद्या के अन्तर्गत मधुमति विद्या को मूर्द्धा स्थान माना गया है। शिव 'ह' शक्ति 'म' हरि 'ल' 'हर' 'ह' विरञ्ची 'क' इनके लोम विलोम करने से भुवनेश्वरीके बीज निकलते हैं। अथवा नवार्ण मन्त्र का भी यही उद्धार है। या शिव 'ह' शक्ति 'अ' हरि 'ल' हर बिन्दु विरञ्ची 'क' आदि पद से रेफ का ग्रहण होता है इनसे नाना प्रकार के श्री-विद्यान्तर्गत मन्त्रों का उद्धरण

होता है। इसलिए अकृत्पुण्यः प्रणन्तुं स्तोतुं न प्रभवति शारदा तिलक में लिखा है। ''पूर्वजन्मकृतैः पुण्यैः ज्ञात्वैनां परदेवताम्'' पूर्व जन्म के जब पुण्य सञ्चय होते हैं तब श्रीविद्या की उपासना और भगवान के चरणों में झुकने की इच्छा और उसके स्तोत्र पाठ करने की रुचि होती है। जब तक पाप के संस्कार रहते हैं। तबतक माता के चरणों में प्रणाम करने की रुचि नहीं होती है। यथा गीता :- येषान्त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः भजन्ते मां दृढव्रताः।

जब पाप नाश हो जाते हैं तब ही मनुष्य दृढव्रत होकर भगवान के चरणों में लगता है। ''ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात् पापस्य कर्मणः'' पाप कर्म के नाश होने पर ही मनुष्य को ज्ञान अर्थात मोक्ष का रास्ता सूझता है। माता की शरण मिलने से ही मोक्ष प्राप्ति होती है ''सैषाप्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये'' माता की प्रसन्नता ही मोक्ष देने वाली है। अतः मुमुक्षुओं को श्री विद्या का ज्ञान प्राप्त कर तदुपासना द्वारा मोक्ष सिद्धि प्राप्त करनी चाहिये। यह शिव शक्त्यात्मक योग भोग मोक्ष का द्वार है ''यत्रास्ति भोगो नहि तत्र मोक्षः यत्रास्ति मोक्षो नहि तत्र भोगः श्री सुन्दरी साधन तत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव'' जहां मोक्ष साधन बताये हैं वहां भोग नहीं जहां स्वर्गादि भोग बताये हैं उस कर्मकाण्ड से मोक्ष अप्राप्य हैं परन्तु श्रीविद्या के उपासकों के करस्थ अर्थात् जप करने से ही भोग, मोक्ष दोनों प्राप्य हैं। यद्वा शिव शब्द से अ, चार त्रिकोण शक्ति शब्द से नीचे के पांच त्रिकोण जब इनका संयोग होता है तभी श्री यंत्र का निर्माण हो सकता है। यथा त्वक्, असृक्, मांस, मेद अस्थि ये पांच शक्ति की धातु और मज्जा शुक्र प्राण जीव ये शिवकी धातु इनके संयोग से शरीर बनता है यथा-- ''चतुर्भिः श्रीकण्ठैशिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि''।

त्रिपुरा तापिनी उपनिपद् में आया है। इत्याद्यां स्यामभिधाय एकविद्याशक्तिकूटं शक्ति शिवाद्यं लोपामुद्रेयम्।

श्री विद्या के आदि उपासक ये हैं :-

''मनुश्चन्द्रः कुवेरश्च लोपामुद्रा च कामराट्।
अगस्त्य नन्दिः सूर्यश्च विष्णुस्कन्दः शिवस्तथा॥
दुर्वासश्च महादेव्या द्वादशोपासकाः स्मृताः।
शक्रश्च गौतमी चैव तथा च वरुणस्तथा॥
धर्मराजोऽनलोनाग राजवायुवुधस्तथा।
ईशानश्च रतिश्चैव तथा नारायणस्तथा।
ब्रह्मा जीवो महादेव्यास्त्रयोदश उपासकाः॥

ज्ञानार्णवे उक्तम् :- -

वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि।
वर्णितुं नैव शक्येऽहं श्रीविद्यां षोडशाक्षरीम्॥
श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि लोपामुद्राभिधां पराम्।
कामराजाख्यविद्यायाः शक्ति तुर्य च सुन्दरि॥
हित्वा मुखे शिवेन्द्राढया लोपामुद्रा प्रकाशिता।
विद्योद्धारं प्रवक्ष्यामि शक्तिमादन मध्यगम्॥
शिवं कुर्याद्वाग्भवे तु शिवाद्यकामराजकम्।
चन्द्राद्यं तु तृतीयं स्याद्विद्ये यं मनुपूजिता॥
सहाद्यं वाग्भवं देवि चन्द्राद्यं शिवमध्यगम्।
मादनं कामबीजं तु शक्तिबीजं हसाननम्॥
चन्द्राराधितविद्येयं भोग मोक्ष फलप्रदा।
हसाद्यं वाग्भवं विद्धि शिवाद्यं सहमध्यगम्॥
मादनं कामबीजं तु तार्तीयं श्रुणु पार्वति।

हसाद्यं शक्तिबीजं तु कुवेरेण प्रपूजिता॥
कामराजाख्यविद्यायास्तार्तीयं श्रृणु पार्वति।
शक्तिबीजं सहाद्यं स्याद्विद्यागस्त्यप्रपूजिता॥
कामराजाख्यविद्याया वाग्भवे मादनं त्यज।
चन्द्रं तत्रैव संयोज्य कामराजे ततः परम्।
कामराजमिदं भद्रे षड्वर्णसर्वमोहनम्।
शक्तिबीजं वरारोहे चन्द्राद्यं सर्वसिद्धिदम्॥
कामराजाख्यविद्याया हित्वा भूमिं तृतीयके।
शक्तिबीजस्थितां देवि चन्द्राद्यं कुरु तत्र च॥
इन्द्राराधितविद्येयं भुक्तिमुक्तिफलप्रदा।
लोपामुद्राख्यविद्यायां द्वितीयाया महेश्वरी॥
कामराजे भृगुं हित्वा मुखे कुर्यात्तमेव हि।
शिवं विना चतुर्थन्तु तार्तीये शक्रडाः शिवः॥
एषा विद्या वरारोहे त्रिपुरा सूर्य पूजिता।
श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि चतुष्कूटां च शांकरीम्॥
लोपामुद्रां द्वितीयां तु विलिख्य सुर सुन्दरि।
पुनर्विलिख्य तामेव चतुर्थे पंचमे स्थिताम्॥
हित्वा तु भुवनेशानीमेकोच्चारेण चोच्चरेत्।
चतुष्कूटा महाविद्या शंकरेण प्रपूजिता॥
लोपामुद्रा पुनर्देवि विलिखेत्तदनन्तरम्।
नन्दिकेश्वरविद्यां च षट्कूटा वैष्णवी भवेत्॥
लोपामुद्रां द्वितीयामित्यर्थः। क ए ई ल ह्रीं, ह स

क ल ह्रीं, स ह स क ल ह्रीं, स ए ई ल ह्रीं, स ह

क ह ल ह्रीं, स क ल ह्रीं,

इति षट् कूटा विष्णूपासिता श्री विद्या

कामराजाख्यविद्याया त्रिकूटेषु वराननने।

या स्थिता भुवनेशानी द्विधा कुरु महेश्वरि॥

बिन्दुहीना नादहीना दुर्वासा पूजिता भवेत्।

दुर्वाससा पुरा देवि निष्कला पूजिता परा॥

पंचविंशति संख्याकोपासकानां मन्त्रः अगस्त्य कामराजोपासिता लोपामुद्रोपासिता श्रीविद्या :-

ह स क ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं, स क ल ह्रीं मनु-उपासिता

श्रीविद्या :-

क ह ए इ ल ह्रीं, ह क ए ई ल ह्री, स क ए ई ल ह्रीं

चन्द्रोपासिता श्रीविद्या :-

स ह क ए ई ल ह्रीं, इस क ह ए ई ल ह्रीं,

ह स क ए ई ल ह्रीं

कुवेरोपासिताश्री विद्या :-

ह स क ए ई ल ह्रीं, ह स क ह ए ई ल ह्री,

स ह क ए ई ल ह्रीं

अगस्त्योपासिता श्रीविद्या :-

क ए ई ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं,

स ह स क ल ह्री

नन्दिकेश्वरोपासिता श्रीविद्या :-

स ए ई ल ह्रीं, स ह क ह ल ह्रीं, स क ल ह्रीं

इन्द्रोपासिता श्रीविद्या :-

क ए ई ल ह्रीं, ह क ह ल ह्रीं, स कल ह ह्रीं

सूर्योपासिता श्रीविद्या :-

क ए ई ल ह्रीं, स ह क ल ह्रीं, स ह स क ल ह्रीं

शिवोपासिता श्रीविद्या :-

क ए ई ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं,

स ह स क ल ह्रीं, क ए ई ल, ह स क ह ल,

स ह स क ल ह्रीं

षट् कूढा विष्णूपासिता। द्वितीया लोपामुद्रा :-

क ए ई ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं,

स ह स क ल ह्रीं, स ए ई ल ह्रीं,

स ह क ह ल ह्रीं, स क ल ह्रीं

दुर्वासोपासिता :-

क ए ई ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं

स क ल ह्रीं

वरुणोपासिता :-

क ए ई ल ह्रीं, ह क ह ल ह्रीं, स ह क ल ह्रीं

धर्मराजोपासिता :-

क ए क ल ह्रीं, ह्रीं क ह्रीं स ह क ल ह्रीं

वह्न्युपासिता :-

क स क ल ह्रीं, ह्रीं स ल क ल ह्रीं,

स क ल र ल ह्रीं

नागराजोपासिता :-

ह स क ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं,

स क ल र ल ह्रीं

वायूपासिता :-

क ए र ल र ह्रीं, ह क ल र ह ल ह्रीं,

स क र ल र ह्रीं

बुधोपासिता :-

क ए ई र ल ह्रीं, ह क ह ल र ह्रीं

स ह क ल र ह्रीं

ईशानोपासिता :-

क ह ल ह्रीं, ह क ल ह ल ल र ह्रीं, स क ल ह्रीं

मन्मथोपासिता :-

क ए ई ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं, स क ल ह्रीं

नारायणोपासिता :-

क ए ई ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं

स क ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं, क ए ई ल ह्रीं

ब्रह्मोपासिता :-

क ए ई ल ह्रीं, ह क ह स ल ह्रीं, ह स क ल ह्रीं

जीवोपासिता :-

ह स क ल ह्रीं, ह क ह स र ह्रीं, ह स क ल ह्रीं

कामराजोपासिता :-

ह स क ह ल ह्रीं

उन्मनी :-

क ए ई ल ह्रीं, ह क ह ल ह्रीं, ह स क ल ह्रीं

....

नोट - - प्रथम श्लोक सारार्थ :-

....

1- शिव, आत्मा, शक्ति, माया के योग से ही सारे संसार की रचना कर सकता है। माया की दो प्रधान शक्ति हैं (आवरण और विक्षेप) इससे ही विचित्र रचना होती है।

2- शिव जब शक्ति, प्रकृति के (सत्व, रज, तम गुणों से मिलता है तब वह सौर जगत की रचना करने वाला ईश्वर हो सकता है। ब्रह्मा भगवती की रजोमय कला से संसार रचता है, विष्णु सत्व से पालन, रुद्र तम से संहार। यदि (शक्ति) प्रकृति से इन गुणों से सम्बन्ध न हो तो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र कुछ भी नहीं कर सकते हैं। अतः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर ये भगवति के पर्यक के चार पाये बनकर स्तुति कर रहें हैं।

3- जब हैमवति शक्ति के साथ शिव का संयोग होता है जैसे- कैलास पृष्ठ में भी यन्त्र के ऊपर शिव के चक्र हैं तभी शिव को हलाहल विष के पचाने की शक्ति हुई है।

4- शिव शब्द में जब इ और अ शक्ति मातृका का योग होता है तभी तो शिव शब्द का उच्चारण हो सकता है। शिव अर्धमात्रा बिन्दु शक्ति परा के संयोग से परा पश्यन्ती मध्यमा बैखरी शब्द की सृष्टि होती है।

5- शिव शब्द ब्रह्मा इसमें परा शक्ति का योग होता है तब शब्द प्रपंच हो सकता है। परा के संयोग से पश्यन्ती मध्यमा और बैखरी शब्द

ब्रह्म में परा शक्ति के संयोग होने से ही ब्रह्मा विष्णु स्तुति मन्त्रों का उच्चारण कर सकते हैं।

शिव बिन्दु है यह जब तक शक्ति त्रिकोण के साथ नहीं मिलता तब तक कु-श-ल-कु-भू पृष्ठ, कैलाश पृष्ठरूपी मन्त्र नहीं बन सकते हैं। जिसे हरि-सूर्य, हर, अग्नि, विरंचि, चन्द्र आदि के मन्त्र 51 वर्ण और 7 वर्ण 51 कोष्ठ में भजन कर रहें हैं।

यद्वा 16 शक्ति (षोड़शनित्या, कामेश्वरी, भगमालिनी, नित्यक्लिन्ना, भेरुण्डा आदि) षोडश नित्याओं का ज्ञान न होने से हरिहर ब्रह्मा भी तुम्हारा स्तवन करने को असमर्थ हैं। कु-श-ल-इनसे कादि क ह ल ह्रीं हादि ह स क ल ह्रीं इत्यादि मन्त्रवर्ण बनते हैं।

योग मार्ग में मूलाधारस्थ चक्र में इस प्रकार निरूपण किया गया है। काशीवासि विलासि विलसति सरिदावर्त रूप प्रकाशः वह शक्ति कुण्डलिनी के योग से सहस्रार चक्र में मोक्ष स्थिति को प्राप्त कराती है।

आशा है उक्त विवेचन साधन पथ में साधकों के लिये विशेष सहयोगी होगा।

विनयावनत :-

आचार्य शास्त्री

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

सौन्दर्य लहरी

हिन्दी विज्ञान भाष्य

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि॥
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्च्यादिभिरपि।
प्रणन्तुं स्तोतुं वा, कथमकृतपुण्यः प्रभवति॥ 1॥

भावार्थ :-

यदि शिव शक्ति के साथ सयुंक्त हो जाय तभी प्रभु (ईश्वर) होने में समर्थ हो सकता है। (न चेदेवं) यदि ऐसा (शक्ति-संयोग) न हो तो स्पन्दन (हिलने डुलने) में भी समर्थ नहीं हो सकता है। इसलिये (हे भगवति) विष्णु शिव और ब्रह्मा आदि से आराधना करने योग्य तुमको अकृत पुण्य जिसने पुण्य सञ्चय न किया हो वह पापी "कैसे प्रणाम और तुम्हारी स्तुति कर सकता है।

कामः (श्लोक 32) से तीन खण्डों में वेदत्रयी विद्या दिखाई है। त्रिपुरा तापिनी तथा वह्वृच उपनिषद में त्रिपदा 'तत्सवितुवरिण्यं' तीन चरणों से पञ्चदशी विद्या बताई है। ऋग्वेद का आदि अक्षर 'अग्निमीले' से अकार, यजुर्वेद, इषेत्वोर्जेत्वा'' से इकार, सामवेद ''अग्र आयाहि'' से अकार। इन तीनों के मिलाने से अनुस्वार रहित ऐं' वाग्भव कादि विद्या का प्रथम कूट बनता है, अतः इसको वेदत्रयी कहा है। यह पञ्चदशाक्षरी विद्या है, रमाबीज के योग से षोड़शाक्षरी हो जाती है। अतः अविद्यानामन्तः (श्लोक 3) में विद्या की उपासना से अविद्या दूर होकर आत्म साक्षात्कार हो जाता है। इसका माहात्म्य-कामोयोनिः कमलेत्येवं संकीर्तितैः व्यवहरति नतु प्रकटं यां विद्यां वेदपुरुषोऽपि'' बह्वृचोपनिषद में इसी का स्पष्टीकरण किया है।

''देवी ह्येकाग्र आसीत् इत्युपक्रम्य'' कामकला रूपा या शृङ्गारकला देवी ने सारे ब्रह्माण्ड को प्रकट किया है, (श्लोक 49) ''विशाला कल्याणी'' इस परा (शक्ति शाम्भवि विद्या) से- कादि विद्या, हादि विद्या, सादि विद्या रूपी रहस्य ॐ इस शब्द से प्रकट हुआ। इसी शक्ति ने पुरत्रय, शरीर त्रय में व्याप्त होकर बाह्य जगत तथा अन्तर्जगत को प्रकाशित किया है। (श्लोक 2) तनीयांसं पाशुं'' आत्मा अनात्मा का भेद इसी से प्रकट होकर अन्त में- ''अहं ब्रह्मास्मि, अयमात्मा ब्रह्म, तत्वमसि, इत्यादि महावाक्य बोधित ब्रह्मात्म्यैक्यस्थिति'' इसी ने दिखाई है। यही षोड़शी पञ्चदशाक्षरी महात्रिपुर सुन्दरी है। इस प्रकार बह्वृच उपनिषद में वर्णन आया है। अतः श्रीगुरूपदिष्ट मार्ग से श्रीविद्या का रहस्य जान कर श्रीविद्या की उपासना भोगैश्वर्य के अनन्तर ब्रह्म साक्षात्कार (मोक्ष) कराने वाली है, सौन्दर्य लहरी में भगवती के उस दिव्य सुन्दरता के प्रकाश-पुञ्ज का वर्णन करते हुए सात करोड़ महामन्त्र जो षडाम्नाय से निकले हैं, उनसे प्रतिपाद्य श्रीचक्र ''चतुर्भिः श्रीकण्ठैः'' (श्लोक 11) नवयोन्यात्मक उसके आवरण देवता प्रत्यधि देवताओं के पूजन का क्रम दिखाया है। सौन्दर्य लहरी के एक 2 श्लोक मन्त्र रूप हैं, उनका प्रयोग जिस-जिस काम में होता है, उसका संक्षिप्त रीति से वर्णन कर दिया है। श्रीयन्त्र का सूक्ष्म पूजन महींमूलाधारे' (श्लोक 9) 'जपो जल्पः शिल्पं' (श्लोक 27) पुरारातेरंतः' (श्लोक 96) में इसमें लिख दिया है। भगवती की सुन्दरता के वर्णन रूपी सौन्दर्य लहरी में जो सुगुप्त रूप से मन्त्र और योग प्रणाली अन्तर्गत कुण्डलिनी का विकास यह हिन्दी भाषा में अनुवाद मात्र किया है। इनका एक 2 श्लोक में जो भाव है। उसका पूर्णतया विशदीकरण करना कठिन है, अतःसंक्षिप्त रूप में जितना बन पड़ा भाषा-भाष्य लिखा है।

श्रीविद्या का पूजन इस एक श्लोक से प्रकट होता है :-

श्रीनाथादि गुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयं भैरवं।
सिद्धौघं वटुकत्रयं पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम्॥

वीरान्द्वष्ट चतुष्कषष्टिनवकं वीरावली पञ्चकं।
श्री मन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम्॥

तनीयांसं पांसुं तव चरण-पंकेरुह-भवम्।
विरिञ्चिः सञ्चिन्वन् विरचयति लोकानविकलम्॥

वहत्येनं शौरिः कथमपि सहस्रेण शिरसाम्।
हरः संक्षुभ्यैनं भजति भसितोद्धूलनविधिम्॥ 2॥

भावार्थः-

तुम्हारे चरण कमल से उठी हुई धूली के कणों (अणुओं) को ब्रह्मा चुनकर (इकट्ठे कर) सारी सृष्टि को बनाते हैं। विष्णु इसी चरण धूली के अणुओं को अपने हजारों शिरों पर धारण कर (पालन) करते हैं रुद्र ने क्षुभित होकर इन धूली के अणुओं को धारण किया है।

विज्ञान भाष्य :-

इस श्लोक में तनीयांसं शब्द जो पांसु शब्द का विशेषण है। वह परमाणु का बोधक है। यह पंच भूतात्मक जगत् भौतिक तत्वानुसन्धान परमाणु द्वारा बनी हुई है। जैसे कणादने वैशेषिक दर्शन में बताया है। दो अणुओं के संयोग से द्व्यणुक और तीन से त्र्यणुक क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि आदि पञ्चभूतों का निर्माण होता है। 'आत्मनः आकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुःवायोरग्निरग्नेराप-अद्भ्यः पृथ्वी'' इत्यादि। प्रलयकाल में जो तत्व जिनसे प्रकट होता है वह उसमें लय हो जाता है, अर्थात् महासंहार में ये सब एकीभूत होकर भगवती के चरणों में लय हो जाते हैं। पुनः उत्पत्ति काल में भगवती के चरणों से उठी हुई धूलि रूप से पंच महाभूतों के परमाणु भगवती की इच्छा शक्ति द्वारा प्रादुर्भूत होते हैं। ब्रह्मा ने इन्हीं पादपद्म से निसृत धूली अणुओं द्वारा चतुर्दश भुवनात्मक संसार की रचना की है, सौरी शब्द से विष्णु का अर्थ है। विष्णु ने सहस्रशीर्षःपुरुषःसहस्राक्षः सहस्रपात् हजार शिरों द्वारा यद्वा हजार फणवाले शेष नाग ने इस पृथ्वी को धारण किया है यद्वा सहस्रेण शिरसा सहस्र कमल बैन्दव स्थान से

निःसृत अमृत द्वारा सारे षट्चक्रात्मक पिण्ड का पालन किया है। चरण पंकेरुहभवम् चरणपंकेरुह, द्विदल आज्ञा चक्र से सारे षट् यन्त्रात्मक देह का निर्माण हुआ है। आज्ञाचक्र द्विदलात्मक ही भगवती के दो चरण सूर्यचन्द्रात्मक शीतोष्ण दो प्रकार के अणु प्रधानतया है। मातृका अर्थात् मन्त्रात्मक विग्रह रूपिणी मातृ भी इसी स्थान से प्रारम्भ होती है। यही स्थान इच्छा, क्रिया, ज्ञान तथा उत्पत्ति, स्थिति, संहार आदि का स्थान है। इस श्लोक में पंकेरुह शब्द से हकार का ग्रहण होता है। चरण से रकार और तनीय शब्द से इकार, सं से अनुस्वार निकाल कर माया बीज (ह्रीं) बनता है। यही भुवनेश्वरी का बीज है इसी से सारे जगत की निर्माण शक्ति का संचार होता है। इसे प्रणव भी कहते हैं।

रुद्र ने क्षुभित होकर इन परमाणुओं को चूर्ण कर भस्म बना दिया और उसी भस्म की विभूति देखकर अपने सारे शरीर में धारण किया, जिससे अविद्या का संहार कर शिव तत्व को प्रकट किया है। इसलिए वेद में आया है 'जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म' इत्यादि। इन भिन्न-भिन्न परमाणुओं के संमिश्रण और विश्लेषण करने से उत्पादन पालन और संहारात्मक शक्तियां प्रकट होती है।

इन अणुओं के सम्मिश्रण से जो एक पिण्ड बनता है उसके प्रयोग से नाशकारी (रौद्री) शक्ति प्रकट होती है उसी प्रकार उन-उन परमाणुओं के साजात्य तथा विजात्य मिश्रण तथा घनीकरण से उत्पादन और संरक्षण शक्तियां भी होती है। जिन्हें ब्राह्मी और वैष्णवी शक्ति भी कहते हैं। यथा रौद्र अणुओं के मिश्रण से विनाशकारी शक्ति होती है इसी तरह ब्राह्म अणुओं के मिश्रण से उत्पादन शक्ति उसमें भी पार्थिव, आग्नेय, आप्य, वायव्य आदि भिन्न-भिन्न भूतों के परमाणुओं के सङ्गठन और संमिश्रण में विभिन्न प्रकार की शक्तियों का संचार होता है। 'तव चरणपंकेरुह' इस शब्द से महामाया के चार चरणों का भी बोध होता है; जो कि शुक्ल रक्त, मिश्र और निर्गुण नाम के चार चरण हैं। सत्व प्रधान शुक्ल, रजस् प्रधान रक्त, तम प्रधान मिश्र और गुणातीत निर्गुण; शुक्ल, रक्त का स्थान

आज्ञाचक्र (भ्रूमध्य में) हैं। मिश्र का हृदय कमल और निर्गुण की सहस्र दल स्थान है।

यद्वा भगवती के पर्यंक के चार पाये हैं, जिनमें शुक्ल सत्व प्रधान पाया विष्णु, दूसरा रक्त रजःप्रधान ब्रह्मा, तीसरा मिश्र तमः प्रधान रुद्र, चतुर्थ निर्गुण सदाशिव ये चार पाये उनके सिंहासन के हैं अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चार पाद भगवती के उपासना के हैं।

यद्वा षट् चक्रात्मक भगवती के स्वरूप का यह वर्णन है। जैसे दत्तात्रेय ने कहा है- भ्रूमध्यगौ विधि हरिः तव रक्त शुक्लौ पादौ रजोऽमल गुणौ तव सेव्यमानौ सृष्टी स्थिति चितनुते सदये तृतीये। संचिन्वनेस्तवहरो स्तिमिरस्यविश्वम्॥ भाव्यं तवैव चरणं निरुपाधि बोधः सन्तामृतेशिव पदे सततं नमामि॥

अर्थात् तुम्हारे आज्ञा चक्र में जो चरण हैं, वे संसार की रचना, पालन, तथा संहारात्मक शक्तियों के विकाशक हैं।

इस श्लोक में भगवती के चरण रज से संसार की सर्जना बताई गई है। बृहन्नील तन्त्र द्वादश पटल में यह लिखा है।

ब्रह्मोवाच

''केन रूपेण देवेशि सृष्टिस्थित्यादिकं भवेत्।
इति तस्य वचः श्रुत्वा भवानि भवमोहिनी॥

कथयामास सर्वस्मिन् वरदा या सुरान् वरान्।
मम पादरजो नीत्वा उपादानात्मकं शिवम्॥

सृष्ट्यादीन् कुरुते प्राज्ञा येन सिद्धिर्भविष्यति।
तत्पादप्रभवं नीत्वा रजो देवि शिवं शुभे॥

सृष्टिं कर्तु ततो ब्रह्मा स्थितौ विष्णुप्रवर्तकः।
संहारे रुद्र एवासौ प्रावर्तयत सत्वरम्॥23॥

ब्रह्मा ने कहा हे भगवति। किस रूप से सृष्टि स्थिति संहार क्रम होता

है। भगवती ने यह उत्तर दिया मेरे पाद रज को ब्रह्मा ने लेकर सृष्टि बनाई, इन्हीं पद रज से विष्णु ने स्थिति, रुद्र ने संहार किया।

> अविद्यानामन्तस्तिमिरमिहिरद्वीपनगरी।
> जडानां चैतन्यस्तवकमकरन्दश्रुतिझरी॥
>
> दरिद्राणां चिन्तामणिगुणनिका जन्मजलधौ।
> निमग्नानां दंष्ट्रा मुररिपुवराहस्य भवती॥३॥

भावार्थ

हे भगवति तुम अविद्या रूपी अन्धकार जिन अज्ञानियों में है उनके अज्ञान दूर करने का अन्तः करण में सूर्य-द्वीपवाली नगरी हो। जड़ों को चैतन्यता देने के लिए मकरन्द को निश्शरण करने वाली श्रोतरूपा हो। दरिद्रयों को उनके दारिद्र दूर करने में तुम चिन्तामणी हो, इस दुःखमय संसार सागर में निमग्न हुए प्राणियों के लिए तुम वराहरूपी भगवान की दाढ़ (दंष्ट्र) हो।

विज्ञान भाष्य

अविद्याा ही संसार के जन्म-मरणादि नाना क्लेशों को उत्पन्न करने वाली है। जब तक अविद्यारूपी आवरण रहेगा तब तक दुःखों का अन्त नहीं हो सकता है। यथा- "अविद्यायामन्तरे वर्तमानः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः जंघन्यमाना परियन्ति मूढ़ाः अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः कठ उपनिषद्, के इस श्लोक में अविद्या शब्द से अ "चैतन्य से "ऐ" अन्त से अनुस्वार इनके योग से वाग्-भवकूट ऐं यह सरस्वतीका बीजाक्षर निकलता है। मन्त्रशक्ति जानने वाले भारतवर्षीय प्रायः नवजात शिशु की जिह्वा पर अष्टगन्ध में मधु मिलाकर वाग्भव बीज (ऐं) लिखते हैं। वाणी के विकास अर्थात् शक्ति को विकास करने वाला वाग्भव बीज है। विद्या आत्म-विकास करने वाली शक्ति को कहते हैं। उसका जिसमें अभाव हो वह अविद्यारूपी अन्धकार जिसके अन्तःकरण में आच्छादित है उसको दूर करने वाली द्वादशादित्य प्रकाशमयी शक्ति तुम हो। वाग्भव बीज के जप

करने से अन्तः करण अज्ञान दूर हो जाता है। देवी भागवत में एक ऋषि के बालक की कथा आती है ऋषि बालक मूर्ख होने के कारण जङ्गल में चला गया क्योंकि घर पर उसके मूर्ख होने से उसका तिरस्कार किया जाता था। एक समय एक व्याध ने किसी शूकरपर गोली मारी, शूकर भगकर उस मूर्ख ब्राह्मण की पर्णकुटी में छिप गया यह ऐं ऐं ऐसा जपकर रहा था व्याध शूकर के शोणित चिन्हों से ब्राह्मण की कुटिया तक आया; उसके आगे उसे कोई चिन्ह शूकर के आने जाने का दृष्टि में न आया। तब उसने उस ब्राह्मण से पूछा कि कृपया बताइए वह शूकर किधर गया है। वह निरन्तर ऐं, ऐं जपता जाता था, जब व्याध ने अनेक बार उससे पूछा तो उसमें बागूभव बीज के जपने से सारस्वत प्रकाश आ गया था वह तत्काल उसे उत्तर देने लगा 'यः पश्यति न सा ब्रूते यो ब्रूते सो न पश्यति'' अरे जिन आंखों ने देखा उन आंखों में बोलने की शक्ति नहीं है और जिस मुख में बोलने की शक्ति है उसने देखा नहीं है वह तुम बार-बार क्यों चिल्लाकर पूछ रहे हो? इस उत्तर से व्याध वापिस हुआ। उस ऋषि कुमार में वागूभव बीज ऐं के जप से अपूर्व वाग्वादिनी शक्ति देख कर सब आश्रमवासी चकित होकर वागूभव बीज का जप करने लगे।

जड़ जीवों के अन्दर उत्तरोत्तर आ इ मकरन्द रस को सिंचन करने वाली शक्ति प्रकट हो जाती है। जिससे अन्तःकरण की जड़ता दूर होकर अध्ययन विकास द्वारा संसार के त्रिविध तापों से अत्यन्त विमुक्त होकर शान्ति प्राप्त करता है। दरिद्राणां दरिद्री जन जिन्हें भोजनाच्छादन तक भी कष्ट है वे तुम्हारी उपासना द्वारा जिस वस्तु की अभिलाषा करते हैं, वह उन्हें तत्काल प्राप्त हो जाती है। जन्म-मरण रूपी संसार सागर में डूबे फिए प्राणियों को उद्धार करने में वाराही शक्ति तुम हो।,

यथा :-

बाराहि वरदे देवि दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे।
कृपया हर मे विघ्नं सर्वसिद्धिं प्रयच्छ मे॥

मूल श्लोक में भगवती की चार प्रकार की पृथक् सिद्धियों के निर्देश

से भगवती की उपासना, बीजाक्षरों के जप ध्यान सपर्य्या से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चतुर्विध पुरुषार्थ की सिद्धि बताई है।

यथा :-

अविद्या के दूर होने से धर्म की प्राप्ति जड़ता के नाश होने से कार्य्य सिद्धि, दारिद्र्य दोष के उपशमन से अर्थ प्राप्ति, संसार में काम, क्रोधादि में निमग्न हुए प्राणियों को संसार से उद्धार करने में मोक्ष प्राप्ति बताई है। इसलिए धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि देने वाली तुम हो, सारा प्रपंञ्च तुम्हारे भ्रूभङ्ग विक्षेप की विभूति मात्र है। त्रिपुरार्णव में लिखा है-

''हरत्यज्ञानमज्ञानां जड़ीमानमतः पुनः।
अतः कामान्वितन्वन्ते कैवल्यं कलया विधौ॥''

वाग्भवं प्रथमं बीजं वेदानां पुरतो यतः।
त्रिपुरा संज्ञया भद्रे त्वद्रूपं विश्वविग्रहम्॥

वाच्यवाचकभेदेन व्याप्नोत्यमितवैभवम्।

शब्दमय जगत के प्रादुर्भाव होने में तुम्हारा वाग्भव बीजरूपी प्रकाश आदि में हुआ, इसलिए त्रिपुरा संज्ञा तुम्हारी हुई है। तीनों लोकों में और तीनों अवस्थाओं में प्रकाश देने वाली तुम ही हो। विष्णु भगवान की गोद में बैठी हुई स्त्री ई लक्ष्मी रूप में तुम्हें जो जानते हैं वह उनका भ्रम है यतः वे तुम्हारी यथार्थ लीला को न पा सके हैं वस्तुतः पुरुषरूप होकर तुम ही विष्णुरूप धारण करती हो। जैसे सप्तशती रहस्य में लिखा है-

''एवं युवतयः सद्यः पुरुषत्वं प्रपेदिरे।
चक्षुष्मन्तो नु पश्यन्ति नेतेरेऽतद्विदो जनाः॥

अर्थात् स्त्रियों ने पुरुषरूप धारण किया है जिनमें देखने की शक्ति है वह इस चमत्कार को देख सकते हैं दूसरे नहीं।

इस श्लोक में भगवती त्रिपुरा के तीन बीजाक्षर ऐं क्लीं सौः निकलते हैं यही त्रयीविद्या ऋग् का प्रथमाक्षर 'अ' अग्निमीडे पुरोहितं'' यजु में इ

''इजेर्त्वोजत्वा'', ''साम में 'य' ऋग्वेद के 'अ ई ऐ' और अर्धमात्र अनुस्वार मिलने से ऐं वाग्भवकूट बना। यह त्रयीविद्या ऋग्, यजुः साम का निष्कर्ष अज्ञान दूर करने वाला है। इसी प्रकार ''श्रुतिझरी'' शब्द जो मूल श्लोक में आया है उसमें श्रुति से श्र झरी से ई अं से अनुस्वार इनके योग से श्रीं-रमाबीज बना है।

त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगणः
स्त्वमेका नैवासि प्रकटितवरा भीत्यभिनया।
भयात्त्रातुं दातुं फलमपि च वाञ्छासमधिकं
शरण्ये लोकानां तवहि चरणावेव निपुणैः ॥4॥

भावार्थः-

हे शरण्ये! तुम्हारे अतिरिक्त अन्य देवताओं के हाथों में भी अभय, वर ये दो मुद्रा हैं किन्तु तुम्हारे अभय और वरदान की मुद्रा केवल अभिनय (प्रद्र्शन) के लिए नहीं है। अपितु भय से बचाने के लिए और इच्छा से भी अधिक फल देने के लिये (एकमात्र) तुम्हारे ही चरण समर्थ हैं।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में भगवती की उपासना से निर्भयता और सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धि का वर्णन आया है। त्वदन्यः पाणिभ्यां इस पद से गणेश आदि मूर्तियों के हाथों में भी जो अभय और बर देने की मुद्रा दिखाई गई हैं यह मुद्रायें अभिनय (प्रदर्शन) मात्र ही है यतः यथार्थ अभयदान आत्मस्थिति मोक्ष यह तो भगवती के चरण जो आज्ञा चक्र में है उनसे ही प्राप्त होगा यतः ''द्वितीयाद् वै, भयं भवति'' उपनिषद ''अभयं वै जनक प्राप्तोऽसि'' जब तक ''तत्वमसि'' इस महावाक्य से ऐक्यवाक्यता का अनुभव न होगा तब तक भय (जन्म मरण) दूर नहीं हो सकता यह अनुभव महामाया भगवती के चरणों के प्रसाद से ही प्राप्त है। वरदान वाञ्छा से अधिक अर्थात् त्वगादि भोग से अधिक मोक्ष भगवती के ही चरणों से प्राप्त होता है, अतः भगवती के चरणों में ब्रह्म, विष्णु,

रुद्र, शिव के चार देवता पर्यङ्क के चार पाये बन कर स्तुति कर रहे हैं। मार्कण्डेय ऋषि ने भी कहा है- "सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये" भगवती की प्रसन्नता ही मोक्ष देने वाली है। "सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी" उपासक की सिद्ध की हुई है। वह विद्यारूपी भगवती मोक्ष देने वाली होती है। मोक्ष ही सब धर्मों का एकमात्र साध्य है जिस धर्म या जिस उपासना द्वारा मोक्ष सिद्ध हो वही मनुष्यमात्र का यथार्थ धर्म और पूजा उपासना है। मोक्ष सिद्धि के लिये ही अनेक प्रयास किए गये हैं। दर्शन शास्त्रें ने पार्थिव तत्वज्ञान से लेकर जितनी-जितनी गहराई में जो पहुंच सका वहां तक उसने वर्णन किया है। कोई भौतिक ज्ञान तक ही पहुंच कर रुक गये न्यायदर्शन में- दुःख जन्म प्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानमुत्तरापाये तदमनन्तरापायादपवगेः वैशेषिकः सांख्य सूत्र- "अर्थ, त्रिविध, दुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपूरुषार्थः" त्रिविध (आधिदैविक आधिभौतिक आध यात्मिक) तीन प्रकार के दुःखों से अत्यन्त निवृत्ति ही (मोक्ष) है। पात्ञलिः "तदा दृष्टुः स्वरूपे वस्थानम्" दृष्टा के स्वरूप में तन्मय हो जाना मानते हैं। पूर्व मीसांसा वेद-बोधित मन्त्रों द्वारा देवता (इन्द्रादि देवताओं को) हविर्दान करना धर्म बताते हैं कुछ आधुनिक केवल पुस्तकों को रटकर विचार को निश्चय करना ही कल्याण मार्ग बताते हैं। सौगतः- शून्यवाद, क्षणिकवाद, योगाचार सौद्धान्तिक वाद को महत्व देते हैं कुछ लोग त्रिभङ्गी सप्तभङ्गी सिद्धान्त द्वारा वीतरागता होने से निर्वाण मानते हैं। भगवत्पाद अविद्या के कट जाने से नित्य मोक्ष का उपदेश देते हैं यही वेदोपनिषद सिद्धान्त है। अविद्या की निवृत्ति भगवती के चरणों में उपासना द्वारा ही हो सकती है, जिसे तन्त्रानुमोदित योगशास्त्र के साधन से उपासक प्राप्त कर सकता है। इस मूल श्लोक में "त्वमेकासि" शब्द से एक मेवाद्वितीयं ब्रह्म इसका बोध होता है, यद्वा भगवती के चरणों से दो प्रकार की शक्ति का विकास "अभयवरद" जो इस श्लोक में बताये हैं वह इस अर्थ के विकासक हैं कि भगवती अभय, (मोक्ष) वर, (भोग) दोनों पदार्थों को एक साथ देती है। भोग और मोक्ष ये दोनों बातें एक साधन से और कहीं प्राप्त नहीं हैं, यथा- "यत्रास्त्रि भोगो नहि तत्र मोक्षः यत्रास्ति मोक्षः नहि

तत्र भोगः श्री सुन्दरी साधन तत् पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव'' अन्यत्र भी कहा है- ''या मोक्षदायिनी विद्या न सा भोग प्रदायिनी। भोगदा नैव मोक्षाय श्री विद्यातूभयात्मिका'' जहां भोग मिलता है वहां मोक्ष नहीं, जहां मोक्ष है वहां भोग नहीं है परन्तु श्रीविद्या के उपासकों को भोग और मोक्ष दोनों एक साथ मिलते हैं। यही अभयवरदका तात्पर्य है। इस श्लोक में इकार लकार, ककार, निकलते हैं ये काम बीज के वाचक हैं। इनसे ''क्लीं'' बनता है और दातुं शब्द से दकार तुसे उकार ''अधिक'' से अनुस्वार इस प्रकार इस श्लोक में वाला त्रिपुर सुन्दरी का मन्त्र है ''ऐं क्लीं सौः'' यह बनता है।

हरिस्त्वामाराध्यां प्रणतजनसौभाग्यजननीं
पुरानारी भूत्वा पुररिपुमपि क्षोभमनयत्।
स्मरोऽपित्वां तत्वा रतिनयन लेह्येन बपुषा
मुनीनामप्यन्तः प्रभवति हि मोहाय महताम् ॥5॥

भावार्थः-

प्रणत जनो के सौभाग्य को उत्पन्न करने वाली तुम हो, विष्णु ने पूर्व समय में तुम्हारी आराधना करके स्त्री रूप धारण कर पुररिपु (शिवजी) को भी क्षुभित किया था रती के नयनों से चुम्बित किये हुये शरीर से कामदेव तुमको प्रणाम कर बड़े बड़े मुनि जनों के अन्तः करण को मोहित करने में समर्थ हुआ है।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में भगवती महामाया की सम्मोहन शक्ति का वर्णन आया है, यथा कुमार सम्भव में इन्द्र ने कामदेव के प्रति कहा-- 'सम्मोहनं नाम सखे ममास्त्रम्' जैसे मार्कण्डेय पुराण में लिखा है- - ''ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा। बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति'' ज्ञानी जनों के भी हृदय में यह महामाया ही मोह शक्ति को उत्पन्न करा देती है इसी मोहमयी शक्ति ने भगवान् विष्णु को महानिद्रा में डाल दिया था। जब मधु

और कैटभ दो दानव ब्रह्मा पर प्रहार करने पर उतारू हुए थे तब भगवती की इस महामोहमयी शक्ति से सारा ब्रह्माण्ड सोया हुआ था। भगवती की आराधना से ही यह मोहमयी शक्ति दूर हो सकती है यथा- सा विद्या परमामुक्तेर्हेतुभूता सनातनी'' वही भगवती इस माहमोह से छुटकारा कराने वाली हैं। गीता में कहा है-

''मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते''

जो मेरी शरण को प्राप्त करते हैं वही इस माया से पार उतर सकते हैं।

शरण में आये हुए प्राणियों को सौभाग्य देने वाली हे माता विष्णु ने तुम्हारी आराधना से अपना स्त्री का रूप धारण कर महादेव को क्षोभित कर दिया था। इसी प्रकार की तुम्हारी आराधना कामदेव ने की थी। जो कि रति (उसकी स्त्री) के नेत्रों की स्नेहमयी ज्योति से लावण्यमय शरीर धारण कर मुनियों को मोहित करने में समर्थ हुआ। यहां आराध्य शब्द से श्री विद्या के मन्त्र तप की महिमा और जिस-जिस ने मंत्र से आराधना की है उस पर प्रकाश डाला गया है।

''जननी इस पद में इकार का विश्लेषण करने से ई का ज्ञान होता है यही तुम्हारी काम-कला है जिसके प्रभाव से विष्णु ने मोहिनी रूप धारण किया था।

यद्वा ह स क ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं इत्यादि विष्णूपासिता श्री विद्या का दिग्दर्शन है, तैत्तरेय ब्राह्मण में ''जनकोह वैदेहः अहोरात्रि संव्रजत्'' जनक अहोरात्रात्मक प्रतिपदा से पूर्णिमा तक पञ्चदशाक्षरी विद्या की उपासना द्वारा तुम्हारे शरण में प्रापत होकर ही विदेह पद प्राप्त किया है अर्थात् तुम्हारी पञ्चदशाक्षरी विद्या जो ''शिवाः शक्तिः कामः क्षितिरथरविः शीतकिरणः'' इस श्लोक से निर्देश की गई। इस विद्या की उपासना से जनक का देहाध्यास दूर हुआ था इससे यह भी प्रतीत होता है कि पञ्चदशाक्षरी विद्या के साक्षात्कार होने से मनुष्य का मल, विक्षेप, दूर

होकर कैवल्य मोक्ष हो जाता है। इस श्लोक में विष्णु का स्त्री रूप धारण करना कोई भ्रमोत्पादक नहीं है, एवं ''युवतयः'' जैसे पहले वर्णन हो चुका है कि स्त्री पुरुष का रूप पुरुष स्त्री का देह बना लेता है। यह तन्त्रानुमोदित योगशास्त्र की विभूतियां हैं जैसे योगवाशिष्ट में राजपुत्री चूड़ाला का इतिहास आया है जब उसका पति वन में तपस्या करने लग गया था तब समय-समय पर वह पुरुष का रूप धारण कर उसके पास आकर उसे उपदेश देती थी, और अन्त में पुरुष रूप से अपना यथार्थ स्त्री का रूप धारण कर उसे चकित किया था, इस दैवी चमत्कार को समझने देखने की अलौकिक बुद्धि और दृष्टि आराध्य है, जैसे भगवान ने अर्जुन को उपदेश दिया था **''न तु मांशक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा''** तुम इस आधिभौतिक दृष्टि से मुझे देख नहीं सकोगे अतः मैं तुम्हें दिव्य चक्षु देता हूं। ''दिव्यं ददामि ते चक्षुः'' विष्णु पक्ष में हरि (इन्द्र) ने गौतम के शाप से ग्रस्त होने पर हे जननि! ''प्रणतजन सौभाग्य जननी'' जो तुम्हारे चरणों में शिर झुकाते हैं उनको सौभाग्य देने वाली जानकर तुम्हारी उपासना करने से इन्द्र शाप मुक्त हुआ, जैसे इन्द्रोपासिता विद्या क ए इ ल ह्रीं इत्यादि आया है। इस श्लोक में पञ्चदशाक्षरी विद्या से आत्मज्ञान का विकास बताया है तथा पोषशाक्षरी विद्या का प्रभाव जैसे बामकेश्वर तन्त्र में लिखा है- ''ह्रीं क्लीं ब्लीं'' ये बीजाक्षर इस श्लोक से बनते हैं। हरि से हर जननी से ह्रीं स्मर से क्लीं वपुसे ब लिहसे ल मुनीनां से म इस प्रकार उक्त बीजाक्षरों का उद्धार होता है। एवं युवतयः सद्यः पुरुषत्वं प्रपेदिरे। चक्षुष्मन्तोनु पश्यन्ति नेतरेऽतद्विदोजनाः।

महाविद्या के इस चमत्कार को वही लोग देख सकते हैं जो उनकी इस स्त्री रूप से पुरुषत्व की शरीरान्तरकारिणी महाशक्ति को समझते हैं।

धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी पञ्चविशिखा
वसन्तः सामन्तो मलयमरुदायोधनरथः।
तथाप्येकः सर्वं हिमगिरिसुते कामपि कृपा-
मपाङ्गात्ते लब्ध्वा जगदिदमनङ्गो विजयते ॥6॥

भावार्थः-

हे गिरिनन्दिनी! तुम्हारी अपूर्व कृपा को पाकर कामदेव जिसका पुष्पों का (कोमल) धनुष है भ्रमर पंक्ति ही धनुष की डोरी है। पञ्चवाण (पांच इन्द्रिय) जिसमें हैं, वसन्त (ऋतु जिसकी सहायक है मलयाचल का शीतल पवन जिसका युद्ध रथ है और अशरीर जिसका शरीर भी नहीं वह सारे संसार पर विजय पा रहा है।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में कामबीज इस प्रकार निकलता है- ''कामपि कृपा'' इससे क मलय से ल मंत्रों से ई पोष्पं से अनुस्वार ये सब मिलकर (क्लीं) कामवीज बनता है, जब भगवान शंकर ने कामदेव को अपने तृतीय (अग्नि) नेत्र से भस्म कर दिया था यथा ''क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद् गिरा खे मरुतां चरन्ति तावत् सवह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं 'चकार'। हे प्रभो क्रोध को दूर करो यह शब्द आकाश से जैसे निकलने को ही था तब तक महादेव के तृतीय नेत्र से प्रकट हुई अग्नि ने कामदेव को भस्म कर दिया। तब कामदेव की स्त्री रति ने ''क्लीं'' बीज प्राप्त कर उससे कामदेव को पुनः जीवन दिलाया। ''धनुपौष्पं'' इस पद में कामदेव के ध ानुष का वर्णन किया गया है। उसमें यह दिखाया है कि जिसमें किसी भी प्रकार का बल नहीं है वह भी तुम्हारे मन्त्र जप के प्रभाव से इतनी सामर्थ्य रखता है जो त्रैलोक्य को कम्पायमान कर दे। विष्णु पक्ष में ''क्लीं'' बीज कृष्ण मंत्र का है 'हिमगिरि सुते कामपि कृपा'' इन दोनों शब्दों के विष्लेषण से हिम गिरिसुते इस पद से इकार कामपिसे क मलय से लकार पौष्पं से अनुस्वार सब मिलकर क्लीं कामकला बीज बना। इस काम बीज के प्रभाव से निःसहाय दुर्बल पुरुष भी कार्य सिद्ध कर सकता है।

क्वणत्काञ्चिदामाकरिकलभकुम्भस्तननता
परिक्षीणा मध्ये परिणतशरच्चन्द्रवदना।

धनुर्वाणान्पाशुंश्रृणिमपि दधानां करतलैः
पुरस्तादास्तां नः पुरमथितुराहोपुरुषिका ॥7॥

भावार्थः-

अहो पुरुष के रूप में त्रिपुरासुर को बधन करने वाली तुम जिसकी स्वर्णमयी कर्धनी की झंकार और जिसके स्तन नव हस्ति शिशु के कुम्भ के समान भार से नत हुई तुम जिसके करकमलों में धनुष, पाश, वाण, अंकुश हैं ऐसी शोभायमाना हे माता हमारे सामने आप विराजमान हो।

विज्ञान भाष्य

तुम्हारा ओजस्वी स्वरूप जो तुमने त्रिपुरासुर के बध में धारण किया था वही उक्त विशेषणों के साथ (भगवती के) अलौकिक एवं अद्वितीय रूप का वर्णन किया है, यथा छोटी-छोटी घण्टियों की माला से शब्दायमान ऐसाी स्वर्णमयी कर्धनी जिसके कटि प्रदेश में शोभित है तथा हाथी के नव शिशु के कुम्भ के समान उन्नतकुचभार से झुकी हुई छोटी कमर वाली शरद ऋतु की पूर्ण चन्द्रकला मुखारबिन्द से झलक रही है और चारों भुजाओं में क्रमशः धनुषः, बाण, पाशः, अंकुश धारण किये हुए ऐसा ''उमा'' रूप जो त्रिपुरासुर के वध करने वाले शिव के रूप को धारण करने वाली पुरुष रूप तुम हमारे हृदय में विराजमान इस प्रकार हमें अनुभव हो। उपासक इस स्वरूप में भगवति त्रिपुरा का हृदय में ध्यान करता है। अन्यत्र इस प्रकार ध्यान आया है 'बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् पाशांकुशशरश्चापं तर्जयन्ती शिवां भजे।'' रुद्रयामल में इस भाव को स्पष्ट किया है। पुरमथितु इस पद से तीनों पुरों के मंथन करने से जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इस अवस्था त्रय का मंथन कर तुरीयावस्था में निवास करने वाली त्रिपुर चित्शक्ति के ज्ञान से ऐं, क्लीं, सौंः- त्रिपुर सुन्दरी के तीन बीजों का साक्षात हुआ।

उक्त श्लोकों में भगवती के स्थूल स्वरूप का वर्णन है अब मन्त्राक्षरमयी मूर्ति का वर्णन करते हैं। जिस प्रकार समुद्र मन्थन करने से 14 रत्नों का

प्रादुर्भाव हुआ इसी तरह अक्षरमय सूक्ष्माकाश के मन्थन करने से पञ्चदशी, षोड़षी आदि मन्त्र समुदाय का प्रादुर्भाव हुआ है। जिस प्रकार स्वरूप में "क्वणत्काञ्ची" अर्थात् भगवती के नूपुरों की झंकार कानों में आती है। इसी प्रकार सूक्ष्म मन्त्रात्मक विग्रह हृत्कमल में भगवती की अनाहत ध्वनि साधक को अनुभव होती है। जिन्हें आम्नाय कहते हैं। आम्नाय छः प्रकार के होते हैं यथा पूर्वाम्नाय, दक्षिणाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, उत्तराम्नाय, ऊध्र्वाम्नाय क्रमशः शिव के पंचमुखों से निकले हैं; छठां अनुत्तराम्नाय है। प्रत्येक आम्नाय के मन्त्र शरीर के भिन्न चक्रों में जपे जाते हैं। द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः पाश ह्रों अंकुश क्रौं वासना रूप में धनुष मन है वाण पञ्चतन्मात्रा इत्यादि पाश वासना है क्रोध अंकुश है। अहो पुरुषिका शब्द से कितने ही प्रकार की ध्वनियां निकलती हैं। यथा अहो अभिमान द्वारा पुंभाववाली का ज्ञान, अहो को पृथक कर देने से आश्चर्ययुक्त पुंभाव अलोकिक अद्भुत रूप का ज्ञान यथा <u>अहं ब्रह्मास्मि</u> इस आत्मस्थिति द्वारा आत्म स्थिति में भगवती का ज्ञान अर्थात् भगवती में और अपने में अभिन्न भावना का अनुभव इस सारे पर पर विचार करने से पुरुष प्रकृति या मायाब्रह्म अथवा साधक और भगवती में अभेद भावना का अनुभवन होता है। भगवती के स्थूल स्वरूप में धनुर्वाणानूपाशं नीचे के हाथ में इक्षुका धनुष जिसमें मधुमक्षियों की पंक्ति रूपी डोरी है और दाहिने हाथ में पांच बाण जो रक्त कमल, नील कमल, कल्हार, कैरव, सहकार मञ्जरी रूप में लगे हैं। ऊपर वाले बायें हाथ में पाश और दाहिने में अनेक प्रकार के रत्नों से रवचित अंकुश हैं। इस स्थूल रूप में आयुधों का ध्यान दिखाया है। अब सूक्ष्म रूप में इन्हीं को इस प्रकार बताया है। धनुष बीजाक्षर रूप, यं पञ्चबाण, द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः ह्रीं अंकुश क्रौं-धनुष या वासनात्मक मन धनुष है। पञ्चतन्मात्रा, पञ्चबाण वासना ही पाश है क्रोध ही अंकुश है। इसी प्रकार इस योग साधना में जब सर्वाधिक कुण्डलिनी को उद्बोधन कर षटचक्र का भेदन करते हैं तब मणिपुर से अनाहत में पहुंचने पर यह स्वरूप साधक के सामने आता है। सूक्ष्म मन्त्रात्मक देवता का विग्रह पञ्चदशी विद्या जो कादि हादि भेद से है वही रमाबीज युक्त होने से पोड़षी बन जाती है।

जैसे शिवः शक्तिः कामः इस श्लोक के भाष्य में आया है। परा रूपा कुण्डलिनी शक्ति है इसका स्पष्ट ज्ञान तभी हो सकता है जब साधक अपने अस्तित्व को देवी के रूप में लय कर सके। वाण शब्द से ब करतल से ल मथितुसे उ अस्तां से अनुस्वार इनके मिलाने से वशिनीका ब्लूं बीज बनता है। पुर मथितु और अहो पुरषिका शब्दों का योग इस बात का द्योतक है कि शिव शक्ति की उपासना एक साथ करना ध्येय है जैसा कि प्रथम श्लोक में वर्णन किया गया है। इस श्लोक का आध्यात्मिक भाव यह है कि शिव (प्रकाश) का रूप तभी भाषित होता है जब कि उनका प्रतिबिम्ब शक्ति पर पड़ता है अर्थात् जब देवी जी के संयोग (विमर्श) से द्योतित होता है।

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटी परिवृते।
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे॥
शिवाऽकारे, मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां।
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्॥ 8॥

भावार्थः-

अमृतमय समुद्र के मध्य कल्पवृक्षों के उपवन से घिरी हुई मणिद्वीप के बीच चिन्तामणि मन्दिर में शिवाकार पर्यकं पर परम शिव में निवास की हुई चिदानन्द समुद्ररूपिणि भगवती तुम्हारा जो भजन करते हैं वे साधक धन्य हैं अर्थात् मुक्त हैं।

विज्ञान भाष्य

भगवती के स्वरूप का वर्णन करने के अनन्तर अब भगवती के निवास स्थान का वर्ण करते हैंः- अमृत रूप समुद्र में कल्पवृक्षों के उपवन से वेष्टित नवरत्न जड़ित कदम्ब वृक्ष के समीप चिन्ता मणियों से खचित रत्नजड़ित स्तम्भादि पर निर्मित भवन में शिवाकार मंच पर अर्थात् ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-ईशान सदा शिव की मूर्तिरूप मञ्च में जहां पर परमशिव पंर्यङ्क (पलंग) स्थित है ऐसी चिदानन्द लहरी विज्ञान सुखतरंगात्मिका तुम

को कतिचन कुछ अनेक जन्म तक सुधांशुजन (ज्ञानी) भजते हैं। विष्णु पक्षे तु गोपालों के सौन्दर्यातिशय कल्याणकारक मनोहर मंच में हे शिवे! कतिचय धन्य (पुण्यकाम) पुरुष ही तुम्हारा भजन करते हैं "भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन" संसार में अन्तर्याग और बहिर्याग द्वारा निरन्तर तुम्हारा पूजन करने वाले जन ही धन्य हैं। जिन्होंने अपने मन को तुम्हारे कमलरूपी चरणों में भ्रमर के समान मकरन्द ग्रहण करने के लिये अर्पित कर दिया है तथा निरन्तर पंचदशाक्षरी से तुम्हारे सूक्ष्म शरीर में लीन होकर परम स्थान को प्राप्त कर लिया है।

श्रीयन्त्र के मध्य में बहिर्याग द्वारा स्वर्णपत्र या स्फटिक निर्मित में पद्मादि चतुः षष्िअ उपचारान्त से विषद चक्र (सहस्र दल) में अन्तर्याग द्वारा हृदय कमल में जो अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र है, जहां पर वाणलिङ्ग काकिनी शक्ति के साथ रहती है, वहां पर जो तुम्हारा ध्यान करते हैं वे धन्य हैं।

इसी अन्तः पुण्डरीक के दहराकाश के चारों ओर पुरीतति नाड़ी का जाल फैला है, जिसमें जन्मजन्मान्तर की वासनायें भरी हुई हैं, ये वासनायें तुम्हारे चित्तरूपी प्रकाश को प्राप्त कर निरन्तर घूमती हुई जाग्रदादि अवस्था जन्य सम्पूर्ण क्रियाओं को प्रकाशित करती है, जिस तरह का संस्कार सामने आता है उसी प्रकार अन्तः करण में भावनाये लहराती हैं इसलिए अन्तर्याग द्वारा महात्मा लोग तुम्हारे स्वरूप का ध्यान अन्तर्दहर में करते हैं जिससे तुम्हारा प्रतिबिम्ब पड़कर निरन्तर अन्तःकरण में तुम्हारा रूप प्रकाशित होकर भासित होता रहे। इस सारूप्य मुक्ति को बिरले ही प्राप्त कर सकते हैं। सहस्र दल जिसका वर्णन ऊपर आया है उसका महत्व कंकालमालिनी तन्त्र में इस प्रकार लिखा हैः-

सहस्रारः कर्णिकायां चन्द्रमण्डलमध्यगा।
सर्वसंङ्कल्प रहिता कला सप्तदशी भवेत्॥
उन्मनी नाम तस्या हि भवपाशनिकृन्तनी।
सहस्रारे महापद्मे शुक्लवर्णमधोमुखम्॥

अकारादिक्षकारान्तैः स्फुरद्वर्णैर्बिराजितम्।
तत् कर्णिकायां देवेशी अन्तरात्मा ततो गुरुः॥

सूर्यस्य मण्डलं तत्र चन्द्रमण्डलमेव च।
ततो वायुर्महानाम्न ब्रह्मरन्ध्रं ततः स्मृतम्॥

तस्मिन् रन्ध्रे विसर्गश्च नित्यानन्दं निरञ्जमन्।
तदूर्ध्वं शङ्खिनी देवी सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी॥

षट्चक्र निरूपण में सहस्रार स्वरूप में आया है।

तदूर्ध्वे शङ्खिन्या निवसति शिखरे शून्य देशे प्रकाशम्।
विसर्गाधः पद्मं दशशत दलं पूर्ण चन्द्राति शुभ्रम्॥

अधोवक्त्रं तरुण रविकला-कान्ति किञ्जल्क पुञ्जम्।
लकारार्धवर्णैः प्रविलसित-वपुः केवलानन्द रूपम्॥

सुधाधारासारं निरवधि विमुञ्चन्नतितराम्।
यतेः स्वात्मज्ञ नं दिशति भगवान् निर्मलमतेः॥

सहस्रार दल के ज्ञान का महत्त्य :-

इदं स्थानं ज्ञात्वा नियति निज चितो नरवरो।
न भूयात् संसारे पुनरपि न वद्धस्त्रिभुवने॥

समग्रा शक्तिः स्वान्नियममनसस्तस्य कृतिनः।
सदा कर्त्तुं हर्त्तुं खगतिरपि वाणी सुविमला॥

अर्थात् इस सहस्रदल स्थान को साङ्गोपाङ्ग जानने से नियत निज चित्त का ज्ञान उस मनुष्य को हो जाता है और चित्त स्थिर करने की शक्ति आ जाती है वह संसार के बन्धन को प्राप्त नहीं होता है। भागवत् में लिखा है:-

कर्माणि क्रियमाणैस्तु गुणैरात्मनिबन्धनैः।
तदस्य संस्मृतिर्बन्धः पारतन्त्रश्च तत् स्मृतम्॥

सतगुण-राजस गुणों से जो कर्म होते हैं उनको जो शरीर में मानता है; यही बन्धन का कारण है। गीता में कहा है :-

अश्वमेधशतेनापि ब्रह्महत्याशतेन च।
पुण्यपापैर्न लिप्यन्ते येषां ब्रह्माहृदिस्थितम्॥

जिनकी ब्रह्म में निष्ठा हो गयी है उनको पुण्य पाप नहीं लगते हैं। और भी भागवद्गीता में :-

नैवतस्य कृतेनार्थो: नाऽकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रय:॥

अर्थात् ऐसे महात्मा के कर्म करने से कोई स्वर्गादि सुख नहीं होता और न करने से कोई नरकादि दु:ख नहीं होता है। जिसका मन शिव तत्व ब्रह्म में लय हो गया है ऐसे पुरुष के प्रारब्द्ध संचित और क्रियमाण कोई भी कर्म बन्धन के हेतु नहीं होते हैं। यथा :- ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा।

''सुधासिन्धोर्मध्ये'' राजयोग से मनकी स्थिति को और हठ योग द्वारा प्राण को पूरक से नीचे भर कर अपान को मूलाधार से ऊपर खींचकर कुण्डलिनी महाशक्ति को मणिपूर में प्रणायाम के परस्पर संयोग से उत्पन्न अग्नि द्वारा उद्बोधन करे सुषुम्णा मार्ग से हृदय दहर के समीप से आत्म स्वरूप को ग्रहण करते हुए आज्ञा चक्ररूप चन्द्रमण्डल में जो अमृतपिण्ड है जिसका अमृतबिन्दु नीचे गिरने से यह शरीर जीवित रहता है। जिसको ऊपर रोकने के लिए योगीजिन विपरीत करणीमुद्रा द्वारा ऊपर ही रोक कर अमृत प्राप्त करते है। यही वह श्रीचक्र का बिन्दु स्थान है जिसके भीतर सम्पूर्ण चक्र इस प्रकार अन्तर्निहित है।

सुर बिटपिवाटी परिवृते :- शरीर में मूलाधार चक्र से लेकर सहस्त्र दल पर्यन्त षटचक्रों को एक ही स्थान पर एकत्रित करने से 43 (तैंतालीस) त्रिकोणात्मक यन्त्र बन जाते है। वही 43 त्रिकोण ही कल्पवृक्षों का उपवन है। इसके बीच में त्रिकोण मूलाधार चक्र ही बिन्दुरूप कदम्ब वृक्ष युक्त मणिद्वीप अग्नि का स्थान प्रकाशमय) के मध्य में चिन्तामणि गृह है, इसमें चतुर्दल रूपी ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश यह मंच के चार पाये

हैं, जिसमें सदाशिवमय शव ही विस्तार रूप हैं। उसमें बैठी हुई हे भगवति! तुम्हारी वह क्वणत्कांची दामा वाला स्वरूप शोभित है। समस्त जगत पर जब योगी अपनी स्थिति हठयोग या राजयोग द्वारा कर लेता है तब वहां पर तुम्हारे स्वासोच्छ्वास रूप में उत्पन्न होने वाले वायु से अनाहतनाद जो अव्यह्मरूप में कानों के अन्दर सुनाई देता है, वही समाधि अवस्था में व्यक्त होकर "एकोऽहं बहुस्याम" कामनारूप बीज है। यथा-(कामना से कः कला से ई तुम्हारे द्वीप सूक्ष्म स्थान से "ल" को मिलाने से "क्लीं" की ध्वनि स्पष्ट रूप से प्रतीत हो जाती है।

"परम शिव पर्यंक", यहां पर "रवं ब्रह्म" महावाक्य से शिवविन्दुरूप परा शक्तिनाद इसके योग से "शिवः शक्त्यायुक्तो" प्रणव की उत्पत्ति हुई। यह प्रणव अ उ म विश्वतैंजस प्राज्ञः ब्रह्म, विष्णु, रुद्र। जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति-रज-सत्व-तम इन भेदों से सर्वात्मक हैं। अतः तुम तुरीय रूप में अर्धमात्रारूप सूक्ष्मा मन्त्राक्षर ध्वनिमयी "अर्धमात्रा स्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः" तथा अर्धमात्रा में वासनामयी हो। "मनसैवेद-ज्ञातव्यं" नेहनानास्ति किंचन" अव्यवहार्यरूपा चितिः प्रज्ञानं ब्रह्म। तुम ही हो इस श्लोक में कामेश्वरी बीज "क्लीं और महाप्रेत "हसौः" की ध्वनि द्योतित होती है।

भावनोपनिषद् में श्रीचक्र के संबंध में इस प्रकार वर्णन आया हैः-

आत्मानमखण्डमण्डलाकारामावृत्य सकलब्रह्माण्डमण्डलं त्वप्रकाशं ध्यायेत।

ॐ० श्री गुरुः सर्वकारणभूता शक्ति। तेन नवरन्ध्ररूपो देहः। नवशक्तिरूपं श्रीचक्रम्। बाराही पितृरूपा। कुरुकुल्ला बलिदेवता माता। पुरुषार्थाः सागराः। देहो नवरत्न द्वीपः। आधार नवकमुद्राः शक्तयः। त्वगादि सप्तधातुभिरनेकैः संयुक्ताः कल्पतरवः। तेजः कल्पकोद्यानम्। रसनया भाव्यमाना मधुराम्लतिक्तकटुकषाय लवण भेदाः षड़रसाः षड्ऋतवः क्रियाशक्तिः पीठम्। कुण्डलिनी ज्ञानशक्तिर्गृहम्। इच्छा शक्तिमहात्रिपुर सुन्दरी। ज्ञाता

होता ज्ञानमग्निः ज्ञेयं हविः। ज्ञातृज्ञान ज्ञेयानामभेदभावनं श्री चक्र पूजनम्। नियति सहिताः शृङ्गारदयो नवरसा अणिमादयः।

कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यपुण्यपापमयाः ब्राह्म्याद्यष्टशक्तयः। पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाश श्रोत्रत्वकचक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणि पाद-पायुपस्थ मनोविकाराः षोडश शक्तयः। वचनादानगमनविसर्गानन्दहानोपेक्षा बुद्धयोऽनङ्गकुसुमादि शक्तयोऽष्टौ। अलम्बुसा कुहूविंश्वोदरी वरुणाहस्तिजिह्वा यशस्वत्यश्विनी गान्धारीपूषाशङ्खिनीसरस्वतीडापिङ्गलासुषुम्नाचेति चतुर्दश नाड्यः सर्वसंक्षोभिण्यादि चतुर्दशारगादेवताः।

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहम्।
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदिमरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथम्
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरते॥ 9॥

भावार्थ

हे भगवति! मूलाधार में तुम पृथ्वीरूप से हो मणिपुर (अन्य ग्रन्थों में इस दल को स्वाधिष्ठान कहा है) में जलरूप होकर रहती हो स्वाधिष्ठान (इसको अन्यत्र मणिपूरक कहा है) में अग्निरूप से हृदय में वायु की मूर्ति विशुद्ध में आकाशस्वरूपा भ्रूमध्य में मनोमयी शक्ति इस षट्चक्रात्मक कुल मार्ग को भेदन कर सहस्र दल में वैन्दवस्थान (जो गुप्तस्थान है) उसमें पति परम शिव के साथ तुम हृल्लेखा कुण्डलिनी स्वरूप से बिहार करती हो।

विज्ञान भाष्य

जगत् काञ्ची इस श्लोक में भगवती के स्थूल रूप का वर्णन किया गया है। सुधासिन्धोर्मध्ये सूक्ष्म मन्त्रात्मक विग्रह को कह कर महीं मूलाधारे इस श्लोक में भगवती की हृल्लेखा कुण्डलिनी के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार से किया है। मूलाधार पृथ्वी तत्व से लेकर विशुद्ध आकाशतत्व कुलमार्ग को भेदन कर आज्ञाचक्र में मनोमयी शक्ति सम्पन्ना राजयोग्यगम्या भगवती का सहस्रारचक्र में जो गुप्त स्थान है। जिसे

षटचक्र में ''सुगुप्तं तद्यत्नात्'' कहकर निर्देश किया है वहां पर सदाशिव में मिल जाती हो यही आरोह क्रम से मोक्ष सिद्धि है। योगशास्त्र का तात्पर्य कुण्डलिनी शक्ति को मूलाधार से जागृत कर सहस्रार में ले जाने का है। षट्रचक्रों में पृथ्वी आदि तत्व आये हैं जिस-जिस तत्व पर योगी विजय प्राप्त कर लेता है उस उसका ज्ञान उसे प्राप्त होता है। और जिस तत्व में मन को लीन कर देता है उसी-उसी वस्तु के भीतर होने वाले गुणों से सम्पन्न हो जाता है। तथा शरीर में योग शास्त्रोक्त भुवन भेदों में मन को स्थिर करने से उन-उन लोकों की स्थिति को जान लेता है।

मूलाधार पृथ्वी के सम्पूर्ण तत्वों से युक्त है, इसमें गन्ध तन्मात्रा है। यही मूल त्रिकोण श्री यन्त्र का प्रथम त्रिकोण है। यदि पृथ्वी तत्वात्मक मूलाधार में किसी का दोष आ जाता है। तब यह शरीर भी जो आधाराध येय भाव से मूलाधार पर स्थित है वह स्वयं भी निराधार होकर कार्य करने में असमर्थ हो जाता है। इसके भेदन का तात्पर्य यह है कि साधक अपान वायु के द्वारा इस चक्र के मध्य में बिन्दुरूप जीवनसत्ता शक्ति के ऊपर मन को हठ और राजयोग द्वारा स्थिर कर लेता है तब वह समाधि अवस्था द्वारा पृथ्वीतत्व में लीन होकर पृथ्वी के प्रत्येक भाग में सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से प्रविष्ट हो जाता है। यहां पर भगवद् पाद ने स्वाधिष्ठान की संज्ञा ही मणिपूर मानकर यह सिद्ध किया है कि पूर्ववत् मनोयोग से इस जल तत्वात्मक चक्र का भेदन करने से जल स्तम्भन आदि सिद्धियां प्राप्त हो जाती है। वही श्री यन्त्र का अष्टकोण है। यह चार दल मूलाधार के ऊपर जब षट् दल को रखा जाता है तब-तब आठ ही कोण बनते हैं। इसलिए इस स्थान पर अष्टकोण बनते हैं। जब योगी अपान वायु को ऊर्ध्वाकर्षण करते हुए नाभिस्थान-स्वाधिष्ठान में पहुंचता है उस समय प्राणापान के परस्पर संघर्ष से अग्नि उत्पन्न होती है। इसी को दशदलात्मक बह्निका (अग्नि का स्थान कहा है। इसमें मन को स्थिर करने से बह्नि जय स्थिति को प्राप्त कर लेता है। यह भी यन्त्र का अर्न्तदशार है। हृदय में नादात्मक वायु का स्थान है। इसकी तन्मात्रास्पर्श है। पूर्ववत् श्री यन्त्र का बहिर्दशार

बन जाता है। इसके ऊपर योगमार्ग से विजय पाने पर योगी वायु के समान गति प्राप्त कर लेता है।

विशुद्धचक्र कण्ठकूप में आकाश का स्थान है। चतुर्दशार श्री यन्त्र का यहां से प्रादुर्भाव होता है। इस स्थान पर विजय पाने से योगी आकाशगमन तथा लघिमा सिद्धि को प्राप्त करता है। यह सिद्धि अञ्जनीनन्दन हनुमान जी को प्राप्त थी, तुलसीदास जी ने लिखा है- ''मशक समान रूप कपि धरी, लङ्का चले सुमिरि नरहरी'' इस प्रकार षट्चक्र भेदन कर कुण्डलिनी शक्ति आज्ञाचक्र में चन्द्र स्थान पर पहुंचती है तब साधक को भगवती परचिती के स्वरूप की स्फुरणा होती है। जिसका ''सुधासिन्धो'' वाक्य से निरूपण किया गया है, तदनन्तर जीव चिच्छक्ति के साथ सहस्रार में जाता है जो अमा का स्थान है यह केवल योगी जन से ही गम्य हैः यहां पर वाणी की गति नहीं है, महामाया परब्रह्म के साथ एकरूपा होकर वहां पर विराजती हैं, इसी को ''परमानन्द लहरी'' कहकर निर्देश किया गया है। ''ॐ आनन्द ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चन'' ब्रह्मानन्द का अनुभव प्रणव का विलास यहां पर ही है इसी ही स्थान को वेद में ''नेति नेति'' कहा है ''न स पुनरावर्तते'' यहां पर जाकर फिर दुःख में नहीं आता है। (पुर्नजन्म नहीं होता) तत्र को मोहः कः शोकः इस स्थिति में जाकर मोह, शोक दूर हो जाते हैं, कुण्डलनी शक्ति यहां पर शिव तत्व में मिल जाती है इस भाव को ''सहरहसिपत्या विहरसे'' इससे दर्शाया है ब्रह्मरन्ध्र में कुडलनी के मिलने को सिद्ध सोपान में लिखा है- ''कुण्डलिन्या महीभेदे योगी त्यजति मेदिनीम् सलिलस्थानभेदेन जले चलति योगवित्'' इस प्रकरण को स्पष्ट करने के लिए जिस-जिस चक्र में जिन वर्णों का अधिष्ठान है वह सब विस्तार से दिखाते हैं। मनुष्य शरीर छ चक्रों से बना हुआ है जो श्रीचक्र के पृथक पृथक चक्र हैं जिनको आजकल के वैज्ञानिकों अन्वेषण करते करते थक बैठे हैंः परन्तु भारतीय ऋषियों ने अन्तर्मुख दृष्टि प्राप्त करके जिस चक्र की जहां स्थिति है उसका क्या रंग है और प्रत्येक चक्र में कहां कितने दल हैं? उन पर कौन-कौन अक्षर (Alpha-

bets) अ से क्ष तक प्राकृतिक रूप से विराजते हैं। इस विषय की उपयोगिता होने के कारण इसको विस्तार से स्पष्ट करते हैं :-

यथाः "आधारे लिंगनाभौ हृदयसरसिजे, तालुमूले ललाटे द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशदले द्वादशार्धे चतुष्के बासान्तो बालमध्ये ड फ क ठ सहिते कण्ठदेशे स्वराणाम् हं क्षं तत्वार्थ युक्तं सकल दलगतं वर्णरूपं नमामि।

1- पार्थिव चक्र मूलाधार में चतुष्कोणात्मक चार कोने वाला पार्थिव चक्र हैं इसके कोणों में दक्षिणावर्त्त से (दाहिनी ओर) वं-शं-षं-सं ये 4 वर्ण हैं पीले रंग का कमल है; इस चक्र में जो पद्म हैं उसके चार दल (पत्ते) हैं उस पर उक्त 4 अक्षर हैं। और आठ त्रिशूल और सप्त कुलचक्र हैं। बीच में पृथ्वी बीज "लं" है। उस बीज के मध्य में सृष्टिकर्ता शिव ब्रह्म के रूप में विराजमान हैं, डाकिनी शक्ति यहां पर है और कन्दर्प नाम का वायु यहां पर रहता है। पृथ्वी में मध्याकर्षण शक्ति (Gravitation) अर्थात् प्रत्येक वस्तु को नीचे की ओर खींचने की शक्ति रहती है। अपान वायु का भी यही स्थान है। चन्द्रमा का शरीर में यही अधिष्ठान माना गया है। विश्वसार तन्त्र में इस प्रकार कहा है :-

मूलाधारे धराचक्रं चतुष्कोणप्रियंवदे।
पीतवर्णं परिवृर्त्तचाष्टशूलैः कुलाचलैः॥

सप्तकुलाचलों के नाम ये हैं :-

नीलाचंल मन्दरं च पर्वते चन्द्रशेखरम्।
हिमालयं सुवेशंञ्च सुपर्वतम्।

अर्थात नीलाचलादि सात पर्वत हैं। यहीं पर कामबीज "क्लीं" का स्थान एवं भगवती त्रिपुरा का स्थान भी यही है। उसका आकार कैसा है सो लिखा है। "त्रिकोणं तत्तु विज्ञेयं शक्तिपीठं मनोहरम्॥ वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री त्रिरेखा च तदूर्ध्वतः॥ कन्ठ देशे वसेत्प्राणों ह्यपानो गुदमण्डले॥ कन्ठदेशे मे प्राण वायु और गुदा देश में अपान वायु रहता है।

प्राण का स्थान ही सूर्य का स्थान है। अर्थात तेजस का स्थान है जो सबको ऊपर की ओर आकर्षि करता है। अर्थात अपान प्राण को अपनी ओर खींचता है। पृथ्वी में Law of Gravitation होने से सब वस्तु को अपनी ओर खींचने की शक्ति है और सूर्य में तैजस तत्व होने से प्रत्येक पदार्थ को ऊपर की ओर खींचने की शक्ति है। इस प्रकार यहां विसम्वाद क्रिया आकर्षण Negative विकर्षण Positive दो प्रकार की विरुद्ध शक्तियां काम करती हैं। जब तक जीवन है अर्थात् जब तक अपान का नीचे खींचना प्राण का उर्ध्वाकर्षण रूपी विसंवाद रहता है तब तक जीवन है। जब दोनों में से एक की गति रुक जाती है तब ही मरण है। अर्थात् क्रिया शक्ति का नाश है। कहा भी हैः-

"श्वासोच्छवासविभञ्जनेन जगतां जीवो यया धार्यते। सामूलाम्बुज गह्वरेविलसति प्रोद्दामदीपावली" श्वास प्रश्वास के विभञ्जन से जो जीवन सत्ता को बनाती है वह कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार में प्रकाश रूप में रहती है।

अब दूसरा आप्य चक्र है। सिन्दूर के सदृश लाल रंग है। सुषुम्ना के बीच ध्वज के मूल में ये छः 6) दलों वाला कमल है। जिन पर 6 अक्षर (वर्ण हैं। इसके मध्यम में "व" कार बीज है। उसका अधिष्ठाान देवता वरुण है। शरदकालीन चन्द्रमा के समान वरुण का शुद्ध वर्ण रंग) है। ग्रन्थी भेदन कर कुल मार्ग यहां से चलता है। इसके ऊपर अग्निचक्र नाभी मूल में दश दल का चक्र है उसे मणिपुर कहते हैं सौन्दर्य लहरी में मणिपुर का स्थान स्वाधिष्ठान के स्थान पर मणिपुर नाम लिखा है। केवल नाम मात्र का भेद है। सब प्रकार के चक्रों का वर्णन एक ही तरह पर है। इसमें दश दल हैं इन पर डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं ये वर्ण हैं। इसका मेघ के समान रंग हैं। इसके मध्य में अग्नि त्रिकोण है और "रं" बीज है। यहां लाकिनी शक्ति का वास है।

(4) वायव्य चक्र हृदय कमल में 12 द्वादश दलात्मक अनाहत चक्र है यहां पर वायु का वास है।

इस मण्डल का सिन्दूर के समान रङ्ग है। कं-खं-गं-घं-ङं-चं-छं-जं-झं-ञं-टं-ठं ये वर्ण 12 दलों में हैं। यहां काकिनी शक्ति और वाणलिङ्ग का स्थान है। विष्णुग्रन्थी का भेदन यहां पर होता है।

(5) आकाश चक्र कण्ठ में है। इसमें 16 स्वर षोडशस्वर अ से अः तक हैं। यही षोडश नित्या का स्थान है। यहां का रक्त वर्ण है। वृत्ताकार आकाश मण्डल के मध्य में "हं" आकाश का बीज है। शाकिनी शक्ति त्रिनेत्र सदाशिव के साथ रहती है। यही मोक्ष का द्वार है।

(6) मानसचक्र भ्रूमध्य में चन्द्रमा के समान शीतल प्रकाश है। हूं-क्षूं दो वर्ण हैं। हाकिनी शक्ति के साथ शिव विराजते हैं। यहीं पर मन सूक्ष्मरूप से रहता है। ब्रह्मज्ञान इसी स्थान से होता है। इसके ऊपर सहस्रार कमल वैन्दव स्थान कुण्डलिनी शक्ति यहां पर परम शिव के साथ रहती है। इसी को "सहरहसिपत्या विहरसि" से शिव के साथ बिहार करना कहा है।

हं-चतुर्दसार- य-वहिर्दसार- वं-अन्तदसार-

विशुद्धि अनाहत मणिपुर

रं-अष्टकोण लं-त्रिकोण

स्वाधिष्ठान मूलाधार

सुधाऽऽधारासारेश्चरणयुगलान्तविगलितैः।
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसः।
अवाप्य स्वांभूमिं भुजगनिभमध्याष्टवलयं।
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणी॥ 10॥

भावार्थ

चरणकमल (भ्रूमध्य द्विदल) से निसृत अमृत की धारसार में (षट्चक्ररूपी) प्रपञ्च को सिञ्चन करती हुई रसरूपी जो आम्नाय के प्रकाश से अपने मूलाधार भूमि को (अवरोह मार्ग से) प्राप्तकर अपने सर्पाकार (सार्द्ध

त्रिवलय) करके कुलकुण्ड में शयन करती है। अर्थात् सुषुम्ना के अन्दर बज्रानाड़ी के भीतर छिप जाती है।

विज्ञान भाष्य

पहले श्लोक में मूलाधार जो अग्निशिखा का स्थान है वहां से कुलकुन्डलिनी को षट्चक्र भेदन द्वारा सहस्रार में परम शिव के संयोग द्वारा माया ब्रह्म की एकता कही है। यही मोक्षावस्था है। योगी निरन्तर इसी अवस्था से जीवनामुक्त स्थिति और अणिमा लघिमादि सिद्धियां प्राप्त करता है। परन्तु यावच्छरीर में यह स्थिति नहीं रहती। यदि यह स्थिति बनी रहे तो संसारिक प्रपञ्च लीन हो जाते हैं। अतः यह हृल्लेखा जीवन-शक्ति कुण्डलिनी प्रत्येक क्षण में विद्युत् गति के समान तीव्रगति से फिर अपने स्थान पर लौट कर इस शरीर को जीवन प्रदान करती है। इसलिये अब वह महाशक्ति अपनी मूल भूमि का किस प्रकार सञ्चार करती रहती है। इस बात को सुधा धारेत्यादि पद से प्रकट किया है। ''अवाप्य स्वां भूमिं''- कुलकुण्डलिनी अपने स्थान को प्राप्तकर आत्मभाव होने से निर्वाण स्थिति में साधक को पहुंचा देती है। इसलिए पहले कुन्डलिनी का स्वरूप और उसकी सहस्रार में जाने की गति और ग्रन्थियों का भेदन जानकर कुल कुन्डा में कुहरिणी का प्रवेश जाना जाता है। यथा मेरुतन्त्र में-

पण्णनवत्सङ्गुलायामं शरीरमुभयात्मकम्।
गुद ध्वजान्तरे कन्दमुत्सेधो द्व्यगुलंविदुः॥

तस्माद् द्विगुणविस्तारं वृत्तरूपेण शोभितम्।
नाड्यस्तत्र समुद्भूताः मुख्या तिस्रःप्रकीर्तिताः॥

ईडा वामेस्थिताः नाडीपिंगलादक्षिणेस्थिता।
तयोर्मध्यगता नाडी सुषुम्णा वेशमस्थिताः।

पादांगुष्ठद्वये याता शिफाभ्यां शिरसा पुनः।
ब्रह्मस्थानं समापन्ना सोमसूर्याग्निरूपिणी ॥

प्रत्येक पुरुष का अपने अंगुल से 96 अंगुल लम्बा शरीर होता है। गुदा और लिंग के मध्य से 2 अंगुल के अन्तर पर कन्द स्थान है, उससे द्विगुण अर्थात् 4 अंगुल के विस्तार का एक वृत्त बना है, यहां से नाडी शिरा और धमनियां उत्पन्न होता है। इनमें मुख्य नाडी तीन हैं।

मेरु दण्ड के वाम भाग में ईडा (चन्द्रनाड़ी) दक्षिण भाग में पिंगला (सूर्यनाडी) दोनों के मध्य मेरुदण्ड के भीतर सुषुम्णा है, यथा- ''मध्ये नाडी सुपुम्णा त्रिनवगुणमयी'' सूर्य, चन्द्र, अग्नि तीनों गुणों वाली है। ''विद्धिते धनुराकारे नाडीडा पिगलेपरे'' सुषम्ना नाडी के मध्य में वज्रा उसके बीच में चित्रणी चित्रा के मध्य में ब्रह्मनाडी, ईडा, पिंगला, धनुष के आकार की तरह मुड़ी हुई है। यथा-

मध्ये सुषुम्णाना तन्मध्ये बज्राख्यालिंगमूलतः।
तन्मध्ये चित्रिणी सूक्ष्मा विशतन्तुसहोदरा॥

मूलमूलात्सहस्रारस्तदंतर्ब्रह्मनाडिका।

तथा-

तस्या मध्ये विचित्राख्या अमृतश्राविणी शुभा।
सर्वतेजोमयी सातु योगीनां हृदयंगमा॥

अर्थात् सुपुम्णा के मध्य में बज्रानाड़ी उसके मध्य में चित्रा के छिद्र को ही ब्रह्मनाडी कहते हैं, योगी इसी में आनन्द करते हैं इसे प्रणव विलासिता'' भी कहते हैं, ओंकार की ध्वनि से यह जागृत होती है। मायातन्त्र में इसके स्वरूप का वर्णन आया है- ''ब्रह्मद्वार मुखं नित्यं मुखेनावृत्य तिष्ठति'' अपने मुख से ब्रह्मद्वार को ढक कर यह कुण्डलिनी रहती है। षट्चक्र निरुपण में कहा है-

विद्धन्माला विलासा मुनिमनसि लसत् तन्तुरूपा सुसूक्ष्मा,
शुद्धज्ञान प्रबोधा सकल सुखमयी शुद्धबोध स्वभावा॥

ब्रह्म द्वारं तदास्ये प्रविलसति सुधा धार गम्यं प्रदेशं।
ग्रन्थीस्थानं तदेतत् वदनमिति सुषुम्णाख्यनाड्यांलपन्ति॥

स्योर्द्धे विशतन्तु सोदरकला सूक्ष्मा जगन्मोहिनी।
ब्रह्मद्वारमुखं मुखेन मधुरं संछादयन्ती स्वयम्॥
शंखावर्तनिभा नवीन चपला माला विलासास्पदाम्।
सुप्ता सर्पसमा शिवोपरि लसत् सार्द्धत्रिवृत्ताकृति॥

उक्त श्लोकों में कुन्डलिनी का स्वरूप बताया है। सूक्ष्म कमल के रेशे के समान यह शिरा है सारा संसार इसी के कारण मोह-निद्रा में पड़ा है। यह कुण्डलिनी ब्रह्मद्वारा को अपने मुख से ढके हुई सहस्रार वैन्दव स्थान से जो अमृत निकलता है वह सब कुण्डलिनी के ही मुख में चला जाता है, इस नाड़ी का स्वरूप शङ्ख के आवर्त की तरह घूमा हुआ है, यह बिजली की तरह चमक देती है, मूलाधार में जो शिवलिंग है उसमें साढ़े तीन फेरे लगा कर सर्पिणी के समान सोती सी रहती है।

"भित्वा लिंगत्रयं तत् परमशिवपदे सूक्ष्मधाम्नि प्रदीपे। सा देवी शुद्धसत्वा तड़िदिव विलसत् तन्तुरूपा सुसूक्ष्मा" मूलाधार अनाहत विशुद्ध में तीन शिवलिंगों को पारकर परम शिव सहस्रार में विद्युत चमक वाली अतिसूक्ष्म कुण्डलिनी को ले जाना यही परम शिव पर्यंक में शयन करना है।) यह रहस्यमय स्थान है।

यद्यपि कुण्डलिनी को जागृत कराने की विधि योगशास्त्र में लिखी है। पर यह गुरुगम्य है केवल पुस्तकों के अध्ययन से इसका ज्ञान हो जाना सम्भव नहीं है यह आनुभविक विज्ञान है इसके लिए "गुरुपदेशतोगम्यं नतु शास्त्रार्थ कोटिभिः" यह गुरुगम्य है तथापि यम नियमासनादि सम्पन्न साधन चतुष्टयावान् मुमुक्षु के लिए इसकी रूपरेखा संक्षेप से लिख रहे हैं इष्ट देव भगवती की पूर्ण भक्ति से इसका प्रकाश होता है। वस्तुतः भगवती के उपासक को किसी न किसी रूप में गुरु मिल ही जाते हैं, कुण्डलिनी के उत्थान की विधि भिन्न प्रकार हैः-

"पद्मासने निविश्यांते ततः पाणिद्वयं न्यसेत्।
ततः हंसमुपश्रृत्य शनैः संकोचयेत् गुदम्॥

वायुमुत्तोलयेत्तोन वर्त्मना स पुनः पुनः।
उत्तोल्य भेदयेच्चक्रं तस्यानुष्ठानमुच्यते॥

मूलाधारसरोजेतु त्रिकोणमणिसुन्दरम्।
कामो भवति तन्मध्ये बालार्ककोटिसन्निभः॥

तर्ध्वे कुण्डली शक्तिः स्वयम्भूलिंगवेष्टिता।
हृदिस्थां कुञ्चिकां कृत्वा गत्वा तदुदरे शिवे॥

कण्ठाधं समनुप्राप्य द्वारं कुञ्चिकयाहवत्।
उद्घाटच्य परमेशानीं पवने नप्रदीपयेत्॥

हुताशनप्रतप्तांतु तापेन धृषमूर्द्धजाम्।
प्रसुप्तां नागिनीं लिंगे योनिवक्त्रे प्रबोधयेत्॥

ततः प्रक्षालयेद्वायुं यावन्नाऽड्यन्तरेषु च।
गुरूपदिष्टमार्गेण सकृद्वा कुम्भकेन च॥

आक्रम्यैनं ततो जीवं सुगुप्तेन यथाभृशम्।
उद्र्ध्वच्छ्वासैरूर्ध्वमुखात् कारयेत्पङ्कजान् शिवे॥
प्रबोधयेत् शनैः वायुं मेरुश्रृंगं नयेत्सुधीः॥

उक्त श्लोकों का तात्पर्य यह है यमनियमासन सम्पन्न अधिकारी भस्त्रिका को सिद्ध किया हुआ पद्मासन में बैठकर दोनों हथेलियों को अपने दोनों जङ्घाओं पर रखकर ''हंस'' हकार सकार से वायु की वाह्य अन्तर्गति स्थगित कर शनैः शनैः गुदा को आकुञ्चन करके (सिकोड़कर) वायु को ऊपर की ओर पूरक की सिद्धि से उछालने से ऊपर के पांच चक्रों को भेदन करे मूलाधार त्रिकोण में कामबीज आगे बालसूर्य की तरह चमक वाला है उसके ऊपर स्वयम्भूलिंग में सर्पाकार कुण्डलिनी शक्ति है, हृदयपत्र में विष्णुग्रन्थि का भेदन कर विशुद्ध में हठयोग के नियमानुसार ले जावे कुण्डलिनी को जगाकर कुम्भक को अग्नि से उसे उत्तपन कर अवरोह मार्ग से योनिस्थान में लावे तब नाड़ियों को वायु से शुद्ध कर देवे तब उर्द्धश्वास को खींचकर षट् कमलो के विकास करने से शनैः शनैः

कुण्डलिनी को जागृत करे यह अनुभव सिद्ध गुरु से जानने योग्य है। तथाच,

हूंकारेणैव देवीं यमनियमसमभ्यासशीलः सुशीलो।
ज्ञात्वा श्रीनाथवक्त्रात् क्रममिति च महामोक्षवर्त्मप्रकाशम्

ब्रह्म द्वारस्य मध्ये विरचयति सतां शुद्धवृद्धिस्वभावं
भित्वा लिंगत्रयं तत् पवनदहनयो सक्रमेणैव गुप्तम्।

हूंकार शब्द से कुण्डलिनी को जागृत करके पवनदहन कुम्भक पूरक के योग से मोक्षद्वार को उद्घाटन करे अर्थात् मूलाधार जो कफ का स्थान है उसे कुम्भक की अग्नि से प्रतप्त कर हूं हूं हूं इस शब्द से जिस भाव का संकेत किया जाता है उस क्रिया से कुण्डलिनी को वहां से चालन करके स्वयम्भूलिंग (मूलाधार में) बाणलिंग (अनाहत में) इतर लिंग (विशुद्ध में) इन तीन लिंगों के भीतर छिद्र से उस कुण्डलिनी को जगाकर अर्थात् तीन ग्रन्थियों को भेदर कर परम शिव में (सहस्रार में) कुण्डलिनी को पहुंचाना आरोह और पुनः अवरोह मार्ग से कुण्डलिनी को यथास्थान में लाना सहस्रार से जो अमृत श्रावित होकर आज्ञारूपी भगवती के चरणों के द्वारा सारे षट्चक्रात्मक देहरूपी प्रपंच को सिंचन करती हुई ज्योतिरूप आम्नाय को सहसा प्राप्त कर कुण्डलिनी अपने स्थान को प्राप्त करती है। इस श्लोक में आम्नाय पद से शङ्कर के पंचमुखों से निकले हुए पंचाम्नाय से तात्पर्य है यथा- ''पूर्व दक्षिण पाश्चात्यै सदनूर्द्ध क्रमेण च। पंचवक्त्रे शिवप्रोक्ताः पंचमाम्नाय देवताः'' शिवजी के पञ्चमुखों से पञ्चम्नाय निकले हैं। (1) पूर्वाम्नाय जिसमें उन्मनी विद्या है 'ह स्त्रीं ह्रीं श्रीं क ल ह्रीं'' (2) दक्षिणाम्नाय जिसमें भोगिनी विद्या है ऐं क्लिन्ने मदद्रवेत् हसौः (3) पश्चिमाम्नाय जिसमें कुब्जिका विद्या ऐं ह्रीं श्रीं हस फ्रें ह सौः ओं हैं (4) उत्तराम्नाय कलिका विद्या एवं फ्रें महाचंड योगीश्वरी (5) ऊर्ध्वाम्नाय जिसमें परा प्रसाद मन्त्र है प्रपञ्च शब्द से देह और सारी सृष्टि का अर्थ है। यथा-

''योगी च ब्रह्मवित्ज्ञानी शिवयोगी तथात्मवित्।
तेनैव विहितं सर्वं प्रपञ्चात्मैक्य विग्रहम्॥

देह इन्द्रियादि कालादि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रपञ्चात्मक है शास्त्र में प्रपञ्चन्यास सविस्तार वर्णित है। आकाशादि मानसादि स्थानों को जो स्तम्भरूप है तथा क्रम से नीचे के चक्रों को अपने प्रकाश से सिञ्चित करती हुई सार्ध त्रिवृत्ता बनकर कुल कुण्डलिनी कुलकुण्ड चतुर्दल मध्यवर्ती मूलाधार गर्त में निवास करती है। स्वपिषि से उस सुसुप्तिका निर्देष है जो माण्डूक्य उपनिषद् में "सुसुप्ति स्थानं एकीभूत प्रज्ञानघन आनन्दमयो ह्यानन्दभुक्" से वर्णित किया है। उस आनन्दावस्था में विलास करती है। इस प्रकार कुण्डलिनी मूलाधार से सहस्रार में सहस्रार से मूलाधार में आरोह अवरोह मार्ग से चलती हुई सारे प्रपञ्च को जीवित करती है। अर्थात् ब्रह्मरंध्र अकुल स्थान से अमृत पान कर कुल रूप अपने स्थान पर लौटती है। पुनः अमृत पान के लिए कुलस्थान मूलाधार से ब्रह्मरंध्र में प्रवेश कर आनन्दित होती है जब कुण्डलिनी परम शिव सहस्रार में जाती है उस समय 6 चक्र इसी में लीन हो जाते हैं। फिर अमृत के प्रभाव से नीचे उतरते सब तत्व तथा चक्र यथावत् हो जाते हैं, यह संसार का उदय प्रलय है यह उत्पत्ति प्रलय क्रिया अति शीघ्र होती रहती है जो संसार की दृष्टि से मालूम नहीं होता है। दिव्यदृष्टिगम्य यह ज्ञान है "दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य में योगमैश्वरम्" योग का चमत्कार दिव्यदृष्टि द्वारा दिखाई देता है। तब योग विभूति दिखाने को अर्जुन को भगवान ने दिव्य चक्षु दिये थे। सामयिक लोग भगवान के भाल में जो चन्द्र है उसी को अमृतपिण्ड मानते हैं आज्ञाचक्र निसृत पीयूष को परम रस कहते हैं चन्द्रमा षोडश नित्या है, ये सब अमृतमय हैं यह पीयूष प्रवाह भगवती के चरणों से स्पन्दित होकर नीचे को प्रवाहित होता है। साढ़े तीन कोटि नाड़ियों को तथा वागादि देवताओं को और साधिभौतिक सम्पूर्ण संसार को जीवित करती है।

(यह कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्णाना के मध्य देश से विद्युत छटा की तरह षट्चक्रों को संजीवन करती हुई ब्रह्मरंध्र में पहुंचती है। नाभि में विष्णुग्रन्थी हृदय में ब्रह्मग्रन्थी को भेदन कर सहस्रार में प्रवेश करती है।

यही कुलकुण्डलिनी के जागरण का संक्षेप में निर्देष है।) गुरु उपदेश द्वारा मुमुक्षु जन इस ज्ञान को प्राप्त कर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं यही भगवती का पूजन आदि उच्च उपासना है।

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि।
प्रभिन्नाभिः शम्भोनवभिरपि मूलप्रकृतिभिः
त्रयश्चत्वारिंशद् वसुदलकलाश्रत्रिवलय-
त्रिरेखाभिःसार्धं तवशरण कोणाः परिणतः॥11॥

भावार्थ

चार त्रिकोण श्रीकण्ठ और पांच शिवयुवति ये नवकोण नौ मूल प्रकृति से 43 कोण जिसमें अष्टदल और षोडशदल त्रिवृत्त तीन रेखाओं से श्री यन्त्र के कोण परिणत हुए।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में श्रीचक्र का वर्णन आया है यह श्रीचक्र नौ मूल प्रकृति का द्योतक है, इसमें ऊपर के चार त्रिकोण शितिकण्ठ कहे जाते हैं। नीचे के पांच त्रिकोण शिवयुवति हैं अर्थात् चार ऊपर से नीचे की ओर, पांच नीचे से ऊपर के त्रिकोण हैं, मध्य बिन्दू से ये पृथक हैं परन्तु अष्ट दल षोडशदल तीन वृत्त तीन भूपुर सब मिलाकर तैंतालीस कोण होते हैं। ये तैंतालीस भगवति के भुवन कोण हैं, इसमें मूल त्रिकोण की गणना नहीं की गई है यह सृष्टी क्रम द्वारा गणना मूल त्रिकोण छोड़कर तैंतालीस त्रिकोण बताये हैं। नौ मूल प्रकृति इस चक्र की मूल भूमिकाएं हैं इनको ही नवयोनी कहते हैं, अर्थात नौ, धातुओं का सूचक है। यथा-

त्वक्, असृक्, मांस, मेदा, अस्थि, ये पांचशक्ति मूलक माता की धातू हैं। प्राण, मज्जा, शुक्र, जीव, ये चार धातू श्रीकण्ठ पिता के अंग से आती हैं।

इनके अतिरिक्त पञ्च भूत, पञ्च तन्मात्रा, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, मन, माया, शुद्धविद्या महेश्वर (सदाशिव) ये शिव तत्व से बने हैं, इससे

यह ज्ञान होता है कि नौ त्रिकोण से पचीस तत्व बने हैं, श्रीकष्ठ और शिवयुवति से बने हुए त्रिकोण बिन्दु से पृथक हैं, वसुकला शब्द का अर्थ आठ से सोलह तक है, परन्तु यहां पर अष्टदल, षोडश दल से अभिप्राय है, कोई कोई एक ही वृत्त को मानते हैं, परन्तु वृत्त तीन ही होने चाहिए। यतः अष्टदल और षोड़शदल में भी वृत्त हैं। वामकेश्वर तन्त्र में भूपुर का होना परमावश्यक बताया है, और 4 द्वार श्लोक 96 में 4 द्वारों का विशदीकरण होता है, बिन्दु 1-8-10-10-24 इनके योग से तैंतालीस कोण बनते हैं।

यथा :-

''बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्मम्
मन्वस्र नागदलसंयुतषोडशारं
वृत्तत्रयञ्च धरणी सदनत्रयञ्च
श्रीचक्रराज मुदितं परदेवतायाः।

वासासृक मांसमेदोस्थि धातवः शक्तिमूलकाः। मज्जा शुक्र प्राणजीव धातवः शिवूमलका नवधातुरयं देहो नवयोर्नि समुद्भवः।

श्रीचक्र में जैसे 9 धातू नव व्यूह शिव शक्त्यात्मक 43 कोण हैं वैसे ही 51 अक्षरों का भी स्थान है श्रीचक्र भगवती का कलेवर या रहने का स्थान है श्री चक्र में सूर्य्य, सोम और अग्नि ये तीन तत्व हैं यथा 43 त्रिकोण इनमें 16 चन्द्रकला और 27 नक्षत्र के योग से 43 से सोम कला है। सौर गणना से 12 (द्वादशादित्य) द्वादश कला द्वादश ऋषि तीन वेद और चार स्वर से सौर कला 43 होती है। त्रिकोण अग्नि द्योतक है। अष्ट कोण और आठ मूर्ति अग्नि की अन्तर्दशार अग्नि की 10 कला हैं बहिर्दशार अग्नि की दश विभूतियां अथवा आठ मूर्ति अष्ट कोण में दशकला अन्तर्दशार में और दशविभूति बहिर्दशार और चतुर्दशार में चौदह लोक इस प्रकार भी 43 कला अग्नि की गणना है सोम, सूर्य, अग्निमय श्रीचक्र हैं। मेरु, कैलाश और भू ये तीन प्रस्तार हैं। प्रधानतया श्री चक्र के तीन प्रस्तार हैं।

“प्रस्तारोत्र त्रिधा प्रोक्तः श्रीचक्रस्य तथेश्वरी।
मेरुकैलाशभूसंज्ञाभेदास्तस्य त्रिधा भवेत्॥

मेरुप्रस्तारकं यन्त्रं नित्यतादात्मकं स्मृतम्।
मातृकायास्तु कैलाशप्रस्ताराख्यं सुरेश्वरी॥

भूप्रस्तारं महादेवि वश्यान्त्यात्मकमुत्तमम्।
सृष्टी क्रमं मेरुचकम्, कैलासं चार्धमेरुकम्॥

संहाराख्यं महेशानि भूप्रस्तारं स्थितिक्रमम्।
एकैकस्य तु चक्रस्य त्रिभेदास्तु भवन्ति हि॥

सृष्ट्यादि भेदैर्देवेशि संहारं कौलिकं मतम्।
सृष्टिक्रमं तु समये मतं स्यात् स्थितिसंज्ञकम्॥

शुद्धन्तु कथितं देवि रहस्यातिरहस्यकम्॥
मेरुचक्रे तु संहारक्रमपूजा न विद्यते॥

सृष्टिक्रमेण देवेशि पूजनीयं प्रयत्नतः।
संहारपूजा कैलासे प्रस्तारोऽत्र विधीयते॥

भूप्रस्तारे महेशानि स्थितिपूजा सदोत्तमा।
स्थितिक्रमो गृहस्थस्य संहारौ वनिनो यतेः॥

ततः कुंकुमसिन्दूरैः कार्यं यन्त्रं तु योगिना।
सौवर्णे राजते ताम्रे स्फाटिके वैद्रुमे तथा॥

चक्रेतथोक्तविधिना पूज्या देविवरोत्तमैः।
यावज्जीवं सुवर्णे स्यात् रौप्ये द्वाविंशति प्रिये॥

ताम्रे द्वादशकं वर्षं तदूर्ध्वं भूर्जपत्राके।
ताम्रे द्वादशर्कं वर्षं स्फाटिकादौ तु सर्वदा॥

तेषां मध्ये स्फाटिकं तु सर्वसिद्धिप्रदं भवेत्।
विद्रुमे रचिते यन्त्रे, पुरागेऽथवा प्रिये॥

इन्द्रनीले च वैडूर्ये स्फाटिके मरकतेऽपिवा ॥
धनं पुत्रं तथा दारा यशांसि लभते ध्रुवम् ॥

श्रीयन्त्र मेरुपृष्ठ भूपृष्ठ और कैलास पृष्ठ भेद से तीन प्रकार का है। मेरुपृष्ट के भी तीन भेद होते हैं। श्री चक्र स्थिति क्रम, सृष्टी क्रम, संहार क्रम भेद से तीन प्रकार का होता है। पूजा भी तीन प्रकार से है गृहस्थियों को सृष्टी क्रम से यन्त्र और पूजन करना तथा स्थिति क्रम से भी और यति को संहार क्रम। मेरु में सृष्टिक्रम भूप्रस्तार में स्थितिक्र कैलास में संहार क्रम होता है।

श्रीयन्त्र सुवर्ण चांदी स्फटिक मूंगा पन्ना आदि में बनाया जाता है स्फटिक का यन्त्र सब सिद्धि दायी है।

''वृत्ते कृतेऽष्टमानेन सूत्रं पूर्वापरायतम्।
विन्यस्य विभजेदष्ट चत्वारिंशद् विभागतः ॥

षष्ठे षष्ठे पञ्चमे च तृतीये च तृतीयके।
चतुर्थे च तृतीये च षष्ठे षष्ठांश के पुनः ॥

विभज्य नव चिह्नानि तेषु सूत्राणि पातयेत् ॥

अथवा

शनिमध्ये रवेरन्तो चन्द्रान्तः केतु मध्यम॥

श्रीचक्र बनाने का उद्धार। ''बिन्दु त्रिकोण वसुकोण; ऊपर बता आये हैं उसके बनाने का क्रम यह है।

वामकेश्वर तन्त्रानुसार श्री यन्त्र बनाने की विधि इस प्रकार हैः-

1. किसी साधारण लम्बाई को व्यास मानकर उस पर एक वृत्त खींचो। और व्यास की खड़ी रेखा को 48 समान भागों में विभक्त करो।
2. ऊपर की ओर से (TOP) प्रारम्भ कर भाग नं. 6 12 17 20 23 27 30 36 42 के अङ्कों पर चिन्ह कर दो।

3. ऊपर वाले चिह्नित अंङ्क पर त्रिज्या (Chord) रेखा खीचों और उन पर 1 से 9 तक अङ्क लिख दो।
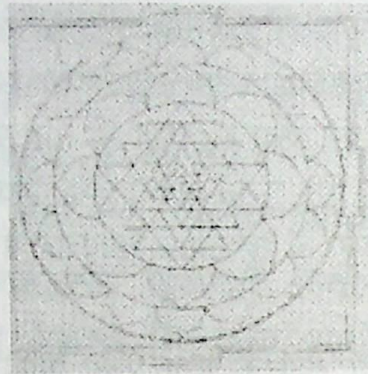
श्री यन्त्रम्

4. रेखा नं. 1 2 4 5 6 8 और 9 को आधार मानकर रेखा नं. 6 9 8 7 2 1 और 3 के मध्य बिन्दुओं को शीर्ष मानकर क्रमशः त्रिभुज बनाओ।

5. त्रिज्या नं. 1 का 1/16 भाग, 2 का 5/48, 4 का 1/3, 5 का 3/8, 6 का 1/3, 8 का 1/16 और 9 का 1/16 वां भाग दोनों ओर से मिटा दो।

6. रेखा नं. 3, 7 को भी इसी प्रकार आधार मानकर खड़े व्यास के नीचे और ऊपर के शिरों से क्रमशः मिलाकर दो त्रिभुज बनाओ।

7. इस प्रकार से 43 त्रिभुज बाहर की ओर निकले हुए बन गये। (2) जिसमें से एक बीच में, 8 उसके चारों ओर, तदन्तर दस दस त्रिभुज के दो स्थान, उसके बाद 14 त्रिभुज चारों ओर होंगे।

तत् पश्चात् वृत्त के व्यास के ऊपरी बिन्दु से आरम्भ करके परिधी को आठ समान भागों में विभाजित किया। और प्रत्येक भाग के ऊपर एक दल बनाया, इस तरह अष्ट दल कमल बन गया। तब एक वृत्त आठों दलों के बाहरी बिन्दुओं को स्पर्श करते हुआ खींचो।

इस प्रकार बने हुए दूसरे वृत्त को परिधि को 16 समान भागों में

विभाजित कर उनके ऊपर 16 दल बनाओ तब एक वृत्त 16 दलों के बाहरी बिन्दुओं को स्पर्श करता हुआ खींचो और इस वृत्त के बाहर की ओर उसी केन्द्र से दो वृत्त समान समान दूरी पर खींच दो।

सब से बाहर वाले वृत्त के चारों ओर तीन वर्ग बनाओ जो एक दूसरे से समानान्तर पर हों और सबसे अन्दर का वर्ग सबसे बाहर वाले वृत्त को स्पर्श न करे।

3 चारों दिशाओं में बीचोबीच समानान्तर पर चार द्वार बनाओ। और इन द्वारों के बीच की रेखाओं को मिटा दो।

इसी यंत्र को श्रीचक्र भी कहते हैं। बिन्दु केन्द्र को वैन्दव स्थान कहते हैं।

5 त्रिकोण जिनके शीर्ष नीचे की ओर हैं वह शक्ति के हैं और चार जो उर्ध्व मुखी हैं वे शिव के हैं।

सृष्टी क्रमः

भूगर्भगस्त्रिवृत षोड़श नाग शुक्र दिग युग्म वस्त्र नल कोणग बिन्दु मध्ये, सिंहासना परिग तारकपीठ मध्ये, प्रोत्फुल्ल पद्मनिलयां, त्रिपुरां भजेहं।

भू. चतुरस्र के बीच तीन वृत्त षोड़शदल अष्टदल, चतुर्दश कोण बहिर्दशार अन्तर्दशार अष्ट कोण त्रिकोण बिन्दु यह भगवति की तारक पीठ श्रीयन्त्र रूपी हैं।

सृष्टिचक्र

सामयिन के मतानुसार श्री चक्र को सृष्टी क्रम में बनाने का यह नियम हैः-

(1) एक समद्विबाहू (Isosceles) त्रिभुज बनाओ, जिसका आधार कागज के नीचे की रेखा के समानान्तर हो, और जिसका शीर्ष उर्ध्वमुख हो, तत्पश्चात् आधार की दो सम भागों में विभक्त करती हुई और आधार में मध्य बिन्दु को शीर्ष से मिलाती हुई एक कल्पित रेखा पर

आधार के मध्य बिन्दु के तनिक ऊपर एक बिन्दु रखो, और इस बिन्दु के थोड़ा ऊपर आधार के समानान्तर सीधी रेखा खींचो, जो त्रिभुज की दोनों भुजाओं को काटे, इस रेखा पर एक दूसरा सम द्विबाहु त्रिभुज जिसका शीर्ष ऊर्ध्व मुख हो बनाओ, तब पहले बने हुए त्रिभुज के शीर्ष से आधार के समानान्तर से सीधी रेखा खींचो और उस पर एक सम द्विबाहु त्रिभुज जिसका शीर्षक अधो मुखी हो इस प्रकार बनाओ कि इस त्रिभुज की भुजाएं उन बिन्दुओं से जहां दूसरे त्रिभुज का आधार पहले त्रिभुज से मिलता है होती हुई जाय। ये दोनों बिन्दु जहां तीन सीधी रेखाएं एक दूसरे को काटती हैं मंर्माशा कहलाती हैं। और ये बिन्दु उन बिन्दुओं से (जहां से सीधी रेखाएं मिलती है और जो समधी कहलाती हैं) भिन्न हैं। इस प्रकार आठ त्रिभुज बने जिनके कोण बाहर की ओर हैं इसे अष्ट कोण चक्र कहते हैं :-

अन्तर्दशार चक्र

अष्टकोण चक्र की सबसे ऊपर और नीचे की रेखाओं को दोनों ओर बढ़ाकर दो समद्विबाहु त्रिभुज इस प्रकार बनाओ कि जिनमें से एक का शीर्ष नीचे की ओर और दूसरे का ऊपर की ओर हो, और पहले त्रिभुज की भुजाएं उन दो त्रिभुजाओं को जिनके शीर्षक ऊपर की ओर हैं आध ारों के शिरों से होकर जायें। और दूसरे त्रिभुज की भुजायें उस पहले त्रिभुज के जिसका शीर्षक नीचे की ओर है आधार के शिरों से होकर जाये। भीतर वाले त्रिभुज की, जिसका शीर्षक ऊपर की ओर है भुजाओं को नीचे की ओर बढ़ाने से और उस त्रिभुज के शीर्षक बिन्दु से जो नीचे की ओर है आधार के समानान्तर एक सीधी रेखा खींचने से एक नया त्रिभुज बनेगा। इसी प्रकार उस त्रिभुज की जिसका शीर्ष नीचे की ओर है भुजाओं को ऊपर की ओर बढ़ाने से और एक सीधी रेखा आधार के समानान्तर इस प्रकार खींचने से कि वह पहले बनाये हुए बाहरी और ऊर्ध्व मुखी शीर्षक वाले त्रिभुज के शीर्ष बिन्दु से जावे। इस प्रकार एक पृथक त्रिभुज बनेगा। इस तरह दस त्रिभुज कोणों पर बनेंगे जिनके कोण बाहर की ओर होंगे, इस प्रकार अन्तरर्दशार चक्र बन गया।

बहिर्दशार

इसी प्रकार अष्टकोण चक्र में त्रिभुजाओं के आधारों को दोनों ओर बढ़ाओ और भुजाओं को कोण बिन्दुओं से होते हुए इस प्रकार बढ़ाओं कि मर्मांश 'बने और फिर आधारों के समानान्तर सीधी रेखायें इस प्रकार खीचों कि वे ऊर्ध्व मुखी और अधोमुखी शीर्षक वाले त्रिभुजाओं के शीर्ष बिन्दुओं से होकर जाये। इस प्रकार दश कोण वाले त्रिभुज जिनके कोण बाहर की ओर होंगे बनेंगे। इसको बहिर्दशार कहते हैं।

श्री चक्र स्थित प्रस्तारों का वर्णन

श्रीचक्र तीन भाग है जिनमें से प्रत्येक में पृथक पृथक देवताओं का स्थान माना गया है, और प्रत्येक की पूजा का विधान भी भिन्न-भिन्न है। इनके नाम मेरू, कैलास और भूप्रस्तार है।

मेरू प्रस्तार

मेरू प्रस्तार के अनुसार पोडश नित्याओं को इस प्रकार बताया है। 16 नित्याएं अर्थात महा त्रिपुर सुन्दरी, कामेश्वरी भगमालिनि, नित्यक्लिन्ना, भेरूण्डा, वह्निबासिनी, महावज्रेश्वरी, शिवदूती, त्वरिता, कुलसुन्दरी, नित्या, नीलपताका, विजया, सर्वमङ्गला, ज्वालामालिका और चित्कला उपरोक्त क्रम से चितकला को अष्ठयुग में से विभक्त किया गया है।

वर्णमाला के 51 अक्षरों को इसी प्रकार 8 वर्गों में विभक्त किया गया है।

इन वर्गों को अ वर्ग, क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, प वर्ग य वर्ग और स वर्ग कहते हैं।

इसी प्रकार युग्म देवियों और उसी के अनुसार वर्ग के अक्षरों के स्थान अष्टदल पद्म के आठ दलों के ऊपर नियत किये गये हैं। और इसकी गणना पूर्व दिशा के दल से आरम्भ करके दक्षिण दिशा की ओर की जाती है।

श्रीयन्त्र में मेरूपृष्ठ तीन प्रकार से वर्णन किया गया हैः-

(क) भूपुर (भूगृह से) प्रारम्भ होकर सृष्टिचक्र बनता है। और द्वितीय त्रिकोण से अर्थात् तीन से स्थितिचक्र अन्तिम तीन से संहारचक्र, कहीं-कहीं नित्य-पूजा में भूप्रस्तार और मेरूप्रस्तार का ही वर्णन यन्त्र बनाने का प्रमाण भी 6 तोले का और 4 अंगुल वर्गात्मक बताया है।

(ख) संहारचक्र स्वर्ण के पत्र पर पर्वताकार से एक दूसरे के ऊपर बनता है। भूपुर इसका पहला चरण है और अन्य दो कमल द्वितीय चरण हैं और दूसरे 6 चक्र एक दूसरे से ऊपर पर्वताकार में बनाये जाते हैं यही तीसरा चरण है।

(ग) नौ चक्र (नौ त्रिकोण) इसी प्रकार, एक दूसरे के ऊपर नौ खण्डों में बनाये जाते हैं।

कैलाश प्रस्तार में 51 मातृकाओं का वर्णन इस प्रकार आता है। 16 स्वर (सववर्णो के जीवन) इनका सम्बन्ध 16 नित्याओं से है। ये सब विसर्ग (अः) में समावेश हो जाते हैं।

ये अकार से आरम्भ होकर एकार तक विसर्ग इसी में अन्तर्हित होने से यह पञ्चदशाक्षरी विद्या हो जाती है, ये सब वैन्दव स्थान से निकलते हैं, क से मकार तक स्पर्श वर्ण इनसे तीन बीज (ऐं ह्रीं क्रौं इनको पाशांकुश बीज कहते हैं) मिलाने से अट्ठाईस हुये। ये अष्टकोण और द्विर्दशार (अन्तर्दशार बहिर्दशार) इन प्रत्येक कोण में एक-एक अक्षर हैं। अब पकार से रकार तक सात वर्णो को द्विगुणित करने से 14 चतुर्दशार के हुए, चार शिवचक्र इनमें आ गये अर्थात् 51 एक्यावन मातृ का इनमें ओतप्रोत है।

भूप्रस्तार में 16 नित्या एक-एक में दो-दो रहती है, यथा-वशिनी कामेश्वरी, मोहिनी, विमला, अरुणाजयन्ति, सर्वेश्वरी कौलिनि, ये एक-एक युग्म के तीन भागों में माना है। जो बिन्दु और त्रिकोण को छोड़ कर तीनों प्रस्तारों में आते हैं। महात्रिपुर सुन्दरी श्रीचक्र के मध्य में है, जिसमें 8 अ

क च यादि वर्ग और वाशित्यादिनित्या और 12 योगिनि, यथा- (1) विद्यायोगिनी, (2) रेचिका योगिनी, (3) मोचिका योगिनी, (4) अमृतयोगिनी, (5) दीपिका योगिनी, (6) ज्ञान योगिनी, (7) आप्यायोगिनि, (8) व्यापिनियो, (9) मेधायो0, (10) व्योमरूपा यो0, (11) सिद्धिरूपा यो0 (12) लक्ष्मि योगिनी॥

ये सब मिलाकर 43 हैं जोकि श्रीचक्र के कोण होते हैं। श्री चक्र के चार द्वारों में 4 देवियां हैं यथा- गन्धाकर्षिणी, रसाकर्षिणी, रूपाकर्षिणी, स्पर्शाकषिणी। इस प्रकार ये शक्तियां श्रीचक्र में रहती हैं। श्री चक्र का विधिवत पूजन तथा कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर आरोह मार्ग से सहस्रार तक ले जाकर अमृत पान कराना और पुनः अवरोह क्रम से मूलाधार कुलकुण्डा में ले आना इस प्रकार साधक श्रीविद्या की उपासना से सफलता प्राप्त करता है। श्री विद्या की उपासना का महत्व तन्त्र में इस प्रकार हैः-

श्रीगुरोः पादुका मूर्ध्नि श्रीचक्रहृदि देवता।
श्रीविद्या यस्य जिह्वाग्रे स साक्षात् परमः शिवः॥

जिस उपाशक के सहस्र दल में पादुका का ध्यान पूजन हृदय में श्रीयन्त्र का पूजन जिह्वा में श्री विद्या के मन्त्र का जप होता है। वह साधक परम शिव हो जाता है।

त्वदीयं सौन्दर्यं तुहिनगिरिकन्ये तुलयितुम्।
कवीन्द्राः कल्पन्ते कथमपि विरिञ्चिप्रभृतयः॥
यदालोकौत्सुक्यादमरललना यान्ति मनसा।
तपोभिर्दुष्प्रापमपिगिरिशसायुज्यपदवीम्॥ 12॥

इस श्लोक में ''सौः'' शक्ति बीज निकलता है। सौन्दर्य से सौः इन्द्र से विसर्ग इसके जप से आत्म शक्ति का विकास होता हैः

भावार्थ :-

हे हिमगिरिसुते! तुम्हारे सौन्दर्य की तुलना करने का ब्रह्म आदि कवीश्वर बड़ी कठिनाई से कल्पना कर सकते हैं। तपस्या से भी दुष्प्राप्य जो शिव की मूर्ति में मिल जाता है उस स्वरूप को दर्शन करने की बड़े उत्सुकता से देवांगना मन से आती है।

विज्ञान भाष्य :-

इस श्लोक में भगवती को "तुहिन गिरिकन्या" कहा है इस शुद्ध स्फटिक संकाश तेजोमय मूर्ति की तुलना अन्यत्र करने को आदि कवि ब्रह्म की भी असामर्थ्य दिखाई है दिव्य सौन्दर्य के वर्णन के आधार पर ध्यान योग द्वारा एक मात्र दिव्य दर्शन का निर्देशन किया गया है, "यदालोका" इस पद से और मनसा से मनसे मननीय और ध्यान योग गम्य जो सौन्दर्य है इस दिव्य नित्य सौन्दर्य से तात्पर्य है "ते ध्यानयोगाधिगमेन देवं" उप0 "मनसैंवेदमाप्तव्यं" इस सौन्दर्य को ब्रह्मा भी अपने चारों मुखों से वर्णन करने में असमर्थ हैं, ब्रह्मा के निर्देश से यह व्यञ्जना है कि ब्रह्मा ने वेदों को प्रकट किया है वह मातेश्वरी का तेजोमय स्वरूप शब्द गम्य नहीं है यह तात्पर्य है कि भगवति के उस स्वरूप की उपलब्धि को आत्मसाक्षात्कार कहते हैं। ब्रह्मा आदि वर्णन करने में इसलिए असमर्थ हैं कि यह भगवति का वह सौन्दर्य ब्रह्मनन्दमय है जिसकी वेदों ने नेति नेति से संकेत किया है कि वाणी से कहा नहीं जा सकता अमरललना दैवीसम्पत्ति की शक्तियों के विकास होने से आत्माभिमुखि मन जो एकाग्र मन भगवति की उपासना से साधक का होता है। उस मन से ही यह सौन्दर्य अनुभूत होता है, यथा- अहं ब्रह्मास्मि।

ध्यान योग का माहात्म्य और भगवति के चमत्कार का वर्णन आता है। भगवति की उपासना द्वारा मनुष्य में बल स्फूर्तिः सौन्दर्य आदि गुण एक प्रकार से दिव्य काया-कल्प हो जाता है। इस श्लोक में अमरललना और सायुज्य पदवी, ये दो पद आये हैं। इसका तात्पर्य यह है कि भगवति की उपासना स्थिति क्रम से स्वार्गादि भोग संहारक्रम से मोक्ष की प्राप्ति

में है। भगवति के दर्शन की उत्सुक देवांगना जैसे भगवति के दशनार्थ आती है वैसे शिवस्वरूप उनका हो जाता है अर्थात् दैवी 'सम्पत्तियुक्त मनुष्य भगवति की उपासना से ''शिवोहं'' इस भाव को प्राप्त कर लेते हैं श्रीचक्र का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर जो श्री विद्या की उपासना है उसका यह प्रभाव है कि तपस्या से दुष्प्राय जो गिरीश सायुज्य मोक्ष है उसे साधक प्राप्त करता है।

नरं वर्षीयांसं नयनविरसं नर्मसु जडम्।
तवापाङ्गालोके पतितमनुधावन्ति शतशः॥
गलद्ववेणीवन्धाः कुचकलशविस्रस्तसिचया।
हटात्त्रुट्यत्काञ्च्यो विगलितदुकूला युवतयः। 13।

भावार्थ :-

वृद्ध पुरुष जिनके नेत्र की ज्योति कम हो गई है शरीर में बल नहीं रहा (इन्द्रिय स्तब्ध हो गई हैं) तुम्हारी दृष्टी पड़ने से (वे युवा हो जाते हैं जिनके सौन्दर्य देखने को) युवती स्त्रियां सिर खुला ही हैं वस्त्र नीचे गिर गया काञ्चिबंधन टूट गया (अति शीघ्रांङ्गना) सैकड़ों युवती उसकी ओर भागती हैं।

इस श्लोक में भगवति की दृष्टी पड़ने से जो चमत्कार होता है उसका वर्णन किया गया है, वृद्ध पुरुष देखने में कुरूप नेत्र ज्योति जिसकी चल वसी और नपुंसक की तरह काम केली में जड़ हो गया है। भगवति के प्रकाश पड़ने से वह पूर्ण युवा दर्शनीय आकर्षक हो जाता है जिसके स्वरूप देखने के युवतिगण इतनी लालायित हो जाती हैं कि उन्हें अपने तन और वस्त्र भूषा का भी ध्यान नहीं रहता जहां कि तहां से जैसी दशा में है वहां से ही भागकर उसके सौन्दर्य देखने जाती हैं। भगवान श्री कृष्ण की मूर्ति में यही दिव्य लावण्य आकर्षक सौन्दर्य होने से गोपांगना जिस दशा में थी वहां से वैसे ही अपने तन मन को भूलकर भगवान् कृष्ण के दर्शन को टूट पड़ी थी। भगवति की उपाशना से अनेक इस प्रकार के चमत्कार हुए हैं।

भगवति के पाद पद्म से जो रश्मियां फैलती हैं उनका यह चमत्कार है। श्रीचक्र का उपासक श्रीयन्त्रात्मा भगवती के शरीर से इन रश्मियों को प्राप्त करता है। हठात् शब्द से ह-सूर्य-ट चन्द्रमा सूर्य सोमात्मक भगवती के चरण तथा प्राणापान वायु के साधन से हठयोग द्वारा देहमे जो षट्चक्रात्मक श्रीचक्र है उसके आलोक प्रकाश से इस चमत्कार को प्राप्त कर सकता है। च्यवन ऋषि भगवती के प्रकाश से दिव्य देहवाला हुआ राज कन्या श्रीविद्या की उपासना च्यवन के साथ करती थी।

अन्येरंशकलाप्रोक्ताः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

भगवान् श्रीकृष्ण महाराज की अपूर्व शक्तियों का वर्णन श्रीमद्भागवत में आया है यह अवतार पूर्ण षोडश कला सम्पन्न है, भगवान श्रीकृष्ण को योगेश्वर कहा है, ''यत्रयोगश्वरः कृष्णः'' श्रीकृष्ण विग्रह योग विभूति मय थे, इस श्लोक में दिखाया है कि षोडशी की उपासना जो षट्चक्र भेदन द्वारा बताई गई है। उसके प्रकाश से सौन्दर्य कान्ति, लावण्य का सञ्चार शरीर में होने से देवांगनाओं का समूह बलात् उसकी ओर आकर्षित होता जाता है इस योग विभूति का पूर्ण प्रकाश भगवान् कृष्ण में होने से सम्पूर्ण गोपांगना बलात् कृष्ण की ओर आकर्षित होती थी, जिसका बड़ा हृदयंगम वर्णन भागवत में आया है, यह षोडशी विद्या का प्रभाव ही षोडश कला सम्पन्नता का है, कृष्ण भगवति की संहार मूर्ति होने से मेघश्याम वर्णवाली हुई। दुर्गा सप्रशती में आया है ''कृष्णाभूता सापि कालिका'' यह भगवान् कृष्ण योगीश्वर की लीला का रहस्य षोड़शी विद्या का रहस्य है।

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं
व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसा।
आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोधामाः
स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः ॥ 1॥

इस श्लोक से काम बीज बनता है कलश से क ल से ल वर्षी इकार नरं से अनुस्वार सबके योग से ओं बनता है।

क्षितौ षट्पञ्चाशद् विसमधिकपञ्चाशदुदके।
हुताशो द्वाषष्टीश्चतुरधिकपञ्चाशदनिले॥
दिविद्धिः षट्त्रिशनूमनसि च चतुःषष्टिरितिये।
मयूखास्तेषामप्युपरि तव पादाम्बुजयुगम्॥ 14॥

भावार्थ-

हे भगवती! पृथ्वी के छप्पन मयूख जल के 52 अग्नी के बासठ 62 वायु की 54 आकाश की 72 मन की 64 (इनका योग तीन सौ साठ) इन रश्मियों के ऊपर तुम्हारे चरण......... हैं।

विज्ञान भाष्य :-

पृथ्वी तत्व मूलाधार में 28 रश्मियां हैं तथा 5 भूत 5 तन्मात्रां, 5 ज्ञानेन्द्रिय 5 पञ्च कर्मेन्द्रिय अन्तःकरण चतुष्टय 4 काल, प्रकृति, पुरुष महत्तत्व ये 28 हुई इनको शिवशक्त्यात्मक योग (द्विगुणित करने से) छप्पन 56 होते हैं, ये पार्थिव रश्मि हैं जलतत्व स्वाधिष्ठान (जिसे यहां मणिपुर कहा है) 52 मयूख हैं जैसे 5 पञ्च भूत पञ्च तन्मात्रा 5 ज्ञानेन्द्रिय 5 पञ्च कर्मेन्द्रिय अन्तःकरण चतुष्टय प्रकृति पुरुष से छब्बीस 26 हुए शिव शक्ति योग से द्विगुणित 52 हुये ये जल के मयूख हैं। अग्नि तत्व मणिपुर 62 मयूख हैं जैसे 5 भूत पञ्च तन्मात्रा, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रियः और दश इन्द्रियों के विषय तथा मन ये मिलकर 31 इकतीस होते हैं इनको द्विगुणित करने से 62 अग्नि के मयूख हुये। वायु की चौवन 54 रश्मियां पञ्च भूत पञ्च तन्मात्रा पञ्च ज्ञानेन्द्रिय पञ्च कर्मेन्द्रिय अन्तः करण चतुष्टय प्रकृति पुरुष महतत्व ये शिव शक्ति भेद से द्विगुण करने से चौवन वायु की रश्मियां हुई है। आकाश विशुद्ध दल में 72 रश्मियां हैं तथा शिवशक्ति सदाशिव ईश्वर शुद्ध विद्या माया कला राग नियति पुरुष प्रकृति अहंकार बुद्धि मन ज्ञान पञ्चज्ञानेन्द्रिय पञ्च भूत पञ्च तन्मात्रा पञ्चकर्मेन्द्रिय ये छत्तीस हुए शिव शक्ति योग से ये 72 होते हैं। मनोमय तत्व संपन्न आज्ञाचक्र में मानस 64 रश्मियां हैं तथा परा पश्यन्ति मध्यमा वैरवरी 4 चेष्टा 2 ज्ञान

7 क्रिया 7 कुण्डलिनी 4 मातृका की 8 ये शिव शक्ति योग से 64 हुई दूसरे श्लोक में -''तनीयासं पासुं'' में भगवती के चरणों से ही उत्पन्न हुए जिन सूक्ष्म परमाणुओं से संसार की उत्पत्ति स्थिति संहारात्मिका शक्तियों का निर्देश किया है पार्थिव आप्य वायव्य आग्नेय नाम से तथा इसमें मानसिक (स्फुरणात्मक) सूक्ष्म अणुओं का वर्णन है। भगवती के चरण उनके ऊपर है। इतने प्रकार के भौतिक दृष्टि से इनको परमाणु, दैविक दृष्टि से दिव्य शक्तियां मन्त्रात्मक बाद दृष्टी से, इतने प्रकार के वर्णों का विकास है। यही सृष्टि स्थिति संहार कर सकती है। इस श्लोक में देवि के चरणों की महिमा का वर्णन किया गया है, जो अज्ञा चक्र द्विदल में प्रतिष्ठित है, इन मयूखों का तात्पर्य चार प्रकार से प्रकट किया जा सकता है।

1. ये किरण या कलायें अग्नि, सूर्य सोम, से प्रवाहित होती है रश्मि, रुद्र, विष्णु और ब्रह्म जो ग्रन्थियों में विद्यमान हैं ये किरण या कलाएं 360 होती है।

2. इनसे चन्द्रमा का कलात्मक वर्ष होता है। जो तीन सौ साठ तिथियों का सामूहिक भाग है। एक तिथी चन्द्रमा एक एक कला से बनती है और ऐसे तीन सौ साठ तिथियों से 6 ऋतु षट् चक्र रूपात्मक बनती है, इन षट् चक्रों के ऊपर भगवति के चरण नाद और बिन्दु रूप में है।

3. मयूखों का तात्पर्य तत्वों से भी है जो पार्थिव आदि भेद से प्रत्येक चक्र में पृथक 2 हैं। और ये तत्व शिव भक्ति भेद से पृथक 2 होते हैं परन्तु देवी के चरण कमल सबसे ऊपर सुधासिन्धु रूप सहस्रार में तत्वातीत है।

4. मयूखों से मातृकाओं का भी बोध होता है। जैसे क्ष, को छोड़कर पचास अक्षर और पृथ्वी बीज ऐं, ह्रीं, श्रीं, ऐं, क्लीं, सौः, अथवा ऊपर के पचास अक्षर (जल के बीज) सौं, श्रीं हैं।

पचास अक्षर पहले वाले 14 वां अक्षर चार बार और अग्नितत्व के बीज तथा- 'हंसः सोहं' चार बार पचास अक्षर और वायुबीज यं रं लं वं पहले स्वर चौदह पांच बार और आकाशबीज ऐं ह्रीं 16 स्वर चार चार बार मन के 360 अक्षरों के साथ 'हंसः सोहं' लगा कर चक्रन्यास किया जाता है। प्रत्येक त्रिकोण के अधिष्ठातृ देवता पृथक-पृथक हैं। 36 ।41 श्लोक में इसका स्पष्टीकरण है, उत्तर तन्त्र शक्ति के और शांभव तन्त्र शिव के कहे जाते हैं। सृष्टि की रचना में शिवशक्ति के योग से एक प्रकाश होता है। जिसे परा कहते हैं। ब्रह्म रन्ध्र से आज्ञा चक्र तक यह प्रकाश रहता है। इसको मज्जा का स्वामी माना है। इसी से इच्छा ज्ञान, क्रिया, कुण्डलिनी, मातृका प्रकट होकर विशुद्ध आदि चक्रों में प्रकट होती है। इसी से त्वक् अस्थि आदि भौतिक तत्व सारे बनते जाते हैं।

पहले खण्ड में मूलाधार मणिपुर की 108 मयूख है। दूसरे स्वाधिष्ठान में सूर्य की 116, तीसरे विशुद्ध आज्ञा में सोम की 136 कला है, इनका योग 360 है।

जो चन्द्र आज्ञाचक्र में कहा गया है वह सहस्रारस्थ चन्द्र का ही प्रतिबिम्ब है, और तिथि रूप में घटता बढ़ता रहता है। ये किरणें इस तरह पर (अक्षया) हैं। जैसे- पञ्चभूत पञ्चतन्मात्रा दश इन्द्रियां चार अन्तःकरण काल प्रकृति पुरुष महतत्व 28 द्विगुणित 56 इत्यादि है। भैरवयामल में इनका नाम भेद व्यक्त किया है। इसे श्रीविद्या और चन्द्रकला कहते हैं। श्रीविद्या मोक्षदात्री है। चन्द्रकला भोगप्रदा है। ब्रह्मग्रन्थी विष्णुग्रन्थी रूद्रग्रन्थी सूर्य सोम अग्नि की कलाएं क्रमशः इन स्थानों से प्रवाहित होती है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड इन अग्नि सोम कलाओं के सम्मिश्रण विश्लेषण से बनता है, यद्यपि ये 360 बताई हैं परन्तु ये असंख्य कलाएं हैं सारे सौर जगत की प्रसव भूमि रूपा ये कलाएं हैं इनका विशदी करण 36 तथा 41 श्लोक में आया है आज्ञा चक्र चतुष्टी मयूखात्मक यहां से परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी, इन नामों से संकेत की गई शब्दमय सृष्टी का विकास होता है ज्ञान शक्ति का उदय भी यहीं से है, ज्ञान दो प्रकार- (1) निरालम्ब

(2) सालम्ब तीन प्रकार का- ज्ञातृ ज्ञेय ज्ञप्तृ इसी प्रकार निरालम्व भी चार भेद-तुम, तुम्हारा, मैं, और मेरा क्रिया सात प्रकार की होती हैं- ईष्ट, पूर्त, स्वाध्याय, यज्ञ, पूजा, तप, दान कुण्डलिनी शक्ति पृथक 2 भेद में चार नाम से कही जाती है- अन्वालय, प्रत्यावृति, विश्रान्ति, मातृका अ, क, च, ट आदि वर्गाष्ट।

यथा कुञ्चिकातन्त्र में :-

आदौ परा चतुर्धा स्यात् द्वितीये चापि पञ्चधा।
तृतीये वेदनाज्ञाना चतुर्थे सप्तधा क्रिया॥

पञ्चमी कुण्डलीद्विर्द्विः षष्ठे स्यान्मातृकाष्टधा।
परतो जायते हंसा सा च व्योमपतिस्मृता॥

षट्त्रिंशत्स्यापकाप्रोक्ता कण्ठस्थानसमाश्रिताः।
इच्छज्ञ जायते ज्ञानात् सा च वायोरधीश्वरी॥

सप्तविंशतिरश्मीनां पति सानाहताश्रया।
ज्ञानात्भूतक्रियाव्यक्ताः साच वह्नीश्वरीस्मृता॥

एकत्रिंशन्द्रश्मिपतिः स्वाधिष्ठानं समाश्रिताः।
क्रियात्कुण्डलिनीव्यक्तासाम्यात्सलिलनायिका॥

सप्तविंशति रश्मीनां मणिपूरसमाश्रिताः।
कुण्डल्यामातृकाजाताः सा क्षितीश्वरिभविता॥

अष्टाविंशति रश्मीनामधीपाद्वारमाश्रिताः।
शिवशक्तिविभागेन द्विविधा शाम्भवीक्रिया॥

षष्ट्युत्तरंच त्रिंशन्मेवं शम्भोः मरीचयः।
परादिशक्तिभिषड्भिः नायकै सहितापुरा॥

द्विसंख्याधिकंत्रीणि शतान्याहुर्मनीषिणः।
येषांस्मरणमात्रेण जीवन्मुक्तो महींचरेत्॥

उक्त श्लोक में पार्थिवादि रश्मियों के शिवशक्त्यादि भेद से वर्णन है।

नाम वर्णनानुसार गुण भी हैं।

श्री विद्यार्णव तन्त्र में रश्मिनां भेदाः :-

मन्त्रोद्धारं स्वयं कुर्यान्मातृकारश्मिबोधनात्।
प्रथमं मातृकारश्मिक्रम ज्ञेयः सदा बुधैः॥

रश्मिक्रममविज्ञाय मन्त्रोद्धारं करोति यः।
अन्धाकारे स्थितं वस्तुं द्रप्टुमन्वेषयत्ययम्॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरुतः शास्त्रतोऽपिवा।
सम्यग् ज्ञात्वा विधानेन साधको गतसंशयः॥

मन्त्रस्वरूपं जानीयान्मन्त्रवीर्यस्य सिद्धये।
अनायासेन सिद्धिःस्यान्मन्त्रवीर्यप्रबोधनात्॥

मन्त्रवीर्यमविज्ञाय यो मन्त्रं भजते नरः।
कल्पकोटिसहस्रैस्तु मन्त्रसिद्धिर्नजायते॥

वर्णानां रश्मयो ज्ञेयाः श्वासरूपा न संशयः
ते श्वासाः पूर्णारूपाःस्युः षट्शताधिकतोऽपिच॥

गुणसप्तसहस्राणि ह्यपूर्णा द्विगुणीकृताः।
ते श्वासाः द्विविधाःप्रोक्ता बाह्यभ्यन्तरयोगतः॥

सूर्यचन्द्रविभेदेन क्रूरसौम्यप्रभेदतः।
पिङ्गलेडाविभेदेन ये श्वासाश्चार्धरूपिणः॥

मूलाधारे नाभिपद्मे स्वाधिष्ठानेऽप्यनाहते।
विशुद्धौ तु भ्रुवोर्मध्ये षट्चक्रेषु व्यवस्थितः॥

प्रतिचक्रं त्रिसाहस्रं षट्शताधिकमेव च।
मूलाधारं क्षितेः स्थानं स्वाधिष्ठानं तु तेजसः॥

मणिपूरमपां स्थानं वायोः स्थानमनाहतम्।
विशुद्धं नभसः स्थानमाज्ञाचक्रं तु मानसम्॥

मूलाधारे महापद्मं चतुर्दलसमन्वितम्।
वादि सान्तचतुर्वर्णैर्दलमध्येषु संयुतम्॥

एकस्यैकस्य वर्णस्य रश्मीनां नवशत्यपि।
पार्थिवा रश्मयस्तेषु चतुर्दश चतुर्दश॥

प्रत्यक्षरं तु विज्ञेया वादिसान्ते यथाक्रमम्।
मणिपूरे दशदले डादिफान्तसमन्विते॥

तत्राप्यारश्मयो ज्ञेयाद्विपञ्चाशद्विभागशः।
स्वाधिष्ठाने रसदले वादिलान्ताक्षरान्विते॥

द्वाषष्टी रश्मयो ज्ञेयास्तैजसाश्चात्रभागशः।
अनाहते रविदले कादिठान्ताक्षरान्विते॥

वायव्या रश्मयो ज्ञेयाश्चतुष्पञ्चाशदत्र वै।
विशुद्धे षोडशदले षोडशस्वरसंयुते॥

नाभसा रश्मयो ज्ञेया द्विसप्ततिर्विभागशः।
आज्ञाचक्रे तु द्विदले हक्षाभ्यां संयुते परे॥

मानसा रश्मयो ज्ञेयाश्चतुःषष्टिर्यथाक्रमम्।
षडाधारेषु संभूय त्रिशतं षष्टिरश्मयः॥

एकस्यैकस्य वर्णस्य रश्मयो ये समाश्रिताः॥
तेषु रश्मिषु संप्रोक्ताः षड्विधाः पार्थिवादयः॥

भावार्थ

शरज्ज्योत्स्नाशुभ्रां शशियुतजटाजूटमकुटाम्।
वरत्रासत्राणस्फटिकघुटिकापुस्तककराम्॥

सकृन्न त्वां नत्वा कथमिव सतां संनिदधते।
मधुक्षीरद्राक्षा मधुरिमधुरीणा भणितयः॥ 15॥

शरद कालीन चन्द्र रश्मियों की तरह शुभ्र (चमकीलें) चन्द्रमा युक्त जटाजूट मुकुटीवर, अभय, स्फटिक माला पुस्तक क्रमशः चार हाथों में

धारण की हुई (इस विग्रह की) तुम्हारी मूर्ति को जिसने एक बार प्रणाम कर लिया उसकी वाणी में इतना मधुर रस आ जाता है, अर्थात् इसे उपासक के मधुर युक्तियों की तुलना शहद द्राक्षा आदि से भी कदाचित ही हो सके।

विज्ञान भाष्य

वक्षमाण तीन श्लोकों में वाग्वादिनी विद्या का वर्णन सात्विक, राजसिक, तामसिक प्रकार से आया है। इन श्लोकों से भगवती के मन्त्रमय विग्रह का भी ज्ञान होता है "कूटत्रय कलेवरां" यह ललिता के वर्णन में आया है तथा "श्री मद्वागभवकूटैक स्वरूप मुखपङ्कजा कण्ठाधः कटि पर्यन्त मध्य कूट स्वरूपिणी। शक्ति कूटैकतापन्न कट्यधो भाग धारिणी।" मन्त्रमय विग्रह (शरीर) इस प्रकार है- मुख वाग्भवकूट, कण्ठ से कटि पर्यन्त मध्यकूट, कटी से नीचे शक्तिकूट, नील तन्त्र में वाग्वादिनी नील सरस्वती की उपासना में आया है। उस साधक की कवित्व शक्ति अपूर्व हो जाती है काव्य धारा प्रवाह उसके मुख से निकलता है। यहां इस श्लोक में मधुर मधुरीणा भणितयः पद से वाणी में मधुर रस उसके भाषण में आकर्षकता जिस प्रस्ताव पर बात करे वह शब्दावली हृदय ग्राहिणी और चित में स्थान लेने वाली हो जाती है "यथा- किं कवेः तेन काव्येन किं काण्डेन धनुष्मता। परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः" कविता वही है जिसे सुनकर रसिक का शिर हिलने लग जाय। इस प्रकार की सरस गद्य, पद्य, मयी भाषण शक्ति का विकास साधक को भगवति की सत्व प्रधाना मूर्ति की उपासना का फल है। पञ्चदशी विद्या के वाग्व भवकूट से जिह्वा की अधिष्ठात्री क्रिया शक्ति तथा वाग्वादिनी भगवती का ध्यानगम्य वर्णन इस श्लोक में आया है। शरद् ऋतु की चन्द्र किरणों की तरह चमकीले जटा जूट कुकुट में चन्द्रमा को धारण किए हुई चार हाथों में क्रम से वर अभय, स्फटिक माला और पुस्तक धारण की हुई भगवति की मूर्ति का ध्यान करने वाले उपासक की वाणी में इतना माधुर्य रस सञ्चार हो जाता है कि जिस मधुरिमा की तुलना द्राक्षा, मधु आदि से भी नहीं दी

जा सकती है। यहां पर सात्विक ध्यानगम्य मधुर वाणी को कहने से प्रकट होता हे, जिह्वा इन्द्रिय जल तत्व के सत्वांश से बनती है, रस ज्ञान की योग्यता जिह्वा में है अतः जिह्वा की अधिष्ठात्री वाग्वादिनी क्रिया शक्तिरूपा भगवती सत्व प्रधाना का वर्णन पहले आया है। सकृन्नत्वा पद से जब पाप नष्ट हो जावे तभी माता के चरणों में झुकने की इच्छा होती है- जैसे श्लोक 1 के भाष्य में आया है। ''मधुरीणा भणितयः'' इस पद से देवता को प्रसन्न करने के लिये मधुर स्वर से स्तवन करना भी समझा जाता है स्तुती को जितना ही मधुर स्वर से करे वाणी के माधुर्य्य से केवल संसार ही नहीं, अपि तु दैवीजगत भी अपने वश में आ जाता है। मधुर भाषण साहित्य की बड़ी निधी है भारतवर्ष में अभी तक भी जिन घरानों में उच्चसंस्कृति बनी हुई है वे अष्टगन्ध में मधु मिलाकर नवजात शिशु के जिह्वा पर वण्भव बीज लिखते हैं। जिससे उसकी वाणी में मधुरता रहे कठोरता न आ जाय। उच्चकोटि के घरों में बालक को मधुरता से वार्ता कराने का अभ्यास कराना उच्चकोटि का विनयन है, कहा भी है ''विनयं राजपुत्रेभ्यः पण्डितेभ्यः सुभाषितम्'' विनय और सुभाषित उच्च वंश की ख्याति हैं। कठोर भाषण हृदय को उद्वेग करने वाली भाषा का व्यवहार निन्दित और पाप रूप है हृदय को उद्वेग करने वाली कठोर वाणी को राक्षसी भाषा तथा अपशब्दमयी वाणी का व्यवहार निन्दित और पाप रूप है हृदय को उद्वेग करने वाली कठोर वाणी को राक्षसी भाषा तथा अपशब्दमयी वाणी कहते हैं। कठोर वाणी की चोट से जो मन पर प्रहार पड़ जाता है उस प्रहार के क्षति की पूर्ति कठिन हो जाती है कहा भी है ''सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् वाणी सत्य और प्रिय कहनी चाहिए। यह रसमयी सुन्दर वाणी का व्यवहार भगवती की उत्तम प्रकार की उपासना की सिद्धि है।

तन्त्र में कहा हैः-

वाक्सिद्धिर्द्विविधा प्रोक्ता शापानुग्रहकारिणी।
महाकवित्वरूपा च भक्तस्तेन द्वयात्मकः॥

भगवती की उपासना से वाणी में दो प्रकार की सिद्धियां आ जाती

हैं शाप और अनुग्रह करने की तथा महाकवि बनने की सिद्धि आ जाती है। दुर्वासा को शाप की सिद्धि शिव को वर देने की सिद्धि श्रीविद्या की उपासना से प्राप्त हुई। कालीदास मुरारि आदि को कविता सिद्धि इसी षोड़शाक्षरी कालिका से मिली।

कवीन्द्राणां चेतः कमलवनवालातपरुचिं।
भजन्ते ये सन्तः कतिचिदरुणामेव भवतीम्॥
विरिञ्चिप्रे यस्यास्तरुणतरश्रृङ्गारलहरी।
गभीराभिर्वाग्भिर्विदधति सतां रञ्जनमयी॥ 16॥

भावार्थ

कवीश्वरों के चित्त कमल रूपी वन में प्रभातकालीन सूर्य की कान्ति मय अरुणा के स्वरूप में जो साधक तुम्हारी उपासना करते हैं उनके मुख से सज्जनों को रञ्जन करने वाली अभिनव श्रृङ्गार रस की लहरें (कविता) निकलती जाती है।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में- इच्छा शक्ति रजो गुण बाग्भवकूट स्वरूपा भगवती का अरुणा के स्वरूप में ध्यान दिखाया है। यथा- ''तरुणेन्दुभालनयना मरुणा करुणा रसेन परिपूर्णा वन्दे समन्दहसिता, मीषध्द्धासां, वराभयं दधतीं।'' वाणीशक्ति का अधिष्ठातृ देवता ब्रह्मा के द्वारा वाणी का प्रवाह, वेदादि शब्द जगत का प्रदुर्भाव होने से ''विरञ्चिः प्रेयस्या'' शब्द आया है। चेतः कमल वन से यह सिद्ध हो रहा है इस स्वरूप का भजन साधक (अनाहत चक्र में कर वहां पर बाणलिङ्ग के दर्शन सूषुम्णा के प्रभातकालीन प्रकाश का अनुभव करने से, कविता शक्ति को प्राप्त करता है। भगवती अरुणा की उपासना से श्रृङ्गाररस प्रधान कविता की अपूर्व शक्ति साधक में आ जाती है। यद्यपि कविता वीर करुणा वीभत्स हास्य श्रृङ्गार शान्त आदि सब रसों में होती है। परन्तु कविता में श्रृङ्गार रस की ही प्रधानता है महाकवि और भवभूती मुरारि आदि कविश्वरों ने अरुणा के स्वरूप में महाकाली की उपासना से कविता का चमत्कार प्राप्त किया है।

मुरारि कविता के लिए कहा है- दैवीं वाचमुपासते हि बहवः सारन्तु सारस्वतं जानीते नितरामसौ गुरुकुलक्लिष्टो मुरारिः कविः अब्धिं लंघित एव-वानर भटै किंत्वस्य गम्भीरतामापातालनिमग्न पीवरतनुर्जानाति मन्थाचलम''॥ भगवती वाणी क उपासना बहुत उपासकों ने की है परन्तु सरस्वती के प्रसादरूपी सरस कवित के सार को मुरारि कवि ही जानता है। यतः मुरारि कवि ने विधिवत् गुरु के पास बैठ कर गुरु भक्ति द्वारा विद्या को सिद्ध किया है।

इस श्लोक में भगवती की इच्छ शक्ति रुपिणी के वाग्भव कूट का जो साधक हृदय कमल में सरस्वती को अरुणा के स्वरूप में सिद्ध करते हैं, उनमें यह विचित्र काव्य शक्ति का विकास होता है।

कालिदास को भगवति के प्रसाद से कवित्व शक्ति श्रृंगार रस प्रधान प्राप्त हुई थी प्रायः कालिदास के काव्यों में श्रृंगार रस की प्रधानता हैं इस प्रकार रस भरी कविता शक्ति भगवति के प्रसाद बिना नहीं होती है। मेघदूत, कुमार शम्भवादि काव्य कालिदास के दिव्य शक्ति के चमत्कार हैं ''तरुण तर श्रृंगार लहरी'' अर्थात् नवीन श्रृंगार रस की सूक्तियों का प्रवाह उसकी वाणी से निरन्तर होता रहता है कालिदास की अलौकिक श्रृंगार रस कविता को देख संसार में कविमण्डल चकित हो जाता था। एक समय राजा भोज ने पण्डितों से कहा कि कालिदास सब समस्याओं की पूर्ति श्रृंगार रस में कर देते हैं, कवि मण्डल मिलकर कोई ऐसी समस्या निकालें जिसमें श्रृंगार रस न आ सके। दूसरे दिन राज सभा में कालिदास के आने पर यह समस्या रखी ''अणोरणीयान् महतो महीयान्'' भगवान् छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा है। कालिदास को कहा इसकी पूर्ति करो, कालिदास ने तत्काल इस प्रकार पूर्ति की ''यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं हस्ते गृहीत्वा शपथं करोमि योगे वियोगे दिवसं प्रियायाः अणोरणीयान् महतो महीयान्'' अर्थात् परम पवित्र यज्ञोपवीत को मैं हाथ पर रख कर शपथ करता हूं अपनी प्रिया के मिलने पर बड़ा से बड़ा समय मुझे स्वल्प प्रतीत होता है प्रेयसी के दूर रहने के वियोग में छोटा समय भी बड़ा लगता है।

पूर्वकाल की शिक्षा शैली यह थी जिस विद्या को पढ़ाना होता था पहले उस विद्या का जो देवता है विद्यार्थी उसकी उपासना से उस देवता की सिद्धि द्वारा उस विद्या का चमत्कार प्राप्त करता था जैसे पाणिनी ने शंकर की उपासना से व्याकरण शास्त्र, कालिदास आदि ने अरुणा की उपासना से, धन्वन्तरी ने अश्विनी कुमार की सिद्धि से नारद ने वाग्वादिनी कि सिद्धि से इत्यादि अर्थात् केवल पुस्तक मात्र के पढ़ने से विद्या का चमत्कार नहीं मिल सकता है। जब तक उस रूप में भगवति की उपासना न की जाय।

सावित्रीविर्भाचां शशिमणिशिलाभङ्गरुचिभि-
र्वशिन्याद्याभिस्त्वां सह जननि सञ्चिन्तयति यः॥
स कर्ता काव्यानां भवति महतां भङ्गिसुभगै-
र्वचोभि र्वाग्देवी वदनकमलामोदमधुरैः॥ 17॥

इस श्लोक में भगवती की ज्ञान शक्ति और शक्ति कूट का आराधन सर्वरोगहर चक्र में वशिनी आदि शक्ति और बारह योगिनियों का ध्यान भूपृष्ट यंत्र पर साधक करते हैं।

भावार्थ

हे जननी! (मातृका रूप धारिणी) मातृ का स्वरूप चन्द्र कान्त मणि के कार्यों के समान चमकते हुए स्वरूप वाली वशिन्यादि शक्तियों के साथ जो तुमको चिन्तन करता है वह (पुरुष) महान काव्यों की रचना करने की शक्ति उत्पन्न करता है ऐसे काव्य जिनमें अनेक प्रकार की शब्द रचना वैदग्ध विशेषता हो सरस्वती के मुख कमल की सुगन्धि से माधुर्य रस जिसमें है। (ऐसी रचना वह क़रता है)

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में रजोगुण सम्पन्नता मूर्ति अरुणा का ध्यान है। वाग्भव कूट का ध्यान इसमें है। भगवति इच्छा शक्ति के रूप में है और काम राज

कूट भी हैं इसमें भगवति का ध्यान वशिन्यादि शक्तियों के साथ है अर्थात् वशिनी कामेश्वरी मोदनी विमला अरुणा जयिनी सर्वेश्वरी कौलिनी ये शक्तियां श्रीचक्र के सर्व रोग हर चक्र में होती है जिनका श्रीचक्र के साथ सम्बन्ध है। (श्लोक 11 में जो बताया है) तथा जिनका सम्बन्ध या जो आठ वर्णों की अधिष्ठात्री देवता से है आठ वर्ग अ, क, च, ट, त, प, य और स वर्ग ये श्रीचक्र के भूप्रस्तार में है और बारह योगिनी और 4 द्वारपाल भी भूगर्भ में होते हैं। वर्ग 16 स्वरों का स्वैत का शुभ्र रंग है तथा क से म तक स्पर्श वर्ण जिनको कहा है इनका रंग विद्रुम की तरह लाल है म से आगे के 9 अक्षरों का रंग पीत (पीला है क्ष का धूम्र वर्ण, है ड से फ तक श्वेत वर्ण कोई कहते हैं और ल व रक्त वर्ण, ह क्ष विद्युत वर्ण इसलिए अक्षरों की वर्णमाला अर्थात् रंगों को पंक्ति कहते हैं शक्ति बीज सौः अनेक भिन्न-भिन्न रंगों की पंक्ति है।

तनुच्छाया भिस्तेतरुणतरणि श्रीधरणिभि-
र्दिवं सर्वामुर्वीमरुणिमनि मग्नां स्मरति यः॥
भवन्त्यस्य त्रस्यद्वनहरिणशालीन नयनाः।
सहोर्वश्यावश्याः कतिकतिन गीर्वाणगणिकाः॥ 18॥

इस श्लोक में काम राज कूट भी निकलता है कपि से कं सालिन से लकार इकार और दिवं से अनुस्वार क्लीं-उपासक मूलाधार पृथ्वी तत्व से और दिवं (आकाश) विशुद्ध चक्र तक ध्यानावस्था में प्रातः कालीन सूर्य का प्रकाश जब देखने लगता है तब उसमें स्वतः शक्ति आ जाती है।

भावार्थ :-

प्रातःकालीन बालसूर्य के प्रकाश की लहरों के समान अरुणिमा से नभ और स्थल की लालिमा से आच्छादन करने वाली तुम्हारी मूर्ति को जो स्मरण करते हैं। घबराहट के चञ्चल नेत्र कान्तिवाले वन की हरिणियों की दृष्टी के समान चञ्चल दृष्ट वाली कितनी ही स्वर्गीय अंगना उर्वशी सहित उसके वशीभूत हो जाती हैं।

विज्ञान भाष्य :-

इस श्लोक में भगवती कामाकर्षिणी शक्ति का वर्णन कामराजकूट इच्छाशक्ति में दिखाया है। भगवती कामाकर्षिणी अरुणा जिस मूर्ति का प्रकाश प्रातः कालीन सूर्य की अरुणिमा के सदृश सारी पृथ्वी और आकाश में लालिमा छा दी है इस प्रकार तुम्हारी अरुणा मूर्ती की जो कामराज कूट इच्छाशक्ति रूपा की उपासना करता है यथा "तरुणेन्दुभाल नयना मरुणाकरुणा रसेन परिपूर्णां वन्दे समन्दहसितामीषद्धास्यां वराभयं दधतीम्।" उसमें कामाकर्षिणीशक्ति का विकास इस प्रकार हो जाता है जैसे चुम्बक लोहे को आकर्षण करता है इस प्रकार उर्वशी सहित सर्व सौन्दर्यमयी कौन देवांगना है जो उसके वशीभूत न होती हो। तब मानव ललनाओं का तो कहना ही क्या है। वन हरिण प्रायः मनुष्य जाति से भयभीत हो जाते हैं। इस शब्द से उपासक का औरों पर प्रभावित हो जाना सूचित करता है तथा गीर्वाण गणिका गीर्वाण शब्द यद्यपि स्वर्गीय देवताओं का वाचक है परन्तु प्रायः इसका प्रयोग भाषा के साथ होता है यथा गीर्वाण भाषा अर्थात संस्कृत वेद भाषा इससे यह भाव भी निकलता है कि कामराज कूट की सिद्धि से अनेक भाषाओं पर उसका आधिपत्य अर्थात उन 2 भाषाओं का ज्ञान प्राप्त हो जाता है, जैसे दैवी भाषा जिसमें वेद है, गान्धर्व भाषा, जिसमें कामशास्त्र और संगीत विद्या है। राक्षस भाषा रावण ने जिसे लिखा था, पैशाच भाषा, जिसमें जादू थे, प्रेत भाषा या काक भाषा, पशु भाषा, मनुष्य भाषा, सरीसृप भाषा वृक्ष भाषा, जिनमें पृथक प्रकार के विषय थे। जिनका कुछ वर्णन कथा सरित् सागर में भी है, एक-एक विषय की पृथक पृथक भाषा थी।

मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो।
हरार्धं ध्यायेद्यो हरमहिषि ते मन्मथकलाम्॥

स सद्यः संक्षोभं नयति वनिता इत्यतिलघु।
त्रिलोकी मप्याशु भ्रमयति रवीन्दुस्तनयुगाम्॥ 19॥

भावार्थ :- हे हर महिषी!

बिन्दुस्थान मुख और आज्ञाचक्र में दो बिन्दु स्तनरूप (यह आदित्रिकोण बना) इसमें हरार्द्ध अधोमुख त्रिकोण (जो श्रीचक्र में है) उसमें जो तुम्हारे कामबीज का ध्यान करता है उससे स्त्रियों पर आकर्षण की शक्ति होनी एक छोटी सी बात है। वह सूर्य चन्द्रमारूपी स्तन युगोंवाली तुम्हारी विराट मूर्ति में (कामबीज के प्रभाव से) त्रैलोक्य को भी सञ्चालन कर सकता है।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में भी कामकला का ध्यान है। एक बिन्दु को ई इकार का ऊपरी भाग मुख मान कर उसके नीचे दो कुच भाग, दो बिन्दु, इसके नीचे हरार्द्ध (अधोमुखी त्रिकोण) यह जो कामकूट का ध्यान करता है। उस साधक में आकर्षण करने की महान शक्ति हो जाती है। मनुष्यों पर आकर्षण का प्रभाव डालना तो एक छोटी सी बात है, वह त्रैलोक्य पर अपने प्रभाव को डाल सकता है। त्रिबिन्दु से कामकला का स्वरूप बनता है। सहस्रार में प्रथम बिन्दु आज्ञा में दो बिन्दु, सूर्य, सोम रूप के इसके हरार्द्ध अधोमुख त्रिकोण आज्ञाचक्र में ध्यान करे। भगवती की विराट् मूर्ति-आकाश आदि बिन्दु सूर्य, चन्द्रमा दो बिन्दु इसके मध्य में हरार्द्ध शिव का वह अङ्ग जो आदि शक्ति है। यह विराट ध्यान हुआ। चतुःशती में कहा है-

बिन्दुसंकल्पवक्त्रं तु तदर्धस्यात् कुचद्वयम्।
तदर्धः स परार्धन्तु चिन्तयेत्तदधोमुखम्॥

तद्बिन्दौ वक्त्रमारोप्य तदधो वाहुयुग्मकम्।
तदधः कुचयुग्मन्तु तदधो योनिमेव च॥

हरार्द्ध शिवयुक्ति चक्र जो श्रीयन्त्र में दिखाया है उसमें भगवती की मूर्ति का ऊपर लिखे अनुसार ध्यान करें। बिन्दुस्थान को मुख उसके नीचे दो कोणों के दो स्तन उसके नीचे परार्ध में नीचे के बिन्दु में मुख, उसके नीचे दो भुजा, भुजा के नीचे दो स्तन, उसके नीचे के त्रिकोण की योनि। इस प्रकार भगवती की मूर्तिश्रीचक्र में देखें।

रुद्रयामल में इस प्रकार आया है :-

नभो महाबिन्दुमुखी सूर्यचन्द्रस्तनद्वया।
सुमेरुहार्धं कलया शोभमाना मही यदा॥
पातालतलविन्यासत्रिलोकीयं तवाम्बिके।
कामराजकलारूपा जागर्ति सचराचरे॥

यहां पर हरार्ध शब्द से अधोमुखी त्रिकोणात्मिका योनी से तात्पर्य है। अथवा ''हरोह अकार यज्ञ हरः शिव'' ये दो अक्षर उसका अर्ध भाग श कार व कार का लोप करने से अवशिष्ट इ और अः रहा इनका व्यत्यय करने से ए बना, यह योनि हो गई। ''यद्वा हरः रविः'' उसका आधा रेफ व कार के लोप से ए रह गया, यही योनि है। (रुद्रयामल में इस प्रकार इस भाव को स्पष्ट किया है- आकाश महाबिन्दु भगवती का मुख-सूर्य चन्द्र, भगवती के दो स्तन-सूर्यस्तन से उष्मारूप प्राण, चन्द्रस्तन सामरूप अपान, 'अग्निसोमात्मकं जगत'' इन दो स्तनों से सारे संसार को अग्नी सोमरूपी जीवन दे रही है।)

''सुमेरु हरार्द्धकलया'' सुमेरु आधा अङ्ग और नीचे के कोण पाताल हैं, यही त्रिकोणात्मक भगवती की मूर्ति है, उसमें जो कामकला बीज है वह त्रैलोक्य को मोहन करने वाला है। भगवती कालकला रूप में तीनों लोकों में व्याप्त है।

हरार्ध शब्द से अधोमुख त्रिकोणात्मिका योनियों का अर्थ है। (उद्ध्र्वबिन्दु अग्नि का नीचे के दो बिन्दु सूर्य चन्द्रमा के, ब्रह्मा रजोगुणबिन्दु, विष्णु सत्वगुण बिन्दु, रुद्र तमोगुण बिन्दु, से त्रिगुणात्मक तीन बिन्दु हैं। यो हरार्ध हं, सः से ऐं बना या, मन्मथ कला कामबीज क्लीं, बीज के ऊपर का बिन्दु मुख और क ल दा बिन्दु या हरार्ध से योनी जो सब की प्रसवभूमि है। ''यतोवा इमानि भूतानि जायन्ते'' प्रथम बिन्दु ऊपर वाला ''ये न जातानि जीवन्ति यं प्रयान्त्यभिसविशन्ति'' ये दो बिन्दु नीचे के प्रथम बिन्दु उसके नीचे दो बिन्दु, दाहिना स्थिति, बायां संहार का है।)

श्रीयन्त्र में अर्द्धमुखी जो 5 योनी है, जिसको शिवयुवति कहा है, वह हरार्द्ध है। ''यद्वाहर, हंसः।'' इसमें ह स् का लोप करने से अः अं तीन बिन्दु ००० ाः। इस स्वरूप का ध्यान करे वही तन्त्रशास्त्र में श्रीविद्या के प्रकरण में अनुस्वार का बिन्दु भोगात्मक, विसर्ग बिन्दुः त्यागात्मक इन दोनों का ाः एकीकरण बताया है। जो अन्यत्र किसी भी शास्त्र में नहीं है। ह कार के ऊपर हं बिन्दु को मुख और विसर्गात्मक दो बिन्दु को स्तन इसके नीचे मन्मथकला योनी का ध्यान करे। यह काम कला अतिगोप्य है।) ''इति कामकला विद्या विदितायेन स भवतिमहा त्रिपुर सुन्दरी रूपः'' ''ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'' वह परा सिद्धि है।

इस प्रकार कामकला बीज ऐं, क्लीं, बने, ऐं - इसमें गुप्त सरस्वती का बीज है। तीसरा बीज सौंः, यह त्र्यक्षरी त्रिपुर सुन्दरी का मन्त्र ऐं क्लीं सौः है। या, तीन बिन्दुओं से क्लीं बीज बनता है जिसे कामकूट कहा है। ऊपर के बिन्दु का अधोभाग उसके दो बिन्दु इ और ल अनुस्वार इसमें गुप्त है इस प्रकार गुप्त रूप से महासरस्वती का बीज ऐं निकलता है। संकेत पद्धति में कहा है- ''एतत्कामकला ध्यानं गुह्यात्गुह्यतरं महत्। नाशिष्याय प्रवक्तव्यं नाभक्ताय कदाचन॥ लोभात् मोहाच्चगर्वाद्वा वैदुष्याद्वा प्रकाशयेत्। सोऽचिरान्मृत्युमाप्नोतिशस्त्रघात विषा दिभिः॥'' वह कामकला विद्या अभक्त शिष्य को भी नहीं बतानी चाहिये। कोई लोभ से किसी राजा को बता दे तो उसमें बताने वाले को हानि होती है।

तन्त्र शास्त्र में 7 प्रकार की सिद्धियों का रहस्य बिना गुरु कृपा साधन के नहीं प्राप्त होता है। मारण, मोहन, स्तम्भन, विद्वेषण, आकर्षण, वशीकरण, इन नामों से उन 2 सिद्धियों का बोध है। इन सब की परिसमाप्ति ''अहं ब्रह्मास्मि'' इसमें होती है। 'तन्त्रानुमोदित योगशास्त्र के साधक में इन सिद्धियों का विकास होता है। इस श्लोक में आकर्षण शक्ति का प्रयोग है।

किरन्तीमङ्गेभ्यः किरणनिकुरुम्बामृतरसम्।
हृदि त्वामाधत्ते हिमकरशिलामूर्तिमिव यः॥

स सर्पाणां दर्पं शमयति शकुन्ताधिप इव।
ज्वरप्लुष्टां दृष्ट्या सुखयति सुधाऽऽसारसिरया। 20।

भावार्थ

हे भगवती! अङ्गप्रत्यङ्ग रश्मियों से अमृत रस वर्षाने वाली तुम्हारी चन्द्रकान्तमय (शीतल) मूर्ति की जो साधक हृदय में उपासना करता है वह सर्पों के अभिमान को पक्षीराज (गरुड़) की तरह शमन कर देता है। ज्वरग्रस्तों को अमृतमय दृष्टि (रश्मियों) से सुखी कर देता है।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में भगवती के अमृतमय पिण्डस्वरूप का वर्णन है। उपासक शक्तियोग द्वारा चन्द्रकला विद्या का जब अभ्यास कर लेते हैं, तथा सहस्रार से अमृत स्रवण की स्थिति प्राप्त कर लेते हैं। तब हृदय कमल में भगवती का शीतल प्रकाशमय तेज का अनुभव होने लगता है। हृदय में भगवती चन्द्रकान्त मणिमय शुद्ध भ्राजिष्णुमूर्ति जिस मूर्ति के अङ्गप्रत्यङ्ग की रश्मियों द्वारा सुधासार का चिन्तन हो रहा है। ऐसी मूर्ति का ध्यान स्थिर हो जाने से साधक सर्प के विष दूर करने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। ज्वरादि से संतप्त रोगी को अपनी अमृतमय दृष्टि रश्मियों से निरोग कर देता है। (षोडश नित्याओं में भगवती भेरुण्डा सब प्रकार के विष शमन करने वाली है। "यस्यास्मरण मात्रेण त्रिविधं शमयेद्विषम्" भगवती भेरुण्डा सब प्रकार के विष बाधाओं से मुक्त कर देती है।) "ॐ भ्रों क्रौं, झ्रौं भ्रौं, छ्रौं ज्रौं स्वाहा" प्रायः इस मन्त्र को सिद्ध कर इससे निर्विषता हो जाती है। कहीं-कहीं "छिप-छिप स्वाहा" ऐसा भी मन्त्र आता है। सोमकला प्रधानात्मिका पञ्चदशी की उपासना विधि पूर्वक जो साधक करते हैं उनकी दृष्टि में सोमात्मक भगवती की अमृत रश्मियां आ जाती हैं। वह रोगी को आरोग्य लाभ दे सकता है। जिनको कुछ इसका ज्ञान है, वे लोग इस समय भी रोगियों को भगवती के उपासकों के पास ले जाकर आरोग्य लाभ प्राप्त करा लेते हैं। किस तरह रोगी बिना औषधि के आरोग्य होता है यह बिना भजन के कोई नहीं समझ सकते हैं। इसे समझना चाहो तो भजन करने की स्थिति बनाओ।

संकल्प शक्ति और दृष्टि की शक्ति का चमत्कार प्रायः थोड़ा बहुत सभी लोग जानते ही हैं, पर विशेष ज्ञान तो अभ्यास से होगा। यह अनुभव में भीतो आता है कि अमुक की दृष्टि लगने से बालक दुग्ध उल्टी कर रहा है। उसकी दृष्टि से आनन्द आया इत्यादि संकल्प का बल भी वे जान सकते हैं। जो मनोमय विज्ञान को समझते हैं इसका सारांश यह है कि- (मनुष्य जिसकी उच्चभावना का अभ्यास और जिसकी सब पर मित्र दृष्टि रहती है उस अद्रोहात्मक दृष्टि और सद्भावना वाले की भगवती की कृपा से स्वल्प काल में यह शक्ति प्राप्त हो जाती है।)

तडिल्लेखातन्वीं तपनशशिवैश्वानरमयीं।
निषण्णां षण्णामप्युपरि कमलानां तव कलाम्॥
महापद्माटव्यां मृजितमलमायेन मनसा।
महान्तः पश्यन्तो दधति परमाह्लादलहरीम्। 21।

भावार्थ

महान् आत्मा वाले लोग मल और माया को मार्जन किये हुए मन से षट् चक्रों से ऊपर महाकमलवन (सहस्रदल कमल में) सूर्य चन्द्रमा अग्निमयी, विद्युत् रेखा के समान (अतिसूक्ष्म) परमानन्द की लहरों से लहराती हुई तुम्हारी मोक्षकला को देखते हैं।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में भगवती की मोक्षकला और उसके विकास के साधन पर दृष्टि डाली गयी है। इस मोक्षकला की प्राप्ति में महान शब्द से साधक की उच्चकोटि का संकेत है। महान शब्द का अर्थ ऊंचे का है। जब साधक चतुर्थ भूमिका से ऊपर हो जाता है तब महान हो सकता है। ''निषण्णांषणामप्युपरि'' अर्थात् षट चक्र भेदन कर, सहस्रार में कुण्डलिनी के आरोह अवरोह मार्ग का अनुभव कर लें तब वह महान् साधक ''मुदितमल मायेन मनसा'' मन के मल विक्षेप और माया के मिथ्या के ज्ञान को (विचार यम नियम प्रायश्चित पूर्ण उपासना से) हटाकर विशुद्ध

मन द्वारा सहस्रार में सूर्य चंद्र वैश्वानर प्रकाशत्रयमयी परमानन्दरूपी मोक्ष कला का अनुभव करता है। यही उपासना का परम ध्येय है। इस श्लोक में मन के मल ही मोक्ष के प्रतिरोध करने वाले हैं, यह दिखाया है। मलविक्षेप के संस्कारों के रहते काम क्रोध लोभ मोहादि शत्रु बने रहते हैं। ''यज्ञैर्यज्ञैं महायज्ञै-ब्राह्मीयं क्रियते तनु'' ऋषि मुनी आदि उपासकों ने यज्ञ और महायज्ञों द्वारा मन के पाप शुद्ध कर ब्रह्माकार वृत्ति बनाई है। अतः सब से पहले साधक मन के पाप दूर करने का प्रयास करता है। तब विशुद्ध मन में उस मोक्ष लक्ष्मी का अनुभव स्वयं देखने लग जाता है। षट्चक्र के ऊपर शिवस्थान में 'तव कलाम्' इस वाक्य से निर्वाण कला का तात्पर्य है, यही षोड़शी का सूक्ष्म स्वरूप है। जिसका वर्णन अन्यत्र ऐसा है। गीता- 'येषांत्वन्तगतंपापं जनांनां पुण्यकर्मणां ते द्वन्दमोहनिर्मुक्ताः भजन्ते मां दृढःव्रताः'' जिनके पाप नष्ट हो गये हैं वे मोह से निवृत्त होकर भगवती के स्वरूप को देखते हैं। ''निर्वाणाख्य कलापरापरतरा सास्ते तदन्तर्गतः'' यह भगवती की निर्वाण कला है, इसीलिए ''मुदित मलमायेन मनसा'' यह आया है। मन के मल को दूर करने से यह प्रकाश आता है। षट्दल के ऊपर सहास्रार में ही यह कला है। कादिमत में कहा है- ''इति ते कथिताकामकलयावा स्वभावतः पूर्वमेवाधुनावक्ष्ये भावानामन्त्रमालिकाम्''।

मूलादिब्रह्मरंध्रांतं स्फुरत् विद्युल्लताकृति।
ध्यायेत् कुण्डलिनीं देवीं विद्याक्षरस्वरूपिणीम्॥

षट्चक्रभेदिनीं ताञ्च विन्दुत्रयमयात्मिकाम्।
तामेवार्द्धकलारूपां चिन्तयेत् पद्मकानने॥

एवं भावतया जुष्टः परमानन्दनिर्भरः।
संसारसागरं धीमान् गोष्पदिं कुरुते शिवे॥

हे मातः जो साधक ''मूलादि ब्रह्मरंध्रांतं'' षट्चक्र को भेदन कर बिन्दुत्रयात्मक तुमको अर्ध मात्रा में चिन्तन करते हैं, वे परमानन्द के आस्वाद को लेते हुए संसार सागर को गोष्पदी के समान पार कर लेते हैं भगवती के इस स्वरूप के ध्यान से अविद्या और पापों का नाश हो

जाता है। देवी के लिंग शरीर के (सूक्ष्म स्वरूप का) ध्यान निम्नलिखित अष्टादश स्थानों में होता है। (प्रणवं कुलपद्मन्तु) मूलाधारं स्वाधिष्ठान मणिपूरमनाहतम् विशुद्धिमाज्ञाचक्रे च विन्दुर्भूयः कलापदम् निबोधिका तदूर्ध्वेन्दोदुर्व्वेन्दो नादोनादान्त एवच उन्मनी विष्णुवक्त्रञ्च ध्रुवमाण्डलिकं शिवं इत्येतत्षोडषाधारं कथितं योगि दुर्लभम्॥

1- 'कुलपद्म' जिसे सहस्रार नाम से भी कहा जाता है, जो मूलाधार के नीचे है, और ऊपर मूलाधार की ओर खुलता जाता है। 2- विश्व यह कुलपद्म और मूलाधार के मध्य का है। 3- मूलाधार, 4- स्वाधिष्ठान, 5- मणिपुर 6- अनाहत 7- विशुद्ध 8- लम्बिकाग्र 9- आज्ञा 10- इन्दु, 11- अर्द्धचन्द्र 12- रोधिनी 13- नाद 14- नादान्त 15- शक्ति 16- व्यापिका 17- समना, उन्मनि, पञ्चदशाक्षरी विद्या के यह 15-अक्षर

कुल पद्म से शक्ति तक 5 दलों में हैं शेष तीन दलों में वही पहले अक्षर लय हो जाते हैं व्यापिका में जो योनि है तीन बिन्दु से बनी हुई है यह भी लय हो जाती है। सूर्य बिन्दु अग्नि के बिन्दु में सोम बिन्दु सूर्य में, सूर्य अग्नि में, सोम, समना में, समना और सोम परार्द्ध कलाओं में जो उन्मनी की कला है, जब ये सब योनि स्थान में लय हो जाते हैं तब केवल शिवशक्ति शेष रह जाती है इन दोनों का भी एक रूप शिवतत्व हो जाता है वही स्थिति जीवन्मुक्ति की है।

ऊपर जिन स्थानों का वर्णन किया गया है वह समष्टि शरीर में और व्यष्टि शरीर दोनों में है- ''ब्रह्माण्डे ये समुद्दिष्टाः शरीरे ते व्यवस्थितः ''ब्रह्माण्ड में जितने स्थान हैं वे सब सूक्ष्मरूप से शरीर में हैं। एक स्थान दूसरे स्थान से कई करोड़ योजन पूरी पर है। स्वच्छन्दतन्त्रसार में इनका क्रम इस प्रकार दिखाया है-

''कण्ठोर्ध्वे परमेशानि लम्बिका चतुरंगुले।
इन्दौ तदूर्ध्वेबोधिन्यां नादे नादान्त एव च॥

तन्मध्येशतकोटीनां संख्या योजनपङ्कजम्।
बिन्दुतत्वं समाख्यातं कोट्यर्वुदशतैर्वृतम्॥

अर्धचन्द्र तदूर्ध्वे ते रोधिनी तस्य चोपरि।
रोधिन्याख्यं यदुक्ते ते नादस्तस्योपरिस्थितः॥

इन्दिका दीपिका चैव रोचिका मोचिकास्तथा।
ऊर्ध्वगा मध्यगा तासां पञ्चभिः परमा कला॥

इन पद्यों में भगवती का ध्यान निरालम्ब मुद्रा से होता है। यथा :-

त्वजेत् शैथिल्यमङ्गानां नासाग्रे रोपयेत् दृशौ।
मुखं विवृणुयात् किञ्चित् दन्तैर्दन्तान्न संस्पृशेत् ॥
रसनामन्तरा कुर्यादनङ्गे धारयेन्मनः।
इयं सा परसा मुद्रा निरालम्बेति पञ्चमी ॥

अङ्गों की शिथिलता दूर कर पद्मासन सिद्धासन में बैठ नेत्रों को नासाग्र में लगावे मुख थोड़ा खुला रहे दांत नीचे के दांतों पर स्पर्शनकर सके जिह्वा को तालुमूल में सिकोड़कर कामबीज के प्रकाश में मन लगावे। इस तरह निरालम्ब मुद्रा बांधकर निरन्तर अभ्यास करने से जो वायु धारण किया जाता है उसके बल से अग्नि के कण उसे दीख पड़ने लगते हैं पुनः उसके बीच में प्रज्वलित दीप कला तदनन्तर प्रातःकाल के सूर्य के प्रकाश में ईश्वर का साक्षात्कार साधक को हो जाता है।

भवानि त्वं दासे मयि वितरदृष्टिं स करुणा-
मितिस्तोतुंवाञ्छन्कथयति भवानित्वमिति यः।
तदैवत्वं तस्मै दिशसि निजसायुज्यपदवीम्
मुकुन्दब्रह्मेन्द्रस्फुटमकुटनीराजितपदाम् ॥22॥

भावार्थ

हे भवानि! तुम मुझ दास पर दया की दृष्टि प्रसारित करो। इस प्रकार स्तुति करने की इच्छा करता हुआ जैसे ही साधक "भवानित्वं इतना

उच्चारण करता है उसी समय ही ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र के मुकुटमणि की ज्योति से नीराजित (आरती किए गये) चरणा भगवती भवानि वैसे ही उस (साधक को) सायुज्य पदवी दे देती है।

विज्ञान भाष्य

पूर्व 21 श्लोक में वर्णित निर्वाण कला के साक्षात्कार होने पर साधक पर भगवती की करुणामय दृष्टि होने ''तत्वमसि'' इस महावाक्य से बोधित आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है। ब्रह्म, विष्णु, इन्द्र जिस भगवती के चरणों में नत मस्तक रहते हैं उन देवताओं के मुकुटों में रत्नों की चमक मानो भगवती के चरणों का नीराजन कर रहे हैं। इस कथन से साधक को भक्ति भाव से भगवती के पूजन करने का निर्देश है भक्ति का विकास विधिपूर्वक पूजन स्तोत्र पाठादि से दिव्यभाव षोढा महषोढादिन्यासपूर्वक मन्त्र पुरश्चरणादि से होता है शाण्डिल्य ने भक्ति का वर्णन करने में 'सापरानुरक्ति' सूत्र में परा शब्द जो आया है उसका पराकला से भी तात्पर्य हो सकता है पराकला (मोक्षकला) भक्ति से विकास होना इससे सूचित किया गया है। ''सायुज्यपदवी'' कहने से सालोक्यादि मुक्ति का भी बोध होता है यथा- सालोक्य एक ही लोक में रहना उपास्य देवता के लोक की प्राप्ति सालोक्य मुक्ति जैसे भगवान के पार्षद जय विजय आदि पार्षदों को मिली सामीप्य इष्टदेव के सामने रहना जैसे हनुमान आदिकों को सारुप्य एकरूप हो जाना जैसे ''त्वया हृत्वा वामं'' इस पद में भगवती के रूप में हो जाना यही सायुज्य कैवल्य मोक्ष है जो तत्वमस्यादि महावाक्य गम्य है। ''भवानित्वं दासे'' इस पद से भगवती के नामोच्चारण से ही मुक्ति बताई है जैसे नारायण नामोच्चारण करते ही अजामिल आदिकों की मुक्ति हुई है।

'मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषैः।

जिनके मन के मल मृदित हो गये ऐसे मुनिजनों ने मोक्ष के लिए भगवती की उपासना की है।

मार्कण्डेय ऋषि ने कहा है-

'सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।'

भगवती जब प्रसन्न होती है तब वर और मोक्ष उपासक को देती है इसलिए ''मृजित मलमायेन मनसा'' इस पद में मन के मल को दूर कर भगवती का भजन करने का निर्देश किया है।

इस श्लोक में 'त्वं' और 'मयि' तू और यह द्वैत भाव देहाध्यासजन्य जब तक है साधक को उपासना ही एक-मात्र अवलम्ब है, 'दासे' इससे दासभाव का भी बोध होता है साधक भगवति की कृपा से माता की जैसे ही करुणामय दृष्टि से सिञ्चित होता है वैसे ही उसे 'त्वं' पद कहते ही 'तत्वमसि' महावाक्य बोधित आत्मज्ञान का अनुभव हो जाता है। 'निज-सायुज्य पदवीम्'' साधक देवी रूप हो जाता है अर्थात् उस परम पद को प्राप्त कर लेता है जिसे कठउपनिषद् में ''तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये'' तथा ''सर्वे वेदाः यत्पदमामनन्ति'' सम्पूर्ण वेदोपनिषत् विद्या जिस ब्रह्मपद् का वर्णन करती हैं जिसे ''तद्विष्णोः परमं पदम्'' परमपद कहा है गीता में जिसका वर्णन इस प्रकार है- ''ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः'' साधक भगवती के उस पद का जिसका मोक्षफल शब्द से संकेत किया है उस पद को देखो यह वह पद है जिसको प्राप्ति होने से फिर दुःखमय संसाररूपी कारागार में नहीं भटकना पड़ता ''मुकुन्द ब्रह्मेन्द्रस्फुटमुकुटनीराजनपदाम्'' इससे उस पद का अनिर्वचनीय प्रकाश कहा गया है यथा गीता में- ''दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थितः'' हजारों सूर्य की चमक एक ही समय यदि आकाश में हो तब भी उस पद के प्रकाश की तुलना नहीं की जा सकती उस पद का प्रकाश बताया है जिसकी उपासना गायत्री जप करने वालों को सबके लिए वेद ने बताई है- ''भर्गो देवस्य धीमहि'' यह वह तेजपुञ्ज भगवती का है। नीराजन शब्द के कहने से साधक का ध्यान भक्ति भाव से उपासना करने को कहा गया है, नीराजन पूजा की समाप्ति पर होता है। अर्थात् नित्य प्रेम से भगवती की स्तुति पूजा करना मोक्ष प्राप्ति का साधन है।

त्वया हृत्वा वामं वपुरपरितृप्तेन मनसा।
शरीरार्धं शम्भोरपरमपिशंके तव हृतम् ॥
यदेतत्त्वद्रूपं सकलमरुणाभं त्रिनयनम्।
कुचाभ्यामानम्रं कुटिलशशिचूडालमकुटम् ॥ 23॥

भावार्थ

हे भगवती! तुमने शिव का वाम अंग तो ले लिया परन्तु तुम्हारा मन उससे तृप् नहीं हुआ। मुझे संदेह है कि दूसरा जो अंग आधा शरीर बाकी है वह भी तुमने ले लिया है। तुम्हारा यह जो रूप सारा लालिमा लिए है और तीन नेत्र तथा स्तनभार से नेत्र अर्द्ध चन्द्र शिर के मुकुट पर लगा हुआ है। इस प्रकार शिव की छवि देख रहा है।

विज्ञान भाष्य

भगवती ने शिव का आधा अंग ले लिया तब अर्द्धनारीश्वर शिव हो गये थे परन्तु आधे अंग के लेने से भगवती तुम्हारा मन भरा नहीं था। इससे सन्देह होता है कि अवशेष जो आधा शरीर शिव का रह गया था वह भी तुमने ले लिया है, क्योंकि आधा शरीर लेने पर शिव की एक आंख एक स्तन आधा शरीर स्वेतवर्ण अर्द्धचन्द्र जटाजूट में रहा अब उस मूर्ति को सारि अरुण और त्रिनेत्र दो स्तनों से नम्र देह तिरछीं रीति से और अर्द्धचन्द्र पहले इसका अर्द्धांश था अब पूर्ण अर्द्ध अष्टमी का चन्द्रमा इन चिन्हों से यह ज्ञात हो रहा है कि शिव की सारी मूर्ति को तुमने अपनी मूर्ति में मिला दिया। उत्तर कौल का भी यही सिद्धान्त है शिव शक्ति में ही नित्य रहते हैं। वस्तुतः जिसकी तीव्र भावना जिस पर होती है उसका वही स्वरूप हो जाता है यथा "भावितं तीव्र वेगेन वस्तु यन्निश्चयात्मना युतान् तद्धि भवेत् शीघ्रं ज्ञेयं भ्रमरकीटवत्" जैसे भ्रमर कीट को पकड़कर लाता है वह कीट भ्रमर पर टकटकी लगाकर एक तार से देखता रहता है थोड़े समय में कीट भ्रमर के स्वरूप को अपना स्वरूप बना लेता है। उसी तरह श्रीयन्त्र में 5 योनि हैं दो भगवति ने पहले ले ली हैं शेष 4 शिव की लेकर श्रीचक्र नव योनि का भगवती का बन गया।

'शरीरांर्द्धशम्भोरपिमपरशंकेतवहृतम्' इस पद से स्पष्ट हो रहा है कि श्रीकष्ठ के ऊर्द्धमुखी 4 त्रिकोण को लेने से भगवती की श्रीयन्त्र रूपी, सम्पूर्ण एक मूर्ति बन गई तथा मोक्षकला का अनुभव होने पर साधक का अब द्वैताभास लय हो जाता है उसकी एक मात्र ब्रह्मदृष्टि हो जाती है उसे शिवशक्ति में भिन्नता प्रतीत नहीं होती है यथा तन्त्र शास्त्र में पूर्णाभिषिक्त साधक के प्रसंग में आता है जब महाषोड़ा न्यास आदि से उसे देवत्व प्राप्ति हो जाती है तब उसकी भावना "एवं चित्ताम्बुजे ध्यायेदर्धनारीश्वरं शिवमपुरुषं वा स्मरेद्देवीं स्त्रीरूपं वा महेश्वरीम" अथवा "निष्कलं ध्यायेत् सच्चिादानन्दलक्षणम् सर्वतेजोमयं ध्यायेत् सचराचर विग्रहम् साधना सम्पन्न साधक उस सच्चिदानन्दमयी को पुरुषरूप में ध्यान करें चाहे स्त्रीरूप में ध्यान करें अथवा निष्कल कलना रहित सच्चिदानन्द लक्षण से जो बोध होता है उसका ध्यान करे या सर्ब तेजोमय प्रकाशमयी मूर्ति का ध्यान करें इनमें से जिस भावना का भी ध्यान करे उन सबका एक ही ब्रह्मानन्द से तात्पर्य है।

"सकलमरुणाभं" से हृदय पद्म में अरुणा के प्रकाश से तात्पर्य है "कुचाभ्यामानम्रं कुटिल शशिचूड़ा" भगवती के तीन बिन्दु त्रिकोण के द्योतक है शशिचूड़ा से साधक को ब्रह्मरन्ध्र से निष्पन्दित अमृत का पान तथा उपासना योग्य हिमवत् प्रदेश का निर्देश किया गया है परम शान्ति प्राप्ति का संकेत शिर में चन्द्र चूड़ा से है। प्रायः परम शान्ति गिरि गुफाओं में योगी को मिलती है।

इस श्लोक में भक्ति की पराकाष्ठा दिखाई है, भक्ति की पराकाष्ठा वही है कि तन्मयभक्त होकर साधना कर हनुमान जी ने भगवान् राम की भक्ति में अपना परिचय दिया देह बुध्याचदासोहंजीववुध्या त्वदंशकः। आत्मबुद्धयात्वमेवाहमितिमे निश्चलामतिः" अर्थात् आत्मबुद्धि से यह ही निश्चय किया है कि मैं राम ही हूं।

जगत्सूते धाता हरिरवति रुद्रः क्षपयते।
तिरस्कुर्वन्नेतत्स्वमपिवपुराशस्तिरयति ॥

सदा पूर्वः सर्वं तदिदमनुग्रह्णाति च शिव-
स्तवाज्ञामालम्ब्य क्षणचलितयोर्भ्रूलतिकयोः ॥ 24॥

भावार्थ

ब्रह्मा सृष्टि की रचना करता है, विष्णु पालन, रुद्र संहार, इस क्रम को तिरस्कार करते हुए रुद्र स्वयं तिरोधान हो जाते हैं; सदाशिव तुम्हारी भ्रूलता के चलने से तुम्हारी आज्ञा लेकर इस सब को अपने में धारण कर लेते हैं।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि भगवती के क्षण भर में भ्रूपंक्तियों के हिलते ही सृजन, पालन, संहार क्रिया होकर सब पीछे शिव तत्व में मिल जाती है, इस तरह भ्रूलतिका के चलने से सारा सृष्टि क्रम ऐसा घूमता रहता है। शाम्भवदीपिका में लिखा हैः-

सृष्टिस्थित्ययः संसारविधानानुग्रहात्मकम् ।
कृत्यं पञ्च विधेयस्य तं नमः शाश्वतं शिवे॥

सृजन, पालन, संहार, तिरोधान, अनुग्रह ये पांच कर्म जिसमें हैं उस शिव को नमस्कार करता हूं आज्ञा चक्र में यह सिद्धि है, आज्ञा चक्र में भगवती के दो चरण हैं, यहां दो नेत्र हैं। इस चक्र का नाम आज्ञा चक्र इसलिए है कि इसी स्थान पर भगवती को सिद्ध करने से उसकी आज्ञा सारे कार्यों पर चलती है "इहस्थाने चित्तं निरवधि निधायात्तपधनो, यदिक्रुद्धयोगिचलयति समस्तं त्रिभुवनम्। न च ब्रह्मा विष्णु हर रवि न वै शीतकिरणः त्वदीयं सामर्थ्य शमयितुमलं नापि गणपः" इस स्थान में जिसका चित्त निरवधि निरन्तर लय हो जाय उसकी सामर्थ्य त्रिभुवन को हिलाने वाली हो जाती है। ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता कोई भी उसकी सामर्थ्य को रोक नहीं सकते।

त्रयाणां देवनां त्रिगुणजनितानां तव शिवे ।
भवेत् पूजा पूजा तव चरणयोर्या विरचिता॥

तथा हि त्वत्पादोद्वहनमणिपीठस्य निकटे।
स्थिता ह्येते शश्वन्मुकुलितकरोत्तंसमकुटाः॥ 25

भावार्थ

हे शिवे तुम्हारे चरणों की जो पूजा रची गई है वह पूजा तुम्हारे तीनों गुणों (सत्वरजतम) से उत्पन्न हुए तीनों देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र) की भी पूजा हो जाती है। तुम्हारी चरणवाहिनी मणि पीठ के समीप ये तीनों देवता निरन्तर हाथ बांध कर तुम्हारे चरणों में मुकुट को झुका कर खड़े हुए रहते हैं।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में यह भाव दिखाया है कि निर्गुण की उपासना से सगुण की भी उपासना हो जाती है अतः गुणत्रय अन्त में निर्गुण सत्ता में समाविष्ठ हो जाते हैं। तीन गुणों का प्रादुर्भाव अव्यक्त बिन्दु से होता है और पीछे उसी में लय हो जाते हैं। उपनिषद् में आता है ''योहवास्य राजसोंशः सासोयं बह्मा'' अर्थात् रजोंश से ब्रह्मा, सत्वांस से विष्णु, तमस से रुद्र त्रिगुणों से ये तीन देवता क्रम से सृष्टि, पालन, संहार करने वाले उत्पन्न होते हैं। इनसे ही स्थावर जंगम सारी सृष्टि उत्पन्न होती है। भगवती के चरणों में ये तीनों देवता हाथ जोड़कर मस्तक नवाकर खड़े रहते हैं। भगवती की पूजा से इनकी भी पूजा हो जाती है। आज्ञाचक्र द्विदल में साधक का ध्यान करने से अग्नि के कणों को देखता है वहां से ही त्रिगुणात्मक प्रपञ्च का विस्तार होता है। उससे ब्राह्मी वैष्णवी और रौद्री शक्तियां अनुकूल हो जाती हैं।

इसके 24 श्लोक में जगतसूते धाता इत्यादि से त्रिगुणात्मिक सृष्टि का विस्तार और प्रत्येक गुण के देवता बताकर अन्त में सबका सदाशिव तत्व (गुणातीत) में इच्छाशक्ति द्वारा समावेश होना बताया है। इस पर सगुण की पूजा साक्षात रूप से नहीं विदित होती है। देहाध्यास के रहते सगुण पूजा कल्याणदायी है। इस श्लोक में यह बताया है कि इन तीनों गुणों का

प्रादुर्भाव उसी गुणातीत शिवतत्व में इच्छाशक्ति द्वारा होता है, अतः शिवतत्वात्मिक इच्छाशक्ति रूपा भगवती के पूजन करने से त्रिगुणजन्य ब्रह्मादिका भी उसी में पूजन हो जाता है। वे ब्रह्मादि देवता भी अञ्जली बांधा कर भगवती के मणिद्वीप रूपी पीठ में ही है, कुण्डलनी योग द्वारा मणिपीठ सहस्त्रदल कमल में हैं। यहां पर ही सब प्रपञ्च उस अनन्त निर्विकार गुणातीत अव्यक्त बिन्दु में लय हो जाते हैं। मूल श्लोक में पूजा शब्द आया है पूजा दो प्रकार की होती है। अन्तरंग पूजन, वहिरंग पूजन। अन्तरंग पूजन षट चक्रों में उन 2 देवता और शक्तियों का मानसिक पूजन जो जिस चक्र में है और अन्त में ब्रह्मरन्ध्र गुणातीत में सबको लय कर देना है। वहिरंग पूजा षोडष उपचार से मन्त्र द्वारा पूजन, हवन, स्तोत्र, पाठ आदि जैसी विधि है।

विरिञ्चिः पञ्चत्वं व्रजति हरिराप्नोति विरतिम्।
विनाशः कीनाशो भजति धनदो याति निधनम्॥
वितन्द्री माहेन्द्री विततिरपि संमीलति दृशाम्।
महासंहारेऽस्मिन् विहरति सती त्वत्पतिरसौ॥ 26॥

भावार्थ

हे सति, हे पतिव्रते, इस महाप्रलय में ब्रह्मा मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं, विष्णु भी प्राण त्याग कर देते हैं, यम का नाश हो जाता है, कुबेर परलोक चला जाता है, इन्द्र भी नित्य के लिए नेत्र बन्द कर लेता है (परन्तु) यह तुम्हारे पति विहार करते रहते हैं।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में भगवति का सम्बोधन सति शब्द से कर शिव को मृत्युपाश से मुक्त बताकर सति धर्म (पातिव्रत) का महात्म्य दिखाया है। महाप्रलय में ब्रह्मा, विष्णु, यम, कुबेर, इन्द्र इन सबके नष्ट होने का अवसर दिखाकर केवल एक शिव का उस समय में जीवित रहना यह सती का प्रभाव है। इस सतित्व धर्म को देवताओं में अनन्तर भारतवर्ष की

देवियों ने अपनाया था। जिस देश-जाति में सतीत्व धर्म है वहां वैधव्य दुःख नहीं होता है। सावित्री विवाह के पूर्व सती धर्म के माहात्म्य को जानती थी नारद जी सत्यवान की अल्पायु के कारण सावित्री के पिता को सत्यवान के साथ सम्बन्ध कराने से रोक रहे थे परन्तु सावित्री का सती धर्म पर पूर्ण विश्वास था कि किसी भी सती स्त्री को पति वियोग नहीं हो सकता है, इस पर उसने माता-पिता के निवारण करने पर भी सत्यवान के साथ (जिसे पहले उसके पिता ने कन्या देने का संकल्प किया था) उसी को निश्चय कर सत्यवान से ही विवाह किया, सतीत्व धर्म का प्रभाव था कि मृत्यु के राजा यम ने लाचार होकर उस सती के पति को मृत्यु पाश से मुक्त कर दिया। भगवती सीता, सुकन्या, अरुन्धती आदि कितनी ही आदर्श सतियों का वर्णन शास्त्रों में आया हैः जिनके सतीत्व से उनके पति दीर्घायु रहे। भारतवर्ष में स्त्रियों को शक्ति कहते हैं। इनमें सतीत्व की शक्ति होने से से अबला नहीं कही जाती हैं भारत की सतियों को शक्ति कहते थे, ये देवियां सभी श्री विद्या की उपासना करती थीं। श्री विद्या की उपासना से ही षोड़स श्रृंगार है जिन्होंने षोडशी को सिद्ध किया है उनमें षोडश नित्यलाओं के विकास से वे सौभाग्यशालिनी पति पुत्रवती बनी रहती हैं। चूड़ाला राजपुत्री जिसका वर्ण़न योग वाशिष्ट में आया है यह उस परम सती का चमत्कार था कि विषयग्रस्त अपने पति को आत्मनिष्ठ धार्मिक बना कर दीर्घायु किया। एक सती का इतिहास है ''सुतं पतन्तं प्रसमीक्ष्य पावके नवोधयामास पतिं पतिव्रता, पतिवृत्ताशाप भयेनपीडितो हुताशनश्चंदनपंकशीतलः

वस्तुतः भगवती सती की उपासना जो कन्या करती है वह कभी विध ावा नहीं हो सकती। जो जिसकी उपासना मन से करता है उसमें उस उपास्य देव की शक्तियों का विकास हो जाता है जैसा पूर्व श्लोकों में बता चुके हैं। जिस स्त्री ने श्री विद्या की उपासना की हो उसमें भगवती सती का प्रभाव होने से उसका पति शिव की तरह मृत्यु के पाश में नहीं फंस सकता है इसलिये मूल श्लोक में कहा है भगवती तुम सती हो इसलिए

महाप्रलय में ब्रह्मा विष्णु के अन्त होने पर भी तुम्हारे पति सदाशिव विहार करते रहते हैं अर्थात् शिवतत्व नित्य अपने स्वरूप में रहता है। त्रिगुणात्मक संसार उत्पत्ति और विनाशी है।

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचना
गतिः प्रादक्षिण्यक्रमणमशनाद्याहुतिविधिः
प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदशा
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम्॥ 27॥

भावार्थ

हे देवि जो मेरा विलास है वह तुम्हारी पूजा हो, भाषण जप हो, सारा शिल्प हस्त व्यापार हाथ की चेष्टा तुम्हारी मुद्रा की रचना हो स्वेच्छा, चलना तुम्हारी प्रदक्षिणा का क्रम हो भोजन हवन की आहुति हों, शयन या नीचे लेटना तुम्हारे लिये प्रणाम हो सारा सुख शयन आदि यह आत्मसमर्पण रूप हो।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में यह दिखाया है। उपासक का सारा जीवन षोड़ान्यासादि करने से भगवती की उपासना रूप हो जाता है उसकी देह की सम्पूर्ण क्रियाओं में पूजा है उपासक को प्रतीति होती है उसको सर्वत्र भगवती दीख पड़ती है उसके जीवन के अन्तर्वाह्य सब क्रियायें पूजा रूप हो जाती हैं। वह आत्मक्रीड़ा आत्मरति हो जाता है उसको सारे शरीर में भगवती ही दीख पड़ती है। "जिस देखूं तित तोही" यह दशा हो जाती है सच्चा पुजारी वही है। उसका चलना, बोलना, भोजन, शयन सब पूजा है। जो श्री चक्र का पूजन साधारणतः वाह्य पूजा या उच्च पूजन अन्तर्पूजा करता है, वह जीवन मुक्त हो जाता है जैसे भावनोपनिषद् में कहा है "स्वयं तत्पादुका निमज्जनं परिपूर्णध्यानं एवं मुहूर्तत्रयं भावना परो जीवन्मुक्तो भवति, तस्य देवतात्मैक्य सिद्धिः चिन्तित कार्यान्ययत्नेन सिध्यन्ति स एव शिवयोगीति कथ्यते।" "कादिहादि मतोक्तेन भावना प्रतिपादिता जीवन्

मुक्तोभवति।'' उपासक भगवती के पादुकारूपी आज्ञाचक्र में मन को निमग्न कर इस प्रकार तीन मुहूर्त भी ध्यान करे तो जीवन मुक्त होता है। उसका देवता के साथ ऐक्यभाव हो जाता है। वह जिस काम की चिन्तना करता है वह काम सिद्ध हो जाता है उसको शिवयोगी भी कहते हैं। कादि विद्या हादि विद्या से उपासना द्वारा जीवन मुक्त हो जाता है। यद्वा अन्यत्र कहा भी है कि शिवयोगी के सम्पूर्ण कर्म पूजारूपी है। यथा-

आत्मात्वं गिरिजापतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहम्।
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रासमाधिस्थितिः॥
संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिस्तोत्राणि सर्वागिरः।
यद्यद्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥

इस श्लोक में श्रीविद्या की उपासना तथा सिद्ध-साधक की स्थिति का वर्णन है। उसकी देह के जो स्पन्दन होते हैं वे सब भगवद्‌भजनरूपी कर्म होते हैं। वह आत्मक्रीड़ा आत्मरति क्रियावान् ''एष ब्रह्म विदां वरिष्ठः'' वह ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हो जाता है उस पर देह के स्पन्दनों को कोई पुण्य-पाप स्पर्श नहीं कर सकता है। ''तीर्थे स्वपचगृहे वा नष्टस्मृतिरपि त्यजन्देहं ज्ञानसमकाल दग्धः, कैवल्यं याति हतशोकः'', तीर्थ हो या चाण्डालगृह हो, चाहे स्मृति रहे या नष्ट हो जावे ज्ञान की अग्नि का जिसके अन्दर विकास हो गया है वह सब शोकों को पार करके ब्रह्ममय हो जाता है। इस श्लोक में जप शब्द आया है। अर्थात् श्रीविद्या के जप करने से ही साधक को सर्वसिद्धि प्राप्त हो जाती है। जप तीन प्रकार से होता है। मानसिक, उपांशु और वाचनिक भेद से कहा है।

तन्त्रशास्त्र में लिखा है कि जो जप मुख से उच्चारण किया जाता है वह निष्फल है और जो स्तोत्र मुख से न उच्चारण किया जाय वह भी निष्फल है। इसलिए मनु भगवान ने कहा है- ''जप्ये नैव तु संसिद्धेत् ब्राह्मणो नात्र शंसयः'' अर्थात् ब्राह्मण को जप से ही सिद्धि प्राप्त होती है। जप के विषय में शास्त्रों में वर्णन आया है-

मानसिक, वाचिक भेद से दो प्रकार का है। मानसिक मन से उस भाव का चिन्तन, वाचिक तीन प्रकार से प्रधानतया कहा गया है- (1) वाचिक (2) उपांशु (3) मानसिक।

यथा पुराणे-

जपस्यादक्षरावृत्तिः वाचिकोपांशुमानसः।
य उच्चनीचस्वरितैः शब्दैः स्पष्टदशाक्षरैः॥

मंत्रमुच्चारयेत् वाचा वाचिकः स जपःस्मृतः।
शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्ठौच चालयेत्॥

किञ्चिच्छवण योग्यस्यादुपांशुः स जपःस्मृतः।
जिह्वाजप स विज्ञेयः केवलं जिह्वयाजपः।
धिया यदक्षारश्रेणीपदवर्णस्वरात्मिकाम्॥

उच्चरेदर्थसंस्मृत्या स उक्तः मानसो जपः।
उच्चैर्जपोविशिष्टस्याद्यज्ञादि दशभिर्गुणैः॥

उपांशुःस्यात् शतगुणः सहस्रो मानसत्स्मृतः।

नारदे :-

वाचिकाः सर्वकार्येषु उपांशुःसर्वसिद्धिषु।
मानसः मोक्षकार्येषु ध्यायेदेवं च सर्वदा॥

तन्त्रे

मनसा यज्जपेत्स्तोत्रं वचसा यज्जपं क्षतं, तन्निस्फलमिति॥

मुद्रा-मुदं रातीति मुद्रा! मुद्राओं का बहुत बड़ा विस्तार है-

''महामुद्रा नभोमुद्रा ओंड्याणेच जलन्धरं। मूलवन्धं च यो वेत्ति स योगी मुक्तिभाजनः''। महामुद्रा आकाश मुद्रा ओड्याण बंध, जलंधर, वन्ध, मूलबन्ध जो जानता है वह मोक्ष का अधिकारी है। महामुद्रा का लक्षण- ''वक्षोभ्यस्त हनु प्रपीड्य सुचिरं योनिं च वामांघ्रिणा। हस्ताभ्यामनुधारयन्

प्रसरितं पादं तथा दक्षिणं॥ आपूर्यश्वसनेन कुक्षियुगलं लब्ध्वा शनैः रेचयेत्। सेयं व्याधि विनासिनी सुमहती मुद्रानृणां कथ्यते'' एड़ी को छाती पर लगा दे वायें पैर के तलुवे की एड़ी को योनि स्थान में दवा दे उसी के ऊपर दाहिनी एड़ी रखें दोनों हाथों को खोलकर ऊपर से दबा रखे तीनों ओर से क्रमशः स्वास खींचे, तब शनैः शनैः रेचक करे महामुद्रा के अभ्यास से सब रोग दूर होते हैं। ''तस्य रोगाः क्षयं यान्ति महामुद्रां तु योऽभ्यसेत्'' पूजा में आवाहनी मुद्रा, स्थापनी, सम्मुखी करणी धेनु अमृती करणी महामुद्रादि प्रायः काम में आती है बत्तीस मुद्रा जप की सम्मुख, सम्पुट, वितत, विस्तृत, द्विमुख, त्रिमुख आदि है। शङ्ख चक्रादि इक्कीश मुद्रा विष्णु मुद्रा हैं।

दश शैवी मुद्रा हैं लिंग मुद्रा, योनि मुद्रा, त्रिशूल मुद्रादि।

तन्त्रराज और वामकेश्वर तन्त्र में शक्तिमुद्राओं का वर्णन त्रिखण्डामुद्रा, सर्वसंक्षोभणी, सर्व बिद्राभिणी, सर्वोन्मादकारिणी आदि 36 मुद्रा हैं इनमें खेचरी मुद्रा परमावश्यक है यथा- ''सव्यं दक्षिण देशे तु दक्षिणं सव्यदेश के। बाहुं कृत्वा महादेवि हस्तैः संपरिवर्त्य च। कनिष्ठानामिके देवि व्यत्तानेन क्रमेण तु तर्जनीभ्यां समाक्रान्ते सर्वोर्द्धमपि मध्यमे। अंगुष्ठौ तु महेशानि कारयेत्तु सरलावपि। इयं सा खेचरी नाम्ना मुद्रा सर्वोत्तमा स्मृता॥

प्रदशिक्षणा

> **एकाचण्ड्यां रवौ सप्त तिस्रो दद्याद्विनायके।**
> **चतस्रः केशवे देया शिवस्यार्ध प्रदक्षिणम्॥**

भगवती की 1 प्रदिक्षणा सूर्य की 7 गणेश की 3 विष्णु की 4 शिव की अर्ध प्रदक्षिणा। प्रणाम, अष्टाङ्ग और पञ्चाङ्ग दो प्रकार से होता है।

> **उरसा शिरसा दृष्टया मनसा वचसा तथा।**
> **पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोष्टां गईरितः॥**

> **बाहुभ्यां च सजानुभ्यां शिरसा मनसाधिया।**
> **पञ्चांगकः प्रणामस्यात् सर्वत्र प्रवरा विभो॥**

सपर्या (पूजा) अनिर्माल्य, सनिर्माल्य या (वाह्य पूजा, आभ्यन्तर पूजा) दो प्रकार की है। सन्यासियों को आभ्यान्तर पूजा गृहस्थी को वाह्योपचार का अधिकार है।

परिव्राट् ज्ञानमात्रेण होमदानादिभिर्विना।
सर्वदुःखे पिशाचेभ्यो मुक्तो भवति नान्यथा॥

पुण्यस्त्रियो गृहस्थाच मंगलैर्मगलार्थिनः।
पूजोपकरणैः कुर्युर्दद्युर्दानादिचार्हणम्॥

न गृही ज्ञानमात्रेण परत्रेह च मंगलम्।
प्राप्नोति चंद्रवदने दानहोमादिभिर्विना॥

पूजा पंचविधा प्रोक्ता पाञ्चरात्रादितंत्रके।

अन्तर्पूजा (अन्तर्याग) मानसोपचार से पूजन कुण्डलिनी उत्थान बहिर्पूजा (षोड़शोपचार) अट्ठारह उपचार, पंचोपचार आदि में होती है। 18 उपचार, 1 आसन, 2 आवाहन, 3 अर्घ्य, 4 पाद्य, 5 आचमन, 6 स्नान, 7 वस्त्र, 8 उपवीत, 9 भूषण, 10 गन्ध, 11 पुष्प, 12 धूप, 13 दीप, 14 नैवेद्य, 15 जल, 16 माला सुगन्धित द्रव्य, 17 नमस्कार, 18 विसर्जन षोडशोचार आसन स्वागत पाद्य अर्घ्य आचमन मधुपर्क स्नान वस्त्र भूषण गन्ध पुष्प धूपदीप नैवेद्य प्रणाम दशोपचार पाद्य अर्घ्य आचमन गन्ध पुष्प नैवेद्य धूप दीप प्रणाम- पञ्चोपचार गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य।

आशनम

सर्वसिद्धये व्याघ्रचर्म ज्ञानसिद्धये मृगाजिनम्।

वस्त्रासनं रोगहरं वेत्रजं श्री विवर्धनम्।

कौशेयं पौष्टिकं ज्ञेयं कम्बलं दुःख नाशनम्।

आसन मुख्य आठ प्रकार के हैं स्वस्तिक, गौमुख, पद्म, वीर, सिंहासन, भद्रासन, मुक्तासन और मयूरासन पूजा के लिए पद्मासन सिद्धासन मुख्य हैं।

सुधामप्यास्वाद्य प्रतिभयजरामृत्युहरिणीम्।
विपद्यन्ते विश्वे विधिशतमखाद्यादिविषदः॥
करालं यत्क्ष्वेलं कवलितवतःकालकलना।
न शम्भोस्तन्मूलं तव जननि ताटङ्कमहिमा॥ 28॥

भावार्थ

हे जननी! जरा और मृत्यु भय को दूर करने वाला अमृतपान करने पर भी ब्रह्मा और इन्द्रादि देवता विलय हो जाते हैं। मृत्यु लाने वाले विष पान करने पर भी शिव की मृत्यु नहीं हुई। यह तुम्हारे ताटङ्क सौभाग्यसुषमा जो कान में पहना जाता है) उसकी महिमा है।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में उपासक को आपत्ति से रक्षा और दीर्घायु देने वाले कामबीज के जप का माहात्म्य दिखाया है, देवता अमृतपान करने पर भी अमर न हो सके शिव ने समुद्र मंथन से विष पान किया तिसपर भी अजर अमरत्व को शिव ने प्राप्त किया है। हे भगवति, यह तुम्हारे ताटङ्क की महिमा है ताटङ्क सौभाग्य-भूषण जो सुमङ्कलिरूप विवाह पर वधू को पति के हाथ से पहनाया जाता है। अर्थात् भगवती सती के साथ विवाह होने के कारण शिव अजर अमर है। भारतवर्ष में विवाह समय पर सुमङ्गलिरूप विवाह पर वधू को पति के हाथ से पहनाया जाता है। अर्थात् भगवती सती के साथ विवाह होने के कारण शिव अजर अमर हैं। भारतवर्ष में विवाह समय पर सुमङ्गलिभूषण वधू को विवाह वेदी में पहनाया जाता है जिससे वह सौभाग्यवती रहे।

इस श्लोक का बड़ा गहन अर्थ है इस पर ध्यान देने की बात है एक तो इस आर्य देश की वैज्ञानिक स्थिति की संस्कृति का ज्ञान होगा, दो शब्द प्रायः सब शास्त्रों में आये हैं, योग क्षेम, योग अप्राप्य वस्तु की प्राप्त कराता है क्षेम प्राप्त वस्तु की रक्षा करने को कहते हैं, इस देश में लोग यह जानते थे कि स्त्रियों में सोमकला की अमृत की प्रधानता से क्षमसत्ता

रहती है, इसलिए सब सम्पत्ति अपना शरी तक स्त्रियों की रक्षा में रखते थे। सोमप्रधाना स्त्री कभी वैधव्य दुःख नहीं देखती है वात्स्यायन सूत्रों में इसका वर्णन है।

किरीटं वैरिञ्चं परिहर पुरः कैटभभिदः।
कठोरे कोटीरे स्खलसि जहि जम्भारिमुकुटम्।।

प्रणम्रेष्वेतेषु प्रसभमुपयातस्य भवनम्।
भवस्याभ्युत्थाने तव परिजनोक्तिर्विजयते।। 29।।

भावार्थ

नम्र हुए ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र कैलास में तुम्होर चरण कमलों में स्थित रहते हैं। जब शिव के आते ही अभ्युत्थान के लिये तुम उठकर आगे को दौड़ती हो, उस समय जब देवता तुम्हारे चरणों में प्रणाम करते हैं, देवताओं के मुकुट तुम्हारे पाद तलों में लग कर चूर्ण न हो जायें, उस समय तुम्हारी सखियों का उन देवताओं को सावधान करने के निमित्त जो वाक्य निकलते हैं उस उक्ति की जय हो।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में शङ्कर को देवाधिदेव और स्त्री की उच्चाति उच्च शक्ति होने पर भी पति का आदर करने का निर्देष किया गया है। भगवती के चरणों में किरीट मुकुट धारण कर जब ब्रह्मादि देवता प्रणाम कर रहे थे, उस समय जैसे ही शिव का आगमन भगवती ने सुना तो वैसे ही उठकर महादेव के स्वागत के लिये वेग से जा रही थी। तो द्वारपालिका शक्तियों ने ब्रह्मादि देवताओं को अपने अपने मुकुट सम्हालने के अर्थ निर्देश किया कि कहीं शीघ्रता में तुम्हारे मुकुटों पर पांव न पड़ जायें। इसलिए तुम अपने-अपने मुकुटों की सावधानी से रक्षा करो।

भारतवर्ष में यह सदाचार प्रचलित है कि जब पति घर आवें तो धर्मपत्नी उठ कर उसको अभ्युत्थान द्वारा स्वागत करें। यह दिव्याचार (Divine Courtesy) माना जाता है। यह उन स्त्रियों का आचरण है जो धर्मपत्नी हैं।

इस श्लोक में कितनी सुन्दरता से भगवती की महिमा का वर्णन करते हुए देह सम्बन्ध में पति-पत्नी भाव के सदाचार का वर्णन किया गया है, इन श्लोकों में उच्चकोटि के देव मनुष्यों की संस्कृति और व्यवहार अनुकरणीय है। योगमार्ग में कुल कुण्डलिनी जब शिव तत्व में मिलती है उस सयम व्यवहार शून्य हो जाता है। चेतनाशक्ति के प्रकाश से आरोह अवरोह क्रम से चक्रस्थ देवता और शक्तियों के प्रकाश की सावधानी, साधक को करने का बोध दिया गया है।

स्वदेहोद्भूताभिर्घृणिभिरणिमाऽद्याभिरभितो।
निषेव्ये नित्ये त्वामहमिति सदा भावयति यः।।
किमाश्चर्य तस्य त्रिनयनसमृद्धिं तृणयतो।
महासंवर्ताग्निर्विरचयति नीराजनविधिम्।। 30।।

भावार्थ

अपने शरीर से उत्पन्न हुई रश्मियां-अणिमादि सिद्धियां जिसको नित्य सेवन करती हैं। जो त्रैलोक्य की समृद्धि को तृण के समान समझता है, तुममे अपनी भावना करता है अर्थात् ''अहं ब्रह्मास्मीति'' यह जिसकी भावना हो गई है इसमें आश्चर्य ही क्या है कि श्मशान की प्रज्वलित अग्नि उसके लिये नीराजन करने वाली होती है।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में नवयोन्यात्मक 'श्रीयन्त्रकी' पूजा का चमत्कार अर्थात् आत्मभाव होने का निर्देश है। जो उपासक नित्य श्रीयन्त्र (नवयोन्यात्मक) का आवरण देवताओं के साथ पूजा करते हैं। भूगर्भ या भूप्रस्तार में जो वृत्त है उनमें आठ सिद्धियां हैं यथा- (1) अणिमा, (2) लघिमा, (3) महिमा, (4) वशित्व, (5) ईशत्व, (6) प्राकाम्य, (7) प्राप्ति, (8) सर्वकामप्रदायनी ये आठ सिद्धियां श्री यन्त्र के प्रथम चतुष्कोण में हैं। और आठ-मातृ का- (1) ब्राह्म, (2) माहेश्वरी, (3) कौमारी, (4) वैष्णवी, (5) वाराही, (6)

माहेन्द्री, (7) चामुण्डा और (8) महालक्ष्मी-ये आठ द्वितीय चतुष्कोण में हैं। आगे दश मुद्राएं- (1) सर्व संक्षोभिणी, (2) सर्वविद्राविणि, (3) सर्वाकर्षिणीं (4) सर्ववशंकरि, (5) सर्वोन्मादिनी, (6) सर्व महान्कुशा, (7) सर्वखेचरी, (8) सर्वबीजा, (9) सर्वयोनि और (10) सर्वत्रिखण्डा-ये तीसरे चतुष्कोण में हैं। अब सोलह देवता षोड़श दलों में हैं, -(1) कामाकर्षिणी, (2) बुध्याकर्षणी, (3) अहंकाराकर्षिणी, (4) शब्दाकर्षिणी, (5) स्पर्शाकर्षिणी, (6) रूपाकर्षिणी, (7) रसाकर्षिणी, (8) गन्धाकर्षिणी, (9) चित्ताकर्षिणी, (10) धैर्य्याकर्षिणी, (11) स्मृत्याकर्षिणी, (12) नामाकर्षिणी, (13) बीजाकर्षिणी (14) आत्माकर्षिणी (15) अमृताकर्षिणी और (16) शरीराकर्षिणी-ये 16 कमलों में आवरण देवता भ्रूप्रस्तार यन्त्र में पूजे जाते हैं। अब आठ देवता- (1) अनङ्गकुसुमा, (2) अनङ्गमेखला, (3) अनंगमदना, (4) अनंग मदनातुरा, (5) अनंगरेखा, (6) अनंगवेगिनी, (7) अनंग अंकुशा, (8) अनंग मालिनी-ये अष्ट दल में पूजने योग्य वहां के अधिष्ठात्री देवता है। अब 14 देवता चतुर्दशार में 1- सर्व संक्षोभिणी, 2 सर्वविद्राविणी, 3 सर्वाकर्षिणी, 4 सर्वाल्हादिनी, 5 सर्वसंमोहिनी, 6 सर्वस्तम्भिनी, 7 सर्वाजृम्भिणी, 8 सर्ववंशकरी, 9 सर्वरञ्जनी, 10 सर्वोन्मादिनी, 11 सर्वार्थसाधिनी, 12 सर्वसम्पत्तिपूरणी, 13 सर्वमन्त्रमयी और 14 सर्वद्वन्दक्षयंकरी 14 यह चतुर्दसार में आवरण देवता पूजे जाते हैं। अब बहिर्दशार में पूजे जाने वाले देवता के नाम ये हैं -1 सर्वसिद्धिप्रदा, 2 सर्वसम्पत्प्रदा, 3 सर्वप्रियंकरी 4 सर्वमङ्गलकारिणी, 5 सर्वकामप्रदा, 6 सर्वसौभाग्यदायिनी, 6 सर्वमृत्युप्रशमनी, 8 सर्वविघ्ननिवारिणी, 9 सर्वाङ्गसुन्दरी और सर्वदुःखविमोचिनी ये बहिर्दशार में हैं। अब अन्तर्दशार में -1 सर्वज्ञाना, 2 सर्वशक्ति, 3 सर्वेश्वर्यप्रदायिनी, 4 सर्वज्ञानमयी, 5 सर्वव्याधिविनाशिनी, 6 सर्वाधार स्वरूपा, 7 सर्वपापहरा, 8 सर्वानन्दमयी, 9 सर्वरक्षास्वरूपिणी, 10 सर्वेप्सितफलप्रदायिनी ये अन्तर्दशार के अ वर्ग देवता हैं। अब आठ कोण के 8 देवता -1 वशिनी, 3 कामेशी, 3 मोदिनी, 4 विमला, 5 अरुणा, 6 जयिनी, 7 सर्वेशी, 8 कौलिनी ये अष्टकोण में पूजने योग्य हैं। अब त्रिकोण में तीन देवता कामेश्वरी-बज्रेश्वरी-भगमाला ये त्रिकोण में पूजनीय हैं। और बीच में त्रिपुर सुन्दरी का पूजन होता है।

ये भगवती की रश्मियां हैं जिनका वर्णन 14 वें श्लोक में किया गया है। ये योगिनी देवी के स्वरूप वाली हैं।

इस प्रकार जो त्रिपुर सुन्दरी की उपासना से सिद्धि प्राप्त कर लेता है उसको आत्म साक्षात्कार अर्थात् उसको शिवत्व की प्राप्ति हो जाती है। इसमें आश्चर्य ही क्या है। ''त्रिनयन समृद्धिं'' अर्थात् त्रैलोक्य की विभूति को वह तृणवत् समझता है। और वह जो महाप्रलय की चितारूपी प्रलयाग्नि है वह उसके लिए नीराजन अर्थात् (आरती) की विधिमात्र है अर्थात् वह साक्षात् शिवरूप हो जाता है। इस श्लोक में 'प्रणव' ओंकार बीज निकलता है। ''तृणयतो'' से ''ओ'' और ''विधि'' से अनुस्वार है। भगवती षोड़शी का उपासक ब्रह्म साक्षात्कार 'अहं ब्रह्मास्मि' तीन लोक की विभूति को तुच्छ समझता है अर्थात् उसे पूर्ण त्याग हो जाता है। वह अजर अमर ब्रह्मभाव प्राप्त कर चिताग्नि भी उसका नीराजन करती है। अर्थात् वह मृत्यु के पास से छूट जाता है।

चतुःषष्ट्या तन्त्रैः सकल मतिसन्धाय भुवनम्।
स्थितस्तत्तत्सिद्धि प्रसवपरतन्त्रैः पशुपतिः।।
पुनस्त्वन्निर्वन्धादखिलपुरुषार्थैकघटना-
स्वतंत्रन्ते तंत्रं क्षितितलमवातीतरदिदम्।। 31।।

भावार्थ

पशुपति ने चतुषष्टि तन्त्रों से चतुर्दश भुवन को सम्पन्न किया उनकी सिद्धि पृथक्-पृथक् जाति के तन्त्र में रखी है। पुनः तुम्हारे अनुरोध करने से सम्पूर्ण पुरुषार्थ (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) जिस एक ही तन्त्र से सिद्ध हो वह स्वतन्त्र तुम्हारा वह तन्त्र पृथ्वी में प्रकट किया है।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में पशुपति शब्द आया है। शैवागम और पाशुपत शास्त्र में आठ प्रकार के पाश बताये हैं। उनसे जब तक छुटकारा न हो तब तक पाश में वद्ध होने से पशु संज्ञा होती है वेदों में और आगम में पशु शब्द

का कितने ही स्थानों पर प्रयोग आया है। घृणा लज्जा ++++ ''अष्टौ पाशा प्रकीर्तिताः पाश बद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः'' ''पशूनांपतिं पावनं पावनानाम्'' प्रायः शिव के नाम में पशुपति शब्द आता है अर्थात् जन्म मरणरूपी पाश के छुटाने वाले इस प्रकरण में जब तक उपासना द्वारा दैवी शक्ति का विकास न हो तब तक मनुष्य पशु है। अन्यत्र कहा भी है- 'भोजन, शयन, भय, गृहस्थ ये भाव तो पशु में भी हैं केवल भोगात्मक जीवन मनुष्य का पशु जीवन है। ''धर्मो हि तेषामधिको विशेषः धर्मेण हीना पशुभिः समानाः'' एक मात्र धर्म की ही एक विशेष भावना मानुष्य में मनुष्यत्व कहलाने की है। धर्म न होने से वह मनुष्याकृति होने पर भी पशु समान है। चतुषष्ठि तन्त्रों में षट्कर्म की सिद्धियां होने से यह भ्रम होता है कि यह एक प्रकार अविद्या जाल का विस्तार है। सिद्धियां भोगात्मक जीवन के बन्धन को देने वाली होती है। तन्त्र सिद्धि से भोगों की ओर ही झुकाव होता है। यह धारणा भ्रमात्मक है यतः पशुपति ने संसार के कल्याणार्थ इस विद्या का आविष्कार किया है। उपासना से मनुष्यों में देवत्व तथा शान्ति की प्राप्ति का साधन है। उपासना का क्रम आदि काल से अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ से ही है। यथा गीता-

''सह यज्ञाः प्रजा सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेषवोस्तिवष्ट कामधुक्।।

यज्ञ (उपासना) के साथ साथ ब्रह्म ने सृष्टि की रचना की है और यह आदेश किया की इस यज्ञ कर्म के साथ संसार को चलाओ यह तुम्हारे अभिलाष को दुहने वाली उपासना रूपी कमधेनु है, जो इच्छा हो इससे सफल हो जायगी। तन्त्र शास्त्र में भगवती की उपासना, दक्षिण, वाम, मिश्र तीन तरह से वर्णित की है। इस सब उपासनाओं के अर्थ का पर्यवसान अन्तर्याग में है, उपासना के मार्गों का विधान जाति, देश, काल, अवस्था, संकल्प पर निर्भन है। यह भेद त्रिगुणात्मक उपासना परक है। गुणातीत में भेद नहीं है। ''स्वतन्त्रं ते तन्त्रं'' से गुणातीत मोक्ष प्रतिपाद्य श्री विद्या की उपासना से तात्पर्य है। जो स्व (आत्मा) उसका (तन्त्र) विध

ान मोक्ष का प्रतिपादन करता है। पूर्व भाष्यकारों ने स्वतन्त्र से भिन्न अर्थ किये हैं, किसी ने वामकेश्वर तन्त्र किसी ने कुलार्णव इत्यादि परन्तु वस्तुतः भगवती के अनुरोध से जो सब के अन्त में शिव ने पृथ्वीतल पर जिस तन्त्र को प्रकट किया है वह आत्म दर्शन रूपी श्री विद्या का तन्त्र श्रेय (मोक्ष) प्रधान है। जैसा कि हादि विद्या में आया है। जो जो तन्त्र शिव ने संसार में प्रकट किये हैं उन 64 तन्त्रों के नाम ये हैं- ''महामाया, योगिनी जाल सम्वरण, तत्व सम्वरण, सिद्धभैरव, वटुक भैरव, कङ्काल भैरव, काल भैरव, कालाग्नि भैरव योगिनी भैरव महाभैरव, शक्ति भैरव इनमें आठ भैरव तन्त्रों में कापालिक सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन है। जिसमें भूमि में छिपे हुये धन का पता लगाने की विधि पूर्णतया लिखी है। ब्रह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा शिवदूती, इन आठ तन्त्रों में आठ शक्तियों का वर्णन तथा श्री विद्या की उपासना और उसके तत्व के संबंध में सब रहस्य दिखाया है।

ब्रह्मयामल, विष्णुयामल, रुद्रयामल लक्ष्मीयामल, उमायामल, स्कन्दयामल, गणेशयामल, जयद्रथयामल इन आठ यामलों में काम्य अनुष्ठानों का विशदीकरण है। चन्द्रज्ञान, इसमें षोड़श नित्याओं का वर्णन है। भेरुण्डा भगमालिनी शिवदूती आदि। 29 मालिनी विद्या, 30 महा सम्मोहन, 31 वामजुष्टा, 32 महादेव, 33 बातुला, 34 वातुलोत्तरा, 35 कामिका, 36 हृदयभेद तन्त्र, 37 तन्त्र भेद, 39 गुह्य तन्त्र, 39 विनाख्या, 44 तारोत्तला, 45 तरोत्तलोत्तरा, 46 पञ्चामृत, 47 रूपभेद, 48 भूतोड्डामर, 49 कुलसारा, 50 कुलोद्दिशा, 51 कुल चूड़ामणि, 52 सर्वज्ञानोत्तरा, 53 विकुण्ठेश्वर, 54 अरुणेश्वर, 55 मोदिनीशा, 56 विकुण्ठेश्वर, 57 पूर्वाम्नाय, 58 पश्चिमाम्नाय, 59 दक्षिणाम्नाय, 60 उत्तराम्नाय, 61 निरुत्तराम्नाय 62 विमलोत्तरा, 64 देवीमाता, अन्तिममाता तन्त्रों में जो तन्त्र है उनको जैनधर्म ने भी अपनाया है। इन 64 तन्त्रों के नाम वामकेश्वर तन्त्र में हैं। सामयिक लोग शुभागम पश्चक और वशिष्ठ संहिता, सुख संहितादि पांच संहिताओं का भी निर्देश करते हैं। ''स्वतंत्रं तेतन्त्रं'' यह स्वतंत्र तन्त्र सब

तंत्रों के अनन्तर पृथ्वीतल में शिव ने प्रकट किया है। भोगों को असार दुःख रूप अनुभव कर अन्त में वैराग्य हो जाता है। आत्म ज्ञान केवल आत्म ज्ञान है। इसी की प्राप्ति के लिये मनुष्य जन्म है; भोगादि तो पशु योनियों में भी है परन्तु मोक्ष ही एक मात्र मानव संसार का ध्येय है। स्वतंत्र शब्द से किसी ने वामकेश्वर तंत्रादि पृथक पृथक तंत्र बनाये हैं, परन्तु इस श्लोक में इदं ते स्वतन्त्र तन्त्र में इदम् शब्द से श्रीविद्या के तंत्र से ही तात्पर्य है अखिल पुरुषार्थ की घटना श्रीविद्या से ही होती है जो अग्रिम 'शिवः शक्ति कामः' इस श्लोक से दिखाई है।

शिवः शक्तिः कामः क्षिति रथ रविः शीत किरण
स्मरोहंसः शक्रस्तदनु च परा मारहरयः
अमी हृल्लेखाभिस्तिसृभिरवसानेषु घटिता।
भजन्ते वर्णास्ते तव जननि नामावयवताम्।। 32।।

भावार्थ

हे जननि? तीन खण्डों के अन्तिम में हृल्लेखा बीज के संयोग से ये वर्णन शिव (ह) शक्ति (स) काम (क) क्षिति (ल) रवि (ह) शीत किरण (स) स्मर (क) हंस (ह) शक्र (ल) पर (स) मार (क) हरि (ल) तुम्हारे मन्त्रमय शरीर के अवयव रूप हैं।

"पूर्व श्लोक में जो स्वतंत्रं ते तन्त्रं" से निर्देश किया गया है। वही षोड़शी विद्या (श्री विद्या) जिसके लिए विद्ययामृतमश्नुते उपनिषद् में बताया है, उसी का वर्णन है जो विद्याशिव इस शब्द से भगवत पाद ने प्रारम्भ की है, इस ग्रन्थ का प्रारम्भ भी शिव शब्द से ही हुआ है यथा "शिव शक्त्या युक्तः और भक्ति योग दर्शक शक्ति का शिवतन्त्र में पिघल जाना भी 51 श्लोक में शिवे "श्रृङ्गाराद्री" शिव शब्द से द्रष्ट वर्णन में दिखाया है, इत्यादि स्थलों पर विचार और ध्यान लगाने से यह निष्कर्ष निकलता है कि भगवत पाद का सौन्दर्य लहरी में मोक्ष प्रति पाद्य श्रीविद्या की उपासना से तात्पर्य है। जो स्वतंत्रं ते तन्त्रं से तात्पर्य है। भगवति के

मन्त्रमय सूक्ष्म मूर्ति का वर्णन श्लोक के तीन खण्डों में प्रदर्शित किया है, शिव (क) शक्ति (इ) काम (ए) क्षिति (ल) यह प्रथम खण्ड हुआ। क ए इ ल। तृतीय खण्ड में रवि (ह) शीतकिरण (स) मरा (क) हरि (ल) स क ल ह्रीं प्रत्येक खण्ड में हल्लेखा ह्रीं लगाने से पञ्चदशाक्षरी विद्या हो गई इसमें रमाबीज श्री लगाने से यही पञ्चदशाक्षरी षोड़षी के रूप में हो जाती है। षोड़श नित्याओं का ज्ञान भी यहीं से हो जाता है।

सहस्रदल में जो चन्द्रकला है उसे पराकला या शुद्ध ज्ञान कला कहते हैं। सहस्रदल से चन्द्रमा कि किरणें विशुद्ध चक्र में प्रकाशित होती हैं वहीं षोडशदलों में षोडश नित्या है, यही 15 कलाओं का मौलिक निदान है पञ्चदश कलाओं में रमाबीज (स् र् इ अनुस्वार) मिलाने से श्रीं-षोडशी श्री विद्या बन जाती है। विशुद्धि चक्र में 16 नित्या है रमा और हल्लेखा के पृथक करने से द्वादशाक्षरी हो जाती है। ये अनाहत द्वादश दलात्मक में द्वादशादित्य का बोधक है। जो द्वादश मासों से सम्वत्सर बनाते हैं।

मानव शरीर पर रात दिन सूर्य, चन्द्रमा का प्रभाव निरन्तर पड़ता रहता है। जिससे साधक को योग क्रिया में सहायता मिलती रहती है। यद्यपि संसार की रचनात्मिका शक्ति सौर मण्डल से वर्णन की है परन्तु सूर्य शब्द से सूर्य तथा चन्द्रमा का अर्थ है यथा ''अग्नि सोमात्मकं जगत्'' सूर्य पिंगला द्वारा इस मानव शरीर रूपी यन्त्र को गरम कर क्रिया की ओर ले जाता है। चन्द्रमा ईड़ा नाड़ी के द्वारा सम्पूर्ण नाड़ियों में सोम सञ्चार करता रहता है। जब सूर्य और चन्द्रमा दोनों मूलाधार में मिल जाते हैं अर्थात् अमा रूप में हो जाते हैं उस काल में कुण्डलिनी शक्ति सुपुम्ना के रन्ध्र में निश्चेष्ट रहती है। वैन्दव स्थान से जो अमृत निस्सरण होता जाता है। वह सब कुण्डलनी के मुख में चला जाता है। कुण्डलिनी की सुप्तदशा में अन्धकार कृष्ण पक्ष के समान हो जाता है। जब योगी पूरक रेचक की सिद्धि से ईड़ा पिंगला नाड़ी पर अधिकार कर लेता है तब कुम्भक के योग से सम्पूर्ण नाड़ियों की गति को अवरोध कर कुण्डलिनी को उल्टा कर वैन्दव स्थान से पल्लवित अमृत को योगी स्वयं पान कर लेता है, जो

अजर अमरता का कल्प है। कुण्डलिनी का उत्थान यद्यपि पुस्तक मात्र के पढ़ने से होना असंभव है तथापि शास्त्र में जो कुण्डलिनी का स्वरूप वर्णन किया है। इस मार्ग के जिज्ञासुओं के लिए उसकी रूप रेखा प्रासंगिक रूप में दर्शाते हैं। ''तस्योर्द्धे'' विषतन्तु सोदर कला सूक्ष्मा जगन्मोहिनी ब्रह्मद्वार मुखं मुखने मधुरं स छादयन्ति स्वयं शङ्ख वर्त निभा नवीनचपला माला विलासास्पदं सुप्ता सर्वसमा शिवोपरि लसत् सांर्द्ध त्रिवृत्ताकृतिः। यह सूक्ष्माति सूक्ष्म कुण्डलिनी साढ़े तीन आवर्त कर मूलाधार में शिव लिंग पर लिपटी रहती हैं। शंख के आवर्तों की तरह इसका रूप है, बिजली की चमक सी इसकी चंचल चमक है यह अपने मुख से ब्रह्म द्वार को ढके हुई रहती है और अमृत जो सहस्रार से निकलता है वह उसके मुख में चला जाता है। मनुष्य के शरीर में नहीं टपक सकता है। योगी जन कुण्डलिनी के जागरण करने से उसका मुख नीचे की ओर कर स्वयं अमृत को पान करते हैं। जैसे तन्त्र में कहा है ''एवमभ्यस्यमानस्तु अहन्यहनि पार्वति जरा मरणदुःखाद्यै मुच्यते भवबन्धनात्'' इस प्रकार नित्य अभ्यास कर योगी जन उस अमृत के पान करने से जरा मरण दुःख से छुटकारा पाकर संसार के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। या इस प्रकार देखिए जो मातृका वर्णमाला 50 अक्षरों की है, यह मूलाधार से आज्ञाचक्र तक 50 दलों में 50 अक्षरों की बनती है। यथा- मूलाधार चार वर्ण वं शं पं षं स्वाधिष्ठान में वं भं मं यं रं ल ये 6 वर्ण प्रकट होते हैं। मणिपूर दशदलात्मक चक्र में से- डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं द्वादशदलात्मक अनाहत चक्र में से - कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं, विशुद्ध में से- अं आं इ ई उ ऊं ऋ ॠं लृ लॄं ए ऐं ओ औं अं अः षोडश स्वर प्रादुर्भाव होते हैं। भ्रूमध्य आज्ञा में से- हं क्षं, इन अक्षरों का जैसे भिन्न तरह से प्रकाश होता है वैसे भिन्न प्रकार के रंगों की अभिव्यक्ति इन में हैं। ये 50 वर्ण सोम, अग्नि, सूर्य, भेद से तीन प्रकार के हैं। शारदा तिलक में लिखा है-

विना स्वरैस्तु नान्येषां जायते शक्तिरञ्जसा।
शिवशक्त्यात्मकं प्राहुस्तस्मान्वर्णान् मनीषिणः।।

स्वर शक्ति के अक्षर व्यञ्जन शिवाक्षर है, बिना स्वरों के संयोग से कोई व्यञ्जन अक्षर मुख से बोला नहीं जाता है। इन्हीं पचास वर्णों से पञ्च महाभूतों की सृष्टी हुई है। अतः पृथ्वी आदि पञ्च महाभूतों के पृथक् 2 अक्षर हैं। जिनमें परस्पर मित्र, शत्रु उदासीनता रहती है। मन्त्राक्षरों को साधक के नामाक्षरों के साथ जब गुरु मिलता है, उस समय बड़े विचार से यह देखना चाहिये, कहीं मन्त्र के अक्षर उपासक के नाम से अक्षरों के साथ शत्रु वर्ग के तो नहीं हैं, जिस मन्त्र के साथ अपने नाम के अक्षर शत्रु हों वह मन्त्र बहुत हानिकारक होता है। भूल से भी ऐसे मन्त्र को न जपना चाहिए। "वाय्वग्ने भूजलाकाशा पञ्चाशल्लिपयक्रमान्" वायु, अग्नि, पृथ्वी, जल, आकाश के अक्षर पृथक-2 हैं।

वायु	अग्नि	भूमि	जल	आकाश
अ आ	इ ई	उ ऊ	ऋ ॠ	लृ लॄ
ए	ऐ	ओ	औ	अं अः
क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	श
ष	स	ह	ल	क्ष

अग्नि जल के अक्षर परस्पर शत्रु हैं, वायु अग्नि का मित्र, जल भूमि का शत्रु है, आकाश सब का मित्र है।

50 मातृका तीन ग्रन्थियों में विभक्त है। रुद्रग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि, ब्रह्मग्रन्थि। इस प्रकार मन्त्राक्षर और चक्र परस्पर सम्बन्धित हैं। हल्लेखा और रमाबीज बिन्दु में त्रिकोण के रूप में हैं जो चार शिव चक्रों को प्रकट

करते हैं। अ से क्ष तक जो वर्ण हैं। वे प्रत्याहार के द्योतक हैं। और अंर्धकार और उष्मवर्ण रमा बीज के बिन्दु O में है। हृल्लेखा त्रिकोण/में हैं। 4 अर्ध स्वर और ऊष्मवर्ण श्रीचक्र के अष्टकोण में हैं। क से म तक स्पर्शवर्ण अन्तर्दशार और बहिर्दशार (द्वि दशार) में हैं।

बारह स्वर अनुस्वार और विसर्ग ये 14 चतुर्दशार में हैं, जो भगवती का मन्त्रमय शरीर तीन भागों में ऊपर दिखाया है। इसी प्रकार श्रीचक्र में सोम, सूर्य, अग्नि का समावेश है और मन्त्रों में जो षोडश सोमकला दिखाई है, वह वस्तुतः सोम का स्थान है, और 24 या 12 कला बताई है वे सौर्य खण्ड की कला है, यह सूर्य का स्थान है। इसी प्रकार मन्त्र में जो 10 कलाओं का वर्णन है, ये आग्नेय कला है, अग्नि का स्थान है।

इस प्रकार मन्त्र, यन्त्र, कलाओं का पारम्परिक सम्बन्ध है। 16 कलाओं के नाम - 1 दृश्य, 2 दृष्ठा, 3 दर्शन, 4 विश्व, 5 रूंपा, 6 सुदर्शन, 7 आप्यमान, 8 आप्यायमान, 9 आप्या, 10 सुन्तर, 1 ईला, 12 आमाना, 13 आपूरका, 14 पुरा, पूर्णमासी, 16 चित्कला। इन कलाओं के अधिष्ठात्री देवता षोडशनित्या है। त्रिपुरसुन्दरी, कामेश्वरी, भगमालिनी, नित्यक्लिन्ना, भेरुण्डा, वह्निवासिनी, महाविद्येश्वरी, शिवदूती, त्वरिता, कुलसुन्दरी, नित्या, नीलपताका, विजया, सर्वमङ्गला, ज्वालामालिनी और चित्कला। और तत्व इस प्रकार से हैं- ''शिवशक्ति, माया सुधा, विद्युत्, जल, तेज, वायु, मन, पृथ्वी, आकाश, विद्या, महेश्वर, परातत्व, आत्मतत्व, सदाशिवतत्व, साधकतत्व ये षोडशी कलाओं में षोडशतत्व क्रम से हैं।

लोपामुद्रा विद्या जो पहले खण्ड में आई है। वह इस प्रकार हैः- शिव-ह शक्ति-स काम -क क्षि ति - ल। अन्य खण्डों में भी इसी प्रकार समझना चाहिये। दुर्वासा ऋषि ने जिस त्रयोदशाक्षरी विद्या की उपासना की थी वह भी इसी श्री विद्या के अन्तर्गत थी।

यह प्रायः हादि विद्या के नाम से प्रसिद्ध है। इसका वर्णन त्रिपुरातापिनी उपनिषद् में इस प्रकार है।

तान्होवाच भगवान् श्रीचक्रं व्याख्यास्यामः - त्रिकोणं- त्र्यस्तं कृत्वा तदन्तर्मध्यवृत्तमानयष्टिरेखामा कृष्य विशालं नीलाग्रतो योनिं कृत्वा पूर्वयोन्यग्ररूपिणीं मानयष्टिंकृत्वा तां सर्वोर्ध्वां नीत्वा योनिकृत्वाद्यं त्रिकोणं चक्रं भवति। द्वितीयमन्तरालं भवति। तृतीयमष्टयोन्यङ्कितं भवति। अथाष्टचक्राद्यन्तविदिक्कोणाग्रतो रेखां नीत्वा साध्याकर्षणबद्धरेखां नीत्वेत्येव मथोर्ध्वं संपुटयोन्याङ्कित कृत्वा कक्षान्म्यऊद्र्ध्वगरेखाचतुष्टयं कृत्वा यथाक्रमेण मानयष्टिद्वयेन दशयोन्यङ्कितचक्रं भवति। अनेनैव प्रकारेण पुनदर्शारचक्रं भवति। मध्यतत्रिकोणाग्रचतुष्टयं चतुष्टयं कृत्वाद्रवा चाग्रकोणेषु संयोज्य तद्दशांशतोनीतां मानयष्टिरेखां योजयित्वा चतुर्दशारंचक्रं भवति। ततोऽष्टपत्र संवृत्तं चक्रं भवति। षोडश-पत्रं संवृत्तं चक्रं चतुर्द्वारं भवति। ततः पार्थिवं चक्रं चतुद्वारं भवति। एवं सृष्टियोगेन चक्रं व्याख्यातम्।

श्रीचक्र का सृष्टिक्रम से निर्माण करने का विधान उपरोक्त वेद मन्त्रों में बताया गया है। वामा ज्येष्ठा गौरी अम्बिका ये श्रीचक्र की चार शितिकण्ठरूपा योनियां हैं, इच्छा, ज्ञान, क्रिया शान्ती परा ये पांच ऊपरवाली योनी शिवयुवति नाम वाली हैं यह नवयोन्यात्मक श्रीयन्त्र अनन्दभैरव और महाभैरवी मिल कर हुआ। ये दोनों परमानन्द परमज्ञान में एकरस है। ये दोनों एक दूसरे से भिन्न नहीं एक मूर्ती ही है।

सृष्टी के सुजन पालन में शिवयुवति नाम की पांच योनियां श्रीयन्त्र के ऊपर की ओर रहती हैं। संहारकाल में शितिकण्ठ नाम की चार योनी ऊपर की ओर रहती है। इनका परस्पर ऐक्य है, क्रोड़तन्त्र में आया है। श्रीयन्त्र में त्रिकोण के मध्य बिन्दु को भगवती त्रिपुरसुन्दरी का मुख दो नीचे की रेखा या बिन्दु चन्द्र सूर्य बिन्दु स्तनयुग्म बताये हैं। यथा- 'बिन्दु-द्वयन्तु तन्मध्ये विसर्गरूप मव्ययम्। तन्मध्ये शून्य देशेतु शिवं परममव्ययः।। तथान्यत्र-

माता मानं मेयं बिन्दुत्रय भावना तृतीये च। बीजपत्र योनिपत्र शक्तित्रय मातृका तृतीयञ्च।। इति कामकला विद्या विदिता येन स भवति त्रिपुरसुन्दरी रूपः।

करते हैं। अ से क्ष तक जो वर्ण हैं। वे प्रत्याहार के द्योतक हैं। और अंर्धकार और उष्मवर्ण रमा बीज के बिन्दु O में है। हल्लेखा त्रिकोण/में हैं। 4 अर्ध स्वर और ऊष्मवर्ण श्रीचक्र के अष्टकोण में हैं। क से म तक स्पर्शवर्ण अन्तर्दशार और बहिर्दशार (द्वि दशार) में हैं।

बारह स्वर अनुस्वार और विसर्ग ये 14 चतुर्दशार में हैं, जो भगवती का मन्त्रमय शरीर तीन भागों में ऊपर दिखाया है। इसी प्रकार श्रीचक्र में सोम, सूर्य, अग्नि का समावेश है और मन्त्रों में जो षोडश सोमकला दिखाई है, वह वस्तुतः सोम का स्थान है, और 24 या 12 कला बताई है वे सौर्य खण्ड की कला है, यह सूर्य का स्थान है। इसी प्रकार मन्त्र में जो 10 कलाओं का वर्णन है, ये आग्नेय कला है, अग्नि का स्थान है।

इस प्रकार मन्त्र, यन्त्र, कलाओं का पारम्परिक सम्बन्ध है। 16 कलाओं के नाम - 1 दृश्य, 2 दृष्ठा, 3 दर्शन, 4 विश्व, 5 रूपा, 6 सुदर्शन, 7 आप्यमान, 8 आप्यायमान, 9 आप्या, 10 सुन्तर, 1 ईला, 12 आमाना, 13 आपूरका, 14 पुरा, पूर्णमासी, 16 चित्कला। इन कलाओं के अधिष्ठात्री देवता षोडशनित्या है। त्रिपुरसुन्दरी, कामेश्वरी, भगमालिनी, नित्यक्लिन्ना, भेरुण्डा, वह्निवासिनी, महाविद्येश्वरी, शिवदूती, त्वरिता, कुलसुन्दरी, नित्या, नीलपताका, विजया, सर्वमङ्गला, ज्वालामालिनी और चित्कला। और तत्व इस प्रकार से हैं- ''शिवशक्ति, माया सुधा, विद्युत्, जल, तेज, वायु, मन, पृथ्वी, आकाश, विद्या, महेश्वर, परातत्व, आत्मतत्व, सदाशिवतत्व, साधकतत्व ये षोडशी कलाओं में षोडशतत्व क्रम से हैं।

लोपामुद्रा विद्या जो पहले खण्ड में आई है। वह इस प्रकार हैः- शिव-ह शक्ति-स काम -क क्षि ति - ल। अन्य खण्डों में भी इसी प्रकार समझना चाहिये। दुर्वासा ऋषि ने जिस त्रयोदशाक्षरी विद्या की उपासना की थी वह भी इसी श्री विद्या के अन्तर्गत थी।

यह प्रायः हादि विद्या के नाम से प्रसिद्ध है। इसका वर्णन त्रिपुरातापिनी उपनिषद् में इस प्रकार है।

तान्होवाच भगवान् श्रीचक्रं व्याख्यास्यामः - त्रिकोणं- त्र्यस्तं कृत्वा तदन्तर्मध्यवृत्तमानयष्टिरेखामा कृष्य विशालं नीलाग्रतो योनिं कृत्वा पूर्वयोन्यग्ररूपिणीं मानयष्टिंकृत्वा तां सर्वोर्ध्वां नीत्वा योनिकृत्वाद्यं त्रिकोणं चक्रं भवति। द्वितीयमन्तरालं भवति। तृतीयमष्टयोन्यङ्कितं भवति। अथाष्टचक्राद्यन्तविदिक्कोणाग्रतो रेखां नीत्वा साध्याकर्षणबद्धरेखां नीत्वेत्येव मथोर्ध्वं संपुटयोन्याङ्कित कृत्वा कक्षान्म्यऊद्र्ध्वगरेखाचतुष्टयं कृत्वा यथाक्रमेण मानयष्टिद्वयेन दशयोन्यङ्कितचक्रं भवति। अनेनैव प्रकारेण पुनदर्शारचक्रं भवति। मध्यतत्रिकोणाग्रचतुष्टयं चतुष्टयं कृत्वाद्रवा चाग्रकोणेषु संयोज्य तद्दशांशतोनीतां मानयष्टिरेखां योजयित्वा चतुर्दशारंचक्रं भवति। ततोऽष्टपत्र संवृत्तं चक्रं भवति। षोडश-पत्रं संवृत्तं चक्रं चतुर्द्वारं भवति। ततः पार्थिवं चक्रं चतुद्वारं भवति। एवं सृष्टियोगेन चक्रं व्याख्यातम्।

श्रीचक्र का सृष्टिक्रम से निर्माण करने का विधान उपरोक्त वेद मन्त्रों में बताया गया है। वामा ज्येष्ठा गौरी अम्बिका ये श्रीचक्र की चार शितिकण्ठरूपा योनियां हैं, इच्छा, ज्ञान, क्रिया शान्ती परा ये पांच ऊपरवाली योनी शिवयुवति नाम वाली हैं यह नवयोन्यात्मक श्रीयन्त्र अनन्दभैरव और महाभैरवी मिल कर हुआ। ये दोनों परमानन्द परमज्ञान में एकरस है। ये दोनों एक दूसरे से भिन्न नहीं एक मूर्ती ही है।

सृष्टी के सुजन पालन में शिवयुवति नाम की पांच योनियां श्रीयन्त्र के ऊपर की ओर रहती हैं। संहारकाल में शितिकण्ठ नाम की चार योनी ऊपर की ओर रहती है। इनका परस्पर ऐक्य है, क्रोड़तन्त्र में आया है। श्रीयन्त्र में त्रिकोण के मध्य बिन्दु को भगवती त्रिपुरसुन्दरी का मुख दो नीचे की रेखा या बिन्दु चन्द्र सूर्य बिन्दु स्तनयुग्म बताये हैं। यथा- 'बिन्दु-द्वयन्तु तन्मध्ये विसर्गरूप मव्ययम्। तन्मध्ये शून्य देशेतु शिवं परममव्ययः।। तथान्यत्र-

माता मानं मेयं बिन्दुत्रय भावना तृतीये च। बीजपत्र योनिपत्र शक्तित्रय मातृका तृतीयञ्च।। इति कामकला विद्या विदिता येन स भवति त्रिपुरसुन्दरी रूपः।

नवयोन्यात्मक श्रीचक्र का प्रतिलोम क्रम से वर्णन करते हैंः-

1. पहला चक्र त्रैलोक्य मोहन हैः- इसमें अणिमादि अष्ट सिद्धियां प्राप्त होती हैं और सर्व संक्षोभिणि आदि दश शक्तियां भी प्राप्त होती हैं। इस चक्र में त्रिपुर सुन्दरी अधिष्ठातृ देवता हैं। यह प्रकट चक्र हैं।

2. सर्वाशा पूरक चक्र है- कामा कर्षिणी आदि 16 शक्तियां इसमें रहती हैं। यह गुप्त चक्र है। इसका रहस्य गुप्त है। इस चक्र की त्रिपुरेश्वरी अधिष्ठातृ देवता है। इसका पूजन सर्वविद्रावणी मुद्रा से किया जाता है।

3. सर्व संक्षोभण चक्र-इसमें अनङ्ग कुसुमादि 8 आठ गुप्त रूप से रहते हैं। त्रिपुर सुन्दरी अधिष्ठात् देवता हैं। सर्वाकर्षिणीं मुद्रा से इसका पूजन किया जाता है।

4. सर्वसौभाग्य दायक चक्र-सर्व संक्षोभिणी आदि 72 शक्तियां इसमें रहती हैं। त्रिपुर वासिनी इसकी अधिष्ठातृ देवता है। सर्व वशंकरणी मुद्रा से इसका पूजन होता है।

5. तुर्यान्त चक्र है- इसका सर्वार्थ साधक नाम है। सर्व सिद्धिप्रदा आदि 10 शक्तियां इसमें रहती हैं। त्रिपुरा महा लक्ष्मी इसकी अधिष्ठात्री देवता है। मोहन मालिनी मुद्रा से इसका पूजन होता है।

6. सर्व रक्षाकर चक्र है- महांकुशा मुद्रा से इसका पूजन होता है।

7. सर्व रोग हर चक्र है- सर्व वशिन्यादि अष्ट शक्ति इसमें हैं इसका पूजन रहस्यमय है त्रिपुरसिद्धि इसका देवता है, खेचरी मुद्रा से इसका पूजन होता है।

8. सर्वसिद्धिप्रद सयुज्यतुष्यन्भवति इसमें परा और अंपरा का रहस्य है। त्रिपुराम्बा इसकी देवी है। योग मुद्रा से इसका पूजन होता है।

9. सर्वानन्दमय चक्र- कामेश्वरी आदि तीन शक्तियां इसमें हैं त्रिपुर

सुन्दरी अधिष्ठात्री देवता है। योनि मुद्रा से पूजन होता है।

योग कुण्डलिनि उपनिषद् में कुण्डली के उत्थान की विधि इस प्रकार कही है:-

शक्तिः कुण्डलनी नाम विसतन्तुनिभा शुभा।
मूलकन्दं फणाग्रेण दृष्ट्वा कमलकन्दवत्।।

मुखेन पुच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्रसमन्विता।
पद्मासनगतेः स्वस्यः गुदमाकुञ्च्य साधकः।।

वायुमूर्द्धगतं कुर्वन् कुम्भकाविष्टमानसः।
दृष्ट्वा घातवशादग्निः स्वाधिष्ठानगतोज्वलम्।।

ज्वलनाघातपवनाघातै रुन्तिद्रितोहिराट्।
ब्रह्मग्रन्थिं ततो भित्वा विष्णुग्रन्थिभिदन्यतः।।

रुद्रग्रन्थिं च भित्वैव कमलानि भिनक्ति षट्।
सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते।।

सैवावस्था पराज्ञेया सैवनिर्वृत्ति कारिणी।

तथाच-

आधारपश्चिमे भागे चन्द्रसूर्यौस्थिरौ यदि।।

तत्र तिष्ठति विश्वेशो ध्यात्वा ब्रह्ममयो भवेत्।
आधारे पश्चिमं लिंगं कवाटं तत्र विद्यते।।

तस्योद्घाटनमात्रेण मुच्यते भवबन्धनात्।
आधारपश्चिमे भागे मूर्तिस्तिष्ठति संज्ञया।।

षट् चक्राणि च निर्भिद्य ब्रह्मरन्ध्राद्वहिर्गतम्।
वाम दक्षे निरुन्धन्ति प्रविशन्ति सुषुम्णया।।

ब्रह्मरन्ध्रं प्रविश्यान्तस्ते यान्ति परमां गतिम्।
गंगायां सागरे स्नात्वा स्नात्वा च मणिकर्णिकाम्।।

मध्यनाडीविचारस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
श्रीशैलदर्शनान्मुक्तिः वाराणस्यां मृतस्य च।।

केदारोदकपानेन मध्यनाडीप्रदर्शनात्।
अश्वमेधासहस्रस्य बाजपेयशतस्य च।।

सुषुम्णाध्यानयोगस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
ब्रह्मरन्धो महास्थाने वर्तते सततं शिवा।।

चिच्छक्तिः परमा देवि मध्यमे सुप्रतिष्ठिता।
मायाशक्तिर्ललाटाग्र भागेम्यो माम्बुजं तथा।।

नादरूपा पराशक्ति ललाटस्य तु मध्यमे।
भागे बिन्दुमयी शक्तिः ललाटस्या परांशके।।

बिन्दुमध्ये च जीवात्मा सूक्ष्मरूपेण वर्तते।
हृदये स्थूलरूपेण मध्यमेन तु मध्यमे।।

स्मरं योनिं लक्ष्मीं त्रितयमिदमादौ तव मनो-
र्निधायेके नित्ये निरवधिमहाभोगरसिकाः।।

भजन्ति त्वां चिन्तामणिगुणनिवद्धाक्षवलयाम्।
शिवाऽग्नौ जुह्वन्तः सुरभिघृतधाराऽऽहुतिशतैः।। 33।।

भावार्थ

हे नित्ये भगवति तुम्हारे मन्त्र के पूर्व स्मर (क्लीं) योनी (ह्रीं) लक्ष्मी (श्रीं) इन तीन (बीजाक्षरों) को लगाकर चिन्तामणि (मनका) से बनी हुई अक्ष माला से यद्वा स्मर क कार योनी ए कार लक्ष्मी ह्रीं इन तीन बीजों को तुम्हारे मन्त्र के पूर्व योग करने से महान् भोगों के रसिक (उपासक) इस मन्त्र से गोघृत की शतशः आहुती देते हुए तुम्हारा भजन करते हैं।

विज्ञान भाष्य

पूर्व कहे गये (शिवःशक्ति कामः) 32 श्लोक में जो मन्त्र तीन खण्डों में बताया है, उन मन्त्रों के क्रमशः तीन खण्डों के प्रथम में स्वर कामबीज

(क्लीं) योनी (ह्रीं) लक्ष्मी (श्रीं) यद्वा स्मर का योनी ए, लक्ष्मी ई, यह कामराज कूट तुम्हारे मन्त्र के साथ अनुलोम विलोम से लगाकर जप करते हैं। इस श्लोक में कामराज विद्या का उद्वार किया है, ''अथर्व वेद में आया है' कामोयोनिः कमला 'तथा' इन्द्रो मायाभिःपुरुरूप ईयते'' इन्द्र ला माया हल्लेखा के योग से 3, 4, 5, 6 भेद होते हैं।

स्मरं यानी लक्ष्मी, क, ए, ई, इस मंत्र का हादि विद्या में वर्णन किया गया है। ह, स क, इन अक्षरों में उक्त अक्षर बदल देने से कादि विद्या बन जाती है। हादि विद्या मोक्षदात्री होने से कादि से श्रेष्ठ मानी जाती है। इस श्लोक में चिन्ता मणिगुणनिवद्धाक्षवलया यह पाठ है, इससे यह भी तात्पर्य निकलता है कि शब्द ब्रह्म जो चित्कला पर स्थित है जिसमें तीन गुण हैं, सत्व, रज, तम, भगवती के यह मातृका रूपी वर्ण जिसके हाथों से जप कर सिद्ध हो गये हो, उसकी जो कामना हो, सिद्ध हो जाती है। जो मन्त्र माला से जपे जाते हैं उनमें यह ध्यान रखना चाहिए कि मेरु जो माला का ऊपर का मनका होता है उसे उल्लंघन नहीं करना चाहिए। माला जहां पूरी हो फिर बदल कर जप करना। हवन करने को गोघृत भगवति के मन्त्र के हवन से बताया है, यहां पर सुरभि शब्द का प्रयोग करने से यह तात्पर्य है जिस प्रकार कामधेनु की सेवा से सब कामना सफल हो जाती है उसी प्रकार भगवति के मन्त्र जप करने के अनन्तर घृताहुती से उन मन्त्रों द्वारा हवन करने से साधक की सब कामना सफल हो जाती है।

हर बिन्दु समष्टि पांच् से वाग्भव बनता है। 'यद्धा-हर त्रिविन्दु समष्टि 6 से कामराज बीज बनता है। यद्वाहर' ई बिन्दु 4 से शक्तिकूट बनता है। तीन से पञ्चदशी का उद्वार होता है। इस विद्या का पञ्चदशाक्षरी रूप मानसोल्लास में है। यथा- ''दशापञ्चक भेदेन प्रपञ्चस्य विलाशिनः। साक्षि पञ्चाक्षरीयस्य तस्मात् पञ्चदशाक्षरी।।'' जायते, वर्द्धते, अस्ति, परिणमते, नश्यतीति पञ्चदशा। इन पांच दशाओं की बोधक पञ्चदशाक्षरी है। स्मर (क) का अर्थ मदन अर्थात् क्लीं योनि, भुवनेश्वरी बीज (ह्रीं)।

लक्ष्मी रमा (श्रीं) कादिविद्या के अनुसार प्रथम श्लोक में से यह अर्थ निकलते हैं। इन तीन अक्षरों को मन्त्र के पूर्व में मिला कर, हे नित्ये! एके-कोई श्रेष्ठ साधक तुम्हारे मन्त्र का जप करते हैं। जिससे "निरवधि ा महाभोग रसिका" जिन सुखों की भोग की अवधि नहीं है अर्थात् निरन्तर ऐहिक और आमुष्मिक भोगों के रस को चाहने वाले चिन्तामणि के मनकों से बनी हुई माला को धारण कर तुम्हारा मन्त्र ज़पते हैं। यद्वा चिन्तामणि मातृका वर्ण ककार से हकार तक इनके लोम विलोम से बने हुए मन्त्रों को जप·कर गोघृत से हवन करते हैं, वे मनुष्य धन्य हैं। यद्वा चिन्तामणि एक प्रकार कर रत्न होता है, जिसके हाथ में यह रत्न रहता है उसको जिस काल में जो इच्छा होती है वह इच्छा पूर्ण हो जाती है। चिन्तामणि के चमत्कार की तरह जो ऊपर दिखाये हुए तुम्हारे मन्त्र है उसमें गुण "निबद्धाक्षवलय" मन के तन्तुरूपी गुणों में मन्त्राक्षरों को ओतप्रोत करके जो कोई जपते हैं, "सुरभिघृतधारा" सुरभी कामधेनु गौ का नाम है। जो मन के संकल्प के अनुसार सब पदार्थों को तत्काल दे देती है, उसका यहां पर संकेत किया है। राजयोग से मन में जो तुम्हारे संकल्प स्फुरते हैं उनकी प्रत्यक्ष सिद्धि हो जाती है। मातृ का के योग से 'स्मर' योनी लक्ष्मीं काम लज्जा रमा बीज को जपते हैं उनकी सम्पूर्ण कामना सफल हो जाती है। मन्त्र के जपने के अनन्तर गोघृत से शतआहुतिया या अनुष्ठान क्रम से तद्दशांश आहुती देकर जो तुम्हारा भजन करते हैं वे धन्य हैं। इस श्लोक में निरवधि महाभोग और एके तथा नित्ये (भगवती का सम्बोधन) इन पदों से निरवधि महाभोग से मोक्षरूपी परमानन्द का बोध है। यतः- इन्द्रियों के भोग स्वर्गादि सब अवधि के अनन्तर नाश होने वाले होते हैं। "ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशन्ति" पुण्य के फल समाप्त होने पर फिर मृत्युलोक में दुख के भोगने को जीव आ जाता है। इन्द्रियों के भोग जितने भी होते हैं। वे आपात रमणीय है, भोगैश्वर्य में चिपट जाना वही अज्ञान है। अतः इस श्लोक में जो महाभोग शब्द आया है वह आत्मानन्द रूपी भोग का द्योतक है। और एके एक शब्द 'एक-मेवाद्वितीयं ब्रह्म" का बोधक है।

'नित्ये' यह भी मोक्ष लक्ष्मी का वाचक भगवती का सम्बोधन इस श्लोक में आया है। अतः भगवती के इस मंत्र जप से ब्रह्मानन्द रूपी महाभोग, जिसकी अवधि नित्य आनन्द मोक्ष की प्राप्ति बताते हैं- यथा-

अथैतस्मिन्नन्तरे भगवान् प्राजापत्यं वैष्णव विलयकारणं रूपमाश्रित्य त्रिपुराभिधा भगवती त्येवमादिशक्त्या भूर्भुवः स्व स्त्रीणि स्वर्ग भू-पातालानि त्रिपुराणि हरमायात्मकेन ह्रींकारेण हल्लेखाख्या भगवती त्रिकूटावसानेनिलये विलयेधाम्नि महसाधारेण प्राप्नोति। सैवेयं भग-वती त्रिपुरेति व्यापठ्यते।।

त्रिपुरातापिन्युपनिषद् में भी- कादिविद्या लोपामुद्राभिधा पञ्चदशाक्षरी भोगैश्वैर्य प्रदात्री, श्रीविद्या की महत्ता को बड़े ही दार्शनिक रूप से वर्णन किया है। जैसे- सम्पूर्ण कर्मकाण्ड भाग का वर्णन करने के अनन्तर अप्टैस्वर्य सम्पन्न, संसार की स्थिति रक्षक सत्वगुण सम्पन्न तमः प्रधान एकीकरण समर्थ अर्थात् सब जगत को अपने में ही विग्रहांतरित करने वाली शक्ति का आश्रय लेकर त्रिपुरा नाम से विख्यात भगवती जो आदिशक्ति का आश्रय लेकर त्रिपुरा नाम से विख्यात भगवती जो आदिशक्ति नाम से ''भूः भुंवः'' स्वः'' अर्थात् स्वर्ग, भू, पाताल- आत्मक शिव शक्त्यात्मक भुवनेशी बीज हल्लेखा नाम से भगवती त्रिपुर अ, उ, म। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति। विश्व-तैजस-प्राज्ञ। क्रिया-इच्छा-ज्ञान आदि के अवसान में स्थित अमात्रात्मक-नादात्मक रूप से महा तम (घोरान्धकार) रूप-''तमसाद्विकुर्वाणात'' को प्राप्त होती है, उसी को भगवती त्रिपुरा नाम से कहा जाता है।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्। परोरजसे सावदोम्। जातवेदसे सुनवाम सोममरारतीयतो निदधाति वेदः सनः पर्षदतिदुर्गाणि विश्वानावेवसिन्धुन्दुरितात्यग्निः।। त्रयम्बकं यजामहे सुगन्धि

ंपुष्टिवर्धनम् ऊर्वारुकमिववन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ।। शताक्षरीपरमाविद्या त्रयीमयी साष्ट त्रिपुरा परमेश्वरी आद्यानि चत्वारि पदानि परब्रह्मविकाशीनि द्वितीयानि शक्त्याख्यानि तृतीयानि शैवानि तत्र लोकाः, वेदाः, शास्त्राणि, पुराणानि, धर्माणि वै चिकित्सतानि ज्योतिषशिवशक्तियोगा- दित्येवं घटनाव्यापठ्यते ।।

अथैतस्य परं गहरं व्याख्यास्यामो महामनुसमुद्भवं। तदिति ब्रह्म शाश्वतम्। परो भगवान् निर्लक्षणो निरंजनो निरुपाधि रादि रहितो देवः। उन्मीलते पश्यति विकासते चैतन्यभावं कामयते इति, स एको देवः शिवरूपी दृश्यत्वेन विकासते यतिषु यज्ञेषु योगीषु कामयते। कामं जायते। स एवं निरञ्जनोऽकामत्वेनोज्जृन्भते। अकचटतपयशान्सृजते। तस्मादीश्वरः कामोऽभिध ीयते। तत्परिभाषया कामःककारं व्याप्नोति। काम एवेदं तत्तदिति ककारो गृह्यते। तस्मात्तत्पदार्थ इति य एवं वेद।

इसी ब्रह्म विद्या के परम गह्वर परम मंत्र की व्याख्या-धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां'' को ''तत्'' के द्वारा व्याख्यायित किया जाता है। तत्-शब्द, निष्कल, अनादि, अविनाशी, ब्रह्म का द्योतक है। वह जब 'एकोहम बहुस्यामः' शक्त्यात्मक भाव से भावित होता है तब वह निरंजन शिवरूप सम्पूर्ण जगत में यति-योगी यज्ञो में यज्ञेन यज्ञ मयजन्तदेवाः'' व्याप्त हो जाता है। अर्थात् बिना ही कारण बिना उपादान के प्रकट हो जाता है उसी समय ''नाद रूप में अ क च ट आदि वर्ग उत्पन्न होते हैं इसीलिए- एक अद्वय निरञ्जन में काम शक्ति के प्रादुर्भाव होने से ईश्वर आत्मा ब्रह्म काम कहा जाता है, इस परिभाषा से काम ककार का द्योतक है। तथा यह दृश्यमान जगत भी। (तत्) ब्रह्म रूप कामात्मक होने से ककार का प्रतिपादक है, अतः तत्पदार्थ-क-

-सवितुर्वरेण्यमिति सूङ् प्राणिप्रसवे, सविता प्राणिनः सूते-प्रसूते शक्तिम्। सूते त्रिपुरा परमेश्वरी महाकुण्डलिनी देवी। जातवेदस मंडलं योधीते सर्वव्याप्यते। त्रिकोण शक्ति-रेकारेण महाभागेन प्रसूते। तस्मादेकार एव गृह्यते। वरेण्यं श्रेष्ठं भजनीयमक्षरं नमस्कार्यम्। तस्माद्वरेण्यमेकाराक्षरंगृह्यते इति यह एवं वेद।

जात वेदस मंडल द्वारा प्रतिपादित शक्ति महा कुंडलिनी देवी त्रिपुरा (त्रिकोणात्मिका -एकार' द्वारा समस्त जगत् का निर्माण करती है, इसलिये यह 'ए' कार अक्षर श्रेष्ठ भजनीय उपासनीय नमस्करणीय है, अतएव 'ए' -सवितुर्वरेण्यम्।

अकार-हकार-शक्ति शिवरूप। अ-ह विसर्ग रक्त शुक्ल दो बिन्दु, इसका उच्चारण अहं। इनके बीच में समस्त संसार या मातृका यही ब्रह्म रूप है।

'एकोहं बहु स्याम' इच्छुक बह्म अर्ध शक्ति को देखता हुआ बिन्दु रूप हो जाता है। शुक्ल-ब्रह्म रक्त-शक्ति।

दोनों बिन्दु हकार वाच्य है। दोनों की समष्टि मिश्र बिन्दु। यही काम रूप, या सूर्य बिन्दु अ वाच्य है तीनों बिन्दु सोम, सूर्य, अग्नि मय अहं से तुरीय प्रणवपद वाच्य है।

यही एकादश स्वर एकार विद्या का प्राण है। इसी से सर्व जगत का प्रदुर्भाव होता है, <u>शास्त्रयोनित्वात्</u> इसी को जगद्योनि त्रिकोण शक्ति कहा है।

भर्गो देवस्य धीमहि इत्येवं व्याख्यास्यामः।
धकारो धारणा। धियैवाधार्यते भगवान्परमेश्वरः।

भर्गोदेवस्य मध्यवर्ति तुरीयमक्षरं साक्षात् तुरीयम्
सर्व सर्वान्तर्भूतम्। तुरीयाक्षरमीकारं पदानाम्

मध्यवर्तीत्येवंव्याख्यातंभर्गोरूपं व्याचक्षते।
तस्माद्भर्गोदेवस्यधीमहीत्येवंईकाराक्षरंगृह्यते।

बुद्धि द्वारा ब्रह्मतत्व की धारणा होती है, यो बुद्धे परतस्तुस्सः 'ध' से ही धारणा का ज्ञान होता है इसी धारणार्थ द्योतक 'ध' में सर्व जगत अंतर्हित होता है। यही आत्मा-जाग्रत 1 स्वप्न 2 सुषुप्ति 3 अवस्थाओं से

परे तुरीय में बुद्धि गम्य अर्थात् (ऋतंभरा बुद्धि द्वारा धारित होने से शब्द ब्रह्मात्मक तुरीयक्षर ''ई'' का ही भर्गोरूप कहा गया है, अतः भर्गोदेवस्य ध-ई।

महीत्यस्य व्याख्यानं महत्वं जडत्वं काठिन्यम् विद्यते यस्मिन्नक्षरे तन्मही लकारः परंधाम काठिन्यं ससागरं सपर्वतं ससप्तद्वीपं सकानन मुज्वलदूरूपं मंडलमेवोक्तं लकारेण। पृथ्वीदेवी महीत्यनेन व्याचक्षते। स्थाणुभूतेन लकारेण ज्योतिर्लिंगमात्मानं धियो बुद्धयः परे वस्तुनि ध्यानेच्छारहिते निर्विकल्पके प्रचोदयात् प्रेरयेदि-त्युच्चारणरहितं चेतसैव चिन्तयित्वा भावयेदिति।

बड़ा, जड़ कठिन, ये धर्म संपन्न 'मही' के अन्दर कठिनता, सागर पर्वत, सप्तद्वीप, वन सबका अन्तर्भाव होता है अतएव पृथ्वी देवी 'मही' कही जाती है इसी को मंडल कहा है 'वही' ''ल'' है स्थाणु भूत लकार से ज्योतिर्लिङ्गात्मक आत्मा को बुद्धि ध्यान इच्छा रहित निर्विकल्प आत्मा में संयोजित करें इस प्रकार मन से (चित) चिन्तित करता हुआ भावना करे। अतः मही- ''ल'' यहां पर त्रिपदा गायत्री से जो सूक्ष्म आत्मतत्व का ज्ञान वर्ण रूप में इस प्रकार प्रदर्शित किया है ''तदेतन्मंडलं तपति।

क) ईश्वर की कामना द्वारा।

ए) उत्पन्न होने वाला श्रेष्ठ उपासनीय महाशक्ति कुंडलिनी त्रिपुरा (ज्येष्ठा : वामा, रौद्री)। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति (अ, उ, म) (विश्व, तैजस, प्राज्ञ) (उत्पत्ति, स्थिति प्रलय) रूप त्रिपुरी त्रिकोण अथवा योनी उत्पत्ति स्थिति प्रलय का केन्द्र ही उपासनीय होने से-

(ई) बुद्धि गम्य आत्मज्ञान-

(ल) सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमंडल देदीप्यमान जगत में विभक्त मन को

एकीकर कर ब्रह्म के अन्दर प्रवेशित करें आत्मत्व भावना से देखें "ईशावास्यमिंद सर्व"

परोरजसे सावदोमिति तदवसाने परं ज्योतिरमलं हृदि दैवतं हृदयागारवासिनी हृल्लेखेत्यादिना स्पष्टं वागूभवकूटं पञ्चाक्षरं पंचभूतजनकं पंचकलामयं व्यापठ्यते

इति। य एवं वेद।

चतुर्थ पाद द्वारा पूर्वी भावना के अन्दर यह धारणा है कि वह ज्योर्तिमय देव इस हृदय पुंडरीक में चिति रूप हृल्लेखा में स्थित है।

इस प्रतिपाद्यार्थ द्वारा पांच अक्षर मय पंचभूत जनक पंच कला मयहृल्लेखा-भुवनेशी बीज प्रतिपादित होता है।

ह- तत् आत्मा परोक्ष	
र- सविता	
ई- भर्ग	वाग्भवकूट
"- नाद	
"- बिन्दु	

आकाशदि पंचभूतों को उत्पन्न करने वाले पांच वर्ण ह, क, र, स, ल यह विद्या पंचभूतमयी है प्रथम विमर्श शक्ति से ह, प्रकाश शक्ति से आकाश

क .... वायु

र .... अग्नि

स .... जल

ल .... पृथ्वी

गुण भी इनके 1/2/3/4/5 सब 15 हुए। इसी तरह इस विद्या में भी 15 ही अक्षर हैं।

अथ तु परं कामकलाभूतं कामकूटमाहुः।
तत्सवितुर्वरेण्यमित्यादि द्वात्रिंशदक्षरीं पठित्वा
तदिति परमात्मा सदाशिवोऽक्षरं विमलं निरु-
पाधितादात्म्यप्रतिपादनेन हकाराक्षरं शिवरूपं
निरक्षरमक्षरं व्यालिख्यत इति। तत्परागव्या-
वृत्तिमादाय शक्तिदर्शयति। तत्सवितुरिति
पूर्वेणाध्वना सूर्याधश्चन्द्रिकां व्यालिख्य मूलादि-
ब्रह्मरन्ध्रगं साक्षरमद्वितीयमाचक्षत इत्याहा
भगवन्तं देवं शिवशक्त्यात्मकमेवोदितम्।।
शिवोऽयं परमं देवं शक्तिरेषा तु जीवजा।
सूर्याचन्द्रमसोयोगा हंसस्तत्पदमुच्यते।। 1।।
तस्मादुज्जृम्भते कामः कामात्कामः परः शिवः।
कर्णोयं कामदेवोयं वरेण्यंभर्गउच्यते।। 2।।
तत्सवितुर्वरेण्यंभर्गोदेवः क्षीरं सेवनीय
मक्षरं समधुद्वमक्षरं परमात्मजीवात्मनोयोगात्त-
दिति स्पष्टमक्षरं तृतीयं ह इति तदेव सदा-
शिव एवं निष्कल्मष आद्योदेवोन्त्यमक्षरं व्याक्रियते।

अब कामकूट का व्याख्यान गायत्री की द्वित्तीयावृत्ति द्वारा कहते हैं।

ह- तत् पंच तत्वात्मिका
स- सवितुः भुवनेशिका संयोग
क- वरेण्यं शेष मंत्र भाग
ह- भर्गो देवस्य द्वारा पूर्ववत्।
ल- धीमहि

परं पदं धीति धारणं विद्यते जडत्वं धारणं महीति लकारः शिवा धस्तात्तु लकारार्थः स्पष्ट मन्त्यमक्षरं परमं चैतन्यं धियो योनः प्रचोदयात् परा रजसे सावदोमित्येवं कूटं कामकलालयं षडध्वपरिवर्तको वैष्णवं परमं धामेति भगवांश्चैतस्माद्य एवं वेद।

पंचदशी के संबन्ध में योगिनी हृदय में प्रकाश की अंशभूत तीन शक्तियां वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, पुंरूप में ब्रह्मा विष्णु, रुद्र इन सब की समष्टि शान्ता तुराय शक्ति है। विमर्ष की अंश भूता इच्छा, ज्ञान, क्रिया यह तीन शक्तियां हैं। जो उनकी भार्या रूप से प्रसिद्ध भारती पृथ्वी और रुद्राणी है, जो स्त्री रूपा है। इनकी समष्टि अम्बिका शक्ति तुरीया है।

प्रथम द्वितीय तृतीय मिथुन क्रम से तीनों कूटों का अर्थ है। इसमें ई, का अर्थ चतुर्थ मिथुन है। शाक्तार्थ में 101 कूट में रेफात्र 6 वर्णों का मिथुन त्रय अर्थ ग्रहण किया है। उक्त अर्थ में और इसमें यही थोड़ा सा भेद है। शिव, शक्ति के योग से ही यंत्रराज की उत्पत्ति हुई है। तथा-भारती आदि योगिनी तथा ब्रह्मा आदि वीरेन्द्रों का कूटत्रय से ग्रहण कर तथा-शिवशक्ति मिथुन की समष्टि ई, कार से लक्षित कर यंत्रराज की वीरगण भावना करते हैं। सकल, निष्कल, सकलनिष्कल, उपासक ही वीर है। परा पंचाशिका में भी वीर यह साधक परक है। उपासक श्रेष्ठ ब्रह्मवादियों का वीरेन्द्र कहा है। अतः- भारती आदि योगिनी, तीनों सकलादि साधक, तीनों ब्रह्मादि वीरेन्द्र पद क्रम से ह्रीं कार रहित कूटत्रय से प्रतिपादित हुए। ह्रीं कार से शिव शक्त्यात्मक चतुर्थ को ग्रहण किया। इन 6 अक्षरों से तथा तीन कूटों से ब्रह्मा-भारती, हरि-लक्ष्मीं, रुद्र-रुद्राणी को लिया। काम कला व ह्रीं कार से चौथा मिथुन लिया जो शिव शक्त्यात्मक हैं इस तरह 7 अक्षरों को 3 आकृति से यंत्रराज का प्रादुर्भाव हुआ। इनकी समष्टि श्री माता ही श्रीविद्या है। जो स्वयं पर देवता है।

अथैतस्मादपरं तृतीयं शक्तिकूटं प्रतिपद्यते।

द्वात्रिंशदक्षर्यागायत्र्यातत्सवितुर्वरेण्यं तस्मादात्मनः आकाशः आकाशाद्वायुः स्फुरति तदधीनं वरेण्यं समुदीयमानं सवितुर्वा योग्यो जीवात्मपरमात्मसमुद्भवस्तं

प्रकाशशक्तिरूपं जीवाक्षरं स्पष्टमापद्यते। भर्गो देवस्य धीत्यनेनाधाररूप शिवात्माक्षरं गण्यते। महीत्यादिना शेषं काम्यं रमणीयं दृश्यं शक्तिकूटं स्पष्टीकृतमिति। एवं पञ्चदशाक्षरं चैपुरं योऽधीते स सर्वान् कामानवाप्नोति। स सर्वान्भोगानवाप्नोति। स सर्वान् लोकांजयति। स सर्वावाचो विजृम्भयति। स रुद्रत्वंप्राप्नोति। स वैष्णववंधामइत्वा परंब्रह्मप्राप्नोति। य वं वेद

अब तृतीय शक्तिकूट का प्रतिपादन करते हैं- - -

स-तत्सवितुः।

क-वरेण्यंभर्गोदेवस्य

ल-धीमहि

हीं-पंचभूतजनक पंचकलामय।

यह त्रिपुरा का पंचदशाक्षर मंत्र भोग ऐश्वर्य, स्वर्ग, ईश्वरत्व का प्रदायक है। यही अकल तुरीयातीत में षोड़शी ब्रह्मत्व प्रदायिका है।

श्री विद्या ब्रह्मत्वदायिका है।

शरीरं त्वं शम्भोः शशिमिहिरवक्षोरुहयुगम्।
तवात्मानं मन्ये भगवति नवात्मानसमयम्।।

अतः शेषः शेषीत्ययमुभयसाधारणया।
स्थितः संबन्धो वां समरसपरानन्दपरयोः।। 34।।

भावार्थ

हे भगवती! तुम शिव की मूर्ति हो। चन्द्र सूर्य ये दो तुम्हारे स्तनयुग्म हैं। मेरी धारणा है कि तुम निर्मल नवयोन्यात्मक शिव की मूर्ति हो। अतः तुम्हारा अङ्गाङ्गी भाव पारस्परिक सम्बन्ध एक रूप हैं और दोनों का अखण्डानन्द एक रस में है।

विज्ञान भाष्य

हे भगवती! तुम शिव की शरीररूपा हो। चन्द्र सूर्य तुम्हारे दो स्तनयुग्म है। यथा- चन्द्रसूर्यास्तनौयस्य तावेव नयनेस्मृते। उभौताटंक

युगुलेत्येषा नैगमीश्रुतिः।। यह तुम्हारा शरीर नव व्यूहात्मक भैरव रूप है। यह नवयोन्यात्मक जो श्रीचक्र है वह तुम्हारा शरीर है। तन्त्रशास्त्र में नव व्यूह का वर्णन आया है। "1 काल व्यूह, 2 कुल व्यूह, 3 नाम व्यूह, 4 ज्ञान व्यूह, 5 चित्र व्यूह, 6 नाद व्यूह, 7 बिन्दु व्यूह, 8 परमानन्द व्यूह, 9 परात्मक व्यूह" यह भोग मोक्षदायक नव व्यूहात्मक भैरव रूप है। परानन्द, पराशक्ति चिदरूप, आनन्द भैरवी इनकी ऐक्यता होने से ही सम्पूर्ण संसार उत्पन्न होता है। कालव्यूह एक निमेष से कल्पान्त कामसमूह है, कुलव्यूह नील रूपादि भेद से है, नाम व्यूह संज्ञा नामों का समुदाय, ज्ञान व्यूह, विज्ञान, स्कन्द है। चित्रव्यूह अन्तःकरण की भावनाएं हैं। आत्म व्यूह, आत्मा अन्तरात्मा प्रत्यगात्मा परमात्मा रूप है। जीवव्यूह मनुष्य पशु पक्षी आदि 84 लक्ष योनियां, अतः हे भगवती! तुम दोनों के गुण एक ही है, दोनों का सम्बन्ध परानन्दपरक है, अर्थात् उत्कृष्ट निवृत्ति परक होने से समान रस हो। अभिन्न अखण्डानन्द रूपा हो। इस श्लोक में श्रीविद्यारूपी श्रीचक्र में शितिखण्ड और शिवयुवति नाम से जो त्रिकोण कहे हैं, उन दोनों के समरस का वर्णन आया है। यह नव व्यूहात्मक श्रीचक्र भगवती की मूर्ती हैं

मनस्त्वं व्योमस्त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि।
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां नहि परम्।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारं शिवयुवति भावेन विभृषे।। 35।।

भावार्थ

हे भगवती! तुम मन (अन्तःकरण की ज्योतिरूपा) हो, तुम व्योम (आकाशरूपा) हो, तुम वायु रूप से सर्वत्र संञ्चार करने वाली हो, तुम जल रूप से आप्यायन करने वाली, तुम पृथ्वी रूप से सब को धारण करने वाली, समस्त ब्रह्माण्ड रूप में परिणत होने से तुमसे परे और कोई रूप नहीं है, तुम ही अपने को विश्व के स्वरूप में बदती हो। तु चित्शक्ति आनन्द रूपा अपने को शिवयुवति भावना से धारण करती हो।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में शिव शक्ति के एकात्मा का वर्णन आया है और भगवती की सर्व व्यापकता का निर्देश किया गया है। अन्तःकरण की सञ्चालिका तथा चिति रूप तुम हो। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश ये सब तुम्हारे ही परिणाम है। पृथक कोई वस्तु नहीं है। तन्त्र में आया है, "त्रिपुरा परमाशक्तिराद्या जाता महेश्वरी स्थूलसूक्ष्मस्वभावेन त्रैलोक्योत्पत्ति मातृका" कवलीकृतनिःशेषतत्तज्ज्ञान स्वरूपिणी यस्यां परिणतायान्तु न किञ्चिदवशिष्यते। अर्थात् त्रिपुरा परमा शक्ति विश्व की आदि जननी है स्थूल, सूक्ष्म कारण स्वभाव से त्रैलोक्य को उत्पन्न किया है।

इस श्लोक में भगवती की अष्टमूर्ति का वर्णन जैसे शिवजी की मूर्ति का आया है वैसा ही यहां आया है। पुष्पदन्ताचार्य ने शिव की अष्टमूर्ति का जैसा महिम्न में वर्णन किया है। "त्वमापस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवहस्त्वमापस्त्वं व्योंम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च" इसी प्रकार कालीदास ने शिव की अष्टमूर्तिका वर्णन किया है- "यासृष्टि स्रष्टु, राद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री ये द्वे कालं विधत्त श्रुतिविषयगुणाया स्थिता व्याप्यविश्वम"।

इस प्रकार भगवती अष्टमूर्ति का वर्णन करने से शिवशक्ति में अभेद भावना का निर्देश किया गया है। मन शब्द से यजमान का भी ज्ञान होता है मन में ही प्रथम यज्ञ का संकल्प या जगत का संकल्प स्फुरता है चन्द्रमा भी मन की ही स्फुरणा है यतः "चन्द्रमा मनसो जातः" यह वैदिक प्रमाण है। अग्नि सूर्य का रूपान्तर है, इस प्रकार मन और पञ्चभूत भगवती के कारण देवता अष्ट स्वरूप है। ज्ञान आनन्द यह ब्रह्म का स्वरूप है "सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म" ब्रह्म सब में ओत प्रोत है हे भगवती! तुम मन स्वरूप से आज्ञा चक्र में प्रकाश देती हो। तुम आकाश तत्वमयी होकर विशुद्ध चक्र में स्थान रखती हो तुम वायु रूपा अनाहत में निवास करती हो, अग्निरूपा मणिपुर में प्रकाश देती हो, तुम जल स्वरूपा स्वाधिष्ठान में और पृथ्वी रूप में मूलाधार में रहती हो यथा "आधार भूता जगतस्त्वमेका

महीश्वरूपेण यतः स्थितासि'' इत्यादि, हे भगवती! तुम विश्व तैजस प्राज्ञ रूप से जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति की साक्षी हो विराट् स्वरूपा (हिरण्यगर्भ) इच्छाशक्ति से स्थूल शरीराभिमानी देवता हो जाती हो। तुम्हारा स्थूल स्वरूप महा प्रलय में शिव में लय हो जाता है, पुनः सृजन काल में शिवशक्ति एकीभाव नयोन्यात्मक स्वरूप में संसार बनने लगता है। यतः सृजन का कारण शिव शक्त्यात्मक ऐक्य प्रलय का कारण शिव शक्ति का पार्थक्य जो ब्रह्माण्ड दीख पड़ता है यह सब शिव शक्ति के ऐक्य का परिणाम हे, जितने प्रकार की आकृति और नाम है यह सब शक्ति तत्व मायात्मिक है सत्ता-भास यह शिव तत्व है! यथा ''अस्ति-भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम् आद्य त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्'' अस्ति भाति प्रियं, ये नित्य ब्रह्म स्वरूप है, नाम आकृति अनित्य संसार का स्वरूप है। अर्थात् अस्ति, भाति, प्रिय, हे भगवती! यह तुम्हारा नित्य स्वरूप है। भगवती छः रूपों में षट्चक्र में प्रकाश देती है इनका संमिश्रण संसार की उत्पत्ति स्थिति विश्लेषण, संसार का लय है। भगवती का यथार्थ स्वरूप चित् शक्ति है, यह शक्ति स्थूल सूक्ष्म में परिणत होकर प्रकट होती है। 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' धर्म की रक्षा के निमित्त भगवती प्रकट होती है, यथा मार्कण्डेय पुराण-''इत्थं यदा यदा वाधा दानवोत्था भविष्यति तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्'' ।''

षट्चक्र षट्तत्व

तत्व चक्र	लोक	देव
0 सहस्रार	सत्यम्	पराशक्ति
मन आज्ञा	तपः	शिव
आकाश विशुद्धि	जन5	सदाशिव

वायु अनाहत	महः	महेश्वर
तेज मणिपुर	स्वः	रुद्र
जल स्वाधिष्ठान	भुवः	विष्णु
पृथ्वी मूलाधार	भूः	ब्रह्म

तवाज्ञाचक्रस्थं तपनशशिकोटिद्युतिधरम् ।
परं शंभुं वन्दे परिमिलितपार्श्वं परचिता ।।
यमाराध्यन् भक्त्या रविशशिशुचीनामविषये ।
निरातंके लोको निवसति हि भालोकभवने ।। 36 ।।

भावार्थ

कोटि सूर्य चन्द्रमा के प्रकाश धारण किए वामपर्श्व में चिदम्बा के साथ तुम्हारे आज्ञाचक्र में स्थित परम शम्भु को मैं प्रणाम करता हूं, भक्ति से जिनकी आराधना करने से सूर्य चन्द्र अग्नि का भी जहां विषय नहीं, ऐसे निर्भय प्रकाशमय लोक में निवास करती हो।

विज्ञान भाष्य

32 श्लोक में भवगती के मन्त्रात्मक विग्रह को दिखलाया है इस श्लोक से यन्त्रात्मक मूर्तिका वर्णन और भवगती के अधिष्ठानों का निरुपण है। तवाज्ञा ''चक्रस्थ'', षट्चक्रों में से एक चक्र आज्ञा चक्र है। आज्ञाचक्रस्थं इस प्रकार का पाठ होना था, परन्तु यहां पर तब तुम्हारा आज्ञाचक्र कहने से भवगती के यन्त्रात्मक स्वरूप का निर्देश है, जैसे पहले दिखा गये हैं। श्रीयन्त्र का कौन स्थान किस चक्र में है इन सब चक्रों के योग से नवयोन्यात्मक श्रीचक्र बनता है जो भगवती की मूर्ति है। (ये चक्र

ज्योतिर्मय हैं षटचक्र में जो वर्णन आया है वह आधिभौतिक चक्रों का है। ये ज्योतिर्मय चक्र भगवती के स्वरूप हैं। इनके ही आश्रय पर आधिभौतिक चक्रों में क्रिया शक्ति का संचार होता है।) मनुष्य शरीर भी एक यन्त्र है जो प्रधानतया छः चक्रों से चलता है। पूर्व श्लोक में ''मनस्त्वं'' से भगवती को मन कहा जो आज्ञाचक्र में है इस श्लोक में उसका विशदीकरण किया गया है।

यहां से अग्रिम 6 श्लोकों तक षट्चक्रों का वर्णन है। अर्थात् आज्ञाचक्र से प्रारम्भ कर अवरोहक्रम से मूलाधार तक दिखाया है। समष्टि व्यष्टि रूप से यन्त्रात्मक, भूतात्मक भगवती के स्वरूप को दिखाया गया है आज्ञाचक्र की अधिष्ठात्री भगवती हैं आज्ञाचक्र द्विदल भ्रूमध्य में ''मनोपि भ्रूमध्ये'' मनका स्थान भी यही है।

'आज्ञा संक्रमणं तत्र गुरोराज्ञेति कीर्तितम्।'

इसी स्थान की सिद्धि से साधक अपनी आज्ञा का प्रभाव सब पर दिखा सकता है। मायातन्त्र में लिखा है-

'आज्ञाख्यं द्विदलं शुभ्रं कर्णिकायां मनोलयम्।'

यही स्थान है जिसको पूर्व श्लोक में 'मनस्त्वं' कहा है। इसी स्थान का प्रकाश श्रीक्रम में आया है ''भ्रूमध्ये अन्तरात्मान मरूपं सर्वकारणाम् ॐकारज्योति रूपन्तु प्रदीपाभं जगन्मयम्'' भ्रूमध्य में सर्वकारण ॐकारज्योतिरूप आत्मा ज्वलित दीपप्रभा के समान का ध्यान करें। इसीलिए ''तवाज्ञ चक्रस्थ'' कहा है यह भगवती का स्वरूप आज्ञाचक्र है। षट्चक्र निरुपण में आया है- ''आज्ञानामाम्बुजं तद्धिमकर सदृशं ध्यान धाम प्रकाशं हुं क्षां भ्यां वैकलाभ्यां परिलसतवपुः'' यह आज्ञाचक्र ध्यान से प्रकाशित होता है। इस दुःख रहित प्रकाशमय लोक में परम शिव चिदम्बा के साथ विराजते हैं, जहां सूर्य, चन्द्र, अग्नि का भी प्रकाश नहीं जा सकता है। इसी स्थान का उपनिषद् में इस प्रकार वर्णन किया है। ''न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः, तमेव भान्तमनु भाति सर्वं तस्य

भासा सर्वमिदं विभाति'' यह वह निरातङ्क स्थान है, जहां सूर्य, चन्द्र, तारक, अग्नि, विद्युत का प्रकाश नहीं जाता है। अपितु इसी भालोक के प्रकाश से सूर्यादि प्रकाशित होते हैं।

गीता में इस परम शम्भू के प्रकाश लोक का वर्णन इस प्रकार आया है- ''न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः। यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम'' सूर्य, चन्द्र, अग्नि जिसे प्रकाशित नहीं कर सकते है जहां जाने पर फिर जन्म-मरण की आवृत्ति नहीं होती वह भगवती का प्रकाशमय स्थान है। वहीं पर परम शम्भु का साक्षात्कार होता है।

आज्ञाचक्र में परम शम्भु का प्रकाशमय स्थान है। जिसे ''तपन शशिकोटिद्युतिधरं'' कहा है कोटि सूर्य चन्द्रमा के प्रकाश को धारण करने वाला अर्थात् अनन्त प्रकाशमय षटचक्रों में पृथक-पृथक छ शिव हैं उनमें से आज्ञाचक्र में परम शिव हैं। यथा-

'ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।
ततः पर शिवो देवी षट्शिवा परिकीर्तिता।।'

उक्त मानस रश्मियां आज्ञाचक्र से लहराती हैं इनके नाम के अनुरूप इनके धर्म हैं। सम्मोहन तन्त्र में आज्ञाचक्र में जितने मूलाधारादि छ चक्रों में क्रमशः उपरोक्त शिव होते हैं। इसी शिव चिदम्बा की कामेश्वर कामेश्वरी नाम से आराधना करते हैं इसको कही ''निरालोके लोके'' ऐस पाठ कहा गया अर्थात् लोक स्थान नेत्रादि ज्योतिका विषय नहीं है स्वयं प्रकाश है वही मातृ का रूपा महामाया की रश्मियां रहती हैं। मन अपनी रश्मिपुञ्ज के साथ सूक्ष्म रूप में यहां पर रहता है। एतद् पद्यान्तराले निवसति च मनः सूक्ष्मरूपं प्रसिद्धम्'' आज्ञाचक्र में मन सूक्ष्म रहता है। यहां से ही मनोमय रश्मिपुञ्जों का प्रसारण होता है। 40 श्लोक में जो विभिन्न तत्वों की रश्मियों का प्रकाशन बताया है। उनमें 64 रश्मि मन से प्रवाहित होती है उनके नाम ये हैं-

1 पर 2 परा 3 भर 4 भरा 5 चित्त 6 चितपरा 7 महामाया 8 परा सृष्टी 9 सृष्टीपरा 10 इच्छा 11 इच्छापरा 12 स्थिति 13 स्थितिपरा 14

निरोध 15 निरोधपरा 16 भुक्ति 17 भुक्तिपरा 18 ज्ञान 19 ज्ञानपरा 20 सत 21 सतपरा 22 असत 23 असत्परा 24 सदसत 25 सदसत्परा 26 क्रिया 27 क्रियापरा 28 आत्मा 29 आत्मपरा 30 इन्द्रिय 33 इन्द्रियपरा 32 गोचर 33 गोचरपरा 34 लोकमुख्य 35 लोकमुख्यपरा 36 वेदवत् 37 वेदवत्परा 38 सम्वित 39 सन्वितपरा 40 कुण्डलिनी 41 कुण्डलिनीपरा 42 सुषुम्ना 43 सुषुम्नापरा 44 प्राणसूत्र 45 प्राणसूत्रपरा 46 स्पन्द 47 स्पन्दपरा 48 मातृका 49 मातृकापरा 50 स्वरोदभुव 51 स्वरादभुवपरा 52 वर्णजा 53 वर्णजापरा 54 वर्गजा 55 वर्गजापरा 56 सम्भोगजा 57 सम्भोगजापरा 58 मन्त्रविग्रह 59 मन्त्रविग्रहपरा और पद्म हैं जो उससे ऊपर की ओर से हैं उनका प्रमाण दिया है-

इन्दु र्ललाटदेशे च तदूर्ध्वे बोधिनी स्वयम्।
तदूर्ध्वे भाति नादोऽसावर्द्धचन्द्राकृतिःपरः।।
तदूर्ध्वे तु कला प्रोक्ता आज्ञीति योगिवल्लभा।
उन्मनी तु तदूर्ध्वे तु यद्गत्वा न निवर्तते।।

भ्रूमध्य में आज्ञाचक्र, इससे जरा ऊपर चन्द्रस्थान, इसके ऊपर बोधनी है। बोधनी से ऊपर नाद जो अर्धचन्द्र की तरह प्रतीत होता है। तब महानाद जो हलकी आकृति वाला है उसके ऊपर आज्ञीकला योगियों का परम ऊपर उन्मनी जहां जाने से फिर नीचे नहीं गिरता है। इसको तन्त्रशास्त्र में शिवशक्ति संयोग त्रिपुर सुन्दरी का रूप कहा है। यथा-

'शिवशक्तिसमायोगात् अव्यक्तात् परमेश्वरात्।
आद्या भगवती देवी सैव त्रिपुर-सुन्दरी।।

अव्यक्त शिवतत्व में जो प्रथम शक्ति (विमर्श) का योग होता है, वह त्रिपुर सुन्दरी का रूप है। आज्ञाचक्र में ध्यान करने का फल इस प्रकार है-

'ध्यानात्मा साधकेन्द्रो भवति परपुरे शीघ्रगामी मुनीन्द्रः।
सर्वज्ञः सर्वदर्शीः सकलहितकरः सर्वशास्त्रार्थवेत्ता।।

अद्वैताचारवादी विलसति परमापूर्वसिद्धः प्रसिद्धः।
दीर्घायुः सोऽपि कर्ता त्रिभुवनभवने संहृतौ पालने वा'।।

आज्ञाचक्र में ध्यान लगाने से साधक सारे संसार का हितकर्ता सब शास्त्रों का ज्ञाता लोकत्रय को पालन संहार करने की शक्तिवाला तपस्या करने के लिए दीघार्यु प्राप्त करता है। यहीं पर ध्यान लगाने से उन्मनी तक की गति हो जाती है।

'उन्मन्या सहितो योगी न योगी उन्मनीं बिना'' योग की सिद्धि तव है जब उन्मनी दशा को प्राप्त कर ले, यहां आज्ञाचक्र में ध्यान की सिद्धि होने से परम शिव का साक्षात्कार योगी को होता है।

'ज्वलद्दीपाकारं तदनु च नवीनार्कबहुलम्।
प्रकाशं ज्योतिर्वा गगनधरणीमध्य मिलितम्।।

इह स्थाने साक्षात् भवति भगवान् पूर्णविभव।
व्ययो साक्षी वह्ने शशिमिहरयोर्मण्डल इव।।

आज्ञाचक्र में ध्यानावस्थित योगी को प्रथम प्रज्वलित दीपक का प्रकाश प्रातः काल के बादल में छिपे सूर्य की लालिमा का भास होता है तब धरणी मध्य मिलितम् विशुद्ध चक्र से मूलाधार पृथ्वी तत्व तक उसे प्रकाश का भान होने लगता है। यथा गीता-

''सर्वद्वारेषु येनैकप्रकाशमुपजायते'' सारे शरीर में प्रकाश का अनुभव होता है। तब रविशशि अग्नि के प्रकाशपुञ्ज शिव अव्यय का साक्षात्कार होता है। अन्त में शिवतत्व में लय हो जाता है। इस आज्ञाचक्र में प्रयाणकाल में मन स्थिर करने से विष्णु पद में मिल जाना है। यथा गीता में ''प्रयाणकाले मनसा चलेन भक्तया युक्तोयोगबलेन चैव। भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।

निश्चल मन या भक्ति से या योग बल से इस आज्ञाचक्र में ध्यान लगाने से परम पुरुष आत्मा में मिलता है यथा- ''ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्'' ओम् यह शब्द उच्चारण करते भ्रूमध्य में ध्यान लगाने से प्राणोत्क्रान्ति (मृत्युकाल) समय में मोक्ष पाता है। यथा-

'इह स्थाने विष्णोरतुल परमामोदमुदरे।
समारोप्य प्राणान् प्रमुदितमनाः प्राणनिधने।।
परं नित्यं देवं पुरुष मजमाद्यं त्रिजगताम्।
पुराणं योगीन्द्रः प्रविशति च वेदान्तविदितम्।।

अन्त समय में प्रसन्नता से भ्रूमध्य में ध्यान लगाते हुए जो प्राण त्यागता है, वह जीव परम पुरुष जो वेदान्त वेद्य-अयमात्मा ब्रह्म-"अहं ब्रह्मास्मीति" "तत्वमसि" महा वाक्यों से जिसका ज्ञान हो जाता है वह आत्मतत्व (मोक्ष) प्राप्त कर लेता है। आज्ञा में जप करने का परमेश्वर मन्त्र इस प्रकार है-

तारपंचकमुद्धृत्य सरहं सौं वाग्भवस्ततः।
फ्रयें बीजञ्च ततो लेख्यं परमेश्वरमनुर्मतः।।
आज्ञायां कर्णिका मध्ये परमेश्वर मनुं न्यसेत्।
विशुद्धौ ते शुद्धस्फटिकविशदं व्योमजनकम्।
शिवं सेवे देवीमपि शिवसमानव्यवसिताम्।।
ययोः कान्त्या यान्त्या शशिकिरणसारूप्यसरणिं
विधूतान्तर्ध्वान्ता विलसति चकोरीव जगती।। 37।।

भावार्थ

हे भगवती! षोडश दलात्मक विशुद्धचक्र में शुद्धस्फटिक के समान उज्जवल आकाशतत्व के कारणस्वरूप व्योमेश्वर और व्योमेश्वरी माता की पूजा करता हूँ, जिनके प्रभा के प्रसारण में (जगत) संसार की परम्परा चकोरी की भांति विलास करती हैं। अन्तःकरण के अन्धकार को दूर कर चन्द्रमा के प्रकाश की तरह सुषुम्णा मार्ग में प्रकाशित करते हुए व्योमेश्वर व्योमेश्वरी की मैं पूजा करता हूँ।

अद्वैताचारवादी विलसति परमापूर्वसिद्धः प्रसिद्धः।
दीर्घायुः सोऽपि कर्ता त्रिभुवनभवने संहृतौ पालने वा'।।

आज्ञाचक्र में ध्यान लगाने से साधक सारे संसार का हितकर्ता सब शास्त्रों का ज्ञाता लोकत्रय को पालन संहार करने की शक्तिवाला तपस्या करने के लिए दीघार्यु प्राप्त करता है। यहीं पर ध्यान लगाने से उन्मनी तक की गति हो जाती है।

'उन्मन्या सहितो योगी न योगी उन्मनीं बिना'' योग की सिद्धि तव है जब उन्मनी दशा को प्राप्त कर ले, यहां आज्ञाचक्र में ध्यान की सिद्धि होने से परम शिव का साक्षात्कार योगी को होता है।

'ज्वलद्दीपाकारं तदनु च नवीनार्कबहुलम्।
प्रकाशं ज्योतिर्वा गगनधरणीमध्य मिलितम्।।
इह स्थाने साक्षात् भवति भगवान् पूर्णविभव।
व्ययो साक्षी वह्ने शशिमिहरयोर्मण्डल इव।।

आज्ञाचक्र में ध्यानावस्थित योगी को प्रथम प्रज्चलित दीपक का प्रकाश प्रातः काल के बादल में छिपे सूर्य की लालिमा का भास होता है तब धरणी मध्य मिलितम् विशुद्ध चक्र से मूलाधार पृथ्वी तत्व तक उसे प्रकाश का भान होने लगता है। यथा गीता-

''सर्वद्वारेषु येनैकप्रकाशमुपजायते'' सारे शरीर में प्रकाश का अनुभव होता है। तब रविशशि अग्नि के प्रकाशपुञ्ज शिव अव्यय का साक्षात्कार होता है। अन्त में शिवतत्व में लय हो जाता है। इस आज्ञाचक्र में प्रयाणकाल में मन स्थिर करने से विष्णु पद में मिल जाना है। यथा गीता में ''प्रयाणकाले मनसा चलेन भक्तया युक्तोयोगबलेन चैव। भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।

निश्चल मन या भक्ति से या योग बल से इस आज्ञाचक्र में ध्यान लगाने से परम पुरुष आत्मा में मिलता है यथा- ''ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्'' ओम् यह शब्द उच्चारण करते भ्रूमध्य में ध्यान लगाने से प्राणोत्क्क्रान्ति (मृत्युकाल) समय में मोक्ष पाता है। यथा-

'इह स्थाने विष्णोरतुल परमामोदमुदरे।
समारोप्य प्राणान् प्रमुदितमनाः प्राणनिधने।।
परं नित्यं देवं पुरुष मजमाद्यं त्रिजगताम्।
पुराणं योगीन्द्रः प्रविशति च वेदान्तविदितम्।।

अन्त समय में प्रसन्नता से भ्रूमध्य में ध्यान लगाते हुए जो प्राण त्यागता है, वह जीव परम पुरुष जो वेदान्त वेद्य-अयमात्मा ब्रह्म-''अहं ब्रह्मास्मीति'' ''तत्वमसि'' महा वाक्यों से जिसका ज्ञान हो जाता है वह आत्मतत्व (मोक्ष) प्राप्त कर लेता है। आज्ञा में जप करने का परमेश्वर मन्त्र इस प्रकार है-

तारपंचकमुद्धृत्य सरहं सौं वाग्भवस्ततः।
फ्रयें बीजञ्च ततो लेख्यं परमेश्वरमनुर्मतः।।
आज्ञायां कर्णिका मध्ये परमेश्वर मनुं न्यसेत्।
विशुद्धौ ते शुद्धस्फटिकविशदं व्योमजनकम्।
शिवं सेवे देवीमपि शिवसमानव्यवसिताम्।।
ययोः कान्त्या यान्त्या शशिकिरणसारूप्यसरणिं
विधूतान्तर्ध्वान्ता विलसति चकोरीव जगती।। 37।।

भावार्थ

हे भगवती! षोडश दलात्मक विशुद्धचक्र में शुद्धस्फटिक के समान उज्जवल आकाशतत्व के कारणस्वरूप व्योमेश्वर और व्योमेश्वरी माता की पूजा करता हूँ, जिनके प्रभा के प्रसारण में (जगत) संसार की परम्परा चकोरी की भांति विलास करती हैं। अन्तःकरण के अन्धकार को दूर कर चन्द्रमा के प्रकाश की तरह सुषुम्णा मार्ग में प्रकाशित करते हुए व्योमेश्वर व्योमेश्वरी की मैं पूजा करता हूँ।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में आकाशतत्व के अधिष्ठातृ देवता व्योमेश्वर व्योमेश्वराम्बा के पूजन का वर्णन आया है यथा व्योमेश्वरनाथ श्री पादुकां पूजयामि व्योमेश्वरी अम्वा श्री पादुकां पूजयामि। 36 श्लोक से अन्तर्याग का प्रकरण चल रहा है, भ्रूमध्य से अमृत निष्पन्दन होता है वह क्रम से षटचक्र मार्ग से सारे प्रपञ्च का सिञ्चन करता जाता है। सृष्टि का आर्विभाव विशुद्ध पद्मस्थ व्योमेश्वर से होता है यही षोड़श नित्याओं का स्थान है इसी व्योमेश्वर शिव को हिरण्यगर्भ नाम से भी कहा है सबसे प्रथम व्योमतत्व प्रकट होता है यथा आत्मनः आकाशः सम्भूतः आकाद्वायुः इत्यादि क्रम है, यहां पर परमेश्वर का ध्यान योगगम्य है, यथा षटचक्र भेदनकुलाकुलमार्ग हठयोगगम्य ईड़ा पिंगला की गति सञ्चरण गतिरोध (कुम्भक) पर निर्भर है इन विशुद्ध दलों में व्योमेश्वर का पूजन ध्यान योगगम्य आया है, ईड़ा पिंगला साधक की गति निरोध नहीं कर सकती है। व्योमेश्वर मन्त्र "व्योमातीतं नाथ पदं (नाथ) परापर पदं ततैः व्योमातीतपदं व्योमेश्वरीं पद समुद्धरेत।" विशुद्ध चक्र का स्वरूप तन्त्र में आया है-

'विशुद्धं तनुते यस्मात् जीवस्य हंसलोकनात्।
विशुद्धं पद्ममाख्यातं आकाशाख्यं महत् परम्।।

यहां पर षोड़शी का पूर्ण विकास होता है। (षट्चक्र निरूपण में)

'विशुद्धाख्यं कण्ठे सरसिजममलम् धूम्रधूम्रावभासम्।
स्वरैः सर्वैः शोणैः दल परिलसितैः दपितंदीप्त बुद्धैः।।

विशुद्ध में अकार से अः पर्यन्त षोड़श वर्ण षोड़शी की कलाएँ हैं। इसे मोक्ष द्वार भी कहा है-

'सुधांशोः सम्पूर्णशशपररहितं मण्डलं कणिकायाम्।
महामोक्षद्वारं श्रियमभिमतशीलस्य शुद्धेन्द्रियस्य।।

यहां पर शश चिह्न के बिना पूर्ण चन्द्र प्रकाश दिखता है।

इहस्थाने निरवधि निधायात्म सम्पूर्ण योगं कविर्वाग्मी, ज्ञानी

इस स्थान पर निरवधि चित्त लगने से ज्ञान निष्ठा हो जाती है।

आकाश तत्व से 72 (बहत्तर) रश्मियां निकलती है। अर्थात् आकाशतत्व की 72 किरणें हैं।

1 हृदय 2 कौलिकी 3 घर 4 कान्ता 5 भोग 6 विश्वा 7 भय 8 योगिनी 9 महा 10 ब्रह्म 11 सारा 12 शिवदूती 13 शवरी 14 कालिका 15 रस 16 जुष्ट चाण्डाली 17 मोह 18 अघोरेशी 19 मनोभय 20 हेला 21 केका 22 महारक्त 23 ज्ञानगुप्ता 24 कुब्जिका 25 खर 26 डाकिनी 27 ज्वलता 28 शाकिनी 29 महाकुल 30 लांकिनी 31 साधिनी 32 तेजा काकिनी 33 तेजस 35 राकिनी 35 मूर्द्धनी 36 हाकिनी 37 वामुका 38 साधिनी 39 कुल 40 सिंही 41 सन्नार 42 कुलम्बिका 43 विश्वम्भर 44 कामा 45 कौटिल 46 कण 47 गालव 48 कंटकी 49 ब्योम 50 ब्योमा 51 शवशन 52 नाद 53 खेचरी 54 महादेवी 55 बाहुल्य 56 महत्तरी 57 तात 58 कुण्डलिनी 59 कुलातीत 60 कुलेशी 61 अज 62 इन्धिका 63 अनन्त 64 दीपिका 65 ईशा 66 रेचीका 67 शिखा 68 मोचिका 69 परम 70 परा 71 पर 72 चित 72 मयूख नाम है।

समुन्मीलत्संवित्कमलमकरन्दैकरसिकम् ।
भजे हंसद्वन्द्वं किमपि महतां मानसचरम् ।।
यदालापादष्टादशगुणितविद्यापरिणति-
यदादत्ते दोषाद् गुणमखिलमद्भ्यः पय इव ।। 38 ।।

भावार्थ

समुन्मीलत्संवित्। विकास होते हुए ब्रह्माज्ञानरूपी कमल के पराग के रसिक योगियों के मानस सरोवर में चलने वाले एक अनिर्वचनीय हंस युग्म को प्रणाम करता हूँ। (हंसः सोहं) जिस हंस युग्म के आलाप करने से अट्ठारह विद्याओं का प्रकाश होता है और जो दोषों से गुण को अलग कर देता है हंस जैसे जल से दुग्ध को पृथक कर देता है।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में हंसेश्वर हंसेश्वरी का ध्यान बताया है तन्त्रशास्त्र में इस प्रकार-परम हंस हंसेश्वरी नाथ श्री पादुकां पूजयामि स्वाहा "हंस सोहं" यहां हंस इत्यक्षरद्वयं यही मन्त्र है यदालापात्- हंसः इस मन्त्र के जप करने से 18 विद्याओं का विकास हो जाता है। हंस के जप से आत्म साक्षात्कार हो जाता है-इस मंत्र के प्रभाव से दोष-पाप दूर हो जाते हैं जैसे हंस पक्षी दुग्ध और जल को पृथक-पृथक कर देता है उसी प्रकार इस मन्त्र के जप से पाप पृथक हो जाते हैं। शुभ संस्कार रह जाते हैं। हं-शिव स-शक्ति इनके योग से हंस हुआ यही हंस युग है- "हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः। हंसेति द्वक्षरं मन्त्र जीवो जपति नित्यशः।"

21642 स्वास प्रश्वास अहोरात्र में स्वभावतः आते-जाते हैं इसी (हंसेश्वर हंसेश्वरी) के मन्त्र को जीव जपता है। उपासक हंस मन्त्र में पूरी निष्ठा करने से परम हंसता को प्राप्त कर लेता है। उसमें विवेक ख्याति होने से मल विक्षेप दूर हो जाते हैं जैसे हंस जल में से दुग्ध को पृथक कर देता है वैसे अन्तःकरण में से मल विक्षेप को दूर कर देता है। विद्याशक्तियों का विकास हो जाता है। योगाभ्यास सम्पन्न उच्च भूमिकाओं को प्राप्त किए हुए योगीजनों के हृदय "महतीमानस" में विद्याओं का विकास होता है। इस श्लोक में 18 विद्या जो कही हैं उनके नाम-शिक्षा, कल्प व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, ऋग्, यजुः, साम, अथर्व, मीमांसा, न्याय, पुराण, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्व शास्त्र नीतिशास्त्र ये 18 हैं इस श्लोक में परिणति समाधत्ते पद से तात्पर्य साधक को हंस मन्त्र की योग सिद्धि से विद्याओं का विकास होने से तात्पर्य है। हंसेश्वर मन्त्र-

तारपंचकमुच्चार्य हसूंवाग्भव मुद्धरेत्।
कुब्जिकायै पदं चैव हसफ्रं विच्चै तथैव च।।
हंसेश्वर महामन्त्रास्त्वनाहतपदे स्थितः।

हृदय अनाहत चक्र है यहां पर हंस का ज्ञान होता है- ''यदालापा विद्या दशगुण'' यहां हंस के योग से शब्दमय जगत का प्रादुर्भाव होता ''शब्द ब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधि गच्छति'' शब्द मय मूर्ति यहां से प्रकट होती है। जैसे वेद में- ''चत्वारि श्रृङ्गात्रयो स्यपादा द्वे षीर्षे सप्तहस्तासो स्यत्रिधावद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्यां आविवेश'' जहां पर बिना ताड़न के शब्द (ध्वनि) निकलती है। वह अनाहत स्थान है यहां पर बाणलिंग रहता है द्वादश सूर्य विद्या और द्वादशाक्षरी विद्या भी यहां से प्रकट हुई है सौर मण्डल की रचना यहां से प्रारम्भ होती है। षट्चक्र निरूपण में आया है-

'तस्योर्ध्वे हृदि पंकजं सुललितं बन्धूककान्त्युज्वलम्।
काद्यैर्द्वादशवर्गकैरूपहितं सिन्दूररागान्वितम्।।
नाम्नानाहतसंज्ञकं सुरतरुं वांछातिरिक्तप्रदम्।
बायोर्मण्डलमत्रधूम्रसदृशं षट्कोण शोभान्वितम्।।
मन्मध्ये करुणानिधाननिलयं हंसाभमीशामिदम्।
पाणिभ्यामभयं वरं च विद्धत् लोकत्रयाणामपि।।

हृदय कमल रक्तवर्ण ककार से ठकार तक द्वादस वर्णों का अनाहत चक्र वायु का मण्डल षट्कोण वाला यहां पर है यहां इच्छा से भी अधिक सफलता मिलती है इस चक्र के मध्य में हंसेश्वर हंसेश्वरी संसार की रक्षा के निमित्त अभय वर लेकर विराजमान रहती है।

कूटं हंसेश्वरस्याषि धूम्राभं हृदि भावयेत्। 54

वायव्य किरणे 54!

खगेश्वर, भद्रा, कुर्मा, आधार, मेसा, कोषा, मीना, मालिका, ज्ञाना, विमला, महानन्दा, सर्वरी, तीव्रा, लीला, प्रिय, कुमुदा, कालिका, मेणका, डामरा, डाकिनी, रामा, राकिनी, लाम्रा, लाकिनी, काम्रा, काकिनी, साम्रा, शाकिनी, हाम्रा, हाकिनी, आधारेश, राका, चक्रीश, बिन्दु, कुकुर, कूला, मायाश्रीश, कुब्जिका, हृदीशा, कामकला, सिरस, सिखेशः, सर्वेशा, वर्मन,

बहुरूपा, असलेखा, महत्तरी, परगुरु, मंगला, पराधीगुरु, कोष, पूज्यगुरु, रामा, कुलदीपिका।

तव स्वाधिष्ठाने हुतवहमधिष्ठाय निरतम्।
तमीडे संवर्तं जननि महतीं ताञ्च समयाम्।।
यदालोके लोकान्दहति महति क्रोध कलिते।
दयार्द्रा यद्दृष्टिः शिशिरमुपचारं रयचति। 39।

हे जननि!

तुम्हारे अधिष्ठान रूपी स्वाधिष्ठान में अग्नि के ऊपर रहने वाली महा समया नाम्नि शक्ति के साथ सन्वर्तेश्वर का मैं स्तवन करता हूं, जिसके क्रोध की ज्वाला से जलते हुये संसार को तुम दया की दृष्टि से शीतल उपचार रचती हो।

विज्ञान भाष्य :-

इस श्लोक में समया शब्द आया है-

''श्री विद्या बगला चैव कालरात्रिस्तथैव च।
जयदुर्गा छिन्नमस्ता समया पञ्चकीर्तिता।।''

श्री विद्या, वगला, कालरात्रि, जयदुर्गा, छिन्नमस्ता यह पांच समया है। यहां मणिपुर को स्वाधिष्ठान कहा है, केवल नाम परस्पर बदले हैं शेष सब समान हैं।

इन प्रत्येक चक्रों का वर्णन पहले भी आ चुका है। कोई इस भाष्य में पुनरुक्ति समझेंगे परन्तु पुनरुक्ति नहीं है। आगे के श्लोक में भी ये नाम आवेंगे। भगवती का ध्यान कहां कहां पर किया जाता है, उस गणना में 18 स्थान बताये हैं। किस किस स्थान में किस किस देवता और किस उपचार और किस भावना से भगवती का ध्यान होता है। एतदर्थ षट्चक्रों का पृथक 2 वर्णन आया है। नाभि स्थान दश दलात्मकचक्र से प्रकट हुई। सम्वर्त नाम की अग्नि चतुदर्श भुवन को जलाने लगती है। उस काल में भगवती की दयामय दृष्टि से समया रूपा देवी शीतल उपचार से जगत

की रक्षा करती है। इस चक्र का स्वरूप तन्त्र शास्त्र में बताया है- ''तस्योर्द्धेनाभि मूले दशदल ललिते पूर्णमेघ प्रकाशे नीलाम्भोज प्रकाशै रूपहितजठरे, डादि फान्तःसचन्द्रैः, ध्यायेद्वैश्वानरस्यारुण मिहर समं मण्डलं तत्रिकोणम्, तद्वाह्यै स्वस्तिकाद्यै त्रिभिरभिलसितं तत्र वह्नेस्ववीजम्।''

नाभि में दशदलात्मक यह चक्र है। मेघ के समान नीला वर्ण है। ड-कार से फ-कार तक दश अक्षरों की ध्वनि यहां से निकलती है। यह अग्नि का स्थान है, त्रिकोण के भीतर ''रं'' बीज के रूप में अग्नि रहता है। नाभी कमल में संहारेश्वर संहारेश्वरी के योग से संवर्त नाम की अग्नि-ज्वाला धधकती है, जिसे प्रलयाग्नि भी कहते हैं। ''यदा-लोका'' जिसकी लपक से संसार जलता जाता है। उस समय भगवती की दयामय दृष्टि किरणों से शीतल उपचार होता है। इस स्थान में भगवती का ध्यान करने से देह में जितनी प्रकार का ज्वलन या उपताप होता है वह शमन हो जाता है। ''संसार ताप तप्तानां त्वमेव शरणं विभो।'' संसार के दुःखों से संतप्त प्राणी को इस स्थान पर ध्यान लगाने से शान्ति मिलती है।

यथा-पञ्चसमया श्री-विद्या बगला- ''ॐह्लीं बगला मुखि सर्व दुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा'' कालरात्री। *

बगला ध्यानम्-

मध्ये सुधाब्धिमणिमंडपरत्नवेद्यां सिंहाशनोपरिगतां परिपीतवर्णाम्।
पीतांवराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीं देवींभजामिधृतमुद्गरवैरिजिह्वामा।

कालरात्रि-

अस्य श्री कालरात्रि मंत्रस्य, भैरव, ऋषि, अनुष्टुप् छंदः श्री कालरात्रि देवता ह्लीं वीजं, स्वाहा, शक्ति हूं कीलकम्, श्रीविद्याङ्गत्वेन विनियोगः। ह्लीं षड्दीर्घ मायाबीज से ध्यान करे।

....

* : तैजस 62 रश्मी इनके संमिश्रण विश्लेषण कर पिण्ड बनाने से अनेक अद्भुत प्रलयाग्नि के शास्त्र बनते हैं।

परापरा, चण्डेश्वर, परम्, चतुष्मति, तत्परा, गुह्यकालिका, अपरा, सम्वर्त, चिदानन्द, नीलकुब्जा, अघोरा, गन्धा, समरा, रसा, ललिता, स्मरा, स्वच्छ, स्पर्श, भूतेश्वर, शब्दा, आनंद, डाकिनी, आलस्या, रत्नडाकिनी, प्रभानन्दा, चक्रडाकिनी, योगानन्दा, पद्मडाकिनी, अतीत, कुब्जडाकिनी, स्वाद, प्रचंडडाकिनी, योगेश्वर, चंडा, पीठेश्वर, कोसला, कुल-कौलेश्वर, पावनी, कुक्षेश्वर, समयः, श्रीकंठ, कामा, अनन्त, रेवती, समयका, ज्वाला, पिङ्गला, कराला, मंदाख्या, कुब्जिका, करालरात्रीगुरु, परा, शान्ता, शिवगुरु, शान्त्यातीत, रत्नगुरु, सिद्धगुरु, विद्या, मेलगुरु प्रतिष्ठा, समयागुरु, निवृत्ति ये 62 रश्मी तैजस की हैं।

ध्यानम्-

आरक्तभानुसदृशीं यौवनोन्मत्तविग्रहाम्।
चतुर्भुजां त्रिनयनाम् भीषणां चन्द्रशेखराम्।।
प्रेतासन'समासीनां भजतां सर्वकामदाम्।
दक्षिणे चाभयं पाशं वामे भुवनमेव च।।
रक्तदंडधरां देवीं कालरात्रीं विचिंतयेत्।।

मंत्र- ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं कालेश्वरी सर्वजन मोहिनि सर्वमुख स्तम्भिनि सर्वराजवशंकरि सर्वदुष्ट निर्दलिनी सर्वस्त्रीपुरुषा कर्षिणी वंदिशृङ्खलां स्त्रोटय स्त्रोटय सर्वशत्रून् जम्भय जम्भय द्वेषं निर्दलं सर्वं स्तम्भय स्तम्भय उच्चाटय उच्चाटय सर्ववश्यं कुरु कुरु सर्व कालरात्रि कामिनि गणेश्वरि हूं फट् स्वाहा।।

अथ जय दुर्गा मंत्रः-अस्य श्री जय दुर्गा मंत्रस्य नारद ऋषिः गायत्री छंदः जय दुर्गा देवता ॐ बीजं, स्वाहा, शक्तिः रक्षिणी कीलकं, श्रीविद्याङ्गत्वेन विनियोगः। ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा। इति षडंगन्यास मंत्राः। ध्यानम्-

कीलालाभं कटाक्षैररि कुलभयदां मौलिवद्धेन्दुखंडाम्।
शंखं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्।।

सिंहस्कंधाधिरुढ़ां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयंतीम्।
ध्यायेद् दुर्गाजयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः।।

ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा।

अथ छिन्नमस्ता-अस्य त्रिशक्ति मन्त्रस्य भैंरव ऋषिः सम्राट छन्दः श्री बज्र वैरोचनीय देतवा ह्रीं बीजं, स्वाहा शक्तिः, षट कीलकं श्रीविद्याङ्गत्वेन विनियोगः।

षडंगमन्त्रा- ॐ खङ्गाय स्वाहा, ॐ सुखङ्गाय स्वाहा, ॐ अं श्रीविद्या रागाय स्वाहा, ॐ ऐं पाशाय स्वाहा, ॐ अं अंकुशाय स्वाहा, ॐ अं असुरान्तकाय स्वाहा। ध्यानम्-

स्वनाभौ नीरजं ध्यायेत् शुद्धं विकसितं सितम्।
रजः सत्व तमोरेखा योनिमण्डल मण्डितम्।।

मध्येतु तां महादेवीं सूर्यकोटिसमप्रभाम्।
छिन्नमस्तां करे वामे धारयन्तीं स्वमस्तकम्।।

प्रसारितं मुखां भीमां लेलिहानोग्रजिह्विकाम्।
पिबन्तीं रौधिरीं धारां निजकण्ठसमुद्गताम्।।

विकीर्णकेशपाशां च नाना पुष्पसमन्विताम्।
दक्षिणे च करे कत्रीं मुण्डमालाविभूषिताम्।।

दिगम्बरां महाघोरां प्रत्यालीढं पदस्थिताम्।
अस्थिमालाधरां देवीं नागयज्ञोपवीतिनीं।।

रतिकामोपविष्टां च केचिद् ध्यायन्ति मन्त्रिणः।
सदा षोडशवर्षीयां पीन्नोन्नत पयोधराम्।।

विपरीतरतौ सक्ताः ध्यायेद् रति मनोभवौ।
योनिमुद्रा समारुढां विचित्राशन संस्थिताम्।।

वर्णिनी डाकिनी युक्तां वामदक्षिणयोगतः।।

मन्त्र -ॐ क्लीं ह्रीं ऐं बज्र वैंरोचनीये ह्रीं ह्रीं फट् स्वाहा।

यहां पञ्च सामयिका का पूजन कर, पीछे गायत्री का पूजन तथा जप श्रीचक्र में होता है। इस नाभि चक्र में सन्वर्तेश्वर का मन्त्र भी जपते हैं। सम्वर्तेश्वर मन्त्र-तारपञ्चक मुद्धृत्य ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं तथैवच हस्रीं क्ष्मां क्ष्मीं क्ष्मीं किणि किणि हस् फ्रें हसफेंयै हस्क्षमलवरयूं ॐ हसक्षमलवरयीं, हसक्षमलवरयूं, ह्रीं ऐं हस्रीं हस्रूं हस्रां ह्रीं ह्रां ह्रां ऐं ऐं नित्ये भगवति हसफ्रें कुलेश्वरी ह्रां ह्रूं ह्रीं ह्रां ह्रूं ह्रां ङ ञ ण न क्षीं क्षं क्षं क्षैं श्रीं फट् हस्रौं फ्रें अघोरमुखि कुब्जिकायै छ्रां छ्रीं छ्रूं घोरे अघोरे वं शं सं हं किणि किणि महाकिणि विच्चे। यह सम्वर्तेश्वर का मन्त्र है।

तडित्वन्तं शक्त्या तिमिरपरिपन्थिस्फुरणया।
स्फुरन्नानारत्नाभरणपरिणद्धेन्द्रधनुषम्।।
तव श्यामं मेघं कमपि मणिपूरैक शरणम्।
निषेवे वर्षन्तं हरमिहिर तप्तं त्रिभुवनम्।। 40।।

भावार्थ

हे भगवती! मणीपुर ही एक मात्र कमल जिसका स्थान है। मैं श्यामवर्ण के मेघेश्वर और मेघेश्वरी की उपासना करता हूं यद्वा (अमरेश्वरम्) सौदामिनी विद्युत रेखा की चमक से अंधकार या अज्ञान को दूर करने वाली अमृतेश्वरी प्रकाश रूपा जिसकी स्फुरणा है। अनेक प्रकार के रत्नों से खचित इन्द्र धनुष की चमक वाली मेघेश्वर मेघेश्वरी हरमिहर सूर्य और सम्वर्तेश्वर से संतप्त त्रैलोक्य को वर्षा से शीतल कर रही है, ऐसे अमृतेश्वर का मैं भजन करता हूं।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में मणिपुर नाम से जिसका उद्देश्य किया गया है अन्यत्र योग शास्त्र में इस चक्र को स्वाधिष्ठान कहते हैं। यहां पर भगवती अमृतेश्वरी मेघेश्वरी के स्वरूप में रहती है इस कमल का स्वरूप इस प्रकार है।

"सिन्दूरपूररुचिरारुण पद्म मन्यत्, सौषुम्ण मध्य घटितं ध्वज मूलदेशे,

अंगच्छदैः परिवृर्तं तड़िदाभ वर्णैवाद्यैर्सविन्दु लसितैश्च पुरन्दरान्तैः।

तस्योपरि प्रबिलसद्विषद्प्रकाशमम्भोजमण्डलमथो वरुणस्य तस्य, अर्धेन्दु रूपलसितं शरदेन्दुशुभ्रं, वंकारबीजममलं मकराधिरुढ़म्। स्वाधिष्ठानाख्य मेतत् सरसिजममलं चिन्तयेत् यो मनुष्यः। तस्याहंकार दोषादिक सकल रिपुः क्षीयते तत् क्षणेन। योगीशः सोपि मोहाद्भुत तिमिरचय भानु तुल्य प्रकाशः। गद्यैर्पद्यैस्समस्तैविर्रचयति सुधाकाव्यसन्दोह लक्ष्म्।।

यह षट् दलात्मक नाभिचक्र में मणिपुर (जिसे स्वाधिष्ठान अन्यत्र ग्रन्थों में कहा है) यहां राकिनी देवी व-कार से ल-कार तक षट् वर्णात्मक चक्र में ध्यान करने से योग शक्ति, ज्ञान-शक्ति, रचना-शक्ति का विकास होता हे, मेघेश्वरी रूप में भगवती का ध्यान होता है। आप्य रश्मि 52 प्रकार की निकलती है। श्याम रंग का निर्देश अज्ञान तिमिर को दूर कर शान्ति प्राप्ति परक है। इस स्थान में द्वीपेश्वरः का मन्त्र जपा जाता है। तारपञ्चकमुच्चार्य सहक्षमलवेतिच रयूं नमो भगवती हस्फ्रैं बीज मतः परम् कुब्जिकायैंततो ह्रां ह्रें ह्रीं ङ ञ ण नमः अधोरमुखी छ्रां छ्रें छ्रूं।

जल की रश्मियों तथा उनके नामानुसार उनकी शक्ति का प्रयोग जान लेना चाहिये।

सद्योजात, माया, वामदेव, श्री, अधोर, पद्म, तत्पुरुष अम्विका, अनन्त, निवृत्ति अनाथ, प्रतिष्ठा, जनाश्रिता विद्या, अचिन्त्या, शान्ता, शशि, शेखरा, उमा, तीव्रा, गंगा, मणिवाहा, सरस्वती, अम्बुवाहा, कमला, तेजोदिशा प्रवाती, परावती, विद्या वागीश्वरा, चित्रा, चतुर्विद्येश्वरी, सुकमला, उमा गंगेश्वरी, मन्मथा, कृष्णेश्वरा, श्रीया, श्रीकण्ठा, लया, अनन्ता सती, समकरा, रत्नमेखला, पिंगला, यशोवति, साध्याख्या, हंसानंदा, परादिव्यौघा,वामा, मारदिव्यौघा, ज्येष्ठा, पीतोघा, रौद्री, सर्वेश्वरा, सर्वमयी ये 52 जल की रश्मियां हैं।

तवाधारे मूले सह समयया लास्यपरया।
नवात्मानं मन्ये नवरसमहाताण्डव नटम्।।

उभाभ्यामेताभ्यामुदयविधिमुद्दिश्य दयया।
सनाथाभ्यां जज्ञे जनकजननीमज्जगदिदम्।। 41।।

भावार्थ

हे भगवती! तुम्हारे अधिष्ठान मूलाधार में लास्य श्रृङ्गार रस के नृत्य में परायण समया अम्वा के साथ नयोन्यात्मक नवीन देह धारी नवरसात्मक महाताण्डव के नट शिव को मैं जानता हूं अथवा स्तुति करता हूं उदय-विधि संसार की पुनः रचना में दया से जिन्होंने मातृ-पितृवान संसार को बनाकर सनाथ किया है।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में मूलाधार जहां से भारी समष्टि और व्यष्टि सृस्टि की उत्पत्ति होती है, उसका वर्णन आया है। कुण्डलिनी स्थान सब का आधार है। इसलिए इसे मूलाधार कहते हैं। ''अथाधार पद्मं सुषुम्सुवर्णाभवर्णैः वकारादि सान्त्यैर्युतैर्वेदवर्णैः। (मूलाधार चतुष्कोण वृत्त में पश्चिमाभिमुख स्वयम्भूलिंग और डाकिनी शक्ति का निवास है। कुण्डलिनी के उत्तोलन में जो क्रिया होती है। कुण्डलिनी के उत्तोलन में जो क्रिया होती है वही ताण्डव नृत्य है। श्री क्रम में लिखा है, ''कर्णिकायां स्थिता योनी कामाख्या परमेश्वरी। अपानाख्यञ्च कन्दर्प आधारे तत्त्रिकोण। स्वयम्भू लिंग तन्मध्ये पश्चिमाभिमुखं प्रिये। भ्रमन् योनि गतं ध्यायेत् काम। बन्धूक सन्निभम्।'' तथाच ''मूलाधारे त्रिकोणाख्ये इच्छा ज्ञान क्रियात्मिके मध्ये स्वयम्भू लिंगस्तु कोटि सूर्य सम प्रभम्'' मूलाधार में नवाम्तेश्वर ॐ सहक्षमलंवरयूं नमो भगवति हस्फ्रें कुब्जिकायै ह्रां, ह्रूं, ह्रीं ङ ञ ण नमः अघोर मुखि छ्रां छ्रीं छ्रूं किणिकिणि बिच्चे। यह कुब्जिका देवी का मन्त्र है।

इस प्रकार मूलाधार चतुष्कोण के मध्य से पृथ्वी बीज 'ल' है, इसके भीतर त्रिकोण (''इच्छा, ज्ञान, क्रियात्मक'') के मध्य में स्वयंभू लिंग है, जिसका सञ्चालन काम बीज से होता है। साधक, पूरक, कुम्भक रेचनात्मक प्राणायाम सिद्धकरअपान को पूरक की सहायता से आकुञ्चन कर मूल बन्ध को बांधता है। सिद्धासन में बैठा खेचरी मुद्रा द्वारा हूं हूं हूं इस

प्रकार कुण्डलिनी को जागृत कर उर्द्धगति करता है, उस समय स्वयंभू लिंग पर सार्द्ध त्रिवृता कुण्डलिनी परा शक्ति को उच्छालन में जो क्रिया होती है वही लास्य है अर्थात शक्ति का नृत्य है। उस काल में स्वयंभू लिंग में जो स्फुरणा होती है। वह ताण्डव नृत्य है। स्वयंभू लिंग और कुण्डलिनी शक्ति का सञ्चालन रूपी कर्म या आदि माता पृथ्वी का 56 रश्मियों के बीच में उसकी अधिष्ठातृ देवता जो तुम आदि जननी हो, जिसने चतुर्दलात्मक मूलाधार को अधिष्ठान किया है। उसका यह नृत्य है। तुम्हारे श्रृंगार रस के विकास करने वाला अभिनया (प्रकाशन) ही नव रसात्मक नृत्य है। या जो नव व्यूहात्मक यन्त्र या नव कूटात्मक जो मन्त्र विग्रह है, या जो नवखण्डात्मक पृथ्वी तत्व है या जो नव योन्यात्मक जो श्री चक्र हैयानव रसात्मक जो वसुधा इसको सञ्चालन करने वाले जो तुम्हारे शिव शक्त्यात्मक लास्य ताण्डव नृत्य है, उनको मैं प्रणाम करता हूँ मार्कडेय ऋषि ने इस पृथकत चक्र को आधार ही नहीं कहा है। अपितु भगवती का स्वरूप बताया है। यथा- ''आधारभूता जगतस्त्वमेका मही स्वरूपेण यतः स्थितासि'' इस लास्य प्रिया भगवती और ताण्डव प्रिय शिव से ही सारे प्रपञ्च का विकास हुआ है। अतः माता-पिता की तरह यह संसार तुम दोनों से सनाथ हुआ। ''उदय विधि शब्द'' से संहार के अनन्तर दया की रश्मियों के प्रसारण से जो संसार का पुनः सृजन (जीवन) हुआ है, उसमें शिव शक्ति का जो हर्ष वही लास्य तथा ताण्डव नृत्य है। प्रायः सन्तान के होने पर माता-पिता हर्षित आनन्द के प्रमोद में नृत्यगीत करते हैं या कराते हैं। ''तवाधारे मूले'' मूलाधार जिसमें तुम्हारा निवास है यही कुण्डलनी महाशक्ति की विश्रान्त स्थली है। श्रीचक्र में यह वैन्दव स्थान हैं। जब इसमें कुण्डलिनी जागृत रहती है तब इसे मोक्ष स्थान भी कहते हैं। श्रीचक्र में जिस प्रकार षट् चक्र पृथक उनके आवरण देवता तथा वशिन्यादि शक्ति षोड्श नित्या तथा पञ्चाशत मातृकाओं का स्थान है जिनका विवरण प्रसंगाानुसार इस पुस्तक के भाष्य में स्थान-स्थान पर चुका है वे सब इस स्थान पर स्थित हैं योग मार्गानुसार षट् चक्र मनुष्य के शरीर में विभिन्न स्थानों पर है इनका प्रारम्भिक त्रिकोण वैन्दव स्थान

से चलता है वैन्दव स्थान जहां अमृत का क्षरण होता है, जिसे सुधासिन्धु या सहस्रार भी कहा जाता है। तवाधारे से तात्पर्य भगवती का मूल स्थान है, कोई-कोई भाष्यकार इस प्रकार भी इसका अर्थ करते हैं नाद के चार अंगों में से श्रीचक्र का जो त्रिकोण है वह परा है श्रीचक्र के अष्टकोण पश्यन्ति हैं। अन्तर्दशार और वहिर्दशार मध्यमा है, चतुर्दशार बैखरी है! यही चार प्रकार की वाणी है ''चत्वारि वाक्'' शिवचक्र जो दो दल वाले है मेखला और भूवृत्त हैं।

देह में मूलाधारदि षट्चक्र बिन्दु स्थान से कहे जाते हैं कला 50 तथा 360 का जो वर्णन है, वह पञ्चतत्व और 26 मानस तत्वों से नीचे है। अतः भगवती नाद-बिन्दु, कला से परे है। सुधा सिन्धों श्लोक में जो वर्णन है, भगवती का स्थान उससे भी परे है। जिसको शास्त्र ने ''सुगुप्तम् तद्यत्नात'' अतिशय परमामोद् सन्तान राशेः परं कन्दं सूक्ष्मं सकल शशि-कला सुद्धरूप प्रकाशं'' यह भगवती का शुद्ध स्वरूप चितकला रूप साधक गुण द्वारा महावेध महावन्ध तथा खेचरी मुद्रा को सिद्ध कर भगवती के मन्त्र को अपने से ही मूलाधार में स्थिर करता है। उसे कुण्डलिनी के विकास का अनुभव होने लगता है। साधक, मूलाधार और स्वधिष्ठान के मध्य में ब्रह्म ग्रन्थी को भेदन कर मणिपुर में जो प्रकाश होता है उसके आगे मणिपुर अनाहत में भगवती का पूजन षोडषी के दर्शन कर आज्ञा और सहस्रार में जाता है, सहस्रार में कल्प पादपों के बीच मणिद्वीप में भगवती का साक्षात्कार पाकर पुनः अवरोह मार्ग से मूलाधार में कुण्डलिनी को ले जाना यही भगवती का लास्य है लास्य प्रायः स्त्रियों में नृत्य होता है। लास्य में श्रृंगार करणा-रस की प्रधानता है। ताण्डव पुरुषों का नाच इसमें वीर, वीभत्स, अद्भुत-रस की प्रधानता है, परन्तु जब शिव शक्ति में मिल जाते हैं, तब शिव का नृत्य भी लास्य है। जब शक्ति शिवतत्व में मिलती है तब शक्ति का नृत्य भी ताण्डव है। शिवशक्ति तत्व जब मिलते हैं तब संसार बनता है, जब शक्ति शिव तत्व में लय होती है तब संसार का लय हो जाता है। लास्य की प्रधानता शिव शक्ति योग, ताण्डव की प्रधानता शक्ति शिव योग, श्मशान में महाकाली

महाभैरव का भयानक अद्भुत रस सूचक ताण्डव नृत्य होता है, प्रायः शंकर का स्वतन्त्र नृत्य ताण्डव है, भगवती का लास्य है, श्री भगवान कृष्ण का नृत्य रास, ''रसोहवै लब्धाया आनन्दी भवति'' ये तीन प्रकार के नृत्य भगवती के पृथक-पृथक हैं।

गतैर्माणिक्यत्वं गगनमणिभिः सान्द्रघटितं।
किरीटं ते हैमं हिमगिरिसुते कीर्तयति यः।।
सनीडेयच्छायाच्छरणशवलं चन्द्रशकलम्
धनुः शौनासीरं किमिति न निवघ्नातिधिषणाम्।।42।।

भावार्थ

हे हिमगिरि सुते! तुम्हारा स्वर्णमय कुकुट जिसमें आकाश के देदीप्यमान सूर्यादि मणि जड़े हुए हैं तथा जिस माणिक्य मुकुट की चमक से नाना प्रकार के रंगों की छटा

विशेषज्ञातं, उड्वेश्वर, उड्वेश्वरी जलेश्वर जलेश्वरी, पूर्णेश्वर पूर्णेश्वरी, कामेश्वर कामेश्वरी, श्रीकंठ गंगा, अनन्त, रसमा, समकर, मतीनंगला, पातालदेवी, तारलाख्या नादा आनन्द डाकिनी, आलस्या शाकिनी, महानन्दा, लाकिनी, योग्या काकिनी अतीत, साकिनी, पाद हाकिनी, आधारेश्वरी, रक्ता चक्रशीश चंडा, कुरंगी, कुरंगीणा, कराला, महादृष्टा, जहांच्छुष्मा, अनादि, पिंगला, मातंगी, सर्वजनविमला, पुलिका, योग, विमला, शाम्भरी, सिद्धीउर्मिला, वचावरा, श्याम विमता, कुलालिवा, मित्रेशा, कुब्जा, अहश्या, लध्वी, षटीश, कुलेश्वरी, पर्याधीश और अजा

....

अर्ध चन्द्राकृति इन्द्र धनुष की भ्रान्ति बुद्धि में आती है। उस मुकुट की मैं वन्दना करता हूं।

विज्ञान भाष्य

भगवति की मूर्ति की शोभा मुकुट से चरण तक का वर्णन इस श्लोकों में आ रहा है। पूर्व वर्णित श्लोकों में भगवती की मन्त्रात्मक मूर्ति दर्शायी

है। इन श्लोकों में सुन्दरता के समुद्र का वर्णन आया है। इसी से इसका नाम सौन्दर्य लहरी (सुन्दरता की लहर) है। तथा आत्मज्ञान के विकास से आध्यात्मिक आनन्द की तरंगों का वर्णन होने से इसे आनन्द लहरी भी कहा है। भगवती के पाद पद्म की 360 रश्मियों का विकास इसमें दिया है। भगवती के मुकुट की सहस्रशः मणियों की क्रान्ति की तुलना द्वादशादित्य रश्मि पुञ्ज से नहीं कर सकते हैः इन मुकुट मणियों के सहस्रों रंग की तुलना इन्द्र धनुष के अनेकों रंगों से नहीं की जा सकती है। इस रचना का नाम सौन्दर्य लहरी और आन्नद लहरी भी कहा है, इसमें विश्व की सुन्दरता रूपी रस का समुद्र तथा आनन्द लहरी भी कहा है, इसमें विश्व की सुन्दरता दिखायी गई है। वास्तविक सौन्दर्य क्या है सुन्दरता रूपी रस का समुद्र तथा आनन्द का महान सागर (आत्म निष्ठा) इस रचना में दिखाई है, भगवती के सौन्दर्य का वर्णन श्लोक 12 में ''त्वदीयं सौन्दर्य x x x x x x तपोभिदुष्प्राप x x x x गिरिशसायुज्पदवीं'' उस दिव्य सौन्दर्य को जो कि पार्वती के स्वरूप में है ''तुहिन गिरिकन्ये'' कहा है वह अवर्णनीय बता कर भगवती के मन्त्रात्मक मूर्ति 32 श्लोक ''शिवः शक्ति कामः'' में बताया है। यन्त्रात्मक मूर्ति ''चतुर्भिः श्रीकण्ठैः'' श्लोक 11 में कुण्डलिनी स्वरूप श्लोक 21 ''तड़िल्लेखा'' कहकर इस स्वरूप का परमानन्द का समुद्र बताया है। इस श्लोक 42 में ''गतैर्माणिक्यत्वं भगवती हिमगिरिसुता पार्वती की मूर्ति के प्राकृत सौन्दर्य का वर्णन हुआ है। यहां से षोडश श्रृंगार की रचना स्त्रियों को अपने दिव्य स्वरूप बनाने का निर्देश है। भारतवर्ष में सबसे उच्च हिमालय की राजपुत्री भगवती उमा का सुन्दर स्वरूप और षोडश श्रृंगार का वर्णन यही प्रकृति की सुन्दरता का समुद्र है। इस देश की श्रृंगार रचना देवियों में उनके दिव्य भाव को प्रकट करने वाली है। जो कन्या 42वें श्लोक में वर्णित श्रृंगार नित्य करती रहती है, उसके मन की पवित्र भावना उसके दिव्य स्वरूप का विकास कर उसमें देवी की शक्ति का संञ्चार होता है। इस श्लोक में कालिमा में श्वेत रंग का वर्णन कर उस स्वरूप के ध्यान से अन्तःकरण का अन्धकार दूर होना बताया है, प्राकृतिक सौन्दर्य में यह दिखाया है।

कालिमा छादित नभो मण्डल में स्वच्छ तारा मण्डल की चमक से जिस प्रकार विभावर (रात्रि) की सुन्दरता अनुपमेय है। उसी प्रकार भगवती के केश कलाप में पुष्पस्तव की शोभा कमनीय है। इस वर्णन से भगवती पार्वती का सहज सौन्दर्य और सुकुमारता का पूर्ण प्रकाश दिया गया है। (हिमालय पुत्री भगवती पार्वती इतनी सुन्दर-सुकुमार होती हुई समय पर शत्रुओं का विध्वंश करने में कालिका स्वरूप से प्रकट हुई। और आत्मज्ञान देने में उमा के स्वरूप से जैसे केनोपनिषद में आया है। अतः पुत्री को पिता का कर्तव्य उसके सम्मान और शान्तिमय जीवन चलाने का सबसे प्रथम समर, साहित्य का विकास कराना है। यदि पार्वती को संसार पाण्डित्य नहीं होता तो महिषासुर आदि आतंककारियों से संसार में शान्ति स्थान कैसे कर सकती यथा- 'खड्गं चक्र गदा' तलवार बंदूक आदि शस्त्रास्त्रों का व्यवहार कैसे कर सकती थी। भगवति पार्वती के (महाकाली महालक्ष्मी महासरस्वती) तीनों स्वरूपों के ध्यान में शस्त्र, अस्त्र धारण की हुई मूर्ति बताई है, इस प्रकार की मूर्ति का ही साधक को उपासना में ध्यान करने से विजयी होना बताया है। केवल सैन्य कुशलता ही नहीं, अपितु आध्यात्म ज्ञान भी इसी भगवती उमा ने दिया है, जैसे केन उपनिषद में आया है। ''सतस्मिनन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानों उमां हैमवतितांहोवाच'' ++ इससे साधक भगवती का शत्रु पर विजयकारी शक्ति कालिका स्वरूप आत्म ज्ञानदात्री सरस्वती स्वरूप आदि का अनुभव कर सकता है।

धुनोतु ध्वान्तं नस्तुलितदलितेन्दीवरवनम्।
घनस्निग्धश्लक्ष्णं चिकुरनिकुरम्बं तव शिवे।।
यदीयं सौरभ्यं सहजमुपलब्धुं सुमनसोः।
वसन्त्यस्मिन्मन्ये वलमथनवाटी विटपिनाम्।।43।।

भावार्थ

हे शिवे! विकसित नील कमल वन के सदृश स्निग्ध चमकीले तुम्हारे सिर के सघन केश पुञ्ज हमारे अज्ञान तिमिर को दूर करें। इन्द्र वाटिका

के पुष्पस्तवक, इन स्निग्ध कोमल केशों में इनकी सहज सुगन्धी के प्राप्त करने को निरन्तर वास करते हैं। अर्थात् (पुष्पों में सुगन्धी भगवती के केश-कलाप से प्राप्त होती है)।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में भगवती के केश-कलाप की सुगन्धी के ग्रहण करने को इन्द्र की प्रधान वाटिका के पुष्प भगवति के केशों में निवास करते हैं और उन पुष्पों का जो सौरभ्य है वह भगवती की ही सुगन्ध है। अर्थात् ''यद्यद्विभूति'' जो भी जिस पदार्थ में विभूति है वह सब भगवती की है। पुष्पों में सुगन्ध भगवती की है। यथा- ''पुण्योगन्धः पृथिव्यां'' (गीता) प्रायः स्त्रियां सौन्दर्य विकास यद्वा सिर में शिवशक्त्यात्मक योग होने से पुष्प रचना सिर में करती है, उसका समुदाचार इसमें दिखाया है। श्वेत पुष्पों की कृष्ण केशों में रचना का तात्पर्य कृष्ण वर्ण आकर्षक होने से श्वेत वर्ण को खीचता है। जैसे राधिका के श्वेत वर्ण पर कृष्ण वर्ण का आकर्षण संयोग है, उस भाव का द्योतक है। अर्थात् भगवती के केश कलाप की रचना में जिस प्रकार श्वेत पुष्प की रचना प्रकाशवती होती है इसी तरह साधक के अन्तःकरण का अन्धकार इस स्वरूप के ध्यान से दूर हो जाता है।

वहन्ती सिन्दूरं प्रबलकवरी भारतिमिर-
द्विषां वृन्दैर्वन्दीकृतमिवनवीनार्ककिरणम्।
तनोतु क्षेमं नस्तव वदनसौन्दर्यलहरी-
परीवाहस्रोतः सेरणिरिव सीमन्तसरणिः।। 44।।

भावार्थ

हे भगवती! तुम्हारी सीमन्त (मांग रेखा सिन्दूर को धारण करती हुई) तुम्हारे मुख सौन्दर्य की धाराओं के निस्सरण मार्ग केश-पुञ्ज के मध्य में प्रबल कवरी भार अर्थात् केश कलाप अन्धकार रूपी शत्रु समूह द्वारा वन्दि (अवरुद्ध) किए प्रातःकालीन सूर्य रश्मियों की भांति सिन्दूर पराग धारण

किये तुम्हारे मुख की सुन्दरता की लहरें हमारे कल्याण का विस्तार करें।

विज्ञान भाष्य

सीमन्त सरणी मांग के बीच में सिन्दूर स्त्रियों का सौभाग्य चिह्न है विवाह के दिन से मांग में सिन्दूर लगाने की प्रथा भारतवर्ष में है स्त्रियों के केशों की (सिर के मध्य) समान दरों विभाग कर मध्य में सिन्दूर लगाना यह शिक्षित हिन्दू समाज का आचार है। इसी से स्त्रियों को सीमन्तिनी भी कहते हैं, शिरकी केश-पंक्तियों के मध्य भाग में श्रृंगार करना सौभाग्य चिन्ह है, इसका रहस्य काम शास्त्र में लिखा है। इसमें उत्प्रेक्षालंकार है। भगवती की स्थूल मूर्ति का ध्यान पूजन इस श्लोक से प्रारम्भ होता है। पूर्व श्लोकों में भगवती का मन्त्रात्मक विग्रह और अन्तर्याग वर्णन हुआ है। सिर से वर्णन का सबसे प्रथम केशों की कालिमा और उनके मध्य में सीमन्त रेखा और उसमें सिन्दूर धार से मंगलमय भगवती के मुख का वर्णन है। प्रथम केश कालिमाा के वर्णन से तात्पर्य आदि में ''तम आसीत् तमसा गुह्यमग्रम्'' सृष्टी के पूर्व में जो अन्धकार था वही काली स्वरूप है, यहां से यही आदि बिन्दु है, यहां से विमर्श सीमन्त रेखा (मध्यवर्ति रेखा) का वर्णन आया है, और इसमें सिन्दूर की लालिमा जीवन सत्ता का स्पन्दन बताया है। ''द्विषांवृन्दैर्वन्दी कृत'' शब्द से न केवल अलंकार की उपमा है अपितु इस स्वरूप की उपासना (ध्यान) करने वाले साधक की सब विघ्न बाधायें दूर हो जाती हैं। इसका यह ताप्पर्य है, उपासक को प्रातःकालीन सूर्य के प्रकाश की तरह ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। शून्यागार श्मशान, गिरिकन्दरा में एकान्त अन्धकार में जब साधक बैठता है उसे प्रातःकालीन सूर्य की भांति भगवती का प्रकाश होने लगता है।

अरालैः स्वाभाव्यदलिकलभसः श्रीभिरलकैः।
परीतं ते वक्त्रं परिहसति पंकेरुहरुचिम्।।

दरस्मेरे यस्मिन् दशनरुचि किञ्जल्करूचिरे।
सुगन्धौ माद्यन्ति स्मरदहनचक्षुर्मधुलिहः।। 45।।

भावार्थ

हे भगवती! तुम्हारा मुख कतल भ्रमर पंक्ति सदृस कालिमा एवं स्वभाव से कुटिल (मुड़े हुए) अलकावली से परिवेष्ठित कमल से सौन्दर्य का उपहास करता है। (जिस मुखारबिन्दु में) ईषत् हास्य दन्तपंक्ति और सुगन्धित पराग युक्त (मुख कमल) और कन्दर्प को दहन करने वाले महादेव का तृतीय नेत्र रूपी भ्रमर उस मुखारबिन्दु के माधुर्य और सौन्दर्य का पान करने में मस्त हो रहा है।

विज्ञान भाष्य

अराल कुटिल (मुड़े हुए) अलिकलभ (भ्रमर-पंक्ति) दरस्मेरे (इषत् हास्य स्मर) हिलचषु शंकर का तृतीय ज्ञान नेत्र से तात्पर्य ज्ञान, सम्पन्न तुम्हें देख सकते हैं। कुन्तल से परिवेष्टित, तुम्हारे मुखार-बिन्दु की शोभा इस समय कमलों की कान्ति को भी तिरस्कार कर रही है। अर्थात् कमल पुष्प के सौन्दर्य से अधिक तुम्हारे मुखार बिन्द की शोभा बनी हुई है। तुम्हारे घुंघराले केशों की शोभा भ्रमर की पंक्ति के सौन्दर्य से भी अधिक कमनीय है, तुम्हारे मन्द हास्य से दन्त पंक्ति की शोभा तथा मुखार बिन्दु की मधुर सुगन्धित को भगवान शिव (जिन्होंने कामदेव को भस्म किया है) भी टकटकी लगाकर तुम्हारे मुखारबिन्दु की शोभा को देख मस्त हो रहे हैं। शिव का तृतीय नेत्र जिससे कामदेव का दहन हुआ था वही तुम्हारे मुख कमल पर निरन्तर टकटकी लगाये हुये है। शिव के काम दहन के विशेषण से यह ध्वनि है कि उस दिव्य मुखार-बिन्दु की अपूर्व झांकी सब के चित्त को मोहन करने वाली है। जो भगवती की श्रद्धा उपासना करते हैं उनके मुख की कान्ति भ उज्जवल और आकर्षण होती है।

ललाटं लावण्यं द्युतिविमलमाभाति तव यद्-
द्वितीयं तन्मन्ये मकुटघटितं चन्द्रशकलम्।।

विपर्यासन्यासादुभयमपि संभूय च मिथः।
सुधालेपस्यूतिः परिमणतिराकाहिमकरः।। 64।।

भावार्थ

हे भगवती! लावण्य सौन्दर्य की छटा से तुम्हारे ललाट की विमल शोभा मानो मुकुट में विराजमान चन्द्रमा का दूसरा खण्ड है (चन्द्र शकल ऊपर की ओर ललाट चन्छ नीचे की ओर है) जब इन दोनों चन्द्र खण्डों को एक दूसरे से मिलाते हैं, वह अमृत लेप द्वारा दो खण्डों का एकी भाव पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्र हो जाता है।

विज्ञान भास्य

ललाट में चन्द्र स्थान पूर्व वर्णित है। सहस्रार के चन्द्रमा का ही प्रतिबिंब इससे पहले वर्णन किया है। इस ललाट प्रदेश से ही अमृत सिञ्चन होता है। अर्ध चन्द्र भगवती के मुकुट में ऊपर की ओर है, भालरूपी चन्द्र नीचे की ओर है, जब योगी यहां पर ध्यानावस्थित होकर अमृत पान करता है, वह दशा उसके पूर्ण चन्द्र की हो जाती है। अर्थात् भगवती की मन्त्रात्मक ज्योति पञ्च दशी विद्या इस स्थान पर ध्यान करने से सिद्ध होती है। इस श्लोक में उत्प्रेक्षालंकार है ललाट में अर्द्ध चन्द्र प्रेक्षण या द्वितीयार्द्ध में अतिशयोक्ति अलंकार है।

भ्रुवौ भुग्ने किञ्चिद् भुवनभयभङ्गव्यसनिनि।
त्वदीये नेत्राभ्यां मधुकररुचिभ्यां धृतगुणान्।।
धनुर्मन्ये सव्येतरकरगृहीतं रतिपतेः।
प्रकोष्ठे मुष्टौचस्थगयति निगूढान्तरमुमे।। 47।।

भावार्थ

हे उमे! हे भुवन-भय भजन-कारिणी सांसारिक दुखों से मुक्त करने वाली तुम्हारी भ्रमर की शोभा वाली दोनों भृकुटियों ऐसी प्रतीत होती हीं कि कामदेव के वामहस्त में उठाये हुए धनुष की मुष्टिका और प्रकोष्ठ को ये ढीला कर देती है।

विज्ञान भाष्य

उपासक को भगवती के मुखारबिन्दु के दर्शन जैसे होते हैं, वैसे ही

उसका सब प्रकार का भय हट जाता है। भक्त को भगवती का इस प्रकार का दर्शन होता है। इस श्लोक में भ्रूलतिका के सौन्दर्य वर्णन द्वारा निर्भयता का आशय वर्णन किया है। इस श्लोक में मायाबीज है। यह महामाया का दव्यि सौन्दय कथंचितही किसी साहित्य में आ सके। भ्रुयुग की भगनता और नेत्र कालिमा सामुद्रिक परीक्षा में स्त्रियों में से केवल सौन्दर्य ही नहीं अपितु प्रभाव शीलता का ही चिन्ह हैं

हे संसार भय भञ्जन कारिणी। पार्वती तनिक टेढ़े तुम्हारे भ्रूयुगल और भ्रमर के समान क1ष्ण नेत्रयुगल कामदेव के वाम हस्त मणि वन्ध और मुष्टिका द्वारा धारण किए हुए धनुष की डोरी को ढीला करते हैं।

अहः सूते सव्यं तव नयनमर्कात्मकतया।
त्रियामां वामं ते सृजति रजनीनायकतया।।
तृतीया ते दृष्टिदरदलितहेमाम्बुजरुचिः।
समाधत्ते संध्यां दिवसनिशयोरन्तरचरीम्।।

भावार्थ

तुम्हारा दाहिना नेत्र सूर्यात्मक होने से दिन को बनाता है, वामनेत्र चन्द्रमा होने से रात्री का निर्माण करता है। ईषद् विकास कम की कान्ति के समान तुम्हारा तृतीय नेत्र दिन रात्री के मध्य में रहने वाले सन्ध्या काल को बनाता है।

विज्ञान भाष्य

यहां भगवती के तीन नेत्रों का वर्णन किया है। रात दिन के दो नेत्र तीसरा जो सर्व काल बना रहता है यह अनन्त दृष्टि है उपासक भगवति के इस तृतीय ज्ञान नेत्र की प्रसन्नता से अनन्त ज्ञान सुख को प्राप्त करता है।

विशाला कल्याणी स्फुटरुचिरयोध्याकुबलयैः।
कृपाधाराऽऽधारा किमपि मधुरा भोगवतिका।।

अवन्ती दृष्टिस्ते बहुनगरविस्तारविजया।
ध्रुवं तत्तन्नामव्यवहरणयोग्या विजयते।। 49।।

भावार्थ

हे भगवति तुम्हारी दृष्टि विशाला (अन्तर्विकास रूपा) कल्याणी विस्तार रूपा (स्फुटरुचि स्वच्छ सुन्दर मूर्ति का दर्शन) अयोध्या (स्मेर कनीन का) कृपा धारा (अलसा) मधुरा (प्रान्त कनीनका) इन-इन नामों से व्यवहार योग्य तुम्हारी विजय हो!

विज्ञान भाष्य

पूर्व श्लोक में ''अहः सूते'' भगवति की दृष्टी का वर्णन है दृष्टि से ही सृष्टी की रचना दिखाई है। आठ प्रकार के कार्य सिद्धि के लिए आठ प्रकार की दृष्टि बतायी है। जैसा कार्य साधक को सिद्ध करना अभीष्ट हो वैसी भगवती की दृष्टी का ध्यान करे और साधक की भी वैसी दृष्टि होनी चाहिए विशाला दृष्टि अन्तःकरण में विकास देने वाली बृह्मभि मुखी बनाने वाली कल्याणी मंगलात्मिका दृष्टि स्फुटरुचि, जिससे शोभा अर्थात् सौन्दर्य का पूर्ण विकास हो। अयोध्या, जो शत्रुओं को जीतने वाली है जिसके साथ कोई दूसरा टकटकी न लगा सके। कुवलया, कमल पुष्प दृष्टि, कृपा धारा, अनुग्रह रूपा, आधार स्थिर दृष्टि, मधुर प्रेम रूपा, अवन्ति रक्षा, की दृष्टि है। इन्हीं नामों से विशाल नगर (बद्रिनाथ पुरी) कल्याणी नगर अयोध्या धारा, मथुरा, अवन्तिका, आदि नाम से भगवती की पुण्य-पीठ हैं। यथा- 'अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका, पुरी द्वारा वती चैव सप्तैता मोक्षदायिका'' विशाला दृष्टी से विशाल नाम नगरी इत्यादि, भगवती की इन विचित्र दृष्टियों से विशाला आदि नागरियों का व्याहार हुआ है। ये भगवती की नेत्र रश्मि प्रवाह से तत्तन्नाम की नगरियाँ विस्तारित हुई है। इसका रहस्य यह है इस पद में देवी के आठ प्रकार की दृष्टि का वर्णन आया है। विशाला कल्याणी इत्यादि विशाल नाम से कही जाती है। अन्तःविकास करने वाली मुग्धा दृष्टि आश्चर्य भाव संकेत करने वाली विस्मिता, स्मेर मुखी दृष्टि, अयोध्या आलस्य

व्यञ्जन की दृष्टि धारा सौर्य, भाववती मधुरा, स्नेहमयी आभोगवती मोहभाव को प्रकट करने वाली मुग्धा दृष्टि तिरछी दृष्टि, विजया, यह आठ प्रकार दृष्टि आठ प्रकार के पुरश्चरण में आठ प्रकार की सिद्धियां देने वाली है, संक्षोभण पहली दृष्टि, विशाला इस क्रम से (2) आकर्षण (3) द्रावण (4) उन्मादन (5) वशीकरण (6) उच्चाटन (7) विद्वेषण (8) मारण इन क्रियाओं में क्रम से उन उन दृष्टियों की आवश्यकता है। देवी की और उपाशक की तत्तकार्य की दृष्टि आदेय है! जिन-जिन स्थानों पर भगवती की दृष्टि से संक्षोभण आकर्षण द्रावण आदि सिद्धियां हुई हैं, उन-उन नामों से उन 2 स्थानों का नाम अयोध्या आदि व्यवहार हो रहा हैं अयोध्या आदि नगरियों के नाम के जो वर्णन हुए हैं श्रीचक्र के प्रस्तार के अनुसार मनुष्य शरीर में भिन्न-भिन्न प्रदेशों में ये स्थान है। जैसे त्रोडल तन्त्र में आया है। ''वाराणसी भ्रुवो र्मध्ये ज्वलन्ति लोचनत्रये माया वती मुखे वृत्ते कण्ठे चाष्ट पुरी तथा नाभिमूले महेशानि अयोध्या पुरि संस्थिता काञ्ची पीठं कटी देशे श्रीचक्रं मेरुदण्डके।

कवीनां सन्दर्भस्तवकमकरन्दैकरसिकं।
कटाक्षव्याक्षेपभ्रमरकलभौ कर्णयुगलम्।।
अमुञ्चन्तौ दृष्टवा तव नवरसास्वादतरला।
असूया संसर्गादलिकनयनं किञ्चिदरुणम्।।50।।

भावार्थ

हे भगवती! तुम्हारे तृतीय नेत्र के कटाक्ष व्याक्षे से कवियों के सन्दर्भ रूप मकरन्द के रसिक जो कि युगल है। भ्रमरों के छोटे-छोटे बच्चों के कलभ शब्द करने वाले नवरसाों के स्वाद लेने से तरल हुए उनकी असूया से तुम्हारे नेत्रों में लालिमा आ गई है।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में भगवती के कटाक्ष व्याक्षेप नेत्र के चलाने से कर्णयुग्म में अनेक रस युक्त कविता के श्रवण करने का आनन्द इस प्रकार की

कवित्व शक्ति जहाँ व्यासादिकों की कविता तुच्छ हो जाती है। ऐसी नवरसात्मक कविताओं की स्फुरणा साधक को भगवति के इस रूप के दर्शन से प्राप्त हो जाती है।

इस श्लोक में कामबीज है। कलभौ से काल, कवी से ईकार युगलम् से अनुस्वार यह मिलाकर (क्लीं) कामबीज बनता है। कविता शक्ति कामबीज की सिद्धि पर निर्भर है। इसी कामबीज को कालीदास ने जपा था। इसमें अतिशयोक्ति अलंकार या रूपाकालंकार है भगवती के नेत्रों की शोभा और तृतीय नेत्र भगवती के अग्निवर्ण कहने से उसका विशेष ध्यान है।

शिवे श्रृङ्गारार्द्रा तदितरजने कुत्सनपरा।
सरोषागङ्गाया गिरिशचरिते विस्मयवती।।
हराहिभ्यो भीता सरसिरुहसौभाग्यजयिनी।
सखीषु स्मेराते मयि जननि दृष्टिः सकरुणा।। 51।।

टीक

हे जननी! शिव पर तुम्हारी दृष्टी श्रृंगार रसमयी है, पिघलाने वाली शिव के अतिरिक्त कुत्सित अर्थात् घृणा जनक (वीभत्स) दृष्टि गंगा पर रोषभरी दृष्टि (रौद्र रसात्मक) शिव के चरित्रों पर आश्चर्य (अद्भुत रस की) दृष्टि शिव के शरीर पर सर्पो को देख का भय भीत (भयानक) दृष्टि कमलों के सौन्दर्य पर विजय दृष्टि (वीर रस) सखियों पर हास्य मयी (हास्य रस दृष्टि) और मुझ दीन पर करुणामयीदृष्टि हैं।

विज्ञान भाष्य

42 श्लोक में भगवति की दृष्टि रश्मियों का वर्णन चल रहा है दृष्टि विज्ञान सामुद्रिक शास्त्र में एक महत्व की बात मानी गई है। इस पर भी स्त्री की दृष्टि से मनोभाव तथा उसके जीवन की सर्वप्रकार की घटनाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। दृष्टि विज्ञान में नेत्र की आकृति, नेत्र का रंग, नेत्र की पुतली की स्पन्दता, या चन्चलता, स्वाभाविक रीति से

उर्ध्व मुखी दृष्टि, अधो मुखी दृष्टि, तीर्यक् दृष्टि, सस्नेह दृष्टि, रुक्ष दृष्टि, टकटकी दृष्टि, चोर दृष्टि, पशु दृष्टि, बज्र दृष्टि विष दृष्टि, अनुग्रह दृष्टि आदि भेद होते हैं। एक दृष्टि मात्र से ही सम्पूर्ण भावनाओं का ज्ञान हो जाता है। मानव संसार में तो इस विज्ञान की बड़ी आवश्यकता है। यह प्रचलित बात है, कि 'दृष्टि की सृष्टि' जैसी दृष्टि की रश्मियों का प्रसरण होगा वैसा ही सारा भाव सामने बन जाता है मनुष्य की विद्या, बुद्धि, आयु, सदाचार, विनयन, सम्पत्ति उसकी नेत्राकृति ज्योति से जानी जा सकती है। किसी कवि ने कहा है 'नयना देत बताय हैं, सबको हेत अहेत की' अर्थात् दृष्टि द्वारा हित या अहित की बात प्रकट हो जाती है। दृष्टि रश्मि मानसिक रश्मियों से मिलकर विस्तार पाती है। मनोभाव मन की किरणों द्वारा अपनी भावनात्मक रश्मियों से सम्मिश्रण होकर नेत्र की रश्मियों के साथ प्रवाहित होता है। नेत्र सूर्य सोमात्मक रश्मिपुञ्ज- को निरन्तर प्रवाहित करते रहते हैं। इन दोनों नेत्रों में अनु-ग्रह अवग्रहात्मक शक्ति विद्यमान है रश्मियों के पृथक-पृथक संमिश्रण से अनेक प्रकार की प्रवाहित धारा बन जाती है। जिनका पुञ्जीकरण प्रवाह अमृत या विषकासा प्रभाव उत्पादन करता है, दृष्टि प्रभाव केवल मानव जाति की दृष्टि का ही नहीं है, अपितु पशु, पक्षी, कीट, पतंगादिको की दृष्टियों का भी भिन्न प्रकार का प्रभाव होता है। किसी में आकर्षण की दृष्टि किसी में भयानकता की किसी में चञ्चलता की किसी में उग्रता आदि दृष्टियों की प्रधानता है। यह दृष्टि विज्ञान भूलोक निवासी जीवों पर ही समान नहीं हो जाता। (गगनचारी ग्रह नक्षत्रों की दृष्टि भी मनुष्य लोक में उथल पुथल करने वाली हो जाती है।) ज्योतिष-शास्त्र में ग्रहों की तथा नक्षत्रों की दृष्टि पर बडत्र विचार किया गया है। (ऋतुओं का परिवर्त्तन वनस्पतियों में वल-वीर्य रस की उत्पत्ति ग्रहों की ही दृष्टि पर है।) किसी ग्रह की सीधी दृष्टि किसी की वक्र दृष्टि पर विचार होता है। शुभ ग्रहों की सीधी दृष्टि लाभकारी, पाप ग्रहों की वक्र दृष्टि भावोत्पादक होती है। पुराण में कहा है गणेशजी के जन्म पर सब देवता सूर्यदि ग्रह भगवती पार्वती के यहां आशीष देने गये, इनके साथ शनिश्चर भी गये। शनिश्चर

अपनी आंख मूंद कर गये, इनसे पूछा गया तुमने मुख क्यों छिपाया, उसने कहा मेरी दृष्टि कष्ट देने वाली होती है। इस कारण मैं नेत्र बंद कर के आया। सब के आग्रह से शनिने नेत्र खोले परिणाम यह हुआ कि गणेश का शिर कट गया, यह शनी की सीधी दृष्टि का फल है। पुनः चन्द्रमा की सीधी दृष्टि पड़ने पर उस पर जो हाथी का सिर लगाया था, लग गया। जैसी शनी की दृष्टि विनाशकारी है, वैसी ही चन्द्रमा की दृष्टि अमृत श्राविणी होती है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार की दृष्टियां होती हैं। प्रायः आश्विन शुक्ला पूर्णिमा को छतों पर घृत या खीर रात्रि में रखते हैं, जिससे सोम रश्मियों से अमृत कण उसमें पड़े यतः उस दिन शरद कालीन पूर्ण चन्द्र से सोमकला की रश्मियां टपकती हैं।

इस श्लोक में भगवतो की आठ प्रकार की दृष्टि का वर्णन आया है, जो मुख्य दृष्टि है। 'शिंवे श्रृंगारार्द्रा' शिवजी पर जब भगवती की दृष्टि रश्मि पड़ती है, श्रृंगार रस से भरी हुई दृष्टि है (श्रृंगारार्द्रा) शिव के अतिरिक्त मूर्तियों पर जो दृष्टि अनिच्छा प्रकट करने वाली है, वह कुत्सित दृष्टि है। गंगाजी पर सापत्ल्य भाव की शंका से रोष भरी (रौद्ररस) दृष्टि है, शिव के अद्भुत कार्यों को सुन कर आश्चर्यमयी (अद्भुत रस) दृष्टि हो जाती है। जब शिव के शरीर पर लिपटे हुए विषैले सर्पों पर देखती है, तो भयभीत भयानक दृष्टि हो जाती है। कमलों की सौन्दर्य से अपने मुख कमल को अधिक मनोहर देखकर उच्च दृष्टि विजयवती (वीर रस) की होती है अपने साथ सहेलियों को देखकर हास्यमयी दृष्टि (हास्य रस की) और मुझ पर तुम्हारी दयामय (करुण रस) की दृष्टि पड़ती है। इसके अतिरिक्त नवम शान्त दृष्टि है जिस दृष्टि से मोक्ष प्राप्ति होती है। साध ाक को चाहिए कि भगवती की पूजा उपासना ऐसे आकर्षक मन से करे जिससे भगवती की करुणामय दया की दृष्टि अपने ऊपर पड़े।

गते कर्णाभ्यवर्ण्णं गरुत इव पक्ष्माणि दधती।
पुरां भेत्तुश्चित्तप्रशमरसविद्रावणफले ।।

इमे नेत्रो गोत्राधरपतिकुलोत्तंसकलिके ।
तवाकर्णाकृष्टस्मरशरविलासं कलयतः ।। 52 ।।

भावार्थ

पर्वतराज हिमालय वंश की कलिकारूप-भूपण हे भगवती तुम्हारे कानों तक लम्बे नेत्र त्रिपुरासुर के वध करने वाले शिव के अन्तः करण में शान्ति रस को दूर कर कामरस को उत्पन्न करते हैं।

विज्ञान भाष्य

पूर्व श्लोक में जो भगवती की नवरसात्मक दृष्टि का दिग्दर्शन किया है, उन दृष्टियों में से यहां पर श्रृंगारमय दृष्टि का विशदीकरण है। सब पर्वतों के राजा हिमालय के वंश की कली (विकास होने वाला पुष्प) यह भगवती के मुख सौन्दर्य का द्योतक है। त्रियों के नेत्र की लम्बाई का होना नेत्र सौन्दर्य है। यह लम्बाई कान के मध्य भाग की ओर रेखा बनाती है। भगवती के लम्बे कर्णाकृष्ट नेत्रों का सौन्दर्य श्रृंगाररस को प्रभावित करने वाला होने से शिवजी के दो गुण दिखाकर अर्थात् त्रिपुरासुर को वध करना इस पद से वीर-रस और शान्त रस ये दोनों रस अजेय होते हैं इन शान्त वीर भावना को भी विजय करने वाला श्रृंगार रस बताया है। श्रृंगार रस मनुष्य के हृदय को द्रवित कर देता है, इससे उसकी प्रधानता दिखाई है। स्त्रियों का धर्म अर्थादि चतुर्वर्गा सिद्धि का साधक सब से पहला श्रृंगार रस है। भगवती की पूजा करने वाले साधक को भगवती की मूर्ति को जितना बने पुष्पादि उपचार से श्रृंगार करे। इस तरह भगवती के श्रृंगार करने से उसकी सब कठिनाइयां दूर हो जाती है।

विभक्तत्रैवर्ण्यं व्यतिकरितलीलाञ्चनतया ।
विभाति त्वन्नेत्रत्रितयमिदमीशानदयिते ।।
पुनः स्रष्टुं देवान् द्रुहिणहरिरुद्रानुपरता-
सृजः सत्वं बिभ्रत्तम इति गुणानां त्रयमिव ।। 53 ।।

भावार्थ

हे ईशानदयिते! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र के विलीन होने पर फिर दृष्टि के उत्पन्न करने में तीन गुणों से पृथक्-पृथक् श्वेत, रक्त नील वर्णों के तुम्हारे तीन नेत्ररूपी कमलों से इन तीन देवताओं की उत्पत्ति हुई है।

विज्ञान भाष्य

पहले जो नेत्र रश्मियों के भाष्य में दिखाया है, दृष्टि से सृष्टि होती है। उसका विकास इस श्लोक में आया है। प्रलय-काल में जब तीन देवता अपने-अपने कारणभूत तीन गुणों में लय हो जाते हैं, फिर सृष्टि की रचना भगवती के तीन नेत्रों से रज, सत्त्व, तम गुणों से यथा- ब्रह्म विष्णु रुद्र तीन देवता तीन वर्ण के श्वेत, रक्त, नील वर्ण के उत्पन्न होते हैं। यथा- 'योहवास्य राजसांसः सोयं ब्रह्मा इत्यादि' साधक भगवती की उपासना से अपने ऊपर भगवती की करुणामय रश्मियों को प्राप्त करे।

पवित्रीकर्तुं नः पशुपतिपराधीनहृदये।
दयामित्रैर्नेत्रैररुणधवलश्यामरुचिभिः।।
नदः शोणो गंगा तपनतनयेति ध्रुवममुम्।
त्रयाणां तीर्थानामुपनयति संभेदमनघम्।। 54।।

भावार्थ

हे पशुपति के अधीन हृदय वाली भगवती! हमको पवित्र करने के लिए दया और मैत्री रूप दो नेत्रों से रक्त-वर्ण श्वेत श्याम वर्ण वाले क्रमशः शोणनद, गंगा, यमुना, इन तीन तीर्थों के निष्पाप तीन भेद से प्रकट कर रही हो। अर्थात् गंगा 'यमुना' शोणनद ये तीन गंगा भगवती की दया दृष्टि के किरण रूप से स्पन्दित हुई है।

विज्ञान भाष्य

भगवती की करुणा और मैत्री रूपी दो नेत्रों के रश्मि पुञ्जों के संमिश्रण होने से जीवन को पवित्र करने वाली तीन नदी बन रही है। रक्त

रश्मियों से गंगा तथा श्यामल रश्मियों के पुञ्ज से सूर्य की पुत्री यमुना नदी, इन तीन तीर्थों को बना रही है जो मनुष्य के पाप को प्रक्षालन करने वाली है। शास्त्र में आया है "गंगा गंगेतियो बूयात् योजनानां शतै रपिमुच्यते सर्व पापेभ्यः विष्णुलोकं स गच्छति" तथाच 'यत्र गंगाच यमुनाच यत्र प्राची सरस्वती। यत्र सोमेश्वरोदेव, तत्र मेन्द्रोपरिश्रृतः" गंगा यमुना के स्नान करने से सब पाप दूर हो जाता है। "श्रोतसामस्मि जाह्नवी" गंगा ब्रह्म द्रव चित् शक्ति की करुणा की मयूख रूपा है। इस श्लोक में पशुपति पराधीन हृदये सम्बोधन दिया है। शिव को हृदय में धारण करने से प्रेम रूपा श्रृंगार दृष्टि से द्रवित होकर तीन धारायें प्रवाहित हुई अर्था प्रेमरस से द्रवित हुई हैं। भगवती की दृष्टि से जिस प्रकार गंगा यमुनादि धारा प्रवाहित होती है। कठारे से कठोर चित्त वाला क्यों न हो, जिस पर भगवती की दया मैत्री की दृष्टि प्राप्त करने पर अति कठोर चित्त भी दया और मैत्री दृष्टि प्राप्ति से द्रवित हृदय हो जाता है। इस श्लोक में यमुना को-- (सूर्य पुत्री) इस नाम से संकेत करने का अभिप्राय यही है कि भगवती की दया दृष्टि से हृदय वाला भा शांत हृदय होकर द्रवित हृदय हो जाता है। इसमें भगवती को पशुपति पराधीन हृदया शब्द से सम्बोधन किया है, भगवती की महा शक्तियों का विस्तार करने पर भी स्त्री स्वरूप में हृदय को पति के अर्पण करने से सतीत्व का भाव दिखाया है। भारत वर्ष में प्रायः शिष्ट समाज में स्त्रियों को देवी कहते हैं यह शास्त्रानुसार आचरण है। 'स्त्रियः समस्ता सकला जगत्सु' संसार में स्त्री रूप सब भगवती की ही कला है। अतः भारतीय देवी अपने हृदय को पति के अर्पण कर देने से सतीत्व का बल प्राप्त करती थी, अर्थात् पति को जो बात प्रिय है वही स्त्री को भी प्रिय प्रायः होती थी। केवल प्रति प्रसव इतना है, दुर्भाग्यवस इन्द्रिय लोलुप दुराचारी पति हो जब तब राजपुत्री चूड़ाला की भांति पति के हृदय को अन्तर्मुख वृत्ति बनाने के अर्थ स्त्री उसके हृदय को शुद्ध करती है, वहां पर-पति के हृदय शुद्ध करने तक की भावना पृथक रहती है पीछे फिर एक भावना हो जाती है, स्त्री का सर्वस्व पति बताया है पीछे पति को शुद्ध मार्ग पर चलाना स्त्री का कर्त्तव्य

है जो स्त्रियां धर्म पर पति को चलाती है, वही धर्म-पत्नी होती है। अन्यथा भोग पर ही जिनका जीवन है। वे धर्म-पत्नी तथा सती का पद नहीं पा सकती है।

निमेषोन्मेषाम्यां प्रलयमुदयं याति जगती।
तवेत्याहुः सन्तो धरणिधरराजन्यतनये।।
त्वदुन्मेषाज्जातं जगदिदमशेषं प्रलयतः।
परित्रातु शंके परिहृतनिमेषास्तवदृशः।। 55।।

भावार्थ

हे पर्वतराज-पुत्री! तुम्हारे नेत्र मूंदने से संसार नाश हो जाता है। नेत्र खुलने पर संसार की उत्पत्ति हो जाती है। इस प्रकार महान पुरुष कहते है। संहार से रक्षा करने वाली तुम्हारी दृष्टि है। तुम्हारी दृष्टि नित्य बनी है। (परिहत निमेष है) निमेष बंद नहीं होते है। इस प्रकार मेरी धारणा है।

विज्ञान भाष्य

भगवती के निमेष (नेत्र मूंदने से संसार का प्रलय और उन्मेष) दृष्टि के विकास में प्रलय से पुनः संसार बन जाता है। भगवती तो सदैव जागी हुई है, उसके नेत्र निरन्तर विकसित हैं तब प्रलय कैसे हो यह तर्कना होती है। भक्त भगवती की दृष्टि को अपनी भक्ति द्वारा अपने ऊपर खीचंता है। इससे उसे किसी प्रकार का मृत्यु तक का भय नहीं 'पाशं पाशो, शूलमादाय शूलो वज्त्रं, वज्री, दंडमादाय दंडी धावन् धावन् पार्श्वतः पृष्टतोवा दुर्गे दुर्गे वादिनी रक्षणाय' भगवती का भक्ति पूर्वक नाम स्मरण करने वाले की चारों ओर से सब देवता रक्षा करते जाते हैं। अतः साधाक को चाहिए 'प्रलपन् विस्रजनगृह्णन् निरंतर भगवती का स्मरण करता हरे। इस श्लोक में उत्प्रेक्षालंकार है। भगवती के नेत्र कमल के बंद होने पर संहार और उन्मेष (खुलने) पर जगत का उदय होता है। तुम्हारे निमष (मूंदने) पर रक्षा होने में शंका है। साधक भगवती की दृष्टि धारा की याचना करता है। यहां तक भगवती का विचित्र भावोत्पादिक भिन्न-भिन्न

दृष्टि रश्मियों का वर्णन है।

तवापर्णे कर्णे जपनयनपैशुन्यचकिता।
निलीयन्ते तोये नियतमनिमेषाः शफरिकाः।।
इयं च श्रीर्वद्धच्छद-पुटकवाटंकुवलय।
जहाति प्रत्यूषे निशि च विघटय्य प्रविशति।। 56।।

भावार्थ

हे अपर्णे तुम्हारे कर्णाकृष्ट नेत्रों से चकित होकर शफरिका जलमय दुर्ग में छिप जाती है और यह कमल वन की शोभा तुम्हारे नयनों की पिशुनता से चकित होकर कमलपत्ररूपी कपाट को मूंदकर प्रवेश करती है। प्रातः काल कमलच्छद कपाट से ब्राहर चली जाती है।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में यह भाव दिखाया गया है कि मनोमय भावना नेत्र रश्मियों के प्रवाह से वाह्य संसार में प्रभावित होती है। साधक भगवती और गुरु की महिमा की स्तुति रूप में जब गद्गद् होकर कहता जाता है तब वह अपना श्रद्धामय वातावरण स्वयं बनकर अनन्य प्रेम-भक्ति से भगवती तथा गुरु के आशीर्वाद को अपने में ग्रहण करता है। इसी तरह पापों से घृणाकर पापी संसार से सम्बन्ध विच्छेद करता है। कमल पुष्प के दृष्टान्त से देवता की अनुग्रहात्मक दृष्टि होने से क्लेशका नाश, अवग्रहात्मक दृष्टि से ऐश्वर्य को दिखाया है जैसे कमल के मुकुलित होने से भ्रमर दुःख में बन्द हो जाते हैं और उसके विकास से स्वच्छन्द मकरन्द सौरभ को लेने लगते हैं। इसी प्रकार भगवती के नेत्र कमल ढकने से संसार का नाश नेत्रों के विकास से संसार का उदय, साधक इस प्रकार भगवती का वर्णन करे जिससे भगवती की करुणा दृष्टि का विकास बना रहे। इनमें अर्थान्तरान्यास अलंकार है।

दृशा द्राघीयस्या दरदलितनीलोत्पलरुचा।
दवीयांसं दीनं स्नपय कृपया मामपि शिवे।।

अनेनायं धन्यो भवति न च ते हानिरियता।
वने वा हर्म्ये वा समकरनिपातो हिमकरः।। 57।।

भावार्थ

हे शिवे! कृपया विकसित नील कमल की कान्ति वाले अपनी नेत्र रश्मियों से नीचे टिके हुए मुझ दीन को अभिषिक्त कर दो इसमें तुम्हारी तो कुछ हानि नहीं है और मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। अतः शीतल रश्मिवाला चन्द्रमा वन और राजभवन में समानता से सर्वत्र निजमयूख माला बरसाता है।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में अर्थान्तरान्यास अलंकार है। साधक दीर्घकाल साध्य कुण्डलनी की जागृति कराने में अपनी अल्प शक्ति जान जैसे घबराता है, वैसे ही उसे भगवती की अनुग्रहात्मक दृष्टि का चमत्कार स्मरण आता है- 'श्वपाको जल्पा को भवति मधुपाकोपमगिरा' तथा 'मूकं करोति वाचालं पङ्गुंलङ्घयते गिरिम्।' महामाया भगवती की अपूर्व महिमा को समझकार भगवती के चरणों में ध्यान लगाकर उसकी करुणामय नेत्र रश्मियों पर टकटकी लगाये हुए आशा करता है 'बने वा हर्म्ये वा समकरनिपातो हिमकरः' जिस प्रकार चन्द्रमा का शीतल प्रकाश वन और राजप्रसाद में समानता से होता है वैसे उपाशना क्रम से अभी बहुत दूर टिका हुआ मन्द साधक भगवती की दया से उसकी दयामय दृष्टि को प्राप्त कर लेता है यह शुद्ध भक्ति की भावना है।

अरालं ते पाली युगलमगराजन्यतनये।
न केषामाधत्ते कुसुमशरकोदण्डकुतुकम्।।
तिरश्चीनो अत्र श्रवणपथमुल्लङ्घ्य विलसत्।
अपाङ्गव्यासङ्गो दिशति शरसंधानधिषणाम्।। 58।।

भावार्थ

हे पर्वत राजकन्ये! तुम्हारी तिरछी कर्णपाली युगल क्या किसी को

कामदेव के वाण का भ्रम उत्पन्न नहीं कराती है? अर्थात् सबको कामदेव का भ्रम उत्पन्न कराती है। यतः अपाङ्ग पर्यन्त कर्णपाली तक) तीर्यग भाव में फैलने से तुम्हारे प्रफुल्ल कटाष विक्षेप कर्णान्त लंघन करती हुई महादेव को मोहित करने के लिए ही शरसन्धान की भ्रान्ति को उत्पन्न कर देती है।

विज्ञान भाष्य

इस लोक में गुप्त कामकूट है। कोदण्डसे-क अराल से 'ल' पाली से 'ई' कुतुकम्से-अनुस्वार! इस श्लोक में कामाकर्षिणी का प्रयोग है, भवगती के विग्रहात्मक रूप का नेत्र और कर्णान्त के बीच जो पाली युगल है उसका वर्णन है। यहां भांन्ति अलंकार है- यथा कर्णमूल तक खीचें हुए कटाक्ष काम देव के वाण का धनुष पर खींचने की भ्रान्ति प्रकट करता है।

विज्ञान भाष्य

इस लोक में गुप्त कामकूट है। कोदण्डसे-क अराल से 'ल' पाली से 'ई' कुतुकम्से-अनुस्वार! इस श्लोक में कामाकर्षिणी का प्रयोग है, भगवती के विग्रहात्मक रूप का नेत्र और कर्णान्त के बीच जो पाली युगल है उसका वर्णन है। यहां भ्रान्ति अलंकार है- यथा कर्णमूल तक खीचे हुए कटाक्ष काम देव के वाण का धनुष पर खींचने की भ्रान्ति प्रकट करता है।

स्फुरद्गण्डाभोग प्रतिफलित ताटङ्कयुगलम्।
चतुश्चक्रं मन्ये तव मुखमिदं मन्मथरथम्।।
यमारुह्य द्रुह्यत्यवनिरथमर्केन्दुचरणम्।
महावीरो मारः प्रमथपतये सज्जितवते।। 59।।

भावार्थ

हे देवि! तुम्हारे दर्पणवत् निर्मल और प्रफुल्ल कपोलों में जो दो ताटंक (कर्णकुण्डल) प्रतिविम्वित होकर चार सदृश चमक रहे हैं यह तुम्हारे

मुखमण्डल रूपी रथ में चार चक्र वाला बलशाली कामदेव सूर्यचन्द्र रूपी चक्रवाले पृथ्वी रूपी रथ पर आरूढ़ शिव के साथ युद्ध करता है।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में भगवती के कानों में जो लगे हुए ताटंक (कर्णभूषण) और उनके प्रतिबिम्ब पड़ने से गण्डस्थल में दो कर्णभूषण उनके प्रतिबिम्ब मिलकर चार ऐसे प्रतीत होते हैं कि भगवती के मुखमण्डल-रूप रथ में जिसमें चार चक्र हैं। उसमें बैठकर कामदेव त्रिपुरासुर को जीतने वाले सूर्यचन्द्ररूपी चरण पृथिवी के रथ में बैठे शिव के साथ युद्ध करने को तैयार है। कामदेव का मन्मथ बल इस श्लोक में दिखाया है। साधक की तपस्या में विघ्न करने वाला बलवान कामदेव है। उस पर विजय करने से तपस्या सिद्ध होगी। भगवती का लावण्य सौन्दर्य उपासक को सर्वदा उपादेय है परन्तु इनमें सशंकित रहना चाहिए जिससे अपना व्रत बना रहे- 'कन्दर्प दर्प दलने विरलाः मनुष्या' हाथी, सिंह भालुहिंस्त्रक पशुओं पर विजय पाने वाले बहुत शूर-वीर हैं, परन्तु अनङ्ग कामदेव को जीतने वाले कोई विरले ही होते हैं। इस श्लोक में उत्प्रेक्षालंकार है।

सरस्वत्याः सूक्तिरमृतलहरी कौशलहरीः।
पिबन्त्याःशर्वाणि श्रवणचुलुकाभ्यामविरलम्।।
चमत्कारश्लाघाचलितशिरसःकुण्डलगणो।
झणत्कारैस्तारैः प्रतिवचनमाचष्ट इव ते।।60।।

भावार्थ

हे सर्वाणि! सरस्वती की अमृत धारा प्रवाह से कुशलता की तरङ्ग को कर्ण चषकों से (गद्यपद्यात्मकवाणी) पान करती हुई तुम्हारे चमत्कारिक उक्तियों से शिर हिलाकर तुम्हारे ताटंक का झङ्कार उस चमत्कार की श्लाघा टङ्कार द्वारा प्रतिवचन करते हैं।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में वाग्भवकूट निकलता है। सारस्वत सूक्तियों का

चमत्कार साधक की वाणी में आ जाता है, और कवितां तथा अमृतमय सूक्ति इतनी आकर्ष हो जाती हैं कि उन सूक्तियों का श्रवण करते ही शिर हिलने लग जाता है। कहा भी है- 'किं कवेस्तेन काव्येन किं काण्डेन धनुष्मता। परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः' उस कविता में क्या चमत्कार जिसका भाव हृदय में पड़कर सुनने वाले का शिर हिले नहीं इस श्लोक में 'चलित शिरसः कुन्डलगणों' इस वाक्य से सूचित किया है। इस प्रकार की चमत्कारिक सूक्तियों का विकास भगवती की आराधना में ही प्राप्त है। यथा

देवीं वाचमुपासते हि बहवः सारन्तु सारस्वतम्।
जानीते नितरामसौ गरुकुलक्लिष्टो मुरारीकविः।।

अब्धिर्लङ्घित एव वानरभटैः किन्त्वस्य गाम्भीर्यता
मापातालनिमग्नपीवरतनुः जानाति मन्थाचलम्।।

सरस्वती की उपासना बहुत करते हैं परन्तु सारस्वतसार को मुरारी कवि ने ही पाया है। क्योंकि गुरु-सेवा में उसने बहुत समय लगाया है। समुद्र में सब बानर रामजी के साथ गये, परन्तु समुद्र की गहराई मन्थराचल ही जानता है।

असौ नासावंशस्तुहिन गिरिवंशध्वजपटी।
त्वदीयो नेदीयः फलतु फलमस्माकमुचितम्।।

वहन्नन्तर्मुक्ता शिशिरतरनिश्वास घटिताः।
समृद्ध्यायस्तासां बहिरपि च मुक्तामणिधरः। 61।

भावार्थ

हे हिमालय के वंश की पताके! तुम्हारा जो नासिका स्थानीय निकटवर्ती नासिका का दण्ड है। वह हमारे लिए उचित फल देने वाला हो। जिस नासा दण्ड के मध्य में अनेक प्रकार के मणि-मुक्ता बाहर से शोभा दे रहे हैं और आभ्यन्तर से शीतल श्वास जैसे मोतियों को प्रकट कर रहे हैं और बाहर से भी मुक्तामणि को धारण करने वाला प्रतीत होता

है। अर्थात बांई नासिका से नित्सरित शीतल वायु मुक्ता के स्वरूप में प्रतीत होती है।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में बांसा (नासादण्ड) के शीतल पवन जल के अणु में मिलकर मोलियों की शोभा देने वाली बताई है। किसी देश में वांस से वंशलोचन जैसे निकलता है उसी तरह मौक्तिक भी प्रकट होते हैं। भगवती की नासिका की उपमा की गई है। वंश भी इसका अर्थ है। जिस स्त्री की नासिका वांस की तरह होती है, वंशवर्द्धक होती है। भगवती की नासिका भूषण में जो मोती लगाया हुआ है, वांस के सदृश पोली नासिका से यह द्योतन करता है कि मोतियों का भंडार इसके बीच में है। वह नासिका के शीतल श्वास मानो मुक्तारत्न को भीतर से प्रकट कर रहे हैं, यद्वा बाई नासिका से श्वास चलता है वह चन्द्र श्वास है। अतः भगवती कां नासा मौक्तिक की शोभा इस प्रकार प्रतीत होती है कि चन्द्रमा की कला रूपी मोती नासिका पर विराज रही है। स्त्रियों के वाम नासिका में मुक्तामणि पहिरना उनके सौभाग्य का चिन्ह है। भारतवर्ष में प्रायः पूर्व काल से स्त्रियां बांई नासिका पर मुक्तामणि पहनती थी इससे उनके मानस व्यापार में शांति और सन्तति का सुख पति-पत्नी प्रेम बना रहता है। नासिका का भूषण मोती ही श्रेष्ठ है, हीरा आदि रत्न श्रेष्ठ नहीं है। हीरा का नामा बज्र है इसके धारण करने से कठोर और उष्णता होती है। शीतलता देने वाला मोती है भगवती की आरती में भी आता है। 'नासाग्रे मोती'।

प्रकृत्याऽऽरक्तायास्तव सुदतिदन्तच्छदरुचेः।
प्रवक्ष्ये सादृश्यं जनयतु फलं विद्रुमलता।।
न बिम्बं त्वद्बिम्ब प्रतिफलन रागादरुणितं।
तुलामध्यारोढुं कथमिव न लज्जेत कलया।। 62।।

भावार्थ

हे सुदन्ति! स्वभावतः लालिमा वाले तुम्हारे दन्तच्छद की तुलना किसी प्रकार से विद्रुमलता नहीं कर सकती है, अतः तुम्हारे मुखारबिन्द की अरुणिमा से, प्रतिबिंबित होकर विद्रुमलालिमा को प्राप्त किए हुए हैं इससे वे तुम्हारी लालिमा के सामने लज्जित अर्थात् मुर्झायी हैं।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में भगवती की नासिका के कर्ण के अनन्तर भगवती के ओष्ठों का वर्णन क्रमशः किया गया है परन्तु भगवती के ओष्ठों का वर्णन करने के लिए कवि को कोई तुलना ठीक नहीं मिल रही है विद्रुम का कोई फल उत्पन्न होता तो कथंचित उसमें उपमा दी जाती है। परन्तु विद्रुम का तो फल नहीं होता है कहीं कहीं ऐसा पाठ भी त्वद्विम्ब के स्थान पर दृग्बिम्ब इससे सूर्यरूपी भगवती की दृष्टि से विद्रुम लालिमा को प्राप्त करता है, तब किसी तरह सादृश्य ओष्ठ लालिमा से कर सकता है। इसमें अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

स्मितज्योत्स्नाजालं तव वदनचन्द्रस्य पिबताम्।
चकोराणामासीदतिरसतया चञ्चुजडिमा।।
अतस्ते शीतांशोरमृत लहरीमम्लरुचयः।
पिबन्ति स्वच्छन्दं निशि निशि भृशं काञ्जिकधिया।। 63।।

भावार्थ

तुम्हारे स्मेरमुख (मुस्कराहट) रूपी चन्द्रमा के प्रकाश को पान करते-करते उसके माधुर्य से चकोरों के चञ्चुपुट (मीठापन से) जकड़ गये, इस हेतु चन्द्रमा की पीयूष रश्मियों को आम्ल (खट्टा) (मानकर चकोर) प्रत्येक चांदनी रात्रि में अविराम चन्द्र-ज्योस्ना का पान करते हैं।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में भगवती के चन्द्रमुख का सौन्दर्य वर्णन किया गया है। भगवती के मन्त्रात्मक विग्रह में साधन वैन्दव स्थान से निष्पन्दित अमृत

पान करते-करते अवरोह क्रम से मूलाधार में आकर पुनः आरोहक्रम सूर्य नाड़ी को पानकर सह स्त्रार में कुल कुण्डलनी को ले जाता है। यही चन्द्रमा के पीयूष रश्मिपान के अनन्तरवाह्य चन्द्र बिम्ब पर से ध्यान लगना है अतः सहस्रार जो वैन्दव स्थान है उसी का प्रतिबिम्ब यह गगनचारी चन्द्रमा है। इस श्लोक में अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

अविश्रान्तं पत्युर्गुणगणकथाऽऽम्रेडनजपा।
जपापुष्पच्छाया तव जननि जिह्वा जयति सा।।

यदग्रासीनायाः स्फटिकदृशदच्छच्छविमयी।
सरस्वत्या मूर्तिः परिणमति माणिक्यवपुषा।।64।।

भावार्थ

हे जननि! निरन्तर पति के गुणों का वर्णन करने से आम्रे डित जपाकुसुम के रक्तवर्ण वाली तुम्हारी जिह्वा धन्य है। स्फटिक के सदृश श्वेतवर्ण कान्ति वाली सरस्वती तुम्हारी जिह्वा के अग्र भाग में बैठी हुई रक्तवर्णमयी मूर्ति हो जाती है।

विज्ञान भाष्य

अपने पति शिव के शैवीविभूतियों का वर्णन करने में अविश्रान्त जो तुम्हारी जिह्वा है, वह धन्य है अर्थात् जिससे शिवजती के दिखाये हुए ज्ञान, वैराग्य और चमत्कार की तन्त्रसिद्धियों आदिकों का वर्णन सरस्वती रूपा तुम जिह्वा में वासकर सब आगम-निगम रूपी शिव के वैभव को वर्णन कर रही हो। सरस्वती ब्राह्मी शक्तिश्वेतरूपा स्वभावा तुम्हारे-'वालाक-'मंडलाभासा' मुखकमल की अरुणिमा से रक्तवर्ण-सी प्रतीत हो गई अर्थात् शास्त्रों के विकास करने में तुम्हारे रूप में सरस्वती आ जाती है इस श्लोक में गुप्त सरस्वती का बीज है और आम्रड़ेन जपा इस शब्द से साधक भगवती के जप करने से सरस्वती के विकास को प्राप्त कर लेता है, यह दिखाया गया है और पतिव्रता स्त्री का चरित्र है कि वह अविभ्रान्त अपने पति की महिमा का वर्णन करने से अपनेमनको एकमात्र पतिपर रखे। इस

श्लोक में तद्गुणालङ्कार है।

रणे जित्वा दैत्यानपहृतशिरस्त्रैः कवचिभि-
र्निवृत्तैश्चण्डांशत्रिपुरहरनिर्माल्यविमुखैः।।
विशारवेन्द्रोपेन्द्रैः शशिविशदकर्पूरशकला।
विलीयन्ते मातस्तव वदनताम्बूलकवला।।65।।

भावार्थ

हे मातः! संग्राम में राक्षसों को जीतकर देवताओं ने अपने-अपने कवच मुकुटादि को उतारकर शिव के निर्माल्य में जो चंडेश्वर का भाग है उसे पृथक् कर कार्तिकेय इन्द्र विष्णु ने कपूर के स्वच्छ तथा शीतल कण मिश्रित तुम्हारे मुख से निकले हुए ताम्वूल के ग्रासों को ग्रहण किया है।

विज्ञान भाष्य

भगवती के मुख में ताम्वूल जो पूजा के अवसान में दिखाया जता है उसको नैवेद्य रूप में ग्रहण करने का माहात्म्य बताया है देवताओं नेसंग्रम से लौटकर भगवती के मुख से फेंके हुए पानको ग्रहण करने से अपनी थकावट को दूर किया है। शिव की पूजा का निर्माल्य जो चण्डेश्वर को दिया जात है और नहीं ले सकते हैं। तब देवताओ नें शिव निर्मालय मे से भगवती के मुख से उगला हुआ ताम्बूल ग्रहण किया है। इस श्लोक में गृहस्थी को शिव निर्माल्य ग्रहण करने का निषेध किया गया है परन्तु भ्ज्ञगती के साथ पूजन जब हो तब चण्डांशु भाग दूर कर शेष ग्रहण करना लिख है भगवती का निर्माल्य ग्रहण करने से वुद्धि औश्रविजय की प्राप्ति होती है 'देव्यापादोदकं पीत्वा सर्वसिद्धेश्वरो भवेत्।

विपञ्च्या गायन्ती विविधमुपदानं पुररिपो-
'स्त्वयाऽऽरब्धे वक्तं' चलति शिरसा साधु वचने।
तदीयैर्माधुर्यैरपलपिततन्त्री कलरवाम्।
निजां वीणां वाणी निचुलयति चोलेन निभृतम्।।66।

भावार्थ

हे जननि! भगवती सरस्वती जिस समय अपनी वीणा द्वारा भगवन् शिव के त्रिपुर विजय की महिमा का गायन आरम्भ कर रही थी उस समय तुम्हारे द्वारा हर्षोन्मत हो शिर हिला-हिलाकर साधु-साधु कहना आरम्भ करने से तुम्हारे कण्ठस्वर के माधुर्य से सरस्वती ने अपनीवीणा के झङ्कार को पराभूत समझ वीणा को चोली में ढक लिया।

विज्ञान भाष्य

सरस्वती की विपञ्चि वीणा से जब शिव के यशों का गायन हो रहा था तुम उस यश के आनन्द में अपने शिर हिलाकर गायन की प्रशंसा करती हुई स्वयं गायन करने लगी उस तुम्हारे अति मधुर स्वर के गायन पर सरस्वती ने अपनी वीणा पर लज्जित होकर अपनीचोली में वीणा को ठक दिया अर्थात् तुम्हारे स्वर के माधुर्य में वीणा का स्वर तिरष्कृत हुआ मनपर कविता या राग का प्रभाव पड़ने से शिर हिलने लग जाता है यह भाव इसका है, वीणा वदन से मनोवृत्ति एकाग्र होती है, वृत्ति एकाग्र करने का साधन वीणा स्वर भी है- 'स रि ग म प धं नि रतां तां वीणा हस्तां प्रसादितां शान्ता' भगवतीके ध्यान में सप्त स्वरात्मक वीणा वादन आया है अन्यत्र भी कहा है- वीणा पुस्तक धारिणीं भगवतीं' जाड्यान्धकारापहा' वीणा से सप्त स्वरों को सिद्ध करने से सारस्वत प्रवाह होता है उपाशक वादन द्वाराभगवती के भजन से प्रभावित होकर उस शब्द माधुर्य से वृत्तियों का पून्ज एक निश्चित स्थान पर जम जता है। गीतज्ञों यदि गीतेन नाप्नोति परमं पदं। शिवस्यानुचरो भूत्वा तेनैव सहमोदते' गीतो से शिव सालोक्य मिलता है 'तालभ्यश्च प्रयासेन मोक्षमार्ग नियच्छति' गीत को ताल के साथ लाने से निर्विकल्प समाधि हो जाती है ताल से ही लास्य होता है लास्य से लय अर्थात् तदाकार हो जाता है केवल गायन मात्र से क्षणिक लय होता है गायन उपाशनाका अङ्ग होने से साधक को नित्यानन्द स्वरूप का बोध हो जाता है। इस श्लोक में रमा बीज है। और अतिशयोक्ति अलिङ्कार है।

कराग्रेण स्पृष्टं तुहिनगिरिणा वत्सलतया।
गिरीशेनोदस्तं मुहुरधरपानाकुलतया।।
करग्राह्यं शंभोर्मुखमुकुरवृन्तं गिरिसुते।
कथंकारं ब्रूमस्तव चिबुकमौपम्यरहितम्।।67।।

भावार्थ

हे गिरि सुते! तुम्हारे कपोलों का वर्णन किस प्रकार कर सकें, जिनकी उपमा नहीं मिलती है। हिमालय ने पुत्री वात्सल्यता प्रेम से जिस चिकुर को अपनी हस्तागुलियों से स्पर्श किया शिव तुम्हारे अधरपान के लिए व्याकुलता से मुखवृत्त को देखने के लिए अपने हाथ में धारण किया है। हे भगवती! कोई वस्तु ऐसी नहीं जिससे तुम्हारे चिबुक की उपमा दी जा सके।

विज्ञान भाष्य

भगवती के मुखारबिन्द को उज्जवल तेज का वर्णन और पिता पुत्री वात्सल्य प्रेम तथा पति-पत्नि प्रेम औरपत्नी व्रत रखने को समुदाचार का वर्णन इस श्लोक में आय है स्त्री अपने मुखार विन्द की शोभा अपने पिता और पति को ही दर्शाती है यह भाव प्रकट होता है अपनेसुसज्जित मुख की शोभा पति के सिवाय अन्य को दिखाना निषेध होने से भारतीय महिला खुले मुख बाजारो मे नहीं जाती थी अतः वे अपने को देवी का स्वरूप जानती थ्री तब तो अवगुण्ठित करती थी इसीलिए दृष्टि पात के गुण दोषों का वर्णन किया गया है। स्त्रियों का मुख भगवती का मुख होने से दृष्टि दृष्टिपात से उसकी रक्षा करने के लिए चादर ओढ़ने का व्यवहार भारत वर्ष में पूर्वकालीन है। इस श्लोक में अर्थान्तरालंकार है।

भुजश्लेषान्नित्यं पुरदमयितुः कण्टकवती।
तव ग्रीवा धत्ते मुखकमलनालश्रियमियम्।।
स्वतःश्वेता कालागुरुबहुल जम्वालमलिना।
मृणाली लालित्यं वहति यदधो हारलतिका।।68।।

भावार्थ

हे मातः पुरदमयितुः त्रिपुरासुर को दमन करने वाले शिव की भुजाओं से नित्य आलिंगन की हुई तुम्हारी ग्रीवा कमल नाल की शोभा को धारण करती है जैसे कमल पर कालीहरी काई लगी रहती है इसी प्रकार स्वभावतः तुम्हारी श्वेतग्रीवा पर कमल नाल की लालिमा लिए हुए ग्रीवा के नीचे मुक्ताहार विराजता है।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में भगवती के गले के हार का वर्णन और ग्रीवा को कमल नाल की उपमा देकर गले के हार में पिरोये हुए मन के अनेक प्रकार के रङ्गों की शोभा देते हैं गले पर मुक्ता माला का पहनना इसमें मन की शान्ति दिखायी है मुक्ता माला शान्ति देने वाली है इस श्लोक में हारलतिका शब्द हारधारण करना सौभाग्य सूचक है। इस श्लोक में निदर्शनालंकार है।

गलेरेखास्तिस्त्रो गतिगमकगीतैकनिपुणे।
विवाहव्यानद्धप्रगुणगुणसंख्या प्रतिभुवः।।
विराजन्ते नानाविधमधुर रागाकरभुवां।
त्रयाणां ग्रामाणां स्थितिनियमसीमान इव ते।।69।।

भावार्थ

हे गतिगमक गीतैक निपुणे! गतिगमक गीति में निपुण भगवती तुम्हारे विवाह में गले पर बांधी हुई सुमङ्गली रूपा गले की कण्ठी में जो तीन लड़िया हैं उनके स्थान पर तुम्हारे कण्ठ में जो तीन रेखाएं चमक रही हैं वे अनेक प्रकार के मधुर गीतो की तीन ग्राम की स्थिति सीमा की तरह दीख पड़ती है।

विज्ञान भाष्य

गतिगमक गीति में निपुण राग के स्वरूप को गति कहते है इसी से गत भी बनते हैं गमक अर्थात स्थायी स्वर को बार-बार आलाप करने को

गमक कहते हैं। इनके भाव को किसी रस विशेष में छन्दोबद्ध गायन करने को गीति कहते हैं। यथा- गतिस्तु रागः संगीतं यश्वालाप प्रकीर्तितः गमकोमुख्यनादस्य परिभावों रसात्मकः गीतं प्रबन्ध रूढार्थ ज्जिता शक्ति रिच्यते गीति (गायन) मे निपुण तुम हो इस भाव को तुम्हारे गले की तीन रेखाएं प्रकट कर रही हैं वे तीन रेखाएं तुम्हारे गले मे तीन विवाह काल में जो त्रिसूत्री (सुमङ्गली) पहनायी जाती है उकी सूचना त्रिरेखा है। तदुक्तं ब्रह्मविष्णोंश रूपेषु रंध्रवृत्ति तृतीयकम्! त्रिरत्न रुक्मजं स्त्रीणां मङ्गल्याभरणं विदुः।। स्वर्णतन्तुओं में तीन रत्नों से बना हुआ ब्रह्म, विष्णु, शिवात्मक तीन लड़ियों का गले का भूषण सुमङ्गली नाम का विवाह में कन्या को पहनाया जाता है। यह कण्ठभूषण (कण्ठी) कैसे शोभायमान है मानो 'नानाविध मयूर रागाणी' अनेक प्रकार के मधुर राग पड़ज मध्यमादि सप्तस्वरों से बंधे हुए राग, गौड़ा, गुर्ज्जर, कर्णाटकादि रागों को उत्पत्ति वाले, तीन ग्रमा, षड्जी ग्राम, मध्यमग्राम पच्चम ग्राम की स्थिति और नियति की सीमा की भांति तीन रेखाए है- 'सप्त स्वरास्त्र्यो ग्रामाः मूर्च्छना गीति में होती है।

गले में तीन रेखाएं स्त्रियों के सौभाग्य सूचक समुद्र ने बताई हैः यथा- 'ललाटे च गले चैव मध्यचापि वलित्रयम्। स्त्री पुंसयो रिदं ज्ञेयं महासौभाग्य सूचकम्।

गले में तीन रेखाए स्त्रियों के सौभाग्य सूचक समुद्र शास्त्र में बताई है यथा- 'ललाटे च गले चैव मध्येचापि बलित्रयम्। स्त्री पुंसयो रिदं ज्ञेयं महा सौभाग्य सूचकम्।'

गतिगमकगीतैक निपुणे संगीत की गती। संगीत की दो गति है। गमक- 'स्वरस्रू गमकोकम्पः सच पच्चविधस्मृतः। वाङमातृरुच्यते ज्ञेयं धातु रित्याभियते।' गले में तीन मांगल्य सूचना डोरी या कंठी बांधी जाती है-

मांगल्य तन्तुमानेन बध्वा मंगल सूत्रकम्।

वामहस्ते शरं बध्वा कण्ठे च त्रिशरं तथा।

ये तीन रेखाएं अनेक प्रकार के रागों के ज्ञान की भी द्योतक हैं रागाध्याय में गीति पांच प्रकार की है। गीतियों से बने हुए ग्राम, राग-त्रिशत उपराग आठ, राग शुद्ध विंशति, जनक राग पन्द्रह हैं। भाषाराग छयानवे, विभाषाराग विंशति, जनक राग पन्द्रह है। मध्यमागधी, मालवी, श्री भैरवी, बंगाली, वसन्त धनश्री, देश ये राग के अंग हैं।

'त्र्याणां ग्रामाणां' ग्राम का अर्थ समूह है। स्वर सब तीन प्रकारके है (1) षड्जग्राम (2) मध्यग्राम (3) गान्धारग्राम। परन्तु मर्त्यलोक में दो ही ग्राम का प्रचार है। स रे ग म प ध नी, इन सात स्वरों का आरोह अवरोह क्रम से ये मूर्च्छना के आश्रय रहते हैं। वैस्वर मन्द्र, मध्य, तार भेद से तीन प्रकार उच्चारण किये जाते हैं। गान्धार ग्रम सबके शिरस्थानीय है यथा-ग्रामःस्वर समूहश्च मुर्च्छनादेः समाश्रयः। तौद्वौ धरा-तले स्यातां षड्ज ग्रामस्तथादिमः'' द्वितीयो मध्यम ग्रामस्तयोर्ल क्षणमुच्यते। क्रमात् स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहनम्। मूर्च्छनेत्युच्चयते ग्रम द्वयेता सप्तसप्त च।।'' हे भगवति! तुम्हारे गले में तीन रेखाएं सौभाग्यसूत्र सूचक हैं ''गतिगमक गीतैक निपुणे अनेक प्रकार के मधुर रागो का सूचक तीन ग्रामों की स्थिति के नियम की सीमा की तरह सौभाग्यमान होती हैं।

मृणाला मृद्वीनां तव भुजलतानां चतसृणाम्।
चतुर्भिः सौन्दर्यसरसिजभवः स्तौति वदनै।।
नखेभ्यः संत्रस्यन्प्रथममथना दन्धकरिपोः।
चतुर्णां शीर्षाणां समयभयहस्तार्पणधिया ।।70।।

भावार्थ

हे भगवति! तुम्हारे कमलनाल के समान कोमल चार भुजाओं की अपने चार मुख से अभय पाने के निमित्त अन्धकरिपु शिव के प्रमथासुर बध करने वाले नखों से भयभीत होकरनाभि कमल से उत्पन्नहुये (ब्रह्मा) अपने चार शिरों की रक्षा के लिए चरों मुख से स्तुति करते है।

विज्ञान भाष्य

भगवती की चार भुजाओं का सौन्दर्य इस श्लोक में दिखाया है। पौराणिक कथा है कि ब्रह्मा के भी पहले पांच मुख थे और शिव भी पञ्चवक्र हैं। शिव की समानता करने पर ब्रह्मा का पांचवा शिर शिव ने गिरा दिया था। उस भय से अपने चार शिरों की अभय चाहने को; भगवती के चारों हाथों की स्तुति चार मुख से ब्रह्म करते है, अर्थात् चार वेदों में जो कुछ ब्रह्मा ने कहा वह सब चित् शक्ति रूपा भगवती का ही वर्णन है इस श्लोक में सर्वसंरक्षणी शक्ति रूप भगवती का ही वर्णन है इस श्लोक में सर्वसंरक्षणी शक्ति का वर्णन और शक्ति-बीज है। साधक को भ्झगवती के चार भुजाओं पर ध्यान लगाकर जप करने से अभयभाव की प्राप्ति होती है। काव्यलिंग अलंकार इसमें आता है।

नखानामुद्योतैर्नवनलिनरागं विहसतम्।
कराणां ते कान्तिं कथय कथयामः कथमुमे।
कयाचिद्वा साम्यं भजतु कलया हन्त कमलम्।
यदि क्रीडल्लक्ष्मी चरणतललाक्षाऽऽरुण दलम्।।7।।

भावार्थ

हे उमे! नवीन कमलों की लालिमा पर हंसते हुए, तुम्हारे अरुण नखों की कान्ति की उपमा, कहो किस तरह वर्णन करें, यदि किसी प्रकारकमल की लालिमा के साथ तुलना की जाय तो (वह भी नहीं बन पाता) यतः क्रीड़ा करती हुई तुम लक्ष्मी के पाद तलों पर लगी हुई लाक्षा की अरुणिमा को कमल पर लगने से कमल में यह अरुणिमा आई है। अतः कमल लालिमा की उपमा नहीं आ सकती है।

विज्ञान भाष्य

भगवती के कर कमलों की उपमा किसी से नहीं दी जा सकती है यदि दिया भी जाय तयो कमल से ही दी जाती है, परन्तु कमल पर जो लालिमा छाई दीख पड़ती है, वह तो भगवती के चरण तलुओं पर लगी

हुई। लाक्षा की लाली है। जब भगवती कमलों पर नृत्य करती हैं तब उन परयह अरुणता आती है इसमें अतिश्योक्ति अलंकार है।

समं देविस्कन्दद्विपवदनपीतं स्तनयुगम्।
तवेदं नः खेदं हरतु सततं प्रस्नुतमुखम्।।
यदालोक्या शङ्काऽऽकुलित हृदयो हासजनकः।
स्वकुम्भौ हेरम्बः परिमृशति हस्तेन झटिति।।72।।

भावार्थ

हे देवि! एक ही समय में तुम्हारे स्तनों का कार्तिकेय और गणेश दुग्ध पानकर रहे है। जिनके दुग्धपान मुख से निरन्तर दुग्ध टपक रहा है ऐसे कार्तिकेय गगणेश हमारे दुःख को दूर करें। जिन स्तनों को देखकर गणेश को अपने कपोल की आशंका हुई कि यह दुग्ध स्तनों से निकल रहा है या मेरे उन्नत गणडस्थलों से इस प्रकार सशंक हृदय को हास्य देने वाले गणेश जी शीघ्र अपने कपोलों को टटोलने लगे।

विज्ञान भाष्य

गणेश के उन्नत कपोल-स्तनों के समान होने से गणेश को सन्देह हुआ कि दुग्ध धारा स्तनों से निस्सरण हो रही है या मेरे कपोलों से। इस सन्देह में गणेश अपने गण्डस्थल को देखने लगे जिससे हास्य उत्पन्न हुआ। इस श्लोक में भगवती के दो स्तन जो सूर्य चन्द्र-रूप हैं उनसे दो प्रकार की धाराएं निकलती हैं। सूर्य से पराक्रम सोम से ज्ञानरूपी दुग्ध की धाराएं इसी` गणेश सम्पूर्ण ज्ञान-सम्पन्न हुए हैं। प्रायः माता के दुग्ध के प्रभाव से बालक में विभिन्न प्रकार की शक्तियों का विकाश होता है, जो माता की वीर या ज्ञानवति, भावनाओं से परिश्रृत होता है। इसलिए बालक को दुग्ध पान कराते हुए माता को सावधानी से ज्ञान और वीरता की भावना में रहना चाहिए। यहां वस्तु अलंकार है।

अमू ते वक्षोजावमृतरस-माणिक्यकुतुपो।
न सन्देहस्पन्दो नगपतिपताके मनसि नः।।

पिबन्तौ तौ यस्मादविदित वधूसंगमरसौ।
कुमारावद्यापि द्विरदवदनक्रौञ्चदलनौ।।73।।

भावार्थ

हे पर्वतराज वैजयन्ति! अमृत रसपूर्णमाणिक्य कलशरूपी स्तन पान करने से वधू संगम (कामरस) से अनभिज्ञ गणेश और कार्तिवीर्य अब तक भी कुमार (ब्रह्मचारी) है।। इसमें हमारे मन में सन्देह का अंकुर ही नही है।

विज्ञान भाष्य

भगवती के अमृतमय स्तन पान के प्रभव से कार्तिकेय और गणेश शक्ति-सम्पन्न अभी तक कुमारावस्थ में ब्रह्मचर्य धारण किये हुए है। साधक सहस्रार में भगवती की मातृभाव से उपाशना कर आज्ञा चक्र में आये हुए अमृत पान के करने से उपासक शक्तिशाली ज्ञाननिष्ठ ब्रह्मचारी बना रहता है। यह दृष्टान्त चरितार्थ है, दूध से बुद्धि होती है बालक वनी पढ़ता है निज माता अनुसार। जैसी माता का दूध बालक पीता है वैसा उसका आचरण हो जाता है। प्रायः आज कतिपय स्थानों में लोग दुर्भाग्य वश नवजात बालक को उसकी माता का स्नेहपूर्ण दुग्ध पान से वंचित कर देते है उसी का प्रधानतया यह प्रभाव पड़ रहा है कि पितृ भक्त सन्तान नहीं होती है। यद्यपि गणेश की सिद्धि-बुद्धि कार्तिकेय की देवसेना स्त्री होने पर भी वे ब्रह्मज्ञानी और कुमारावस्था वाले हैं। यह भ्ज्ञगवती उमा के स्तन पान की शक्ति है।

नगपति पताका कहने से यह भाव है कि भगवती के सन्बोधन से वे माताएं अपने कुल की विजय वैजयन्ती है जिनके पुत्र बलवान और ज्ञानवान् होते हैं क्रौञ्चदलन इस श्लोक में यह पद कुमार का विशेषण उसकी सौन्दर्यता का द्योतक है गणेश जी सम्पूर्ण विद्या के ज्ञाता हुए यह सब माता पार्वती के दुग्ध पान का ही प्रभ्ज्ञाव है। इस श्लोक में शक्ति बीज है।

कुछ मनुष्यों ने बालक को दूध पिलानाएक साधारण काम शिशु पोषण मात्र समझा है, शिशु को दुग्ध पान में केवल पोषण मात्र है, दीर्घ

जीवन, बल, बुद्धि विवेक आदि की शक्तियों का विकाश सञ्चारण भी दुग्धपान पर ही निर्भर है, अतः अपनी सन्तान का हित चाहने वाली माता अपने जीवन में अपनीसन्तान को किसी अन्य स्त्री के दुग्ध पान परन छोड़े। स्वयं शान्त स्वभव से दुग्धपान करावे। राजा भोज ने अपने राज सिंहासन पर बैठकर पहले माताओं की ही राज घोषण यह की थी-

निरुत्साहनिरानन्दनिर्वीर्यमरिनन्दन।
मास्मसीमन्तिनी कश्चिज्जनयेत् पुत्रमीशदृशम्।।

कोई माता जिसे उत्साह न हो जिसमें आनन्द न हो, पराक्रम जिसमें न हो, शत्रुओं को प्रसन्न करने वाली ऐसी सन्तान उत्पन्न न करे इससे यह स्पष्ट है कि राजा भोज यह जानते थे कि विद्या पराक्रम आदि गुण सन्तान माता के दुग्ध पर निर्भर है सम्पूर्ण विद्या सौर्य के संस्कार माता के दुग्ध पर ही निर्भर है।

वहत्यम्बस्तम्वे रसदनुजकुम्भप्रकृतिभिः।
सामारब्धां मुक्तामणिभिरमलां हारलतिकाम्।।
कुचाभोगोबिम्बाधर रुचिभिरन्तः शवलिता।
प्रताप्व्या मिश्रां पुरदमयितुः कीर्तिमिव ते।। 74।।

भावार्थ

हे अम्बे! तुम्हारी वक्षस्थली में लताके समान लटकी हुई माला जो कि गजासुर के मस्तक के मौक्तियों से बनी हुई है, तुम्हारे विम्बाधर की शोभा से प्रतिविम्बित होकर अपने वास्तविक (गजमौक्तिक) रूप को बदल शिव के गजासुर बध के पराक्रम और यश को प्रकाश करती है।

विज्ञान भाष्य

भगवती के हृदय पर जो मुक्तामय माला शोभित हो रही है उन मोतियों का स्वभभविक रंग श्वेत होने पर भी भगवती के अधरोष्ठ की परछाई से उन मोतियों में लालिमा दीखने लगी जो कि यह भाव प्रकट करती है कि शिव जी ने गजासुर के बध में जो पराक्रम किय उससे

मौक्तिक हार लालिमा दिखा रहा है और मोतियों में जो शुभ्रता दीख रही है वह शिव जी के ज्ञानमय यश का द्योतक है। मन के शान्त करने को मोतियों के हारका धारणकरना विज्ञानमय आचार है। मोतियों की प्राप्ति गजमस्तिष्क समुद्र में शीपी से, बांस से, सर्प के फण से मेघ से और इक्षुदण्ड से होती है इसका वर्णन वाराहीं संहिता में विस्तार से हैं। इतने प्रकार की मोतियों की माला भगवती के हृदय में विराजती है। यहां पर उत्प्रेक्षा लंकार है।

तव स्तन्यंमन्ये धरणिधर कन्ये हृदयतः।
पयः पारावारः परिवहति सारस्वत इव।।
दयावत्यादत्तं द्रविड़शिशुरास्वाद्य तव य
त्कवीनां प्रौढानामजनि कमनीया कवयिता।।75।।

भावार्थ

हे हिमालय पुत्री! तुम्हारे हृदय से उछला हुआ सारस्वत रूपी जो अपार दुग्धसागर है। उसमें से तुम्हारे स्तनों द्वारा यह दुग्ध धारा निकलती है यह मानता हूं कि तुम्हारी दया से जिस दुग्धके पान करने से यह द्रविड़ शिशु प्रौड़ कवियों में मनोहर कविता करने वाला होगया है। यह चमत्कार भगवती के स्तन पान का है।

विज्ञान भाष्य

भगवती के स्तन पान करने से प्रौढ़ कवि हो जानाइस श्लोक में दिखाया है, इसमें वाग्भव बीज है, मन्ये से (ऐ) स्तनय से अनुस्वार निकालकर आराधना करने से (ऐ) बनता है भगवती को माता जानकर उपाशक को आराधना करने से सरस्वती के चमत्कार की प्राप्ति होती है। इस श्लोका में दयावती नाम और द्रविड़ शिशु नाम में भाष्य कारों ने अनेक कल्पनायें की है वस्तुतः द्रविड़ शिशु पद से मेरे विचार से पूज्यपाद शंकराचार्य ही है इस पर आख्यायिका है- 'शंकराचार्य के पिता भगवती के उपासक, जो नित्य प्रति भगवती के मन्दिर में पूजन उपासना

औश्रभगवती को दुग्ध से स्नान कराते थे, पूजा समाप्ति कर निर्माल्य रूप दूध ला कर अपने बालक को पिलाते थे। जब कभी स्वल्प समय के लिए वे ग्रामान्तर में चले जाते तो अपनी धर्मपत्नी को उसी प्रकार भगवती के पूजन और निर्माल्य दुग्ध बालक को पिलाने का आदेश कर जाते थे। एक समय शंकर के पिता किसी ग्राम में चले गये और पूर्ववत् पूजा करने को अपनी धर्मपत्नी को कह गये। निदान किसी कारण एक दिन उनकी पत्नी पूजा करने न जा सकी और उसने अपने बालक को पूजा करने को कहा, माता की आज्ञा से मन्दिर में भगवती की पूजा करने बालक गया और भगवती को सरल भावना से दुग्ध चढ़ाया वह इस विचार में कि कुछभ्भ्ज्ञगवती भोग लेगी शेष जो बचेगा उसे मैं पी लूंगा भगवती ने सब दुग्ध पी लिया तब वह बालक चिल्लाहट करने लगा कि जितना दुग्ध नित्य मुझे मिलता है उतना मेरा मुझे दो तब भगवती ने प्रसन्न होकर अपने स्तनों से दुग्ध पान करा कर बालक को शान्त किया। घर लौटते ही बालक भगववती की महिमा का वर्णन करने लगा उधर उसके पिता को भ्ज्ञगवती ने स्वप्न में कहा कि तुम्हारा पुत्र योग्य विद्वान ज्ञानी हो गया उसको मैंने अपने स्तन से दुग्ध पान कराया है पिता घरपर आकर बालक की सब बातों को सुनकर आश्चर्य में आ गये औरबालक को गले लगाया यह शंकराचार्य जी का बाल्य वर्णन है। इस पर एक गाथा भी चरितार्थ है कि किसी का नाम द्रविड़ शिशु था वह कैलाश में भगवती की उपाशना करता था। भगवती के प्रसाद से उस में कविता का चमत्कार आया उसने एक सौ श्लोक की आनन्द लहरी नाम से स्तुति पर्वत के किनारों पर लिखा इस अन्तराल में भगवत पाद शंकराचार्य कैलाश-यात्र को गये उन्होंने पर्वत लिखी हुई आनन्द लहरी को पढ़ा भगवती ने इस रहस्य को प्रकट न होने देने का आदेश कर द्रविड़ शिशु जो सिद्धरूप में था आज्ञा दी कि इस शत श्लोक को प्रकट न करने दो जैसे वह वहां गया भगवत् पाद शंकराचार्य ने 42 श्लोक कंठ कर लिए थे शेष सिद्ध ने छिपा दिये उन श्लोकों के बनाने से यह ज्ञात हुआ कि सिद्ध ने भगवती का दुग्ध पान किया था। इधर आचार्य ने शेष श्लोक स्वयं बनाकर सौन्दर्य-लहरी प्रकट

की। इस पर एक आख्यायिका का यह भी है कि द्रविड़ देश के राजा को पुत्र पैदा हुआ जिसे ज्योतिषियों नेराज्य नष्ट करने वाला बतलाया जब वहं के मन्त्री ने राजा से कहा कि इस पुत्र के रहने से राज्य नष्ट हो जायेगा तो राजा ने उसे कहीं वन में छुड़वा दिया वहां उस बालक को एक व्याघ्र किसी कन्दरा में ले जाकर उसके द्वार पर छोड़ दिया बालक में जाति स्मरण योग सिद्धि से प्राप्त था उसने पूर्व सिद्ध योग ज्ञानसे उद्बोधन को प्राप्त होकर भगवती की उपासना की भगवती ने उसे अपने स्तन पान कराने से पाला किसी समय एक डाकुओं के समूह ने जंगल में उसे पाया उसकी सारी बात जानकर पुनः उी राज्य में उसे राजा बना दिया। इसमें एक औरभी आख्यायिका मिलती है, तामिल देश में शिव पद ब्राह्मण रहता था उसकी स्त्री का नाम भगवती था शिव की उपाशना से उन्हें पुत्र मिला एक समय वह नदी स्नान को जा रहे थे बालक को भी साथ ले गये बालक को नदी तट पर छोड़ पति-पत्नी स्नान को गए इस बीच दैवात् बालक खो गया और रोदन कर रहा था उस अन्तराल में शिव-पार्वती के मन्दिर में बालक किसी प्रकार पहुंच गया रोते हुए बालक पर दयादृष्टि से पार्वती ने उसे अपने स्तन का दुग्ध पिलाया बालक शान्त होकरशिव की स्तुति कर रहा था कि उसके मता-पिता वहां पर पहुंच गय बालक की इस आश्चर्य मय शक्ति से चकित हुए बालक के मुख पर दुग्ध के चिन्ह देखकर उसे पूछा कि तुमको दूध किसने पिलाया उसके उत्तर में बालक शिव की स्तुति करने लगा।

हरक्रोधज्वालाऽऽवलिभिरवलीढेन वपुषा।
गभीरे ते नाभीसिरसि कृतसङ्गे मनसिजः।।

समुत्तस्थौ तस्मादचल तनये धूम्रलतिका।
जनस्तां जानीते तव जननि रोमावलिरिति।।76।।

भावार्थ

हे अचल तनये। शिव की क्रोधाग्रि ज्याला में व्याकुलित कामदेव अपनी रक्षा के लिये पुष्करिणी रूप तुम्हारी गम्भीर नाभी में छिप गया।

शिव की क्रोधाग्नि से संतप्त लोह पिण्ड के समान कामदेव पर नाभि रूप पुष्करिणी काजल मिलने से जो धूमावली उत्पन्न हुई उसे लोक में तुम्हारी रोमावली लोग जानते हैं।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में अचल तनये और धूम्रलतिका, इन वाक्यों से स्थिर चित्तवाले मुनियों को भी कामदेव अंधेरे में अर्थात् कामा-सक्ति अज्ञान में डाल देती हैं। यह ध्वनि निकलती है अर्थात् कामवाशना के रहते मनुष्य अंधकार में डूबा रहता हैं। गीता- 'कामएष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः रज से काम, क्रोध उत्पन्न होते हैं। 'धूमेना ब्रियते वह्नि यथादर्शोमलेन च। यथोल्वेनावृतो गर्भःस्तथा तेनेद मावृतम्' गीता यह क्रोध और काम वासना सारे ज्ञान को आवरणकर देती है। गीता में आया है- 'विद्वांसमपि कर्षति' काम शक्ति बड़े-बड़े विद्वानों को भी कम्पायन कर देती है। भगवती की शरण में जाकर ही साधक कामशक्ति पर विजय प्राप्त करता है। साधक को अचल (दीप शिखावत) भावना रखने से कामः क्रोध पर विजय होती है। 'अचलतनये' शब्दये यह भाव दिखाया है। इस श्लोक में उत्प्रेक्षा लंकार है।

यदेतत्कालिन्दीतनुतरतरङ्गाकृतिशिवे।
कृशे मध्ये किचञ्चज्जननि तब तद्भाति सुधियाम्।।
विमर्दादन्योऽन्यं कुचकलशयोरन्तरगतम्।
तनूभूतं व्योमप्रविशदिनवनाभिं कुहरिणीम्।77।

भावार्थ

हे शिवे! यमुना की सूक्ष्म तरंगों के समान त्रिरेखात्मक तुम्हारे मध्य में कृशता दिखाई देती है। कुचों के परस्पर संघर्षण से जो अन्तराल.में सूक्ष्म आकाश प्रतीत होता है वह आकाश सूक्ष्म होकर नाभी कुहर में प्रवेश करता मालूम देता है।

विज्ञान भाष्य

नाभि कमल में अवरोह मार्ग से कुण्डलिनी का प्रकाशित होना इसमें दिखाया है। सूर्य, चन्द्रमा रूपी दो स्तनों के मध्य में दहा काश में ध्यान लगाकर मणीपुर में प्रकाशित कुण्डलिनी का आराधन बताया है। यहां उत्प्रेक्षालंकार है।

स्थिरो गङ्गाऽऽवर्तः स्तनमुकुलरोमावलिलता।
कलावालं कुण्डं कुसुमशरतेजो हुतभुजः।।
रतेर्लीलाऽगारं किमपि तव नाभिर्गिरिसुते।
बिलद्वारं सिद्धेर्गिरिशनयनानां विजयते।।78।

भावार्थः

हे गिरिसुते! तुम्हारी नाभि गंगा के स्थिर आवर्तक भंवर के समान समान स्तनों रूपी कलियों के मुकुलित रोमावलि रूपी लता को कलावाल अर्थात् जल-सिञ्चन का स्थान बनी हुई शोभा देती है तथा कुसुम सर काम की आह्वनीय अग्नि रती के लिये हवन कुंड तथा आन्नद देने वाली उस नाभी की विजय हो।

विज्ञान भाष्य

पूर्व श्लोक में नाभिचक्र में मणिद्वीप का दिग्दर्शन कराया है, यही प्रकरण इसमें भी है। भगवती के सौन्दर्य का प्रकाश करते हुये 'गिरिशिनयनानां' वाक्य से यहां पर रुद्र का स्थानहै। षट् चक्र में इस स्थान में ध्यन लगाने से परम सिद्धि दिखाई है। मध्य विन्दु रूपी नाभी में ध्यन लगाने से शिव का दर्शन बताया है। यहां पर उत्प्रेक्षा अलंकार है।

निसर्ग क्षीणस्य स्तनतटभरेण क्लम जुषो।
नमन्मूर्तेर्नाभौ वलिषु च शनैस्त्रुट्यत इव।।
चिरं ते मध्यस्थ त्रुटिनी तीरतरुणा।
समावस्थस्थेन्नो भवतु कुशलं शैलतनेये।।79।।

भावार्थ-

हे शैल तनये! स्वभाव से ही कृश और स्तन भार से दुर्वल नाभि स्थान में जो रोमावली है, वहै शनैः शनैः गिरते हुए नदी के तट में स्थायी वृक्षों के समान तुम्हारी रोमावलि कुशल से रहे।

विज्ञान भाष्य

मणिपुर में अग्नि का स्थान उससे नीचे स्वधिष्ठान में जल का स्थान है। यहां पर बहुत विघ्नवाधायें आती है। साधक भगवती की कृपा से सिद्धि प्राप्त कर सकता है। आधिभौतिक वर्णन से स्त्रियों का यह स्थान पतला होना सौन्दर्य और सौभाग्य सूचक है। इस श्लोक में उपमालंकार है।

कुचौ सद्यः स्विद्यतटघटितकूर्पासभिदुरौ।
कषन्तौ दोर्मूले कनककलशाभौ कलयता।।

तव त्रातुं भङ्गदलमिति वलग्नं तनुभुवा।
त्रिधा नद्धं देवि त्रिवलिनवभिर्वल्लिभिरिव ।80।।

भावार्थ

हे देवि! प्रति समय यौवन की उष्णता से अथवा शिव के साथ होने वाले अनुराग द्वारा स्वैंद को प्राप्त होने वाले स्वर्ण कलश के समान स्तनयुग्म पार्श्व में स्थित मुण्डमाला से दोनों भुजाओं को पृथक् पृथक् करने से कामदेव ने तुम्हारे उदर को टूटने के भय से त्रिवली रूपी लता से बांधकर सुरक्षित किया है।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में रक्षा करने का विधान आया है, और कामकूट का निदर्शन किया है। तनुभुव कामदेव के द्वारा लवली लता से दृढ़ होती है। उत्प्रेक्षालंकार।

गुरुत्वं विस्तारं क्षितिधरपतिः पार्वति निजी
न्नितम्बादाच्छिद्य त्वयि हरणरूपेण निदधे।

अतस्ते विस्तीर्णो गुरुरयमशेषां वसुमतीम्
नितम्बप्राग्भारः स्थगयति लघुत्वं नयति च ।8 ।

हे पार्वती! क्षितिधरपति हिमालय ने अपने नितम्ब प्रदेश से गुरुत्व (भारीपन) औश्रविस्तार को निकाल कर तुमको हरणरूपेण (विवाह में यौतुकधन के रूप में) अर्पण किया है। इससे तुम्हारे विस्तीर्ण, भारी और विस्तृत नितम्ब भार से वसुमती (पृथ्वी) को स्थगित और छोटी बना दिया है।

इस श्लोक में पार्वती के पार्थिव शरीर का वर्णन है। यहां हिमालय शब्द से श्वेत विन्दु का तात्पर्य है, उससे जो विमर्श निकल कर जो उन्नतता आई है वह शरीर के उस विभाग का वर्णन है। हरण रूप से भगवती का चांचल्य स्वरूप दिखलाया है। महाप्रलय में भी उनका नाश नहीं हो सकता।

अतिशयोक्ति अलंकार।

करीन्द्राणां शुण्डाः कनककदलीकाण्डपटली
मुभाभ्यामूरुभ्यामुभयमपि निर्जित्य भवती।

सुवृत्ताभ्यां पत्युः प्रणतिकठिनाभ्यां गिरिसुते
विजिग्ये जानुभ्यां विवुधकरिकुम्भद्वयमपि । ।82 । ।

भावार्थ

हे भगवती, हे गिरिसुते! तुमने अपने सुवृत्त गोल उरु स्थलों से ऐरावत हाथी की शुण्ड तथस्वर्ण कदली स्तम्भों की शोभा को जीत लिया है, तथा 'पत्युः प्रणतिकठिनाभ्यां' अपने पति शिव को नित्य प्रणाम करने से तुम्हारे घुटने जो कड़े (कठिन) हो गये हैं उनके काठिन्य सैन्दर्य ने विविध प्रकार के हाथियों के मस्तक की शोभा को जीत लिया है।

इस श्लोक में पतिव्रता सती का शिष्टाचार वर्णन किया है कि घुटने टेक कर नित्य प्रति को प्रणाम करना चाहिये।

यह उपमा अलंकार है।

पराजेतुं रुद्रं द्विगुणशरगर्भौ गिरिसुते
निषङ्गौ जंघे ते विषमविशिखो वाढमकृत।
यदग्रे दृश्यन्ते दशशरफलाः पादयुगली
नखाग्रच्छद्मानः सुरमुकुटशाणैकनिशिताः।।83।।

भावार्थ

पूर्वकाल में कामदेव शिव को पराजय करने को पञ्चवाण सन्धान किये थे, जिससे कामदेव स्वयं भस्म हो गया था, तब उसने वक्षमाण दश वाणों का प्रयोग किया है।

हे गिरिसुते! कामदेव ने शिवजी को जीतने के लिये द्विगुणित अर्थात् दशवाणों के हेतु तुम्हारे दोनों जंघाओं का निषंग (तूणीर) बनाया जिनमें तुम्हारे दोनो पैरों की अंगुलियों के नखाग्र में जो देवताओं के रत्नजटित मुकुट रूपी साण से तीखे हुये हैं। वे वाणों के अग्रभाग रूपी नख-फण के आकार में दीखते हैं।

विज्ञान भाष्य

देवता भगवती के चरणों में नित्य नतमस्तक होते हैं। जिसमें भगवती के नखाग्र इतने पतले चमकदार आकर्षक हो गये। पतले आकर्षक लालिमालाये पाद-नखाग्र ऐश्वर्य और सिद्धि के सूचक हैं यहां उत्पेक्षालंकार है।

श्रुतीनां मूर्धानो दधति तव यौ शेखरतया
मामाप्येतौ मातः शिरसि दयया धेहि चरणौ।
ययोः पाद्यपाथः पशुपतिजटाजूटतटिनी
ययोर्लाक्षालक्ष्मीररुगहरिचूडामणिरुचिः।।84।।

भावार्थ

हे मातः! वेद तुम्हारे चरणों को सिर में धारण करते हैं इसलिये तुम्हारे चरणवेदों के शिरस्थानीय हैं। उन चरणों का प्रक्षालन किया हुआ जल

शिवजी के जटाजूट में गंगा के रूप में निवास करता है। तुम्हारे चरण में लगी हुई लाला की मनोहर लालिमा की विष्णु के मुकुट में जड़े हुये चूड़ामणि रत्न से समानता हो सकती है। हे मां! इन चरणों का कृपया मेरे शिर में रखियै

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में 'श्रुतीनां मूर्द्धानो' यह वाक्य आया है। वेदों के शीर्ष स्थन है, जिनमें आत्मा का प्रतिपादन किया गया है यानी समग्र विज्ञान और सम्पूर्ण शास्त्रों का उच्चातिउच्च सिद्धान्त आत्म प्राप्ति अर्थात् नित्य शान्ति रूपा मुक्ति है यथा- 'अयमात्मा ब्रह्म' 'प्रज्ञानं ब्रह्म' इत्यादि। श्रुति का मुर्द्धास्थान ब्रह्म विद्या रूपी उपनिषद् हैं, इस शब्द का अन्यत्र प्रयोग आया है। शङ्करदिग्विजय में जहां पर आचार्य शंकर मण्डन मिश्र के साथ शास्त्रार्थ को बैठे थे, उसमें प्रामि प्रश्न में श्रुति का मस्तक ब्रह्मज्ञान बताया है, यथा 'ब्रह्मैक्यं परमार्थ सच्चिदमलं विश्वं प्रपञ्चात्मकं' सुक्ति रूप वेदैके भाति बहुला ज्ञानेना वृतंभाषितं तजानानिखिल प्रपञ्चनिलयः स्वात्मावबोधः परः निर्वाणाञनि मुक्तिरभ्युपगतं मानं श्रुतेर्मस्तकं 'ब्रह्म एक ही परमार्थ सत्ता है। यह विश्व प्रपञ्च-सीपि में जैसे रजन का भ्रम होता है, उस प्रकार यह दृश्य प्रतीत हो रहा है। ब्रह्म के ज्ञान से सारा प्रपञ्च अस्त हो जाता है। इसके प्रमाण वेदों के मस्तक रूपी उपनिषद् है। भगवती के आज्ञा चक्र (द्विदल) में दो सूर्य चन्द्रात्मक चरण हैं। इस आज्ञा चक्र रूपी भगवती के चरणों में ध्यान करने से श्रुतीनां मूर्द्धा रूप भगवती के चरणों के प्रसाद से ब्रह्मज्ञान की अभिव्यक्ति हो जाती है, और आज्ञा चक्र में जो पीयूष स्पन्दन होता हैं, वह सहस्रार रूपी शिव जटा से गङ्गा रूप में मोक्ष देने वाला प्रवाह है। तन्त्र शास्त्र में ईडा वामे स्थिता गङ्ग।' गङ्ग का स्थान ईडा नाड़ी में बताया है। श्रुतीनां वेदों में जो स्तुति की है, यथा वसिष्ठ जी ने कहा है-

'नमो देव्यै महालक्ष्म्यै श्रियै सिध्यै नमो नमः।
ब्रह्माविष्णुमहेशानवेदैक्यपूजितांघ्रियै

वैदिक्यैरिति वेदानां वैदिकेभिः शिरोरिति
नमस्त्रिपुरसुन्दर्यै शिवायै विश्वमूर्तये
एवं स्तुता महादेवि श्रुतिभिः प्रीतमानसा
प्राहुतं प्रतितद्रिग्भि र्वचोभिःपरमेश्वरी।
नमोवाकचं ब्रूमो नयनरमणीयाय पदयो-
स्तवास्मै द्वन्द्वाय स्फुटरुचि रसालक्तकवते।।
असूयत्यत्यन्तं यदभिहननाय स्पृहयते।
पशूनामीशानः प्रमदवनकं केलितरवे।।85।।

टीक

हे माता! नेत्रों को आनन्दित करने वाले तथा शुद्ध चमकीले अलक अमहवर याने अलता पैर पर लगाने का) लगे हुये तुम्हारे चरण-युगल को हम नमस्कार करते है, पशुपति (तुम्हारे) प्रमद वन में कंकेलि (अशोक वृक्ष) जो ।तुम्हारे पैर को स्पर्श करने की इच्छा करता है उससे अत्यन्त ईर्षा करता है।

विज्ञान भाष्य

अशोक वृक्ष भगवती के चरण स्पर्श होने पर फलता फूलता है, इसलिए वह भगवती के चरणों की स्पर्श को निरन्तर चाह करता है। इस पर पशुपति उसके ऊपर ईर्षा करते हैं। भगवती के बिहार करने का नाम प्रमदवन है। इस वन में देवता वृक्ष बन कर भगवती के साथ रहते हैं शिव को भी वक्ष बनना पड़ताहै। अशेक वृक्ष शिव का रूप है, जब वह अशोक का वृक्ष बनते हैं तो बार-बार भगवती के पादाघात की स्पृहा करने वाला वह वृक्ष होने से उस वृक्ष से ईर्ष्या करते हैं।

यहाँ अतिशयालंकार है।

मृषां कृत्वा गोत्रस्खलनमथ वै लक्ष्यनमितं
ललाटे भर्तारं चरणकमले ताडयिति ते।

चिरादन्तःशल्यं दहनकृतमुन्मूलितवता
तुला कोटिक्वाणैः किलिकिलितमीशानरिपुणा।।86।।

टीक

तुमने अपने चरण कमलों से अपने पति शिव के ललाट को ताड़न करके स्त्री को स्पर्श न करना, इस प्रतिज्ञा को झूठा कर दिया, जिससे शिव लज्जित हो गये। तुम्हारे नूपुरध्वनि तुम्हारे विजय की सूचक हुई। भस्म हुए कामदेव तुम्हारे पादपद्म स्पर्श से जीवित होकर किलकिला शब्द करने लगे और जीवित हो गये।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक में आज्ञाचक्र द्विदल में जो भगवती के दो चरणों के नीचे जो परम शिव स्थान है, उसका विशदी करण इस श्लोक में हुआ। काम देव को भी शिव ने तृतीय अग्नि नेत्र भ्रूमध्यगत से भस्म किया था आनन्द लहरी में 'तवाज्ञा चक्रस्थं तपन शशि कोटि द्युतिधरं, परं शंभु वन्दे परिमिलित पार्श्वापरचिता।' आज्ञा चक्र में परम शिव की हम वन्दना करते हैं जहां पर पराम्बा मिली हुई है। काम देव को तृतीय नेत्र से भस्म शिव ने किया था, जैसा कालिदास ने कहा है 'क्रोधं प्रभो संवर संवरेति यावद्गिरामरुतां चरिंति तावत्सवह्निर्भव रूप जन्मा भस्मावशंषं मदनं चकारः।' यहां भगवती के ललाट में पादार्भि घात रूपक वर्णन है।

हिमानी हन्तव्यं हिमगिरिनिवासैकचतुरौ
निशायां निद्राणं निशि च परभागे च विशदौ।
परं लक्ष्मीपात्रं श्रियमतिसृजन्तौ समयिनां
सरोजं त्वत्पादौ जननि जयतश्चित्रमिह किम्।।87।।

भावार्थ

हे माता! तुम्हारे चरण-कमल सबसे उत्कृष्ट हैं। इसमें आश्चर्य ही क्या है? यतः हिमप्रपात शैत्य को सहन नहीं कर सकते (शीत पड़ने से मुर्झा जाते हैं) तुम्हारे चरण कमल नित्य हिमालय में निवास करने वाले हैं।

कमल रात्रि में बन्द हो जाते हैं। परन्तु तुम्हारे चरण रात दिन विकशित ही रहते हैं। कमल में लक्ष्मी निवास करती है पर (कमल लक्ष्मी को देने में असमर्थ हैं) तुम्हारे चरण कमल उपसकों को लक्ष्मी समृद्धि प्रदान करते हैं, अतः तुम्हारे चरण कमल सर्वोत्कृष्ट हैं।

विज्ञान भाष्य

कमल में क्षणिक लालिमा रहती है। तुम्हारे चरण कमलों की लालिमा निरन्तर बनी रहती है। जो साधक भगवती की उपाशना करते हैं, उनमें निरन्तर तेज और ऐश्वर्यादि सम्पत्ती स्थिर रहती है। हृदय पद में भगवती के ध्यान से लक्ष्मी स्थिर रहती है। इससे रमाबीज का उद्धार होता है। इसमें व्यतिरेका लंकार है।

पदं ते कीर्त्तीनां प्रपदमपदं देवि विपदाम्
कथं नीतं सद्भिः कठिनकमठीखर्परतुलाम्।
कथंचिद्बाहुभ्यामुपयमनकाले पुरभिदा
यदादायन्यस्तं दृषदि दयमानेन मनसा।।88।।

भावार्थ

हे देवी! तुम्हारे पादाग्र सम्पूर्ण यश कीर्ति के स्थान तथा विपत्तियों को दूर करने वाले हैं। इन चरणों को सज्जनों ने कछुवे की सादृश्यता कैसे दी है। विवाह काल में शिव ने तुम्हारे चरणों को अपने सुकोमल हृदय से उठा कर शिला में रखाया, अर्थात् कूर्मपृष्ठ चरणपृष्ठ हो गया।

विज्ञान भाष्य

कठिन कमठी वाक्य से यह तात्पर्य है कि कछुवा जिस प्रकार अपने सारे अंगों को संकुचित कर सुरक्षित रहता है उसी प्रकार भक्तजन तुम्हारे पादपद्म में निवास कर सुरक्षित रहते हैं। 'न्यस्तं दृषदि' पद से तात्पर्य विवाह काल में सप्तपदी पर पति पत्नी के पैरों को पत्थर पर रख मन्त्र पढ़ा जाता है कि 'जिस तरह पत्थर अचल है वैसे तुम अचल रहो।' 'तथा स्थिरा भव' यहां अनन्या लंकार है।

नखैर्नाकस्त्रीणां करकमलसंकोचशशिभि-
स्तरूणां दिव्यानां हसत इव ते चण्डि चरणौ।।
फलानि स्वःस्थेभ्यः किसलयकराग्रेण ददता।
दरिद्रेभ्यो मद्रां श्रियमनिशमह्नय ददतौ।।89।।

भावार्थ

हे चण्डिके! प्रणाम के समय संकुचित भाव से प्राप्त होने वाली स्वर्ग स्थित स्त्रियों के नखों की कान्ति से धवलमय तुम्हारे चरण-कमल कल्पवृक्षादिकी कान्ति को तिरस्कार करते है। विकसित नूतन कमल के समान हस्तों से स्वर्गीय अंगनाओं को फल प्रदान और दरिद्रियों को लक्ष्मी प्रदान करते हैं।

विज्ञान भाष्य

भगवती के चरणों में ध्यान निष्ठा वाले साधक को सर्व प्रकार के सुख सुलभता से प्राप्त होते है। कल्प वृक्ष स्वर्ग में है जो देवताओं को ही प्राप्त होता है, परन्तु भगवती के चरण पृथ्वी तल में साधकों को प्राप्य हैं। इन चरणों से कल्पवृक्ष के समान सब सिद्धियां मिल जाती हैं। भगवती के चरणों को मस्तक पर रख कर ध्यान लगाने से जैसे कल्पवृक्ष अभीष्ट फल देता है इसी प्रकार भगवती की चरण-सेवा सब कार्यों को फलीभूत करने वाली है। यहाँ व्यतिरेका लंकार है।

ददाने दीनेभ्यः श्रियमनिशमाशाऽनुसदृशी-
ममन्दं सौन्दर्यप्रकरमकरन्दं विकिरति।
तवास्मिन्मन्दारस्तवकसुभगे यातु चरणे।
निमज्जन्मज्जीवः करणचरणः षट्चरणताम्।।90।।

भावार्थ

हे भगवती! तुम्हारे चरण कमलों में षट्पद भ्रमर की तरह हम प्रवेश करे, जो चरण दीन को इच्छित धन देने वाले उनके आशा के अनुकूल लक्ष्मी देने वाले, निरन्तर सौन्दर्य रूपी माधुर्य प्रसारण करने वाले, मन्दान पुष्प स्तवक की तरह सुकोमल और सुन्दर है।

विज्ञान भाष्य

षट्पद भ्रमर से पांच ज्ञानेन्द्रिय और एक मन तुम्हारे चरण कमल में भ्रमर की तरह पांच ज्ञानेन्द्रिय और छठे मन के साथ मैं शयन करूं, यहां भक्त की भक्ति दिखाई है। अशियोक्ति अलङ्कार।

पदन्यासक्रीडापरिचयमिवारब्धु मनस-
श्चरन्तस्ते खेलं भवन कलहंसा न जहति।।
स्वविक्षेपे शिक्षां शुभगमणिमञ्जीररणित-
च्छलादाचक्षाणां चरणकमलं चारुचरिते।।91।।

भावार्थ

हे चारुचरिते! रत्नजटित नूपुर से विराजमान तुम्हारे चरण युगल से शिक्षा प्राप्त करने के लिये राजहंस समूह तुम्हारे मन्दिर को नहीं छोड़ते हैं। वह अपनी गति से चारुचरित्रपाद नूपुर झंकार से शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

विज्ञान भाष्य

भगवती के चरण विक्षेप को हंस सीख की गति ही स्वाभावित सुन्दर होती है और उसकी उपमा स्त्रियों के गमन में दी जाती हैं इस श्लोक में भगवती की गति से हंसों ने चलना सीखा है, यह दर्शाया है। हंस की गति से साधक का हंसेश्वर आराधन का ध्यानअनाहत में करना संकेत किया है साधक की गति हंसः अजपाजाप में बनी रहे। यहां उत्प्रेक्षालंकार है।

गतास्ते मञ्चत्वं द्रुहिणहरिरुद्रेश्वरभृतः।
शिवः स्वच्छच्छाया घटितकपटप्रच्छदपटः।।
त्वदीयानां भासां प्रतिफलनरागारुणतया।
शरीरी शृङ्गारो रस इव दृशां दोग्धि कुतुकम्।।92।।

भावार्थ

ब्रह्मा, विष्णु,रुद्र, ईश्वर तुम्हारे पर्यंक के पाये बन गये, और शिव उस

मंच में बिछाया हुआ बिस्तर के रूप में हो गये, अर्थात् दर्शकों को देखने में कौतुक उत्पन्न करने वाले वस्त्र (चादर) शिव हो गये, उस पर तुम्हारे शरीर की कान्ति पड़ने से लालिमा आ जाती है जो अरुणिमा तुम्हारे नेत्रों को आनन्द देती है, और उससे मानो शृङ्गारमय शरीर बन जाता है।

विज्ञान भाष्य

भगवती के मञ्च के चार पाये जयो बताये गये हैं, उनका तात्पर्य है कि सदाशिव तत्व के चार प्रति विकाश ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र ईश्वर हैं और मूलाधार से आज्ञा चक्र तक षट् हैं, जो क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और छठे मन। दश इन्द्रियां और पांच तन्मात्रा इन इक्कीस से षट्चक्र बनते हैं। इसके ऊपर चार तत्व-माया सुधा, विद्या, महेश्वर और सदाशिव अवशेष भूपुर के चार द्वारों पर पूर्व दिशा के क्रम से ब्रह्म-ग्रन्थि के उसक`दूरे ओर में हैं। ये चार तत्व उसके चार द्वार है, सुधाविद्या का मुख शिव की ओर है। सदाशिव पर सुधाविद्या का प्रतिबिम्व पड़ता है, जिससे ये दोनों एक रूप हो जाते हैं। शिव-शक्ति वैन्दव स्थान में मिल जाते हैं। जैसे- सुधासिन्धोर्मध्यै' पहले वर्णन किया गया है। श्री चक्र में चार द्वार हैं, जिसके मध्य में सहस्रदल हैं। रुद्रयामल में- 'ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः। ऐते पञ्च महाप्रेताः भूतादिपतयो।। चत्वारो मञ्च चरणः पञ्चमः प्रच्छदः पटः सा चित् प्रकाश रूपेण शिवे नाभिन्नविग्रहाः।। इस श्लोक में तद्गुणालंकार है।

अराला केशेषु प्रकृति सरला मन्दहसिते
शिरीषाभा चित्ते दृषदिव कठोरा कुचतटे।
भृशं तन्वी मध्ये पृथुरपि वरारोहविषये।
जगत्रातुशंभोर्जयति करुणा काचिदरुणा।।93।।

भावार्थ

हे भगवती मन्द हसिते! शिव की करुणा का अवतार अरुण संसार की रक्षा के हेतु (जिसका अवतरण हुआ) उस मूर्ति की विजय हो। जिसके केश घुंघराले अर्थात् मुड़े हुये हैं, जिसका मन्दहास स्वभाव सरल है,

शिरीष पुष्प के समान कोमल जिसका शरीर है, स्तनों में प्रस्तर के सदृश काठिन्य है। कटिभाग बहुत क्षीण (पतला) है और नितम्ब जिसके स्थूल हैं। इस प्रकार करुणामयी अरुणा भगवती की जय हो।

विज्ञान भाष्य

भगवती के शिर से पैर तक का वर्णन इस श्लोक में आया है। श्री कामेश्वरी अरुण माता की जय हो।

भगवती के शिर से पैर तक का वर्णन इस श्लोक में आया है यह कामेश्वरी अरुणा, भगवान शंकर की जो करुणा है, उसका स्वरूप है। उपासक अरुणा की उपासना से करुणामय दृष्टि से अपने को सिञ्चन करता हुआ ज्ञान प्राप्त करता है।

समानीतः पद्भ्यां मणिमुकुरतामम्बरमणि-
र्भयादास्यादन्तः स्तिमितकिरणश्रेणिमसृणः।
दधाति त्वक्यप्रतिफलनमश्श्रान्तविकचम्।
निरांतङ्कं चन्द्रान्निजहृदयपङ्केरुहमिव।।94।।

भावार्थ

तुमने अपने चरण-कमलों के स्पर्श से चन्द्रमा को चूड़ामणिभाव प्राप्त कराया। तथापि राजयक्ष्मा द्वारा क्षीण भाव को प्राप्त न हो इस भय से तुमने चन्द्रमा को अपने किरणों में रख दिया है, इससे चन्द्रमा निष्कलंक तुम्हारे मुख-मण्डल की ज्योत्स्ना से प्रतिभासित रहता है।

विज्ञान भाष्य

किसी आचार्य ने इसका अन्य रीति से भी वर्णन किया है-

(1) सूर्य भगवती के चरण का दर्पण है। अतः सूर्य इस योग्य नहीं जो भ्झगवती के मुख का दर्पण हो सके।

(2) उस दर्पण में भगवती का मुख जो प्रतिबिम्वित होता है वह कमल के समान है जिस पर चन्द्रमा का कोई प्रभाव नहीं

पडता। अतः भगवती का मुख कमल निरन्तर विकसित रहता हैं, वह प्रतिविम्व कमल, सूर्य के हृदय में रहता है। अर्थात् सूर्य भगवती का उपासक है।

कलंकः कस्तूरी रजनिकरविम्बं जलमयम्।
कलाभिः कर्पूरमरकतकरण्डं निविडितम्।।
अतस्त्वद्भोगेन प्रतिदिनमिदं रिक्तकुहरम्।
विधिर्भूयो भूयो निविडयति नूनं तव कृते।।95।।

भावार्थ

तुम्हारे मुख-मण्डल में लगी हुई कस्तूरी की भावार्थ के सदृश कलंक को धारण करने वाला जलमय चन्द्र-मण्डल अति सघन कलाओं से सम्पूर्ण शुक्ल पक्ष प्रतीत होता है, इसलिये तुम्हारे भोग से प्रतिदिन यह चन्द्र रिक्त कुहर की भांति हो जाता है। पुनः तुम्हारे लिए बार-बार यह चन्द्रमा फिर पुष्ट होता है। ब्रह्मा बार-बार इस चन्द्र बिम्ब को तुम्हारे लिए दिप रखते हैं। वास्तव में यह कलंक ब्रह्मा का चिन्ह (क) है।

विज्ञान भाष्य

अति सुगन्धित कस्तूरी की उपमा सुगन्धता की व्यापकता को दिखाती है, जैसे सम्पूर्ण सुगन्धी द्रव्य कस्तूरी में अन्तर्हित है इसी प्रकार सम्पूर्ण चक्र वैन्दव स्थान में अन्तर्हित है। योगिनी हृदय में आया है, सम्वित् शून्य रूप से विसर्गान्तः विन्दुका प्रादुर्भाव होता है। वहीं संसार को उत्पन्न करने वाला लहरों से त्रिकोणाकार में परिणत होकर धर्म अध र्म, मान मातृ, मेय प्रभाव के योग से नवयोन्यात्मक श्री चक्र में परिणत हो जाता है, यही जलमय, अमृतमय चन्द्र मण्डल षोड़शदल सम्पन्न चक्र अमृत बीज (वं) रूप से घिरा हुआ, तथारिक्त कुहर (0) मध्य रन्ध्र विन्दुमय चक्र आकार से लेकर अः विसर्ग पर्यन्त स्वरमय कला तथा तिथियों सेऔर तदधिष्ठातृ कामेश्वर्यादि पञ्चदश नित्या जो चक्र में अन्तर्हित हैं, उनसे परिवेष्ठित है। इसी कारण इसको मरकत काण्ड नाम से कहा गया है। यही बिन्दु रूप चक्र तुम्हारे शरीर से उत्पन्न हुई, कामेश्वरी आदि

षोड़शनित्या तथा षोड़शातिथी रूपा उपसना लोम-विलोम क्रम से शुक्ल पक्ष कृष्णपक्ष में पूजन की जाती है।

यहां चन्द्रमा वैडूर्यमणि का बना हुआ कलश है, जिसमें कस्तूरी कर्पूर भगवती के प्रति दिन के शृङ्गार के लिये रहता है, जो नित्यप्रति रिक्त हो जाता है और फिर भर जाता है। एक चान्दमास से भगवती का एक एक दिन होता है। यहां अतिशयोक्ति अलंकार है।

पुरारातेरन्तः पुरमसि ततस्त्वच्चरणयोः।
सपर्यामर्यादा तरल करणानामसुलभा।

तथाह्येते नीताः शतमखमुखाः सिद्धिमतुलाम्।
तव द्वारोपान्त स्थितिभिरणिमाऽऽद्याभिरमराः ।96।

भावार्थ

हे भगवती! तुम शिव के अन्तःपुर की महिषी हो, अतः चञ्च इन्द्रियों वाले जीवों को तुम्हारे चरण की पूजा दुर्लभ है। तिस पर भी इन्द्रादि देवता तुम्हारे द्वार पर अणिमादि सिद्धियों के साथ खड़े रहते हैं।

विज्ञान भाष्य

भगवती के अन्तःपुर में देवता भी नहीं जा सकते हैं, तब तरल इन्द्रिय वाले जीव कैसे भगवती के पास जा सकते हैं? इसलिये इन्द्रिय विजय कर उपाशना करनी चाहिये। जैसे गीता में- 'तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ' सबसे पहले इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनी चाहिये श्री चक्र के द्वार मे देवता अणिमादि सिद्धि सहित पूजे जाते हैं।

इस श्लोक में भगवती की पूजा की मर्यादा सपर्यामर्यादा इस वाक्य से कही गई है। पूजा दो प्रकार की होती है- 1. बाह्य पूजा 2. अन्तः पूजा। बाह्य पूजा में यन्त्र मूर्ती आदि का पूजन बाह्योपचार से होता है। बाह्योपचार ये हैं- पञ्चोपचार, अष्टोपचारादि से अर्घ्य पाद्य पञ्चामृत धूप दीप, वस्त्र अलङ्कारादि से तत्तन्मंत्रों से भगवती का पूजन किया जाता है। इसे बाह्य पूजा कहते हैं। इस प्रकार का पूजन गृहस्थादि सब का कर्तव्य

है। इससे स्वर्गादि भोग सुख मिलता है। उपासना का अधिकारी वह है जिसने अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लिया हो।

इन्द्रिय विजययुक्त अधिकारी अन्तर्याग से भोग मोक्ष प्राप्त करता है।

इन्द्रादि देवता जिन्होंने शत मखयज्ञ किये हैं, वे भी भगवती के द्वार पर अणिमादि सिद्धि लिये हैं। अर्थात् अणिमादि सिद्धि तो भगवती के द्वार पर ही मिल जाती है। भगवती के शरण में जाने से मोक्षरूपी लक्ष्मी मिलती हैं।

अन्तर्याग

भगवती का विग्रह षट् चक्र मय साधक के शरीर में है। भगवती के चरण भ्रूमध्य (आज्ञा) में है, इस स्थान में पिंगला की (पूरक रेचक) गति को दूर कर स्थिर (कुम्भक) भाव से भगवती की पूजा करे, शतमख अर्थात् कर्म वाहिनी सौ सौ नाड़ी पुञ्ज हैं, उसे कुम्भक की सहायता से साधक भगवती के चरण चन्द्र स्थान में जिसे 'अतुलां सिद्धि' कहा है, वह सिद्धि जिसकी तुलना नहीं हो सकती। साधक उस मोक्ष सिद्धि को प्राप्त करता है। इस श्लोक में भगवती का विशेषण 'अन्तः पुरमसि' पद आया है, इसमें अन्तर्याग भगवती का पूजन बताया गया हैं। जिसकी इन्द्रियवश में है, उसी को अन्तर्याग सुलभ हो सकता है।

गीता में लिखा है- 'अनन्यचेतासततं यो मां स्मरति नित्यशः तस्याह सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः' अन्य चित्त से जो अपने इष्ट देव की उपाशना करते हैं। उनको उसकी प्राप्ति सुली है। इस श्लोक में 'चरणयोः' शब्द भगवती के आज्ञा चक्र में ध्यान लगाने का सूचक है। वहां पर भगवती का साक्षात्कार साधक को होता है। पूर्व श्लोक के भाष्य में सपर्या पूजा का विस्तार दिखाया है।

सपर्या प्रकरण (पूजा) :-

माला- शास्त्रें में (शारदायां) माला के प्रकार यों कहे है।

मुक्ता माणिक्यवैडूर्यगोमेधान्बज्त्र विद्रुमौ ।

पुष्परागं मरकतं गरुडोद्गार(नीलम) मेव च।।
एभिस्तु प्रथिता 'स्वर्णे रत्न मालेति' कथ्यते।।

पूजा में कौन देवता को किस रंग का वस्त्र देना चाहिए।

पीतं विष्णौ सितं शम्भौ रक्तं विघ्नार्कशक्तिषु।
सछिद्रमलिनं जीर्णत्यजेत्तैलादिदूषितम्।।

वस्त्र उचित न होने से क्य ाक्या दोष होते हैं-

तैलादिदूषिताद्रोगः सछिद्राद्दाच्यता भवेत्।
जीर्णाद्यरिद्रताकर्तुः मलिनात्कान्तिहीनता।।

उपरोक्त दोष खराब वस्त्र से आ जाते हैं।

पंचामृत की विधि-

घृत क्षीरं तथा नीरं शर्करा मधुसंयुतम्।।
पञ्चामृतमितिख्यातं प्रत्येकन्तु पलम्पलम्।।

महाभिषेक के विषय में-

शिवसूर्यौ विहाय महाभिषेकं सर्वत्र शंखेनैव प्रकल्पयेत्।

पूजा में मुद्राओं का प्रकरण

गन्धा मुद्रा-कनिष्ठांगुष्ठयोगेन गन्धां मुद्रा
पुष्पमुद्रा-तर्जन्युगुष्ठांगुष्ठयोगेन पुष्पमुद्रा
धेनुमुद्रा-अमृतमुद्रा महामुद्रा अन्योन्य
ग्रथितांगुष्ठौप्रसारित करांगुलिमहामुद्रा यमुदिता परमी करणंबुधैः।

सम्मुखी मुद्रा, सकली करण मुद्रा, अवगुण्ठन मुद्रा, सन्निरोधन मुद्रा, नाराच मुद्रा इत्यादि मुद्राएं वर्णन की गयी हैं।

अर्घ्यः-

ओमृतापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दलक्षणम्।
तापत्रयविनिर्मुक्तं तवार्घ्यंकल्पयाम्यहम्।।

प्रदक्षिणाः-

एका चण्डयां रवौ सप्त तिस्रे दद्याद् विनायके।
चतस्रः केशवे देया शिवस्यार्द्धप्रदक्षिणा।।

प्रणाम के प्रकरणः

उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा।
पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः।।

उपचारभेदाः-

भक्त्या चैते कृता देवे साधकं देवसन्निधिम्।
चारयन्ति यतस्तस्मादुच्यते ह्युपचारका।।

समीपे चारणाद्वापि फलानान्ते तयोदिताः।
अष्टत्रिंशत् षोडशोऽर्क दशपञ्चोपचारकाः।।

तान्विभज्यप्रवक्ष्यामिके के ते तैःकृतैश्च किम्।
आसनं प्रथमं तेषामावाहनमुपस्थितिः।
स्नानं नीराजनं वस्त्रमाचामं चोपवीतकम्।।

पुनराचामभूषे च दर्पणालोकनं ततः।
गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यं च ततः क्रमात्।।
पानीयं तोयमाचामं हस्तवासस्ततः परम्।
ताम्बूलमनुलेपञ्च पुष्पदानं पुनः पुनः।।
गीतं वाद्यं तथा नृत्यं स्तुतिं चैव प्रदक्षिणाम्।
पुष्पाञ्जलिनमस्कारावष्टत्रिंशत्समीरिताः।।

तन्त्रों में

षोडशीति प्रधाना च दशार्द्धा तदनु स्मृता।
पञ्चधा तदनु प्रौक्ता कर्त्तव्याभूतिमिच्छता।।

कलत्रं वैधात्रं कति कति भजन्ते न कवयः।
श्रियो देव्याः को वा न भवति पतिः कैरपि धनैः।।

महादेवं हित्वा तव सति सतीनामचरमे ।
कुचाभ्यामासङ्गः कुरवकतरोरप्यसुलभः ।।97।।

भावार्थ

हे सती ब्रह्मा की गृहिणी सरस्वती की उपासना करने से कितने कवि वाचस्पति हुये, अर्थात् बहुत कवि हो गये। लक्ष्मी की उपाशना करने से किसने धन नहीं पाया अर्थात लक्ष्मीपति हो गये किन्तु तुम ही सतियों में श्रेष्ठ हो जिसके वक्षस्थल का आलिंगन शिव के अतिरिक्त अशोक वृक्ष तक भी नहीं कर सकता है।

विज्ञान भाष्य

आदि कवि ब्रह्मा ही हुये हैं परन्तु सरस्वती की सेवा करने से और भी कवि हो गये हैं। जैसे लक्ष्मी पति विष्णु हैं परन्तु लक्ष्मी की उपाशना करने से कितने ही धनवान होकर लक्ष्मी पति कहलाने लगे परन्तु हे भगवती तुम सवर्वोपरि स्थिर हो यतः सरस्वती और लक्ष्मी भी स्थिर नहीं रहती अशोक वृक्ष जब सूख जाता है उसे जब तक पद्मिनी अपने पैर से स्पर्श न करे तब तक उसमें जीवन नहीं आता अतः उसे सदा तुम्हारे चरण के आलिंगन की शोभा है, परन्तु वह भी तुम्हारे शरीर का आलिंगन नहीं कर सकता हैं यहां पर भगवती के स्वरूप का वर्णन पद्मिनी स्त्री से किया है, यथार्थ में पद्मिनी के लक्षण जिन स्त्रियों में होते हैं उन्हें भगवती का अवतार जानना चाहिये।

रक्तान्तलोचनाहंसगतिश्च श्रीफलस्तनी।
तिलप्रसूनसदृशनासिका पूज्यपूजिता।।

चम्पकासूनगौरी वा नीलोत्पलरुचिस्तथा।
मृगयारम्भसम्प्राप्ति मृगीलोचनलोचना।।

बलित्रयोल्लासिमध्या सुवेशा हंसवर्तना।
मुदुल्पशुचिभोक्त्री गाढलज्जा च मानिनी।।

श्रवलाधरपुष्पेषु प्रीतिर्यस्या प्रजायते।
द्वितियायां तृतीयायां रात्रये रतिलोलुपा।।

दिवारात्रोस्तुर्ययामे पद्माशनलयेन च।
यस्या रत्तीच्छा भवति सा जाति पद्मिनी भवेत्।

जिसके नेत्र के कोए लाल रंग के हो, हंस के समान चलती हो, बड़े-बड़े स्तन हो, फूल के समान नाक हो, जिन्हे धनी तथा ज्ञानी पुरुष आदर करते हों, जिनका वर्ण चम्पा के फूल के समान हो, मृग के समान चञ्चल नेत्र हो, जिसके पेट की त्रिवली शोभा बढ़ा रही हो, सुन्दर आभूषण जिसको अच्छा ज्ञात हो थोड़ा भोजन करे, और लज्जा वाली हो उसे पद्मिनी कहते हैं।

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो।
हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयाम्।।

तुरीया काऽपित्वं दुरधिगमनिः सीममहिमा।
महामायाविश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषि।।98।।

टीक

हे परब्रह्म महिषि! वेद के ज्ञाता तुम हो ब्रह्मा की पत्नी सरस्वती नाम से, विष्णु की कमला, शिव की सहचरी पावर्तती इन नामों से तुमको ही सम्बोधित करते हैं, परन्तु पूर्ण सत्त्व को निस्सरण करने वाली तुम तुरीयतारूपा दुरधि प्राप्य अनन्त महिमावाली महामाया रूपा परब्रह्म की शक्ति सारे संसार को सञ्चालन करने वाली हो।

विज्ञान भाष्य

इस श्लोक से भगवती तुरीयारूप सच्चिदानन्दा का नित्य शुद्धबुद्धा आनन्दमयी का वर्णन आया है। तुरीया को परा षोडशी भी कहा है- ''सौं श्रीं ह्री क्लीं ऐं सौं ॐ ह्रीं श्रीं क ए इ ल ह स क ह ल स क ल ह्रीं सौं

ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं सौं यह "तुरीया विद्या आत्मसाक्षात्कारिणी ब्रह्म विद्या है।

समुद्भूतस्थूलस्तनभरमुरुश्चारूहसितम्।
कटाक्षे कन्दर्पाः कतिचन कदम्बद्युतिवपुः।।
हरस्य त्वद्भ्रान्तिं मनसि जनयन्ति स्म विमला।
भ्वत्या ये भक्ताः परिणतिरमीषामियमुमे।।99।।

भावार्थ

हे उमे! शुद्ध हृदय वाले भक्त तुम में तन्मय होने से उनके वक्षस्थल उन्नत हो जाते हैं। उनके मुख पर मन्द हास्य आ जता है। उनके मन्द दृष्टि रूप कटाक्ष से काम देव का विकाश हो जाता है कदम्ब वृक्ष के सदृश उनका शरीर हो जात है, ये सब लक्षणों को देखकर शिव के मन में तुम्हारी भ्रान्ति उन भक्तों को देखने पर आ जाती है।

विज्ञान भाष्य

भक्त भगवती पर ध्यान लगाने से भगवती के स्वरूप को धारण कर लेता है। "भावितं तीव्रवेगेन वस्तु यन्निश्चयात्मना। पुमानूतद्धि भवेच्छीघ्रं ज्ञेयं भ्रमरकीटवत्" जो जिसका तीव्र वेग से ध्यान करता है, उसका वही रूप बन जाता है, जैसे- मकड़ी एक कीड़े को पकड़ कर लाती है, कीड़ा एकाग्र मकड़ी का देखता रहता है। थोड़ी देरी में कीड़ा मकड़ी के स्वरूप में बदल जाता है दृढ़ विश्वास और श्रद्धा से दर्शन होता है, देव-दर्शन से ज्ञान-ज्ञान से तद्रूप "ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति" ब्रह्म का जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है।

कदा काले मातः कथय कलितालक्तकरसम्
पिबेयं विद्यार्थी तवचरणनिर्णेजनजलम्।
प्रकृत्या मूकानामपि च कविताकारणतया।
यदादत्ते वाणी मुखकमलताम्बूलरसताम्।।100।।

भावार्थ

हे माता! तुम्हारे चरण में लगे हुये अलक्त से रंजित चरण निर्णेजन जल को यह विद्यार्थी कब पान कर सकेगा या यह बताओ जो चरणामृत स्वभाव से मूक मूर्खों को भी कविता रूपी वाक्शक्ति प्रदान करता है। ''उस वाणी मुखकमल ताम्बूल रस के सदृश लालिमा वाले चरणामृत को मैं कब पान करूंगा?

विज्ञान भाष्य

भगवती के चरणारबिन्द प्रक्षालित जल पान करने से जड़ बुद्धि रहित होकर मनुष्य बुद्धिमान हो जाता है। सामयिक के मतानुसार सहस्रार से निसृत जो अमृत बिन्दुओं का क्षरण होता है, उस जल पान को जब जीव करता है उसको भगवती का चरणामृत कहा है, जैसे- ''सुधाधारा सारैः'' श्लोक (10) में वर्णन किया है। ''अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं'' इस श्लोक में जिस तरह कुण्डलिनी को उद्बोधन कर कुलकुण्डा में लाने को कहा उससे तात्पर्य हैः आज्ञा चक्र में भगवती के दो चरण है वहां से निसृत अमृत रूपी चरणामृत उपासक योगाभ्यास द्वारा पान करता है। इसके लिये कहा है, अकालमृंत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनं, देव्याः पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।'' इस चरण निसृत जल का पान करने वाले साधक योगी को अकालमृत्यु नहीं होती है। वह व्याधियों से छुटकारा पा जाता है। भगवती के चरणामृत पाने पूर्ण ज्ञान का प्रकाश होने से वह मुक्त हो जाता है। चरणामृत पूजन के अनन्तर अवश्य पीना चाहिए। इस जल में पूजा के मन्त्रों से दिव्य शक्ति आ जाती है। इस श्लोक में उत्प्रेक्षालंकार है।

सरस्वत्या लक्ष्म्या विधिहरिसपत्नो विहरते
रतेः पातिव्रत्यं शिथिलयति रम्येण वपुषा।
चिरं जीवन्नेव क्षपितपशुपाशव्यतिकरः
परानन्दाभिख्यं रसयति रसं त्वद्भजनवान्।101।

भावार्थ

हे भगवती! तुम्हारा भजन करने वाला साधक सरस्वती पर वाचस्पतित्व (ब्रह्मा के सदश) लक्ष्मी पर धन ऐश्वर्य (श्रीपतित्व) प्राप्त कर ब्रह्मविष्णु का ईर्ष्या पात्र होकर विहार करता है। (एवं) रमणीय शरीर से रति के पातिव्रत को शिथिल करता है। (अर्थात् रति उसके सौन्दर्य को देख कामदेव का भ्रम करती है। पशु पाशों को दूर कर दीर्घायुभोगता हुआ परमानन्द (ब्रह्मान्द) रस को पान करता है।

विज्ञान भाष्य

भगवती का भजन करने वाला साधक ज्ञान, शक्ति और विभव शक्ति सम्पन्न हो जाता है। उसका सांसारिक जीवन ऐश्वर्य प्रभावयुक्त रहता है। वह सब प्रकार के उत्तम उत्तम भोगों को भेगता हुआ दीर्घायु और अज्ञान के बन्धनों से निर्मुक्त होकर अन्त में ब्रह्मानन्द रस मोक्ष को प्राप्त करता है। पशुपाश-पशुजीवइन्द्रियप्रपञ्चपश्यतीति पशुः इन्द्रिय भोग-लोलुप जीवन को पशु कहते हैं जैसे तैत्तरेय में आया है- अदितिः पाश प्रमुमोक्त्यै तन्नम (तै0 3,11,4 पशुभ्यपशुपतये करोमि।'' तथा पाश आठ) प्रकार के पांशुपत शास्त्र में कहे है- ''घुणा शंका भयं लज्जा जुगुप्सा चेति पञ्चमी कुलंजातिश्च च शीलं व अप्टौ पाशाः पकीर्तिका। पाशवद्धोभवेज्जीवः पाशमुक्तो सदा शिवः।।''

पुस्तक सब पढ़ते हैं धन भी बहुत उपार्जन करते हैं परन्तु वाणी का सुख और धनोपार्जन करने पर धन सम्पत्ति का ऐश्वर्य भोग वही ले सकते हैं। जिन्होंने महामाया भगवती की शुद्ध भाव से उपासना की हो। वहीं स्थिर विद्या, स्थिर लक्ष्मी निवास करती है। जो धनवान होते हैं। प्रायः वह पूर्ण आयु नहीं भोगते हैं परन्तु भवगती का उपासक लक्ष्मीपति होता हुआ, पूर्ण आयु भोगता हुअ अन्त में ज्ञान निष्ठ होकर ब्रह्मानन्द रस को प्राप्त करता है। यथा उपनिषदः- रसोहवै लब्ध्वाः आनन्दी भवति। कभी कभी जन्मान्तर संस्कारवस शिवभक्ति सायुज्य होने पर भी अर्थात षटचक्र भेदन करने पर सहस्त्रार सायुज्य होने पर भी अर्थात षटचक्र भेदन करने पर

सहस्रार में पहुंचने पर भी वासना के जीवन्मुक्त होकर देह में ही रहता है। यथा "सम्यगज्ञानाधिगमात् कर्मादिनामकरण प्राप्तौ, तिष्ठति संस्कार वशाच्चक्रभ्रमिव धृत शरीरः। षटचक्रकों से जिस चक्र में साधक निष्ठा करता है, उस चक्र में साधक निष्ठा करता है, उस चक्र में स्थिरता पाता है। इसका फल यह- मणीपर में साष्टी मुक्ति प्राप्त कर भक्ति प्राप्ति में उसकी पूर्ण भावना स्थिर हो जाती है। अनाहत में स्थिर होने से सालोक्य मणिद्वीप का आनन्द लेता है। विशुद्ध में मनोलय करने से सामीप्य सिद्धि से उसे प्रतिक्षण भगवती की झांकी दीख पड़ती है। आज्ञा में स्थिर होने से सानिध्य अर्थात् देवी का स्वरूप अनुभव करता है। इस प्रकार सब पाशों से मुक्त होता हुआ तुम्हारा भजन करने वाला मोक्ष प्राप्त करता है। षट्चक्र तथा श्रीचक्र इसी मनुष्य देह में है। जैसे चित्रपट में दिखाया है। इसका वर्णन पूर्व श्लोगों में हो चुका है। मतान्तर से नाद, श्रीचक्र बिन्दु षट्चक्र है, यथा मूलाधार श्रीचक्र का त्रिकोण स्वाधिष्ठान् अष्टदल, मणिपुर, अन्तर्दशार, अनाहत, बहिर्दशार, विशुद्धि, षोडशदल, चतुर्दशार, आज्ञा, अष्टदल, दूसरा सहस्रदल-त्रिवृत्त (तीन ग्रान्थिया) मूलाधार-स्वाधिष्ठान ब्रह्मग्रन्थी। अनाहत विष्णुग्रन्थी, आज्ञा-रुद्रग्रन्थी ये श्रीचक्र की तीन परिधि शरीर में है। बिन्दु का स्थान गुरुमुख से जानना चाहिये।

निधे नित्यस्मरे निरवधिगुणे नीतिनिपुणे।
निराबाधज्ञाने नियमपरचित्तैकनिलये।।
नियत्या निर्मुक्तनिखिलनिगमान्तस्तुतपदे।
निरातंके नित्यनिगमय ममापि स्तुतिमिमाम्।।102।।

भावार्थ

हे निधे! सम्पूर्ण सार के आधारभूत, हे नित्यस्मेरे! निरन्तर स्मेरमुखि। हे निरवधिगुणे! अनन्त गुण को रखने वाली तथा अकाट्य ज्ञानमयी नियमपरायाण भक्तों के मन में निवास करने वाली नियति से निर्मुक्त नित्य रहने वाली सम्पूर्ण वेदो पनिषदों द्वारा स्तुति किये हुये निरातंके, जिसमें किसी प्रकार का भय नहीं है, हे नित्ये! हे ब्रह्म स्वरूपा! मेरी इस स्तुति

को अपने तक पहुंचा दो, (यही मेरी प्रार्थना है) अर्थात हे भगवती! मेरा स्तवन शब्द ब्रह्म तक पहुंच जाय शब्द।

विज्ञान भाष्य

निधे शब्द का अर्थ याज्ञवल्क्य और मनु ने भूमि में छिपे हुए धन को बताया। अर्थात् अव्यक्त पद की प्राप्ति। नित्ये! इस सम्बोधन से यह प्रकट किया गया कि वेद के दो काण्ड है ''उपाशना'' और ''ज्ञान'' उपाशना का अविद्यात्मक बताया है और ज्ञान को विद्यात्मक। नित्य! इस सम्बोधनसे श्रीविद्या की उपाशना, ज्ञानअर्थात् मोक्ष देने वाली है। स्मेरे शब्द आनन्द का सूचक श्री विद्या के उपासक के घर में नित्य आनन्द तथा उपासक नित्य आनन्द में रहता है। निरवधि गुणे! इस पद से साधक ऊँचा रहता है। अर्थातू निरवधिगुण परा विद्या से तात्पर्य है। नीति निपुणे से संसार चक्र के चलाने में साधक को पूर्ण निपुणता होनी बताई है। निराघाटज्ञाने से साधक को किसी बात के समझाने में रुकवाट नहीं आती है। नियम-परचितैक निलये। नियम परायण साधकों के चित्त में निवास करने वली। चित्त की 7 भूमिकायें होती है- शुभोच्छा शुभविचारणा, तनुमानुषा, सत्वापत्ति, अंश शक्ति पदार्थभाविनी और तुर्यगा। योग दर्शन में पहले की 3 भूमिका साधन भूमिका बताई है। 3 भूमिका तक ज्ञान प्राप्ति की प्रधान भूमिका है। इनमें श्रवण मनन, निदिध्यासन पर्यन्त ही जानना चाहिये। इसको जागृत भूमिका भी कहते हैं। चतुंर्थ भूमिका से लेकर 7 भूमिका तक सिद्ध भूमि कही है, इसलिये चतुर्थ भूमिका को स्वप्न भूमि और पञ्चम को सुसुप्ति भूमि, इन दो भूमियों में जाकर योगी स्वयं उठ सकता है। यहाँ ब्रह्मविद्वरीयान योगी को कहा है, लेकिन छठी भूमिका में योगी समाधि से स्वयं नहीं उठ सकता, इसलिये इस भूमिका में योगी को ब्रह्मविद वरीयान कहते हैं। पंचम भूमिका में जीवन मुक्ति भाव हो जाता है। सप्तम भूमिका में न योगी किसी से उठाया जा सकता न स्वयं उठ सकता है। यहां पर ब्रह्मविद् वरिष्ठ कहा जाता है। योगी को इस भूमिका में जाने पर जीव, ईश्वर, जागृत यह भेद भ्रान्ति की स्फुरणा

तक नहीं रहती। ईश्वर प्रेरणा से प्राणवायु का संचालन होता रहता है। शरीर का होना न होना योगी को इस अवस्था में समान है। साधक को इन 7 भूमियों की सिद्धि बताई है।

नियत्या। अर्थात् मृत्युपाश से साधक का छुटकारा हो जाता है। निखिल निमा, अर्थात् सब वेदों से उसकी स्तुति की जाती है, "सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति" "निरांतके लोके" अर्थात् दुख रहित नित्य ब्रह्मलोक की प्राप्ति। इस प्रकार वेदान्त सिद्ध अवस्था श्रीविद्योपाशना से प्राप्त होती है।

प्रदीपज्वालाभिर्दिवसकरनीराजनविधिः।
सुधासूतेश्चन्द्रोपलजललवैरर्घ्यरचना।।
स्वकीयैरम्भोमिः सलिलनिधिसौहित्यकरणम्।
त्वदीयाभिर्वाग्भिस्तव जननि वाचाम्
स्तुतिरियं ।।103।।

भावार्थ

हे जननी! दिन को करने वाले सूय को दीपक के प्रकाश से नीराजन अथवा अमृत निष्पन्दन करने वाले चन्द्रमा को जल के कणों से अर्घ्य प्रदान, समुद्र को उसके जल से सिञ्चन करना इसी तरह तुम्हारी ही वाणी द्वारा यह तुम्हारी ही स्तुति है।

विज्ञान भाष्य

सूर्य प्रकाश का पुञ्ज, उसे दीप से नीराजन करना, चन्द्रमा अमृत निष्छरण करने वाला उसे जलकणों से अर्घ्य देना समुद्र को उसके जल से तृप्त करना, इसी प्रकार वाणीरूपा हे भगवती! तुमको तुम्हारी वाणी से प्रसन्न करना एकमात्र क्षमापन् मांगना है। शब्दात्मिका भगवती ही शब्दरूप है। उसकी स्तुति करना उसी की वाणी का स्तवन है। साधक अपना अहम्भाव त्याग कर चराचर विश्व में भगवती को ही देख रहा है।

इति श्री आदि श्रीमच्छङ्कराचार्य विरचित "सौन्दर्य लहरी" विज्ञान भाष्य कुसुमावली समाप्ता।

।। पुष्पाञ्जलिः ।।

शिवे शिवसुशीतलामृततरङ्गगन्धोल्लस-
न्नवावरण देवते नवनवामृतस्यन्दिनि ।
गुरुक्रमपुरस्कृते गुणशरीरतित्योज्ज्वले
षडङ्गपरिवारिते कलित एष पुष्पाञ्जलिः ।।

समस्तमुनियक्षकिंपुरुष सिद्धविद्याधर-
गुह्यसुरसुराप्सरोगणमुखैर्गणैः सेविते ।
निवृत्तितिलकाम्वरप्रकृतिशान्तिविद्याकला-
कलापमधुराकृते कलित एष पुष्पाञ्जलिः ।।

त्रिवेदकृतविग्रहे त्रिविधकृत्यसंधायिनी
त्रिरूपसमवायिनि त्रिपुरमार्गसंचारिणी ।
त्रिलोचनकुटुम्बिनि त्रिगुणसंविदुद्यत्पदे
त्रिय त्रिपुरसुन्दरि त्रिजगदीशि पुष्पाञ्जलिः ।।

पुरन्दरजलाधिपान्त ककुवेररक्षोहर-
प्रभाञ्जनधानञ्जयप्रभृतिवन्दनानन्दिते ।
प्रवालपदपीठिकानिकटानित्यवर्तिस्वभू-
विरिञ्चिविहतस्तुते विहित एष पुष्पाञ्जलिः ।।

यदानतिवलादलंकृतिरुदेति विद्यावय
स्तपोद्रविणसौरभाकृतिक वित्वसंविन्मयी ।
जरामरणजन्मजं भयमपैति तस्यै समा-
हिताखिलसमीहितप्रसवभूमि तुभ्यं नमः ।।

निरावरणासंविदुद्रामपरास्तभोदोल्लस
त्पदास्पद चिदेकतावरशरीरिणि स्वैरिणि ।

रसायनतरङ्गिणी रूचितरङ्गसंचारिणि।
प्रकामपरिपूरणि प्रसृत एष पुष्पाञ्जलिः।।

तरङ्गयति संपदं तदनु संहरत्यापदं
सुख वितरतिश्रियं परिचिनोति हन्ति द्विषः

क्षिणोति दुरितानि यत्पणतिरम्ब तस्यै सदा
शिवंकरि शिवे परे शिवपुरन्धि तुभ्यं नमः।।

त्वमेव जननी पिता स्वमथ वान्धवस्त्वं सखा
त्वमायुरपरं त्वमभरणमात्मनस्त्वं कला।

स्वमेव वपुषः स्थितिस्त्वमखिलायतिस्त्वं गुरू
प्रसीद परमेश्वरि प्रणतिपात्रि तुभ्यं नमः।।

कञ्जासनादिसुरवृन्दलसतिकरीट
कोटिप्रघर्णणसमुज्जवलदंघ्रिपीठे।

त्वामेव यामि शरणं विगतान्यभावं दीनम्
विलोकय दयार्द्रविलोचनेन।।

श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः। पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि।।

सौन्दर्य लहरी

· सौन्दर्य लहरी के प्रत्येक श्लोकात्मक मंत्रों की प्रयोगानुष्ठान विधि बीजमन्त्रों तथा पूजन यन्त्रों के साथ।

श्लोक नं0 1

(क्लीं)

चतुष्कोण यन्त्र मध्य में कामबीज मन्त्र (क्लीं)

इस श्लोक में इच्छित कार्य की सिद्धि के प्रयोग का वर्णन है। साधक निरन्तर 12 दिन तक जप करे घी के दीपक जलावे चार रंगों से इस प्रकार का यन्त्र बना सामने रख पूजा कर नित्य 1000 जप करे, प्रयोग के दिनों में मिष्ठान्न और फल भक्षण करे, पूर्वाभिमुख सोने के पत्र पर यन्त्र बनावे और सर्व सम्पत्ति प्राप्त होती है।

(यन्त्र नित्य लिखे, 10 (दश) संस्कार करे, प्राण प्रतिष्ठादि पंचदश संस्कार करके पूजन षोडशोपचार से नित्य करें। त्रिमधु से दशांश हवन तर्पण मार्जन कुमारी पूजन ब्राह्मण भोजन करावें।)

चतुष्कोणयन्त्र बनाकर मध्य में काम बीज लिखें।

श्लोक नं0 2

(ह्रीं)

त्रिकोण यन्त्र मध्य में बधुबीज (ह्रीं)

दूसरे मन्त्र से कार्य की सिद्धि व सर्व प्रकार के वशीकरण होते हैं। इस यन्त्र को स्वर्ण पत्र पर अष्टगन्ध से लिख उत्तराभिमुख हो पूजन कर 1 महीना 25 दिन तक नित्य एक सहस्र जप करें। जौ के आटे का घृत में पका कर (यवागू) भक्षण करें।

(त्रिकोण यन्त्र)

श्लोक नं0 3

(श्रीं)

मध्य में रमाबीज

मन्त्र के प्रयोग विद्या के विकास के लिये है।

इस यन्त्र को स्वर्ण पर पूर्वोक्त विधि से लिख पूजन कर ईशानाभिमुख बैठकर 1 महीना 24 दिन तक 2000 दो सहस्र तृतीय श्लोकात्मक मन्त्र का नित्य जप करें। साधनकाल में चणकान्न भोजन करें।

इसी प्रयोग में विद्यार्थी को विद्या प्राप्ति के लिये 15 दिन तक नित्य सहस्रात्मक जप करना चाहिये।

श्लोक नं0 4

(दुं)

अष्टकोण यन्त्र मध्य में दुर्गा बीज

चतुर्थ मन्त्र का प्रयोग महान प्रभुत्व की प्राप्ति के लिये है।

चांदी के पत्र पर पूर्वोक्त विधि से पूर्वाभिमुख होकर 16 सोलह दिन तक नित्य सहस्रात्मक जप करें। भोजन में चना चावल ही ग्रहण करें।

श्लोक नं0 5

शं लं रं

सं टं हं

यं वं बं

पंचम मन्त्र का प्रयोग अन्य मनुष्य की अपेक्षा प्रथम वस्तु पर अधिकार कर लेने के लिये है। तांबे के पत्र पर इस यन्त्र की उपरितन मार्ग से लिख पूजन कर पूर्वाभिमुख 8 (आठ) दिन तक नित्य 2000 दो सहस्र जप करें।

(चतुष्कोणयन्त्र बनायें मध्य में (ठं) चार कोणों में ईशान कोण से शं रं, वं, यं इनके मध्य में लं अर्थात् शं लं रं इस प्रकार पूर्व में दक्षिण में हं अर्थात् रं हं वं एवं पश्चिम में वं उत्तर में सं।)

श्लोक नं0 6

क्लीं क्लीं क्लीं

साध्यम्

क्लीं क्लीं क्लीं

छठे मन्त्र का प्रयोग नपुंसकता के रोग के निवारणार्थ है।

सोने के पत्र पर यन्त्र लिखकर पूर्वाभिमुख 21 इक्कीस दिन 500 नित्य प्रति संख्या से जप करता हुआ गन्ना 'ईख' का भक्षण करे।

(चतुष्कोणीय यन्त्र मध्य में कामबीज छः बार उन तीन बीजों को लिख साध्य का नामपुनः तीन कामबीज)

श्लोक नं0 7

क्लीं

इस बीजाक्षर से सुवर्ण पत्र को शमशान की राख पर रखकर पूर्वाभिमुख हो साधक को 45 दिनों तक 1000 बार श्लोक के नित्य प्रति जपने परशत्रु पर विजय प्राप्ति होती है। यह सुवर्ण पत्र शिर पर धारण करना चाहिए। इन दिनों दूध और भात खाकर रहें।

श्लोक नं0 8

रं

आठवें मन्त्र का प्रयोग कारागार से मुक्ति प्राप्ति के लिये है।

13 लाल चन्दन से यन्त्र निर्माण कर रक्त पुष्प द्वारापूजन करे। 12 दिन तक नित्य 1200 बारह सौ संख्या से जप करता हुआ काली मिर्च का भक्षण करें।

(दो रेखा + मध्य में र)

श्लोक नं0 9

यं यं यं

माध्यम्

आं कौं

नवे मन्त्र का प्रयोग-सब वस्तुओं पर आधिपत्य प्राप्त करना और विदेश गत मनुष्य के प्रत्यावर्तनार्थ है।

स्वर्ण पत्र पर अष्ट गन्ध से यन्त्र निर्माण कर 45 पैंतालीस दिन नित्य सहस्र 1000 संख्या से दुग्ध पान करता हुआ जप करे।

(त्रिशूल के भीतर दो रेखा तीन बार यं नीचे आं कौं)

श्लोक नं0 10

ह्रीं

ह्रीं क्लीं ह्रीं

ह्रीं

ह्रीं क्लीं ह्रीं

ह्रीं

दशवें मन्त्र का प्रयोग-स्त्री-रोग तथा जिन स्त्रियों के स्तन सूख गये हो उनके लिये हैं।

सुवर्ण पत्र पर विधिपूर्वक यन्त्र लिख 6 छह दिन 1000 सहस्र संख्या में जप करें, लाल रेशम के तागे को कलाई पर बांधें। फल भक्षण करें।

(षटकोण प्रत्येक कोण में बधुबीज मध्य में क्लीं, ह्रीं क्लीं)

श्लोक नं0 11

श्रीं

ग्यारहवें मन्त्र का प्रयोग-बन्ध्यापन निरसनार्थ है।

सुवर्ण पत्र पर यन्त्र लिखकर प्राण प्रतिष्ठापूर्वक पूजा कर मक्खन से नवनीत यन्त्र को आच्छादित कर 8 दिन तक 1000 सहस्र जप करें। जपान्त में नवनीत को शीघ्र खालें। भोजन ताल खजूर, गुलगुले, मालपुआ, महानैवेद्य करें।

(षटकोण के बाहर वृत्त मध्य में रमाबीज)

श्लोक नं0 12

सौः

सौः

बारहवें मन्त्र का विधान-वक्तृता और कवित्व शाक्ति प्राप्त करने पर है।

स्वर्णादि पत्र पर यन्त्र लिखकर पूजन कर जल डाल दें। 45 पैंतालीस दिन तक नित्य सहस्र जप कर यन्त्रस्थ जल का पान करें। भोजन में मधुमिश्रित अन्न या केवल मधु हो।

(चतुष्कोण-मध्य में दो शक्ति बीज)

श्लोक नं0 13

क्लीं क्लीं क्लीं

माध्यम्

क्लीं क्लीं क्लीं

तेरहवें मन्त्र का प्रयोग - कामिनी वशीकरण परक है।

स्वर्ण पत्र या शीशे के पत्र पर अष्टगन्ध से लिख छह दिन तक जप करें। जप के बाद यन्त्र को कण्ठ में बांधे जप प्रति दिन 1000 सहस्र संख्या में करना चाहिये।

(चतुष्कोण-मध्य में 2 पंक्तियों में कामबीज प्रति पंक्ति में तीन बार)।

श्लोक नं0 14

श्रीं श्रीं

श्रीं श्रीं

श्रीं श्रीं

चौदहवें मन्त्र का प्रयोग-दुर्भिक्ष या महामारी के बचाव के लिये है।

स्वर्ण पत्र पर यन्त्र निर्माण कर 45 पैंतालीस दिन तक 1000 सहस्र संख्या में जप करें। भोजन के बाद मालपुआ, चावल ग्रहण करें।

(चतुष्कोण बार मध्य में रमाबीज)।

श्लोक नं0 15

सं सं

सं सं

सं सं

पन्द्रहवें मन्त्र का प्रयोग-कवित्व शक्ति और बुद्धि-विकास के लिये है।

सुवर्ण पत्र पर यन्त्र 45 पैंतालीस दिन तक नित्य 1000 संख्या में जपें। इसके बाद यन्त्र प्रक्षालित जल का भक्षण करें। भोजन मधु, फल, शुद्ध शक्कर का ग्राह्य है।

वृत्त मध्य में 6 बार 'सं' बीज)।

श्लोक नं0 16

वं

वं

वं

सोलहवें मन्त्र का विधान-वेदान्त और शास्त्र का विकास तथा जनता को प्रसन्न करने के लिये।

सुवर्ण पत्र पर यन्त्र बना 45 पैंतालीस दिन तक 1000 सहस्र संख्या में नित्य जप कर मधु भक्षण करें।

(त्रिकोण मध्य में तीन बार "वं" बीज)।

श्लोक नं0 17

ऐं

ऐं ऐं

सत्रहवें मन्त्र का प्रयोग सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञान के हेतु है।

सुवर्ण पत्र पर यन्त्र बनाकर पैंतालीस 45 दिन तक नित्य 1000 सहस्र संख्या में जप मधु, फल, दूध, शक्कर का भोजन।

(चतुष्कोण मध्य में लम्बी रेखा खींच कर दो चतुष्कोण हो जायं। तीन बार बागूभव बीज)।

श्लोक नं0 18

का

नमः क्लीं म

क्लीं

य क्लीं दे

वा

अट्ठारहवें मन्त्र का प्रयोग-स्त्री, पुरुष, जानवर, देव, दानवादि शब्द सब को वशीकरण परक है।

स्वर्ण पत्र पर चन्दन पुष्प केसर से यन्त्र बनाकर 1000 सहस्र संख्या से 45 दिन तक जप करें। दुग्ध, ताम्बूल, पूंगीफल का भक्षण करें।

(षटकोण कामदेवाय नमः 6 कोणों पर इस मन्त्र का एक 2 अक्षर नमः ईशान कोण में दो अक्षर)

श्लोक नं0 19

ह्रीं

ह्रीं ह्रीं

ह्रीं

इस उन्नीसवें मन्त्र का प्रयोग-राजा, स्त्री, दानवों के आकर्षण करने में है।

सुवर्ण पत्रपर हवन की भस्म, चन्दन, कुंकुम, धतूरे के पुष्प से यन्त्र बनाकर 25 दिन 12000 द्वादश सहस्र संख्या में प्रति दिन जप करता हुआ, दूध, मधु, फल खावें।

(वृत्ताकार 4 वधुबीज मध्य में)।

श्लोक नं0 20

ॐ

क्षिप

स्वाहा

बीसवें मन्त्र का प्रयोग-विषहरण और सर्पविष को दूर करने के लिये हैं।

पचीस 25 दिन तक सहस्र संख्या में तथा 45 दिन तक शत 100 संख्य से जप करता हुआ हवन की भस्म या जल से चन्द्र बनाकर दूध, कधु, फल खावें।

(अष्टकोण मध्य में क्षिप क्षिप साध्य लिखें)।

श्लोक नं0 21

ह्रीं

ह्रीं ह्रीं

इक्कीसवें मन्त्र का प्रयोग-शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिये है।

सुवर्ण पत्र पर वा चांदी या ताम्रपर यन्त्र बनावें। 45 पैंतालीस दिन तक नित्य सहस्र संख्या में जप करते हुए दूध, मधु, ताल, खजूर भक्षण करें

(वृत्त मध्य में तीन बधूबीज एक ऊपर दो नीचे)।

श्लोक नं0 22

बाइसवें मन्त्र का प्रयोग-सांसारिक वासनाओं के त्याग तथा सर्व प्रकार की इच्छा के दूर करने के लिये है।

सुवर्ण पत्र पर यन्त्र लिखकर पैंतालीस 45 दिन तक सहस्र संख्या में जपा हुआ मधु, त्रिमधु, कढ़ी, दूध, भिन्न-2 प्रकार की खिचड़ी खावें। अन्त में यन्त्र को धारण करें।

(श्री यन्त्र लिखें)

श्लोक नं0 23

स्त्रं

तेइसवें मन्त्र का प्रयोग- रोग, ऋण तथा पिशाच बाधा दूर करने के लिये है।

सुवर्ण पत्र पर यन्त्र बनाकर 1 एक महीने तक नित्य 3000 तीन सहस्रात्मक जप पूजन घर में करें। जौ को दूध में पका कर खायें।

(दो वृत्त 1 भीतर के वृत्त में कोण (दश दल) मध्य में स्त्रं)

श्लोक नं0 24

न शि य मः वा
य मः व न शि
वा न शि य मः
शि य मः वा न
मः वा न शि य

चौबीसवें मन्त्र का प्रयोग- प्रेतत्व दोष दूर करने के लिये है।

सुवर्ण पत्र पर यन्त्र बना 1 एक मास तक नित्य 1000 एक सहस्रात्मक जप करता हुआ मधु मिश्रित चना की रोटी और तिल के लड्डुओं का भक्षण करे।

(चतुष्कोण बीच में चार लम्बी रेखा 25 कोष्ट हो गये। नमः शिवाय एक कोष्ट में एक-एक अक्षर)।

श्लोक नं0 25

सौः

पच्चीसवें मन्त्र का प्रयोग पदवी प्राप्त करने के लिये है।

सुवर्ण पत्र पर यन्त्र बनाकर 1 मास 15 दिन 1000 एक सहस्रात्मक जप करें। मधु का भक्षण करें।

(त्रिकोण मध्य में शक्तिबीज)

श्लोक नं0 26

क्लीं क्लीं

छब्बीसवें मन्त्र का प्रयोग सर्वजन --------पर विजय प्राप्त्यर्थ हैं

सुवर्ण पत्र पर यन्त्रबनाकर शुक्लपक्ष की षष्ठी को 1000 एक हजार जप करें।

शत्रु पर विजय प्राप्ति के लिये सुवर्ण पत्र पर यन्त्र बना 6 दिन नित्य एक हजार जपे।

ताल खजूर खावे। (चतुष्कोण मध्य मे-2 काम बीज)

श्लोक नं0 27

ह्रीं

सत्ताइसवें मन्त्र का प्रयोग आत्मज्ञान की प्राप्ति कारक है।

स्वर्ण पत्र पर एक महीना 15 दिन नित्य 1 हजार जपता हुआ ताल

खजूर का भक्षण करें। (त्रिकोण मध्य में मधुबीज)

श्लोक नं0 28

ठं

ठं

ठं

अट्ठाइसवें मन्त्र का प्रयोग अल्प मृत्यु निवारणार्य तथा सवसिद्धि प्राप्ति के लिये है।

सुवर्ण पत्र पर यन्त्र 1 एक महीना 15 दिन तक बनाकर नित्य 1000 एक हजार जप करें।

त्रिमधु, खीर, पान, सुपारी खावे। चतुरस्त्र (चतुष्कोण)

(मध्य में तीन ठं लिखे)

ठं

श्लोक नं0 29

क्लीं

उन्तीसवें मन्त्र का प्रयोग पाशविक मनोवृत्ति के दूरी करणार्थ है।

या पशु वृत्तिवालों को वश करना सुवर्ण पत्र पर यन्त्र लिखकर पूजन कर 1 महीना 15 दिन तक नित्य एक हजार जपकर यन्त्र को कलाई में बांधे।

मधु काले चने या काले माष की रोटी खावें।

(षटकोण मध्य में कामबीज)

श्लोक नं0 30

अं

तीसवें मन्त्र का प्रयोग आगका लांघना, अष्टसिसिद्धयों की प्राप्ति के लिये है।

सुवर्ण पत्र पर यन्त्र लिखकर 3 महीने 3 दिन तक नित्य 1000 एक हजार जपकर यन्त्र की मणिबन्ध में बांध लें।

मधु त्रिमधु पान सुपारी खावे।

(षटकोण यन्त्र मध्य में प्रणव)

इकत्तीसवें मन्त्र का प्रयोग राजाओं में मान प्रतिष्ठा प्राप्ति के लिये।

सुवर्ण पत्र पर यन्त्र बनाकर 1 महिना 15 दिन तक नित्य 1 हजार जप करें।

दूध मधु का पान करें। (श्री यन्त्र)

श्लोक नं0 22

ॐ थं ॐ

बत्तीसवें मन्त्र का प्रयोग रसायन तथा वैज्ञानिक प्रयोगों की सिद्धि के लिये हैं।

सुवर्ण पत्र पर यन्त्र लिखकर 1 मास 15 दिन तक 1 हजार नित्य जप करें। काले चने की रोटी खावे।

अथवा-व्यापारिक सिद्धि के लिये।

सुवर्ण पत्र पर यन्त्र बना पूजन प्रतिष्ठादि कर डेढ़ मास तक एक हजार नित्य क्रम से जपकर व्यापार स्थान पर मन्त्र लगा दें। प्रयोग काल में बेसन का मालपुवा खावे।

(दो रेखा तिर्छी दो सीधी मध्य में)

ॐ यं ॐ

श्लोक नं0 33

श्रीं

तेतींसवें मन्त्र का प्रयोग सम्पत्ति की वृद्धि के लिये है।

सुवर्ण पत्र पर यन्त्र बनाकर डेढ़ महीने तक नित्य सुवर्ण मुद्रा को मुट्ठी में बन्द करके एक हजार जप करें। हवनादि करने के बाद मृग के सिंगों के बक्स में रखकर गाड़ देना चाहिये।

चतुष्कोण मध्य में रमाबीज

श्लोक नं0 34

हीं

चौंतीसवें मन्त्र से बुद्धि का बढ़ना और कंठ रोग का दूर होना। यह यन्त्र सोने पर लिखना और 45 दिन तक 1000 मन्त्र का जप करना।

शहद काली मिर्च को घी में मिलाकर खावें।

त्रिकोण मध्य में मधुबीजं

श्लोक नं0 35

क्षां क्षीं

क्षूं क्षुं

पैंतीसवें मन्त्र का प्रयोग राजयक्ष्मा को दूर करने के लिये है।

स्वर्ण पत्र पर मन्त्र लिख 1 महीना 15 दिन तक प्रति दिन 1 हजार मन्त्र का जप करना।

शक्कर मधु दूध मट्ठा पान करना।

वीणायन्त्र मध्य में। क्षं क्षीं क्षूं क्षुं

श्लोक नं0 36

दुं ठ

दुं ष

दु श

छत्तीसवें मन्त्र का प्रयोग असाध्य रोग को दूर करने के लिये एक बर्तन में जल रखकर यन्त्र जल के अन्दर लिखकर 15 दिन तक 1 हजार

मन्त्र जपता हुआ जल पी जाय।

अथवा-

स्वर्णपत्र पर लिखकर 47 दिन तक नित्य 1 हजार मन्त्र जप कर मन्त्र प्रक्षालित जल पी लेवें।

काले चने की रोटी खाय चावल काली मिर्च मिलाकर खावे।

वृत्ताकार मध्य में तीन दुं दुं दुं ठ ष श

श्लोक नं0 37

र

सैंतीसवें मन्त्र का प्रयोग- ब्रह्म राक्षस बाधा दूर करने को एक पात्र पर मन्त्र लिखकर जल डालकर 15 दिन तक नित्य 5 हजार मन्त्र जप कर जल अभिमन्त्रित करें। फल खजूर खोवा खावे।

शीर्षाकार ऊपर रं।

श्लोक नं0 38

कं

अड़तीसवें मन्त्र का प्रयोग सांसर्गिक रोगों को दूर करने के लिये।

स्वर्ण पत्र पर मंत्र लिखकर 1 महीना 15 दिन तक नित्य 1 हजार मन्त्र जाप करें।

काले चने की रोटी, नारियल, पान, सुपारी खावे।

इसी यन्त्र को जल मे भी चार दिन तक चार हजार नित्य जप करने से प्रयोग हो जाता है।

(वृत्त मध्य में "कं")

श्लोक नं0 39

ठं णं पः

पं सं

उन चालिसवें मन्त्र प्रयोग-दुष्ट स्वप्न के निवारणार्थ- स्वर्ण या रजत पत्र पर यन्त्र लिख कर 12 दिन तक नित्य 108 जपे। दूध, शहत, दही खावे।

(चतुरस्त्र मध्य में) ठं णं पः पं सं

श्लोक नं0 40

ठं

चालीसवें मन्त्र का प्रयोग-स्वप्न द्वारा कार्यकार्य की सिद्धि जानना।

स्वर्ण पत्र पर यन्त्र लिखकर 45 दिन तक नित्य 1 हजार जप करें। यन्त्र को शिरहाने के नीचे गाढ़ देवे। शहत, दूध, फल, पान, सुपारी खावे।

(षटकोण मध्य में ठं)

श्लोक नं0 41

यं
ह्रीं

इकतालीसवें मन्त्र का प्रयोग- अपच रोगों के अजीर्ण दूर करने के लिये।

स्वर्ण पत्र पर यन्त्र लिख नमक के जल में छोड़कर 30 दिन तक नित्य 1 हजार मन्त्र की जप कर जल पावे। शहत का भक्षण करें।

(चतुष्कोण मध्य में) यं ह्रीं

श्लोक नं0 42

रं रं
रीं रीं

बयालीसवें मन्त्र का प्रयोग-जलोदर रोग दूर करने के लिये है। स्वर्ण पत्र पर यन्त्र लिखकर 45 दिन तक प्रति दिन 1 हजार जप करें। जपान्तर ध्याान के फूल व मिश्री को पीवैं।

(षट्कोण मध्य में) रं रं रीं रीं

श्लोक नं0 43

तैंतालीसवें मन्त्र का प्रयोग- सर्व वशीकरण।

स्वर्ण की अंगूठी पहिन कर स्वर्ण पत्र पर यन्त्र लिखकर 40 दिन तक प्रतिदिन 4 हजार जप करें ।मधु का पान करें।

(चतुष्कोण मध्य में रमाबीज)

श्लोक नं0 44

क्लीं

चौवालीस मन्त्र का प्रयोग-स्त्रियों को जो अपस्मार के समान रुदन कम्पन आदि होता है।

स्वर्ण पत्र पर यन्त्र लिखकर 12 दिन तक नित्य 1 हजार जप करें। खजूर की खीर शहत मिला कर खावें।

किसी स्त्री पर वशीकरण किया हुआ भी इस प्रयोग से ठीक हो जाता है।

(चतुष्कोण मध्य में कामबीज)

श्लोक नं0 45

सं

सं

सं

पैंतालीस मन्त्र का प्रयोग-भविष्य फल मूक प्रश्न बताने के लिये हैं।

स्वर्ण पत्र पर यन्त्र लिखकर 45 दिन तक नित्य 1 हजार जप करें। त्रिमधु या शहत खावे।

(चतुष्कोण मध्य में तीन सं सं सं)

श्लोक नं0 46

हीं

छियालीसवें मन्त्र का प्रयोग-पति को वश में करना तथा गर्भस्राव या गर्भपात के स्तम्भन के लिये।

स्वर्ण पत्र पर यन्त्र बना 45 दिन तक नित्य 1 हजार जप करें। खीर शहत का भोजन करें।

(त्रिकोण मध्य में वधुबीज)

श्लोक नं0 47

हीं
हीं
हीं

सैंतालीसवें मन्त्र का प्रयोग-दैवानुग्रह प्राप्त्यर्थ।

स्वर्ण पत्र पर हवन की भस्म से 25 दिन तक मन्त्र लिख प्रति दिन 1 हजार जप करना शहद नारियल खावे।

(चतुष्कोण मध्य में हीं हीं हीं)

श्लोक नं0 48

वु शु0 चं0
वु शु0 चं0
वु शु0 चं0

अड़तालीसवें मन्त्र का प्रयोग- दूसरे के किये गये प्रयोग को रोकने के लिये)

स्वर्ण पत्र पर यन्त्र बनाकर 45 दिन तक प्रति दिन 1 सहस्र जप करें। खीर नाना प्रकार के पदार्थ भक्षण करें।

(चतुष्कोण में नव कोष्ठ बनाकर मध्य में सूर्य आग्नेय में चं0 दक्षिण

में मं0 नैत्य में के पश्चिम में श वायव्य में रा ईशान में बु)

श्लोक नं0 49

मक

मक मक

मक

उनचासवें श्लोक में प्रयोग-भूमि में दबे हुए धन निधि को प्राप्त करना।

शीशम के तेल में हल्दी मिलाकर यन्त्र बनावें। भूरि आंख वाले 25 वर्ष से कम आयु के मनुष्य की आंख पैरों में लगावे। 10 दिन तक 1 सहस्र जप करे। खजूर शहद खावें।

(चतुष्कोण मध्य में दो टेढ़ी रेखा खींच कर 4 घर बनाकर, (मक) यह प्रति कोष्ट में लिखें।)

श्लोक नं0 50

पचासवें मन्त्र का प्रयोग-बन्धन से छूट जाने के लिये।

स्वर्ण पत्र पर जल या नवनीत द्वारा यन्त्र बनाकर 4 दिन 1 सहस्र जंप करें। नवनीत को खावें। गोल खजूर शक्कर भोजन करे। मातृ इस आकृतिका यन्त्र बनावें।

श्लोक नं0 51

क्लीं

कलीं

क्लीं

इक्कावनवें मन्त्र का प्रयोग- सर्वमोहन तथा सर्व इच्छाओं की पूर्ति के लिए।

सुवर्ण पत्र पर हवन की भस्म से यन्त्र लिख 45 दिन तक नित्य 1

सहस्त्र जप करें। शिर पर बालू लगायें। काले चने के मालपुआ शहद खावें।

(लम्बा चतुरस्त्र मध्य में तीन कामबीज)

श्लोक नं0 52

रं

बावनवें मन्त्र का प्रयोग-नेत्र या कर्ण रोग को दूर करने के लिये। स्वर्ण पत्र पर यन्त्र बनाकर 45 दिन तक नित्य 1 सहस्त्र जप करें। खीर का भोजन। (पूर्ण चतुरस्त्र मध्य में रं)

श्लोक नं0 53

ह्रीं

तिरपनवें मन्त्र का प्रयोग-चक्षु रोग निवारणार्थ। सुवर्ण पत्र पर पुष्पों से यन्त्र बनाकर दीपक जलावे। 1 दिन तीन सहस्त्र जप कर चने के मालपुवे और खीर खावे।

(त्रिकोण मध्य मं वधूबीज)

श्लोक नं0 54

चौवनवें मन्त्र का प्रयोग- नपुंसकता क्षीणता दूर करने के लिये। स्वर्ण पत्र पर यन्त्र लिख 45 दिन तक नित्य जल को 1 सहस्त्र संख्या से मन्त्र कर पी लेवे। भोजन खजूर की खीर।

(दो वृत्त बाहर के वृत्त का मुख खुला रहे।)

श्लोक नं0 55

ब्लूं

ब्लूं

पचपनवें मन्त्र का प्रयोग-जलोदर रोग दूर करने के लिये।

सुवर्ण पत्र पर यन्त्र आमल की कलम से लिखे 45 दिन तक नित्य

2500 जप करें। खीर, पान, सुपारी खावें।

चतुरात्र मध्य में ब्लूं ब्लूं।

श्लोक नं0 56

0

छप्पनवें मन्त्र का प्रयोग-भागे हुए मनुष्य को बांध कर वश में करने के लिये। वर्ण पत्र या मगर के दांत या खोपड़ी पर यन्त्र बनाकर 45 दिन तक नित्य 20 हजार जप करें। भोजन में शहद ग्रहण करें।

अर्धवृत्त नीचे (0) बिन्दु

श्लोक नं0 57

श्रीं
श्रीं

सत्तावनवें यन्त्र का प्रयोग-सर्व सम्पत्ति प्राप्त्यर्थि स्वर्ण पत्र पर यन्त्र लिखकर 45 दिन तक नित्य 1 सहस्र जप करें। दूध, शहद, खीर खावें।

(चतुस्त्र मध्य में 2 रमाबीज)

श्लोक नं0 58

क्लीं

क्लीं क्लीं

क्लीं

क्लीं क्लीं

क्लीं

अट्ठावनवें मन्त्र का प्रयोग- पुरुष वशीकरण के लिये। स्वर्ण पत्र पर या कर्ण भूषण पर लिख कर 5 दिन तक नित्य 1 हजार जप कर आभूषण पहिन लेना। राज वशीकरण के लिये 45 दिन तक जप करें। तिलक अभिमन्त्रित कर लगावें। खीर खावें।

(षट्कोण प्रत्येक कोण में कामबीज)

श्लोक नं0 59

ऐं

क्लीं

सौः

उनसठवें मन्त्र का प्रयोग- वशीकरण। स्वर्ण पत्र पर यन्त्र लिख कर 45 दिन तक नित्य 1 सहस्र जप करें। मालपुवे खावें।

(चतुरस्त्र मध्य में ऐं क्ली सौ?)

श्लोक नं0 60

श्रीं

साठवें मन्त्र का प्रयोग- स्मरण शक्ति बढ़ाने के लिये।

स्वर्ण पत्र पर यन्त्र बना 45 दिन तक नित्य 1 सहस्र जनकर मधु फल खावें।

(त्रिकोण मध्य में रमाबीज)

श्लोक नं0 61

ह्रीं

इकसठवें मन्त्र का प्रयोग- पुरुष को वश में कर अपनी इच्छा पूरी करना। इस यन्त्र को आभूषण की तरह धारण कर 8 दिन तक नित्य 1 सहस्र जपना। नारियल सब प्रकार के फल खावे।

(त्रिकोण मध्य में मधुबीज)

श्लोक नं0 62

म

मं

मं

बासठवें मन्त्र का प्रयोग- निद्रा भंग दोष निराकरणार्थ।

स्वर्ण पत्र पर यन्त्र बना 8 दिन तक नित्य 8 सहस्त्र जप कर शिरहाने रख दें। मालपुआ खावें।

(चतुष्कोण मध्य में मं म मं)

श्लोक नं0 63

ह्रीं

तिरसठवें मन्त्र का प्रयोग- नियमाबद्धता प्राप्त करने के लिये।

स्वर्ण पत्र पर यन्त्र बना मन्त्र लिखकर 30 दिन तक 30000 तीस हजार नित्य जप करें। नारियल फल खावें।

(चतुष्कोण मध्य में वधुबीज)

श्लोक नं0 64

श्रीं

श्रीं श्रीं

श्रीं

श्रीं श्रीं

चौसठवें मन्त्र का प्रयोग- वशीकरण तथा जननेन्द्रियों की व्यथा दूर करने के लिये। कुंकुम से स्वर्ण पत्र पर यन्त्र बनाकर नासिका पर धारण करना। 18 दिन तक नित्य 10000 जप करें। खजूर खीर शहद खावें।

(षट्कोण प्रत्येक कोण में रमाबीज मध्य में कामबीज)

श्लोक नं0 65

ह्रीं श्रीं ह्रीं

श्रीं क्लीं श्रीं

ह्रीं ह्रीं

श्रीं श्रीं

ह्रीं

पैंसठवें मन्त्र का प्रयोग- सर्वजन वशीकरण। स्वर्ण पत्र पर श्री यन्त्र को लिखकर 45 दिन तक नित्य 1 हजार जप करना। शहद खाना।

(षट्कोण बाहर से वृत्त प्रत्येक कोण में रमा फिर दूसरे में बधु इस प्रकार प्रत्येक कोण में लिखे। मध्य में कामबीज)

श्लोक नं0 66

श्रीं

श्रीं

श्रीं

छियासठवें मन्त्र का प्रयोग- संगीत शास्त्र परिक्षणार्थ। स्वर्ण पत्र पर यन्त्र बनाकर 45 दिन तक प्रतिदिन 1 हजार मन्त्र का जप करना। खजूर शहद खाना।

(लम्बी दो रेखा का चतुष्कोणमध्य में तीन रमाबीज)

श्लोक नं0 67

क्लीं

क्ली

क्लीं

सड़सठवें मन्त्र का प्रयोग- राज्य को अपने पक्ष में लाना। स्वर्ण पत्र पर यन्त्र बनाकर 45 दिन तक नित्य 1 हजार जप करें। साधक तथा साध य का नाम लिखना। खीर, पान, सुपारी, शहद, खाना।

(चतुष्कोण यन्त्र मध्य में तीन काम बीज)

श्लोक नं0 68

ह्री

अड़सठवें मन्त्र का प्रयोग- स्वर्ण पत्र पर श्री यन्त्र लिखना। 45 दिन तक 1 सहस्त्र जप करना। पान सुपारी भोजन। राज वशीकरण है।

(त्रिकोण प्रत्येक कोण में त्रिशूल मध्य में मधूबीज)

श्लोक नं0 69

क्षं

नूं

उनहत्तरवें मन्त्र का प्रयोग- स्त्री वशीभूत करणार्थ। स्वर्ण पत्र पर यन्त्र बनाकर 45 दिन नित्य 1 सहस्र जप करें। जपान्त में चम्पा का पुष्प स्त्री को दें। नारियल खावें।

(अर्द्धचतुरात्र मध्य में क्षं मूं)

श्लोक नं0 70

क्लीं

श्रीं

सत्तरवें मन्त्र का प्रयोग- पुरुष वशीभूत करने के लिये है। स्वर्ण पत्र पर यन्त्र बनाकर 45 दिन तक नित्य 1 सहस्र जप करें। नारियल खावें।

(चतुष्कोण मध्य में काम बीज रमाबीज)

श्लोक नं0 71

क्लीं क्लीं

श्रीं

श्रीं श्रीं

क्लीं

क्लीं क्लीं

श्रीं श्रीं

क्लीं

इकहत्तरवें श्लोक का प्रयोग- सौन्दर्य प्राप्ति के लिये है। स्वर्ण पत्र पर लिखकर अश्वत्थ वृक्ष के नीचे बैठ 90 दिन तक नित्य 12 हजार जप करें। भोजन शहद।

(पञ्चकाण बाहर में वृत्त ग्यारह कोष्ठ हो काम रमा काम रमा काम रमा काम रमा काम इस प्रकार बीजनाम लिखे)

श्लोक नं0 72

समं देवि

क्लीं

ह्रीं

बहत्तरवें मन्त्र का प्रयोग- रात्रि में होने वाले निर्विघ्न यात्रा करना। यह यन्त्र यष्टिका या स्वर्ण पत्र पर लिखकर 45 दिन तक नित्य 1 हजार जपें। शहद खावें।

(त्रिकोण मध्य में समं देवि क्लीं ह्रीं)

श्लोक नं0 73

ह्र

तिहत्तरवें मन्त्र का प्रयोग- स्त्रियों के व गौ के दूध को बढ़ाने के लिये। स्वर्ण पत्र या जल में यन्त्र लिखकर 7 दिन तक नित्य 1 हजार जपकर जल पिला दें। भोजन दूध शहद।

(चतुष्कोण मध्य में वधूबीज)

श्लोक नं0 74

ऐं

क्लीं

सौः

चौहत्तरवें मन्त्र का प्रयोग- प्रशंसा का विस्तार करना। भगवती के सामने बैठ सुवर्ण पत्र पर यन्त्र लिखकर 45 दिन तक नित्य 108 मन्त्र जपना। खीर शहद भोजन करें।

(त्रिकोण मध्य में वाग्भव काम शक्तिबीज)

श्लोक नं0 75

ऐं

ऐं क्लीं

सं

क्लीं सौः

सौः

पचहत्तरवें मन्त्र का प्रयोग- स्त्रियों के स्तनरोग निवृत्य को तथा दुग्ध वृद्धि स्वर्ण पत्र पर लिखकर 3 दिन तक 12000 हजार नित्य जप करें। फल शहद भोजन।

(षट्कोण ऊपर में वाग्भव कामशक्ति काम वाग्भव इस प्रकार बीजाक्षर लिखे मध्य में सं)

श्लोक नं0 76

क्लीं

छिहत्तरवें मन्त्र का प्रयोग- मनुष्यों पर प्रभाव डालना। स्वर्ण पत्र पर लिखकर 12 दिन तक नित्य 1 हजार जप करना। नारियल भात फल वृत्त। (अष्टकोण वृत्त मध्य में क्लीं)

श्लोक नं0 77

क्लीं

सतहत्तरवें मन्त्र का प्रयोग-राज्य-सत्ता का स्वनुकूल करना।

लाल कमल पर कोयला व घी मिलाकर यन्त्र व मन्त्र दोनों को लिखें। 15 दिन तक नित्य 2000 हजार जप जपान्त में यह कार्य पर उसका भावार्थ लगावें। भोजन फल शहद।

(त्रिकोण मध्य में क्लीं)

श्लोक नं0 78

ह्रीं

अठहत्तरवें मन्त्र का प्रयोग-राज्य कृपा व सर्वप्रकार की सफलता प्राप्त्यर्थ। लाल वर्ण के चन्दन को गुलाब जल में मिलाकर घिसना। यन्त्र बना 45 दिन तक नित्य 1 हजार जपना, तिलक करना। चने की रोटी शहद भोजन।

(त्रिकोण मध्य में ह्रीं)

श्लोक नं0 79

क्लीं

सर्वजन मोहनम्

उन्नहत्तरवें मन्त्र का प्रयोग- इन्द्रजाल मदारी का खेल हाथ की चालाकी। स्वर्ण पत्र पर 45 दिन तक 1 हजार नित्य जप करे। भोजन, खीर, फल, शहद।

(अर्द्धवृत्त ० ० ० ० ० ० ० इस प्रकार मध्य में क्लीं)

श्लोक नं0 80

शं लं रं श्रीं

ह्रीं

क्लीं चं एं सौः

हस्त चमत्कार के लिये क्रीड़ा कौतुक। स्वर्ण पत्र पर 45 दिन तक 1 सहस्र नित्य जप करें। भोजन शहद।

(अष्टकोण मध्य में वधुबीज। बाहर से शं लं रं श्रीं सौ ऐं यं क्लीं आठ कोण में लिखें।)

श्लोक नं0 81

ह्रीं

अग्नि स्तम्भन- स्वर्ण पत्र पर यन्त्र बना आग्नेय को मुख कर 16 दिन तक नित्य 1000 जप करें। भोजन, खीर, खजूर, चने के गुलगुले। (शिरका चिन्ह मध्य ω पेज 269 मध्य में वधुबीज)

श्लोक नं0 82

दुं

हं ॐ लं

ह्रीं

सं नं

अं

जल स्तम्भनार्थ-भूर्ज पत्र पर या पादुका पर यन्त्र बनाकर 45 दिन तक नित्य 1000 अश्वकर्ण वृक्ष के नीचे बैठ कर जप करें। भोजन नारियल फल शहद।

(षट्कोण मध्य में ॐ ह्रीं दुं लं मं यं सं हं)

श्लोक नं0 83

ॐ

सुं

ॐ

तिरासीवें मन्त्र का प्रयोग-सामुद्रिक यात्रा में रक्षार्थ। स्वर्ण पत्र पर यन्त्र बना 12 दिन तक नित्य 1000 जप करना। लाल कार्पास पुष्पों से पूजन करना। भोजन खजूर शहद।

(चतुष्कोण यन्त्र मध्य में ॐ सुं ॐ)

श्लोक नं0 84

सं　　　जी

○

○　आं　○

फट्　　　ह्रीं　　　व

○　क्रौं　○

○

हुं　　　नि

चौरासीवें मन्त्र का प्रयोग-परकाय प्रवेशनार्थ। स्वर्ण पत्र पर 365 दिन तक नित्य 1 हजार जप करता हुआ यन्त्र बनावें। भोजन, खीर, शहद, चावलों का भात।

(द्वादश दल मध्य में दलों में आं ○ जी ○ व ह्रीं ○ नि हुं क्रौ ○ फट् ○ सं.)

श्लोक नं0 85

रं　रं

रं　रं

रं　रं

भूत पिशाचों का द्रावण-स्वर्ण पत्र पर आठ प्रकार के पुष्पों से पूजन करता हुआ यन्त्र बना जप करें। 12 दिन तक 1000 नित्य करें जीवन शहद खीर खजूर।

(चतुरत्न मध्य में रं रं रं र रं रं द्वादश दल मध्य में दलों में आं ○ जी ○ व ह्रीं ○ नि हुं क्रौ ○ फट् ○ सं.)

श्लोक नं0 86

यं

यं

यं

ब्रह्म राक्षस दूर करना-स्वर्ण पत्र पर यन्त्र बनाकर एक तल के बड़े पर मन्त्र 21 दिन तक नित्य 1000 जपता हुआ स्नान करें। भोजन नारियल।

(चतुरत्न यन्त्र मध्य में यं यं यं)

श्लोक नं0 87

ह्रीं

सर्प सर्प

सं

सर्प को बुलाने के लिये-श्मशान की विभूति या चन्दन के चूरे से यन्त्र बनाकर 16 दिन तक नित्य 1000 जप करना। भोजन खीर, फल, शहद।

(त्रिकोण यन्त्र मध्य में ह्रीं सर्प सर्प मं)

श्लोक नं0 88

ह्रीं ह्रीं

ह्रीं

पशुओं को बुलाने के लिये-स्वर्ण या रौप्य पत्र पर यन्त्र बनाकर 108 दिन तक नित्य 1008 जप करें। भोजन-खीर, फल, नारियल।

(त्रिकोण यन्त्र मध्य में तीन बधूबीज)

श्लोक नं0 89

ह्रीं

रोग को शमन करना-स्वर्ण पत्र पर हवन की विभूति से यन्त्र बनाकर

30 दिन तक 1 सहस्र नित्य जप करें। भोजन खजूर की खीर शहद।

(त्रिकोण मध्य में वधुबीज)

श्लोक नं0 90

क्षां क्षां

क्षीय क्षीय

अभिचार "जादू" को लौटाना-स्वर्ण पत्र पर यन्त्र बनाकर 30 दिन तक नित्य 1000 जप करें। भोजन, खीर, फल, शहद।

(चतुष्कोण मध्य में क्षां क्षां क्षीय ह्रीं)

श्लोक नं0 91

ॐ ह्रीं

ह्रीं ह्रीं

भूमि व सम्पत्ति पर अधिकार-स्वर्ण पत्र पर यन्त्र व मन्त्र को 45 दिन तक नित्य 1000 जप करें। भोजन क्षीरान्न।

(त्रिकोण यन्त्र मध्य में ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं)

श्लोक नं0 92

ॐ ह्रीं

ह्रीं

ह्रीं

आधिपत्य प्राप्त करना व भूत बाधा निवारण-स्वर्ण पत्र पर हवन की विभूति से यन्त्र बनाकर 45 दिन तक नित्य 2000 जप करें। सब प्रकार के चावल, दूध, फल, पान, सुपारी भक्षण करें।

(त्रिकोण मध्य में ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं)

श्लोक नं0 93

ॐ　　ह्रीं

ह्रीं

ह्रीं

संकलित कार्यों की सिद्धि-स्वर्ण पत्र पर यन्त्र बनाकर 45 दिन तक नित्य 1000 जप करें। भोजन शहद।

(त्रिकोण यन्त्र मध्य में ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं)

श्लोक नं0 94

ॐ　　ह्रीं

ह्रीं

ह्रीं

कामनाओं की सिद्धि-स्वर्ण पत्र पर यन्त्र बनाकर 45 दिन तक नित्य 2000 जप करें। भोजन नारियल की मिठाई।

(त्रिकोण यन्त्र मध्य में ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं)

श्लोक नं0 95

ॐ

ह्रीं

व्रण नासूर विधृति को शमन करना-वर्ण पत्र पर शीशम के तेल से यन्त्र बनाकर 3 दिन तक नित्य 108 बार जप कर तेल को व्रण के स्थान पर लगावें। भोजन साठी चावल खजूर।

(त्रिकोण यन्त्र मध्य में ॐ ह्रीं)

श्लोक नं0 96

क्लीं

क्लीं

क्लीं

अध्ययन में सफलता प्राप्ति श्वेत मन्दार "आक" की लकड़ी पर यन्त्र बनाकर सिर पर धारण करें।

(त्रिकोण मध्य में क्लीं क्लीं क्लीं)

श्लोक नं0 97

ह्रीं

शारीरिक ओज व बल वृद्धयर्थ-स्वर्ण पत्र या आम्रपत्र अथवा जल में यन्त्र बनाकर 8 दिन तक नित्य 1000 बार जपें। भोजन चावल शहद।

(त्रिकोण यन्त्र मध्य में ह्रीं)

श्लोक नं0 98

ह्रीं

रोग निर्मुक्ति के बाद बल स्फूर्ति प्राप्त्यर्थ-स्वर्ण पत्र पर हवन की विभूति से 45 दिन तक नित्य 2000 जप करें। भोजन शहद।

(त्रिकोण यन्त्र मध्य में ह्रीं)

श्लोक नं0 99

ह्रीं

धैर्य शौर्य पुराक्रम वृद्धि के लिये-स्वर्ण पत्र पर यन्त्र बनाकर 16 दिन तक नित्य 1000 जपे। भोजन त्रिमधुः चने के गुलगुले।

(त्रिकोण यन्त्र मध्य में ह्रीं)

श्लोक नं0 100

ॐ

प्रीं

अभीष्ट कार्य की सिद्धि-स्वर्ण पत्र पर 45 दिन तक कुल 100000 एक लाख जप करें। भोजन फल गोला।

(त्रिकोण यन्त्र मध्य में ॐ ह्रीं)

संक्षिप्त नित्य पूजा-प्रणाली

1. भूमि शुद्धि-अर्थात्-पूजा स्थान को 'हूं' मन्त्र का स्मरण कर देखे और 'फट्' मन्त्र का स्मरण कर जल से स्थान को सिंचन करें। तदनन्तर भूमि दोष निवारणार्थ इस स्थान पर ही लिखें।

2. गुरु एव इष्ट देवता का ध्यान।

3. आचमन।

4. पद्मासन बांध कर आसन पर बैठे।

5. पूजा-सामग्री-सामने दाहिने ओर रखें। धूप, दीपादि पञ्चोपचार का षोड्षोपचार पूजन की सामग्री।

6. देवता की बाई ओर तेल और दाहिनी ओर घी का दीपक प्रज्ज्वलित करें।

भूत-शुद्धि-यह पांच तत्वों का शरीर स्वभाव से ही बड़ा अपवित्र है। अतएव उसकी शुद्धता के लिये वायु (यं) अग्नि (रं) और जल (बं) के अक्षरों (बीजों) से तथा चन्द्र (ठं) एवं भूमि (लं) बीज से उसका शोषण, दहन, भस्म, प्रोत्साहन, अमृत वर्षण और आप्लावन पूरक तथा कुम्भक से करें।

हृदय में मध्यमा, अनामिका और तर्जनी से, सिर में मध्यमा और तर्जनी से, शिखा में अंगुष्ठ से, कवच में दसों अंगुलियों से, नेत्रों में तीन

अंगुलियों और अन्य में दो अंगुलियों से न्यास करें।

(तीन से तर्जनी मध्यमा और अनामिका से अभिप्राय है।)

-हृदय कमल में स्थित देवी का मानसिक उपचारों से यथा-विधि पूजन करें। तदनन्तर जप होमादि (मानसिक) करें। पश्चात् देवी का आवाहन हाथ में फूल लेकर इस मन्त्र को पढ़ता हुआ सामने रखें।

एह्ये हि भगवत्यम्ब भक्तानुग्रहविग्रहे।

योगिनीभिः सह देवि रक्षाय मम सर्वदा।।

देवेशि भक्ति सुलभे परिवार समन्विते।

यावत्तं पूजयिस्यामि तावत्वं सुस्थिरो भव।।"

7- (क) प्राण-प्रतिष्ठा-शालग्राम शिला में, मणि में, अग्नि में, मन में और पुष्प में तथा प्राण-प्रतिष्ठा की हुई मूर्तियों में-इन सबमें आवाहन नहीं होता क्योंकि इनमें देवता सदैव विराजमान रहते हैं। "मूलं अमुक द्रव्यं अमुक द्रव्यं अमुकी देव्यै नमः" इससे देवी की पूजा करे। देवी के चरणों में, आधार-पद्म, नाभि कमल, वक्षस्थल, मस्तक-इन पांच स्थानों में देवी की पांच और दोनों चरण-कमलों में तीन पुष्पांजलियां प्रदान करें (दोनों हाथों से)। अंगुष्ठ और अनामिका युक्त कर उसके द्वारा देवता के मुख में मूल मन्त्र से तीन बार तर्पण करें।

देवी का मुख दक्षिण दिशा की ओर होना चाहिये (दक्षिण को ही पूर्व मान कर सब दिशाओं का निर्दिष्ट होना चाहिए।)

प्राण-प्रतिष्ठा-प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र इस प्रकार का है-

आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हों हंसः- अमुकि देव्याः जीव इह स्थितः। आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं ष सं हों हंसः- अमुकि देव्याः सर्वेन्द्रियाणि बाङ् मनश्चक्षुः श्रोत्रघ्राणप्रणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।' इस मन्त्र से प्राण-प्रतिष्ठा करके पूजा आरम्भ करें। जिस देवता की साधक जाप करता है उसके देवता के कल्प देवता क नामोल्लेख कर सभी

देवताओं की प्राण-प्रतिष्ठा इस मन्त्र से करें कल्प के अनुसार मुद्रा प्रदर्शित कर क्रम पोडश उपचारों से देवी का पूजन करें और उसके बाद देवी की आज्ञा लेकर परिवार गण का पूजन करें। इसके बाद अष्टोत्तरशत अथवा अष्टोत्तर सहस्र मन्त्र का जप कर हुतशेष को यन्त्र पर अर्पण करें। इसके बाद पूर्णाहुति प्रदान कर होमकुम्भ के जल से यन्त्र का अभिषेक करें। इसके बाद गुरु को दक्षिणा देकर संहार मुद्रा से देवी का विसर्जन करें।

पूजा के उपचार-आसन, आवाहन, अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, स्नानीय, वसन, उपवीत, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, अन्न, तर्पण, माला, अनुलेपन एवं नमस्कार-इन अट्ठारह उपचारों से मन्त्रज्ञ पूजा करें। तन्त्र में लिखा है कि -आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुर्पक, आचमनीय, स्नानीय, वसन, आभरण, गन्ध, पुष्प, धूप, दोष, नैवेद्य, एवं वन्दन-ये सोलह उपचार हैं। पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, आचमनीय, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप व नैवेद्य-ये दस उपचार हैं। गन्ध, पुष, धूप, दोष व नैवेद्य-ये पांच उपचार हैं।

तत्पश्चात् यह ध्यान करता हुआ प्रार्थना करें।

अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा वैकल्यात् साधनस्य च।
यन्न्यूनमतिरिक्तं वा तत् सर्वे क्षन्तुमर्हसि।।

द्रव्यहीनं क्रियाहीनं श्रद्धाभक्तिविवर्जितम्।
तत् सर्व कृपया देवि क्षमस्व स्त्वं दयानिधे।।

यन्मया क्रियते कर्म महद्वा स्वल्पमेव च।
तत्सर्व च जगद्धात्रि क्षन्तव्यमयमंजलिः।।

8- कामानायुक्त कवचादि पाठ पढ़े।

9- सहस्रनाम पाठ

10- समाप्ति पर नीराजन पुष्पांजलि प्रदक्षिणा, प्रणाम कर यह क्षमापन पढ़े। प्रदक्षिणा, नमस्कार तब विसर्जन करें।

11- जप-साधक क्रम से पहले महासेतु, सेतु, कुल्लुका और तब अपने मन्त्र का जप करें। त्रिपुरा सुन्दरी का महासेतु ''ह्रीं'' सेतु ''ह्रीं सौ ह्रीं'', कालिका का 'क्रीं' तारा का 'हूं और ॐ ह्रीं' भुवनेश्वरी का ''ॐ ह्रीं ह्रीं ॐ'' त्रिपुरा का कुल्लुका ऐं क्लीं ह्रीं त्रिपुरे भगवती स्वाहा' अथवा क ए ईल ह्रीं अथवा ऐं क्लीं हूं फट्ं, तारा की कुल्लुका 'क्लीं श्रीं हूं'' छिन्नमस्ता की कुल्लुका वज्र वैरोचनीय हूं। शेष देवी-देवताओं को प्रणव से

12- मुख शोधन-त्रिपुरा के उपासक को ''श्रीं ॐ श्रीं ॐ श्रीं ॐ और भुवनेश्वरी का ऐं ऐं ऐं इन मन्त्रों से 10 बार जप करने से मुख शुद्धि होती है। तारा क 'ह्रीं ह्रीं ह्रीं।

जपान्ते शुद्धमाला च आम्नाय स्तोत्रमुत्तमम्।
ललिता नाम साहस्रं सर्वपूर्ति करं स्तवम।।

हवन-

वन्दे गुरुपदद्वन्दमवाङ्नसगोचरम्।
रक्तसूक्ष्मप्रभामिश्रमतर्क्यै त्रिपुयै नमः।।

कुण्ड या भूमि शोधन

दैनिक हवन के लिये

इन मन्त्रों से ''आं ऐं ह्रीं-श्री ऐं क्ली सौः'' -ब्रह्मणे नमः

7 यमाय नमः

7 सौमाय नमः

7 इन्द्राय नमः

7 विष्णवे नमः

7 इन्द्राय नमः

पीठ शक्ति पूजन

7 पीताय नमः

7 श्वेताय नमः

7 अरुणाय नमः

7 कृष्णाय नमः

7 धूम्रप्राय नमः

7 तीव्राय नमः

7 स्फुलिङ्गने नमः

7 रुचिरायै नमः

7 ज्वालिन्यै नमः

पीठ मध्ये

इन मन्त्रों से आं ऐं ह्रीं - श्रीं ऐं क्लीं सौः'' - ब्रह्मणे नमः

7 तं तमसे नमः

7 रं रजसे नमः

7 सं सत्वाय नमः

7 आं आत्मने नमः

7 ॐ अन्तरात्मने नमः

7 पं परमात्मने नमः

7 ज्ञानात्मने नमः

त्रिकोण

7 ॐ ओं ह्रीं वागीश्वरी वागेश्वराभ्यां नमः

अग्नि प्रज्वालन मंत्र

7 ओं रं वेंश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्व कर्माणि साधय स्वाहा।

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदोऽहुतासनम्।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतो मुखम्।।

ह्रीं इस मन्त्र से कुण्ड पर तीन बार आग को घुमा कर रख देना।

7 "चितपिंगल हन् हन् दह दह पच पच सवर्ज्ञा ज्ञापय स्वाहा।"

इस मन्त्र से अग्नि को जलाना।

7 ऐं नमः अस्य अग्ने गर्भाधान पुंसवन कर्म सीमन्तो न्नयन कर्म जात कर्म ललिता अग्नि इति नाम्ना नाम करणकर्म कल्पयामि नमः।

आद्याराहुतिः

ॐ प्रजापतये नमः इदं प्रजापतये नमम।

ॐ ओं इन्द्राय नमः इद मिन्द्राय। नमम

ॐ ओं भूरग्नये स्वाहा ॐ भुवः सोमाय स्वाहा इदं सोमाय नमम ॐ स्वः वायवे स्वाहा इदं वायवे नमम स्वः वायव्यै स्वाहा।

अग्नि पूजन (अष्ट कोणों से अक्षत डाल कर)

7 सप्त जिह्वाय नमः

7 हव्यवाहाय नमः

7 अश्वोदराय नमः

7 वेंस्वानराय नमः

7 कौमारतेजसे नमः

7 विश्वमुखाय

7 देवमुखाय-आहुतिं दद्यात्

इन मन्त्रों से तीन-तीन आहुति देनी।

7 ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह् लोहिताक्ष सर्व कर्माणि साधय स्वाहा इदं अग्नये नमः।

7 ॐ उत्तिष्ठ पुरुषाः, हरितपिङ्गल, लोहिताक्ष, सर्व कर्माणि, साधय स्वाहा इदं अग्नेय नमः।

श्री चित्त् पिंगल हन् हन् दह दह पच पच सर्वाज्ञा ज्ञापय स्वाह, इदं अग्नये नमः।

'ओं रं ह्रीं श्रीं हस्रों, हस्क्लीं हस्रौंः'' इस मन्त्र से गन्धा क्षत पुष्पादि से हवन कुण्ड में हवन करें।

ओं एं ह्रीं श्रीं गणपति मन्त्र से 3 बार मूल मन्त्र श्री ललिता महा त्रिपुरसुन्दर्यै स्वाहा

अपने मूल दीक्षित मन्त्र से यथा संख्या हवन करें।

पुर्णाहुति-हवन

ॐ भू स्वाहा इदमग्नये नमः

ॐ भुवः स्वाहा इदं वायवे नमः

ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा

मूलेन पुर्णाहुति इदं सूर्य्याय नमः

आरती करना- सदीप दिक्पाल क्षेत्रपालवली मूल-यन्त्र से प्राचीन-आयुः प्रजांरयिमश्मासुदेहि अजस्रो दीदिहिनों दुरेणे।

नमस्ते गार्हपत्याय नमस्ते दक्षिणाम्नये।
नमो आहवनीयाय महादैव्यै नमो नमः।।

अनन्तर आवण देवता अथवा खङ्गमाला मंत्रों के नामों से हवन करना चाहिये तथा श्री सूक्त मंत्रों का भी हवन आवश्यक है।

कुण्डलिनी उत्थान

जागो जगदाधार! मैया जागो जगदाधार।।
साधो मन के तार! मैया जागो जगदाधार।। टेक0
जप तप जोग, कछू नहि जानू, सुषुम्ना सूक्ष्म विचार। टेक0
कुल कुण्डलिनी, कुण्डली शिव को, सार्थ त्रिवलयाकार। टेक0

विद्यु, ल्लेखा, विष तन्तूसम, सुप्त भुञ्जगी प्रकार। टेक0
दिव्य त्रिकोणे, कोटि तड़ित् सम, आभा भानु अपार। टेक0
मूल महीं वं शं षं सं मा! गणपति मूलाधार। टेक0
वं भं मं यं रं लं ब्रह्मा, स्वाधिष्ठान विचार। टेक0
रं मणिपूरे, विष्णू, माया, अग्नि त्रिकोणाकार। टेक0
डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बीज प्रकार। टेक0
षट्कोणे, शिवरूप, विराजो, अनहद, नाद अपार। टेक0
कं खं गं घं ङं, चं छं जं, झं वं टं ठं बार। टेक0
हं सः सोहं हंस स्वरूपी, वेद विशुद्धि विचार। टेक0
अं आं इं ई उं ऊं, ऋं ॠं, अर्घे अष्ट अपार। टेक0
लृं लं एं ऐं, ओं औं अं अः षोड्श मात्रा सार! टेक0
हं क्षं हसौं सकल तू साधे, और त्रिवेणी तार। टेक0
अर्ध मात्र रही, अन्तर आत्मा, करुणा की करतार। टेक0
शुभ ज्योतिर्मय, हंस, युगलयुत, पंकज पत्र हजार। टेक0
लुप्ताक्षर मण्डप मणि मञ्चयं, श्री गुरु श्वेत श्रृंगार। टेक0
परमात्मा गुरुनाथ परम शिव, वरद अभय धरनार। टेक0
शिव वामाङ्के शक्ति विराजो, रक्त कमल को धार। टेक0
शुक्ल रक्त मणि, रत्न पादुका, महिमा अपरम्पार। टेक0
शिव शक्ति पद पंकज बरसे, स्नेह सुधा की धार। टेक0
शुक्ल रक्त मणि, रत्न पादुका, महिमा अपरम्पार। टेक0
शिव शक्ति पद पंकज बरसे, स्नेह सुधा की धार। टेक0
अभिषेके इनके जय पावे, शिवपद जिव निरधार।

श्रीयुम ठाकोर साहब जयवन्त सिहजी
सानन्द (अहमदाबाद) द्वारा सहर्ष प्राप्त